BO-11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

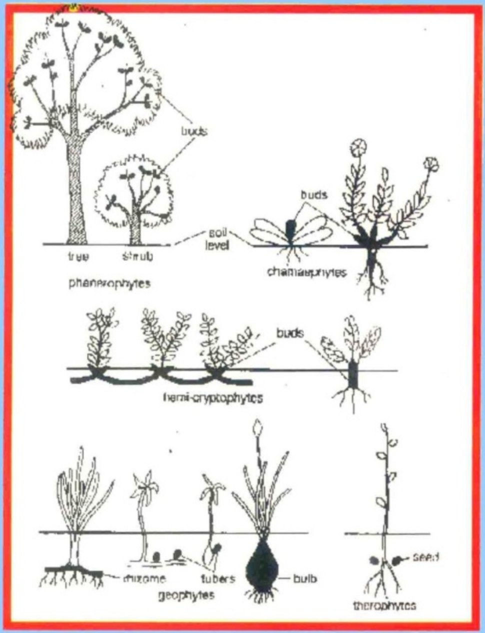

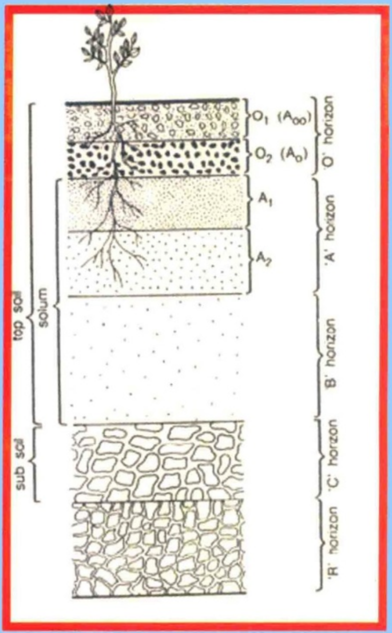

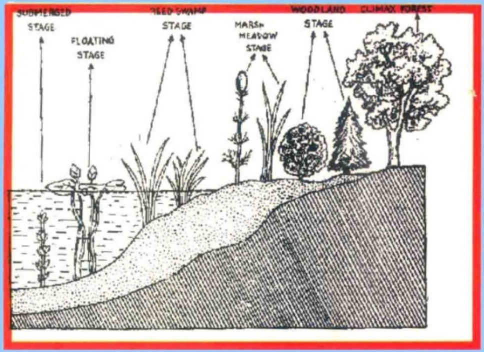

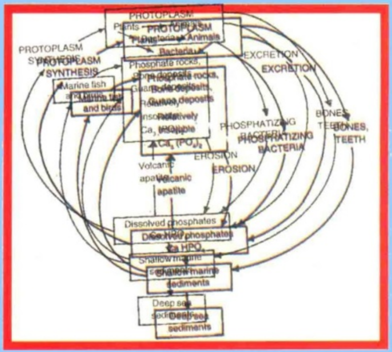

पादप पारिस्थितिकी एवं आर्थिक वनस्पति

BO - 11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पादप पारिस्थितिकी एवं आर्थिक वनस्पति

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक/ समन्वयक एवं सदस्य

विषय समन्वयक

प्रो.(डॉ.) पी.सी. त्रिवेदी

वनस्पति शास्त्र विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव / समन्वयक

डॉ. अनुराधा शर्मा

सहायक आचार्या, वनस्पति शास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. एस.वी.एस. चौहान**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
2. **प्रो. त्रिभुवन सिंह**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **प्रो. एन. सी. ऐरी**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   एम.एल.सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
4. **डॉ. डी. के. अरोड़ा**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5. **प्रो. एस.के. माहना**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर
6. **डॉ. श्रीमती प्रमिला शर्मा**
   जैव प्रौद्योगिकी विभाग
   महर्षि अरविन्द कॉलेज,मानसरोवर, जयपुर
7. **डॉ. आर. एस. धनखड़**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, सीकर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. एल. के. दाधीच

प्राचार्य

राजकीय जे. डी. बी. कन्या महाविद्यालय, कोटा

लेखक

1. डॉ. दिनेश हंस
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, जयपुर
2. डॉ. पवन कसेरा
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   जयनारायन व्यास विश्वविद्यालय, जयपुर
3. डॉ. शेर मोहम्मद
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू
4. डॉ. मंजीत सिंह
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   भवानी निकेतन महाविद्यालय, जयपुर
5. डॉ. नीरजा श्रीवास्तव
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
6. डॉ. सतीश शर्मा
   जैव प्रौद्योगिकी विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ
   एप्लाइड साइंसेस, जयपुर
7. डॉ. जे. बी. खान
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू
8. डॉ. जगदीश धनकड़
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   कल्याण राजकीय महाविद्यालय, सीकर
9. डॉ. अरविन्द पारीक
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ
   एप्लाइड साइंसेस, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.)नरेश दाधीच	प्रो. अनाम जेटली	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	प्रभारी अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन सितम्बर 2009 ISBN- 13/978-81-8496-130-0

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

पादप पारिस्थितिकी एवं आर्थिक वनस्पति

इकाई संख्या		पृष्ठ संख्या
1.	वायुमंडल (ATMOSPHERE)	6–12
2.	प्रकाश एवं तापमान(LIGHT AND TEMPERATURE)	13–27
3.	मृदा(SOIL)	28–49
4.	सजीवों की पारस्परिक क्रिया (जैविक कारक) (INTERACTION AMONG ORGANISMS(BIOTIC FACTORS)	50–66
5.	पादप समुदाय(PLANT COMMUNITY)	67–109
6.	पादप अनुक्रमण(PLANT SUCCESSION)	110–133
7.	पारिस्थितिकी तन्त्र- संरचना एवं कार्य (ECOSYSTEM- STRUCTURE AND FUNCTION)	134–150
8.	जैव भू-रासायनिक चक्र(BIOGEOCHEMICAL CYCLE)	151–161
9.	कृष्य पादपों की उत्पत्ति एवं धान्य फसलें (ORIGIN OF CULTIVATED PLANTS & CEREAL CROPS)	162–177
10.	शर्करा पादप : गन्ना एवं आलू की उतपत्ति,वानस्पतिक लक्षण, खेती,उन्नत किस्में तथा उपयोग	178–187
11.	सब्जियाँ :- सामान्य विवरण मूली, प्याज, लहसुन, पत्ता गोभी, पालक, फूलगोभी, खीरा, टमाटर, भिण्डी, मटर आदि पर टिप्पणियाँ	188–199
12.	फल एवं उनका आर्थिक महत्व(FRUITS AND THEIR ECONOMIC IMPORTANCE)	200–211
13.	प्रमुख खाद्य तेल एवं उनका आर्थिक महत्व (CHIEF EDIBLE OIL AND THEIR ECONOMIC IMPORTANCE)	212–223
14.	मसाले(CONDIMENTS)	224–252
15.	औषधीय पादप(MEDICINAL PLANTS)	253–272
16.	रेशे एवं काष्ठ पादप(FIBRE AND WOOD PLANTS)	273–305
17.	पेय पादप तथा रबर(BEVERAGE PLANTS AND RUBBER)	306–326

इकाई-1

वायुमण्डल
ATMOSPHERE

इकाई की रुपरेखा :-

1.0 उद्देश्ये
1.1 प्रस्तावना
1.2 वायुमण्डल
  1.2.1 संघटन एवं लक्षण
  1.2.2 जल: जैव मण्डल में वितरण
  1.2.3 जल के गुण
  1.2.4 जल चक्र
  1.2.5 बोध प्रश्न
1.3 सारांश
1.4 शब्दावली
1.5 संदर्भ ग्रन्थ
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य:-

वायु का विशाल घेरा जो पृथ्वी को सभी ओर से ढके रहता है, वायुमण्डल कहलाता है । इस पाठ में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है :-

1. वायुमण्डल
2. संघटन एवं लक्षण
3. जल: जेव मण्डल में वितरण
4. जल के गुण
5. जल चक्र

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

वायु का विशाल घेरा जो पृथ्वी को सभी ओर से ढके रहता है, वायुमण्डल कहलाता है । ट्रेवार्था के अनुसार "पृथ्वी को परिवेष्ठित करने वाली गैसों का एक विस्तृत आवरण जो पृथ्वी का अभिन्न अंग होने के साथ-साथ ही इसे चारों और से घेरे हुए रहता है । राह पर्यावरण के चार महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है । वायुमण्डल पृथ्वी से कई हजार किलोमीटर की दूरी तक फैला हुआ है और गुरुत्वाकर्षण (Gravitational Force) शक्ति से पृथ्वी से संबद्ध है । इसकी

उच्चतम परतों में गैसें विरल होती जाती है और अंत में बाह्य वातावरण में विलीन हो जाती हैं । सम्पूर्ण वायुमण्डल का वृहतम भाग (लगभग 99%) पृथ्वी से 20 किमी की ऊँचाई तक स्थित है और अधिकतर वायुमण्डलीय परिवर्तन वायुमण्डल की इसी परत में होते हैं ।

वायुमण्डल में सभी जीवधारियों के लिए अति आवश्यक जीवन दायी गैसें जैसे मनुष्य व जन्तुओं के लिए ऑक्सीजन तथा पेड़-पौधों के लिए कार्बन डाइऑक्साइड, पाई जाती है । पृथ्वी की गरमी को संचित रखने में वायुमण्डल एक ग्रीन हाउस (Green House) की तरह कार्य करता हैं । ग्रीन हाउस के शीशे की तरह यह छोटी तरंग दैर्ध्य वाले विकिरणों को पृथ्वी की सतह तक पहुँचने देता है परन्तु बडी तरंग दैर्ध्य वाले पार्थिव विकिरणों (Long Wave Terrestrial Radiation) को रोक देता हैं । वायुमण्डल के इसी गुण के कारण पृथ्वी का औसत तापमान 35° सेल्सियस बना रहता हैं । वायुमण्डल पृथ्वी को सूर्य की हानिकारक विकिरणों से बचाता हैं । यह जल वाष्प को संचित करने का कार्य करता है जो अवक्षेपित (Precipitation) होकर स्थल और समुद्र पर वर्षा के रूप में फैल जाती हैं । वायु और जल की पृथ्वी पर उपस्थिति इसे सौरमण्डल का अद्वितीय ग्रह बनाती हैं ।

1.2 वायुमण्डल-

1.2.1 संघटन एवं लक्षण (Composition of Atmosphere and Characteristics)-

वायुमण्डल विभिन्न गैसों का मिश्रण है जिसके विभिन्न मात्राओं में सूक्ष्म ठोस कण बिखरे रहते है । समुद्र तल से ऊंचाई बढने के साथ-साथ वायुमण्डलीय दबाव कम होता जाता है । वायुमण्डल की निचली पृथ्वी के समीप वाले परतों में गैसों का मिश्रण, इसकी उपरी परतों की अपेक्षा अधिक समान रुप में पाया जाता है । वायुमण्डल की परतों में मुख्य रुप से शुद्ध वायु में औसतन 78% नाइट्रोजन तथा 21% आक्सीजन होती है । अत: वायुमण्डल के 99% भाग में आयतनानुसार नाइट्रोजन व आक्सीजन तथा शेष 1% में अन्य गैसें जिनकी मात्रा अत्यन्त कम या नही के बराबर होती है कि अधिकता वायुमण्डल में धरती से 150 किमी की ऊंचाई से अधिक वाले क्षेत्र मे पायी जाती है । वायुमण्डल में उपस्थित प्रमुख गैसों का आयतन एवं भार प्रतिशत मात्रा निम्न प्रकार से तालिका 1 में दर्शाया गया है :-

तालिका 1 वायुमण्डल में उपस्थित प्रमुख गैसें

क्र.सं.	गैस का नाम	प्रतिशत मात्रा(आयतन)	प्रतिशत मात्रा (भार)	
1	नाइट्रोजन	78.0841	75.50	
2	आक्सीजन	20.9486	23.10	
3	आर्गन	0.9340	1.30	
4	कार्बन डाइऑक्साइड	0.0318	0.05	

इसके साथ ही वायुमण्डल में कुछ गैसें अत्यल्प मात्रा में भी पाई संख्या जाती है जिनकी प्रतिशत मात्रा संख्या 2 में दी गई है ।

तालिका 2 वायुमण्डल में कम मात्रा में पायी जाने वाली गैसें

क्र.सं.	गैस का नाम	प्रतिशत मात्रा (आयतन)
1	नियोन	0.00182
2	हीलियम	0.00052
3	क्रिप्टोन	0.00011
4	जिनॉन	0.00009
5	हाइड्रोजन	0.00006
6	मीथेन	0.00020
7	नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005
8	ऑजोन	0.00004

उपरोक्त गैसों के अतिरिक्त पूरे वायुमण्डल की लगभग 4 प्रतिशत मात्रा जल वाष्प (Water Vapour) की होती है । इसके साथ ही औद्योगिक महानगरों के आसपास की वायु प्रदूषणकारी गैसें, जैसे - सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोआक्साड इत्यादि विद्यमान होती है । इन गैसों को, अतिरिक्त वायु में ठोस कण जैसे-धूल, धुऑ लवण, कवक, बीजाणु, परागकण एवं अन्य पौधों के (Spores) भी पाये जाते है । परिमाणत: वायु का संघटन कभी भी स्थिर नही रहता और समय-समय पर अलग-अलग स्थानों पर बदलता रहता है । यदि इन परिवर्तनशील तत्वों को वायुमण्डल से निकाल दिया जाये इसका संघटन इसकी निचली परतों में लगभग समान हो जायेगा । सम्पूर्ण घटकों में से कार्बन डाइऑक्साइड जल वाष्प तथा ओजोन परत पृथ्वी की जलवायु के लिए महत्वपूर्ण हैं ।

1.2.2 जल: जैवमण्डल में वितरण (Distribution in Biosphere)

इस धरती पर समस्त जीवधारियों के जीवित रहने के लिए या जीवन को निरंतर गतिशील रखने के लिए जल एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक पदार्थ है । सजीवों में समस्त जैविक क्रियाएं जल के माध्यम से ही सम्पन्न होती है ।

पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध का 61% एवं दक्षिणी गोलार्द्ध का लगभग 81% हिस्सा जल में डूबा हुआ है । दूसरे शब्दों में धरती का 71 प्रतिशत या लगभग तीन चौथाई हिस्सा समुद्रों एवं महासागरों में डूबा हुआ है एवं शेष 29 प्रतिशत या लगभग एक चौथाई हिस्सा स्थलीय भू-भाग के रुप में दृष्टिगोचर होता है । पृथ्वी पर उपलब्ध जल की कुल मात्रा का 98 प्रतिशत भाग समुद्रों, झीलों, नदियों एवं जलाशयों के रुप में एवं शेष 2 प्रतिशत का अधिकाश हिस्सा ध्रुवीय प्रदेशों मे जमे बर्फ के रुप में पाया जाता है । हम मनुष्यों एवं अन्य सजीवों के दैनिक उपयोग में आने वाला ताजा या मीठा जल केवल 0.27 प्रतिशत के लगभग ही है । इसके अतिरिक्त जमीन के नीचे परतों में भी स्थायी जल की मात्रा मौजूद है, जिसका उपयोग भूगर्भिय जल स्त्रोतों जैसे-कुओं बावडियों व नलकूपों के द्वारा फसलों की सिंचाई एवं दैनिक कार्यो के लिए किया जाता है । इसके अतिरिक्त वृक्षों की गहरी जडों के द्वारा भी नीचे उपस्थित स्थायी

जल का अपनी जरुरत के अनुरूप अवशोषण किया जाता हैं । अनेक पर्वतों की ऊंची चोटियों, पृथ्वी के विशाल शीतोष्ण भूभाग एवं दक्षिणी एवं उत्तरी ध्रुव बर्फ की मोटी परतों से ढके हुए है । यह बर्फ जब ग्रीष्म ऋतु में पिघल कर जल का रुप ले लेती है तो पौधे इस समय ऐसे जल का उपयोग करते है ।

1.2.3 जल के गुण (Merits of Water)

जल में कुछ अनोखें गुण है जिसके कारण यह जीवन को तुलनात्मक रुप से अधिक प्रभावित करता हैं । इसके भौतिक गुणों में हवा से अधिक भारीपन, पारदर्शिता, लचीलापन (Viscosity) तथा ताप संबंधी उल्लेखनीय गुण बहुत महत्वपूर्ण है । अधिक भारीपन के कारण जल में विभिन्न प्राणी सुविधापूर्वक तैर सकते है और पारदर्शी होने से जलीय जन्तु सरलतापूर्वक देख सकते है । जल का अत्यधिक लचीलापन स्वतंत्र विचरण में बहुत अधिक सहायक है । इस गुण के कारण प्राणियों के शारीरिक चोट का कोई खतरा नही रहता है ।

1.2.4 जल चक्र (Hydro Logical Cycle)

जलीय चक्र का अधिकांश हिस्सा पृथ्वी का सतह (Earth-Surface) एवं वायुमण्डल के बीच वर्षा वाष्पोत्सर्जन, एवं जल वाष्पन द्वारा सम्पन्न होता है । प्रतिवर्ष पृथ्वी पर वर्षा के रुप में 4.46 जियोग्राम (1 जियोग्राम $=10^{20}$ग्राम) जल प्राप्त होता है । इसमे से 1 जियोग्राम धरती की सतह पर एवं 3.46 जियोग्राम समुद्रों एवं महासागरों की सतह पर वर्षा के रुप में गिरता है । धरती की सतह पर गिरने वाले वर्षा के जल में से 0.2 जियोग्राम जल की मात्रा बह जाती है, एवं 0.6 जियोग्राम जल का फिर से वाष्पन हो जाता है एवं यह वायुमण्डल में पहुंच जाता है । इस प्रकार शेष रहे अल्प मात्रा (0.2 जियोग्राम) के जल का संग्रहण धरती की सतह के नीचे चट्टानों के बीच होता है । इस प्रकार जल की कुल मात्रा का बहुत थोड़ा भाग 0.0004 प्रतिशत भाग ही जलीय चक्र में सक्रीय भागीदारी निभाता है । (चित्र 1.0)

किसी भी स्थलीय पादप समुदाय या पारिस्थितिकी तंत्र में उपस्थित पौधों की जडों के द्वारा अवशोषित होकर जल, वाष्पोत्सर्जन की प्रकिया द्वारा पहले वायुमण्डल में पहुंच जाता है तथा इसके बाद फिर से वर्षा के द्वारा धरती की सतह पर आ जाता है । पृथ्वी की सतह का लगभग तीन-चौथाई भाग जल से ढका हुआ है, जो समुद्रों, नदियों व झीलों के रुप में है । ये पृथ्वी पर उपलब्ध जल के प्रमुख स्त्रोत है । इन समुद्रों, व जलाशयों से वाष्पन के द्वारा जलवाष्प वायुमण्डल में पहुंच जाती है, जहां निम्न तापक्रम पर ठण्डी हो जाने से संघनित होकर वर्षा, ओलो (Haid) या हिमवृष्टि के रुप में फिर से पृथ्वी पर जलीय रुप में प्राप्त हो जाती है । धरती पर प्राप्त इस जल का कुछ हिस्सा जमीन द्वारा सोख लिया जाता है एवं बहुत ही अल्प मात्रा में पेड़-पौधों द्वारा ग्रहण किया जाता है, जो वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा फिर से वायुमण्डल में चला जाता है । शेष बच रहा जल फिर से नदी-नालों के द्वारा झीलों और समुद्रों में पहुंच जाता है । प्राणियों द्वारा प्रयुक्त जल भी उनके शरीर से उत्सर्जित पसीने तथा मल-मूत्र के रुप में फिर से वायुमण्डल के रुप में पहुंच जाता है । इस प्रकार जलीय चक्र के

अन्तर्गत जल का अभिगमन या संचरण' पृथ्वी से वायुमण्डल एवं वायुमण्डल से पुन: पृथ्वी पर निरन्तर होता रहता है । वैसे आधुनिक युग मे मानव द्वारा जंगलों के विनाश एवं भूगर्भीय जलस्त्रोतों के अंधाधुंध अविवेकपूर्ण दोहन से भूमिगत जल की मात्रा में निरन्तर कमी आती जा रही है ।

बोध प्रश्न -

नोट :- (i)प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह की इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिए करे ।

(ii)अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाए ।

प्रश्न-1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो -

(i) रिक्त स्थान भरों

1. सम्पूर्ण वायुमण्डल का वृहतम भाग (लगभग 99%) पृथ्वी से ....किमी ऊँचाई तक स्थित है ।
2. पृथ्वी की गरमी को संचित रखने में वायुमण्डल एक .... की तरह कार्य करता हैं ।
3. शुद्ध वायु में औसतन .... नाइट्रोजन तथा ....आक्सीजन होती है ।
4. वायुमण्डल में गैसों के अतिरिक्त आयतन का लगभग 4 प्रतिशत भाग ....उपस्थित होती है ।

प्रश्न -2. बहुविकल्पी प्रश्न -

(ii) निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें ।

1. पृथ्वी का जल से ढका हुआ भाग है -

   (अ) 25 प्रतिशत (ब) 71 प्रतिशत

   (स) 50 प्रतिशत (द) 40 प्रतिशत

2. समुद्र तल से ऊंचाई बढने के साथ-साथ वायुमण्डलीय दबाव हो जाता है-

   (अ) ज्यादा (ब) कम

   (स) बराबर (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

3. अधिक भारीपन के कारण जल में विभिन्न प्राणी सुविधापूर्वक निम्न कर सकते है -

   (अ) डूब सकते है । (ब) जिन्दा रह सकते है ।

   (स) देख सकते है । (द) तैर सकते है ।

4. निम्न में से कौन सा कथन सत्य है-

   (अ) वायुमण्डल के 99% भाग में आयतनानुसार नाइट्रोजन व आक्सीजन तथा शेष 1% में अन्य गैसें पाई जाती है।

(ब) वायुमण्डल के 1% भाग में आयतनानुसार नाइट्रोजन व आक्सीजन तथा शेष भाग 99% मे अन्य गैसें पाई जाती है ।

(स) वायुमण्डल के 100% भाग में आयतनानुसार नाइट्रोजन व आक्सीजन तथा शेष 'भाग 0% मे अन्य गैस पाई जाती है ।

(द) वायुमण्डल के 0%, भाग में आयतनानुसार नाइट्रोजन व आक्सीजन तथा शेष भाग 100% मे अन्य गैस पाई जाती है।

प्रश्न 3 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दो -

1. वायुमण्डल में उपस्थित प्रमुख गैसों के नाम बताइये ।

....

....

2. जल के तीन प्रमुख गुण लिखिए ।

………………………………………………………………………………………………….................

....

3. पृथ्वी के जलवायु के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक बताइये ।

....

....

1.3 सारांश (Summary)

वायु का विशाल घेरा तो पृथ्वी को सभी और से ढके रहता है, वायुमण्डल कहलाता हैं । वायुमण्डल में 04 प्रमुख गैसें नाइट्रोजन, आक्सीजन, आर्गन, ओजोन एवं कार्बन डाइऑक्साइड तथा नियोन, जिनॉन ,मीथेन एवं ओजोन जैसी आठ कम मात्रा में पायी जाने वाली गैसें मिलती हैं । इसके अतिरिक्त 4% की मात्रा जल वाष्प की होती है ।

धरती का 71% भाग समुद्रों एवं महासागरों मे डुबा हुआ है । जल में 4 प्रमुख गुण उसे विशेष बनाते है वे हैं, हवा से अधिक भारीपन, पारदर्शिता, लचीलापन तथा ताप संबंधी विशेष गुण । वाष्पीकरण, जलोत्सर्जन, संघनन व अवक्षेपण द्वारा समुद्रों महाद्वीपों और वायुमण्डल के बीच जल का निरन्तर 'हस्तान्तरण' जलीय चक्र (Hydro logical Cycle) कहलाता है ।

1.4 शब्दावली (Glossary)

1. वायुमण्डल (Atmosphere) : वायु का विशाल घेरा जो पृथ्वी को सभी ओर से ढके रहता है, वायुमण्डल कहलाता है ।

2. वाष्पीकरण, जलोत्सर्जन, संघनन व अवक्षेपण द्वारा समुद्रों महाद्वीपों और वायुमण्डल के बीच जल का निरन्तर 'हस्तान्तरण' जलीय चक्र (Hydro logical Cycle) कहलाता है ।

3. अवक्षेपण (Precipation) : किसी भी प्रक्रिया के दौरान मष्दा में उपस्थित जल की मात्रा मे बढ़ोतरी होने को वर्षण या अवक्षेपण (Precipation) कहते है ।

1.5 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - प्रो0 पी.डी शर्मा
2. इकोलॉजी (Ecology) - डी.एन.सेन
3. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता- प्रो0 पी.सी त्रिवेदी
4. Fundamentals of Ecology - एम.सी. दास

1.6 बोध प्रश्न के उत्तर-

प्रश्न सं. 1 **(i)**

1. 20 किमी
2. ग्रीन हाउस
3. 78.0841 नाइट्रोजन तथा 20.9486 आक्सीजन
4. जल वाष्प

प्रश्न सं. 2 **(ii)**

1. ब 2. ब 3. द 4. अ

प्रश्न सं. 3

1. नाइट्रोजन 78%, आक्सीजन 20.9% कार्बन डाइऑक्साइड 0.03% तथा आर्गन 0.9%
2. हवा से भारीपन, लचीलापन एवं पारदर्शिता, जल के विशेष गुण है । ।
3. जल वाष्प, ओजोन तथा कार्बन डाइऑक्साइड पृथ्वी की जलवायु के लिए महत्वपूर्ण है ।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

प्रश्न 1. वायुमण्डल क्या है ? इसके संघटन का वर्णन कीजिए ।

प्रश्न 2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

1. जल वितरण
2. जल के गुण
3. जल चक्र

प्रश्न 3. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिए-

1. वायुमण्डल व जैवमण्डल
2. प्रमुख गैसें व कम प्रमुख गैसें
3. अवक्षेपण व वाष्पोत्सर्जन

प्रश्न 4. ओजोन परत का प्रमुख कार्य क्या है?

प्रश्न 5. जल चक्र का पर्यावरण संतुलन में क्या योगदान है?

इकाई 2

प्रकाश एवं तापमान
Light & Temperature

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.। प्रस्तावना

2.2 प्रकाश

- 2.2.1 ग्लोबल विकिरण
- 2.2.2 प्रकाश संश्लेषी सक्रिय विकिरण
- 2.2.3 जलाशय मे स्तरीकरण
- 2.2.4 दीप्तिकालिता
- 2.2.5 छायातापी एवं सूर्यतापी पादप
- 2.2.6 तापमान: राउंकीयर का पादप वर्गीकरण
- 2.2.7 उष्माकालिता
- 2.2.8 बसन्तीकरण
- 2.2.9 बोध प्रश्न

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 संदर्भ ग्रंथ

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objectives)

विश्व के समस्त जीवधारियों की जीवनचर्या व विभिन्न सजीवों की महत्वपूर्ण जैविक क्रियाएं जिस कारक द्वारा प्रभावित एवं नियंत्रित होती है, वह जलवायु कारक प्रकाश हैं , इस पाठ में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है

1. प्रकाश
2. ग्लोबल विकिरण
3. प्रकाश संश्लेषी सक्रीय विकिरण
4. जलाशय मे स्तरीकरण
5. दीप्तिकालिता
6. छायातापी एवं सूर्यतापी पादप
7. तापमान: राउंकीयर का पादप वर्गीकरण

8. उष्माकालिता

9. बसन्तीकरण

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

विभिन्न प्रकार के जलवायु कारकों मे प्रकाश (Light) विश्व के समस्त जीवधारियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योकि विभिन्न सजीवों की महत्वपूर्ण जैवक्रियाएँ प्रकाश के द्‌वारा प्रभावित एवं नियंत्रित होती हैं, अत: इसका अध्ययन न केवल पारिस्थितिकी - विज्ञानी (Ecologist) अपितु कार्यिकी वि-ज्ञानी (Physiologist) के लिए भी आवश्यक हैं । प्रकाश का मुख्य सात सूर्य ही है, तथा यहाँ उर्जा का बहुत ज्यादा उत्पादन होता है । सूर्य के केन्द्र मे हाइड्रोजन का हीलियम में परिवर्तन होने रो सभी दिशाओं में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती है । सूर्य विद्‌युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में अन्तरिक्ष में निरन्तर कर रहा है। इसे सूर्य - विकिरण कहते हैं । सूर्य द्‌वारा उत्सर्जित ऊर्जा की अधिकतम मात्रा के बीस अरब में से एक भाग (One in two Billion i.e. 1 in 2,000,000,000 parts) को ही पृथ्वी अपने छोटे आकार ओर सूर्य से दूरी पर स्थित होने के कारण ग्रहण कर पाती हैं । सूर्य से प्राप्त यह अत्यल्प विकिरण के ऊर्जा पृथ्वी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योकि यह ऊर्जा पृथ्वी पर अनेक भौतिक और जैविक प्रक्रियायों को नियंत्रित करती हैं ।

साधारणतः हम ऑख से दिखने वाली बैंगनी, नीली, आसमानी नीली, हरी, पीली, नारंगी तथा लाल रंगों की किरणों को प्रकाश कहते हैं, परन्तु वास्तव में सूर्य के प्रकाश से अनेकों अन्य किरणें भी विकसित होती हैं । कॉस्मिक किरणें (Cosmic Rays), अल्ट्रा-वाइलेट (पराबैंगनी), इन्फ्रा-रेड किरणें (Infrared Rays), ताप तरंगें (Heat Waves), राडार तरंगें (Radar Waves), रेडियो तरंगें (Radio Waves) आदि भी सूर्य से पृथ्वी पर निरन्तर विकिरित होती रहती है । परन्तु जीव-वैज्ञानिकों के लिए मुख्य आंखों से दिखने वाली सतरंगी किरणों, इन्फ्रारेड तथा अल्ट्रा-वाइलेट किरणें ही महत्वपूर्ण हैं ।

2.2 प्रकाश :

2.2.1 ग्लोबल विकिरण (Global Raditation)

पृथ्वी पर आने वाला विकिरण जो सूक्ष्म तरंगों के रूप में प्राप्त होता हैं और जिसमें उच्च आवृति की लघु तरंग दैर्ध्य से लेकर निम्न आवृति की दीर्घ तरंग दैर्ध्य सम्मिलित होती हैं, ग्लोबल विकिरण कहलाती हैं । यह ग्लोबल विकिरण दो कैलोरी प्रति वर्ग सेमी प्रति मिनट की दर से ग्रहण की जाती हैं । इन ग्लोबल विकिरण तरंगों में से 3900 में से 8100 मिली माइक्रोन (m u)या 3900 से 8100 ऊ तरंग दैर्ध्य के प्रकाश को दृश्य-प्रकाश (Visible Light) कहते हैं । इससे कम या अधिक तरंग दैर्ध्य की प्रकाश किरणें हमारे लिए अदृश्य (Invisible Light) होती हैं । बैंगनी रंग (390 m u) से कम तरंग दैर्ध्य वाली किरणें को पराबैंगनी किरणें तथा लाल किरणें (810 m u) रो अधिक तरंग दैर्ध्य वाली किरणों को अवरक्त या इन्फ्रारेड किरणें (Infrared Rays) कहते हैं ।

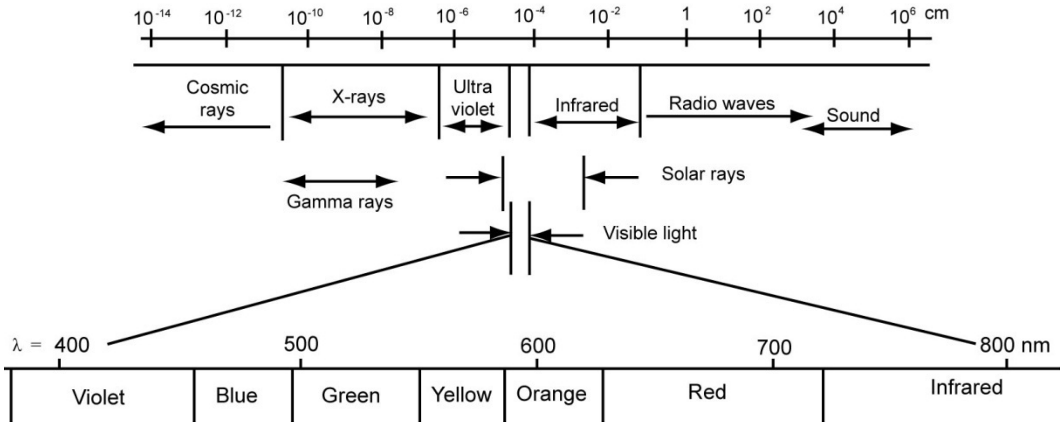

चित्र : 2.1 प्रकाश का दृश्य स्पेक्ट्रम

2.2.2 प्रकाश संश्लेषी सक्रीय विकिरण (Photosynthetically Active Raditations)

ऊपर अध्ययनरत ग्लोबल विकिरण में दृश्य प्रकाश (Visible Light) जो 390 से 810 मिली माइक्रोन (m u) के मध्य है, में से स्वपोषी पौधों में सर्वाधिक प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रीया नीले एवं लाल प्रकाश (480-710 (m u) मे होती हैं और इसी नीले एवं लाल प्रकाश की तरंग दैर्ध्य को प्रकाश संश्लेषी सक्रीय विकिरण (Photosynetically Active Radiation) कहते हैं । पादप कार्यिकी के संदर्भ में दृश्य प्रकाश को अत्यधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता हैं । पौधों में प्रकाश संश्लेषी वर्णक अर्थात क्लोरोफिल (Chlorophyll) के निर्माण के लिए प्रकाश की उपस्थिति अत्यधिक आवश्यक हैं । केवल क्लोरोफिल (Chlorophyll) वर्णक में सूर्य की भौतिक विकिरण ऊर्जा (Radiant Energy) को अवशोषित कर इसे कार्बोहाइड्रेट्स के रूप में रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy) में परिवर्तित करने की क्षमता होती हैं ।

क्लोरोफिल वर्णक 380 nm से 710 nm तरंग दैर्ध्य के मध्य प्रकाश अवशोषित करते हैं, इसलिए इसे प्रकाश संश्लेषण के लिए सक्रिय विकिरण कहते हैं । इस प्रकार धरती पर मौजूद समस्त स्वपोषी पौधे इस प्रकाशकीय ऊर्जा को भोज्य ऊर्जा में परिवर्तित करके खाद्य पदार्थो का संश्लेषण करते हैं । पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से निर्मित यही भोजन पृथ्वी पर जैविक ऊर्जा का आधार हैं । यही नही पौधों द्वारा निर्मित कार्बोहाइड्रेट्स (जो कि प्रकाश संश्लेषण के दौरान बनते हैं) को सौर ऊर्जा एवं सजीव जगत (Living World) के बीच एकमात्र कड़ी (Link) कहा जा सकता हैं । पराबैंगनी किरणें पेड़-पौधों व अन्य सजीवों के लिए अत्यन्त नुकसानदायक होती हैं, लेकिन इन किरणों को वायुमण्डल में उपस्थित ओजोन परत अवशोषित कर लेती हैं । हालांकि पौधों के लिए ये किरणें एन्थोसाइनिन (Anthocanin) नामक वर्णक का भी निर्माण करने में उपयोगी हैं । ओजोन परत पराबैंगनी किरणों के अलावा अवरक्त किरणों (Infrared Rays) को भी अवशोषित करती हैं । यह अवरक्त किरणें (Infrared Rays) वातावरण में विद्यमान Co_2, एवं जलवाष्प के द्वारा भी अवशोषित कर लिया जाता हैं अत: इनके कारण पेड़-पौधों व प्राणियों को कोई नुकसान नहीं होता हैं ।

2.2.3 जलाशय मे स्तरीकरण (Stratification in Proud)

अलवण जल आवासों में दो श्रेणियां होती हैं-

1. स्थिर जलीय आवास (Lentic Habitats)
2. प्रवाहित जलीय आवास (Lotic Habitats)

स्थिर जलीय आवासों जैसे जलाशयों में जल स्थिर अवस्था में रहता हैं एवं यही जल का परिसंचरण भी लम्बवत् (Vertical) दिशा में एवं धीमी गति से होता है । जबकि प्रवाहित जलीय आवासों में जल निरन्तर बहता रहता हैं तथा यहाँ जल का परिसंचरण भी क्षैतिज (Horizontal) दिशा में ही होता है । गहराई के परिप्रेक्ष्य में जलाशय को तीन क्षेत्रों में बाँटा जा सकता हैं-

1. वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone)
2. सरोवर क्षेत्र (Limentic Zone)
3. प्रोफण्डल क्षेत्र (Profundal Zone)

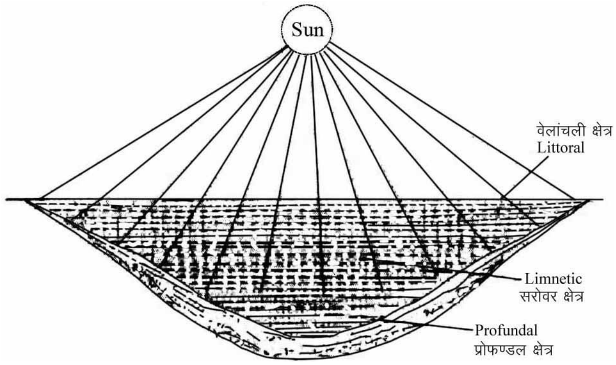

चित्र 2.2 जलाशय में गहराई के अनुसार पाये जाने वाले विभिन्न क्षेत्र

1. **वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone)** - जलाशय का उथला या कम गहराई वाला क्षेत्र वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone) कहलाता हैं । जिससे तलहटी तक प्रकाश पहुँचता हैं । यह क्षेत्र जलाशय के किनारे से लेकर लगभग छः (6) मीटर की गहराई तक पहुँच जाता हैं । इस क्षेत्र में जड युक्त जलीय पौधों की बहुलता पाई जाती हैं ।
2. **सरोवर क्षेत्र (Limnetic Zone)** - जलाशयों में वेलांचली क्षेत्र के अतिरिक्त खुले जल का क्षेत्र भी पाया जाता हैं, जिसकी गहराई दस (10) मीटर या इससे अधिक की हो सकती हैं । इस क्षेत्र में प्रभावी प्रकाश गहराई तक पहुँचता हैं । इसी क्षेत्र को सरोवर क्षेत्र (Limnetic Zone) कहते हैं । इस क्षेत्र में प्लावक (Planktons) , बहिस्तल तरणक (Neustons) एवं तरणक (Nektons) जैसे सूक्ष्म जीव बहुलता से पाये जाते हैं ।
3. **प्रोफण्डल क्षेत्र (Profundal Zone)-** जलाशयों में सन्तुलन प्रकाश तीव्रता स्तर (Compensation Level) (ऐसा क्षेत्र जहॉ प्रकाश संश्लेषण व श्वसन क्रिया की दर एक समान हो जाती हैं) के नीचे वाला अधिक गहराई का व तलहटी वाला क्षेत्र प्रोफण्डल क्षेत्र

(Profundal Zone) कहलाता हैं । इस क्षेत्र में प्रभावी प्रकाश का प्रवेश नहीं हो पाता तथा श्वसन क्रिया की दर प्रकाश संश्लेषण से अधिक होती हैं ।

2.2.4 दीप्तिकालिता (Photoperiodism)

प्रकाश की तीव्रता (Intensity) तथा गुणवत्ता (Quality) एवं दिन के प्रकाश अवधि (Duration of Light) पादप के व्यवहार में मुख्यतः पुष्पन में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं । चौबीस (24) घण्टे के प्रकाश एवं अप्रकाश काल के दैनिक चक्र में प्रकाशकाल की अवधि दीप्तिकाल (Photoperiod) कहलाती हैं तथा दीप्तिकाल के प्रति सजीवों की अनुक्रिया दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहलाती हैं ।

पौधों की प्रकाश के प्रति दीप्तिकालिता अनुक्रिया (Photoperiodic Response) के आधार पर गार्नर तथा एलार्ड ने इन्हें पांच वर्गो में विभक्त किया हैं । इस वर्गीकरण का आधार 24 घण्टे में प्रकाश व अन्धकार को माना गया हैं । विभिन्न दीप्तिकालिता के आधार पर पादप निम्न पाँच प्रकार के होते हैं-

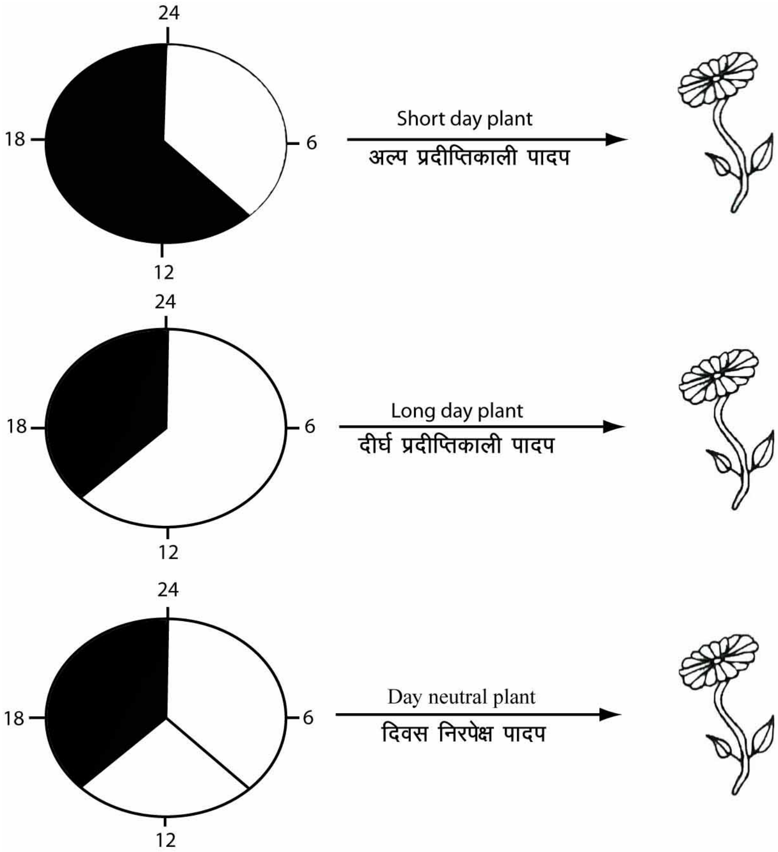

चित्र : 2.3 तीन किस्मों के पौधों के लिए आवश्यक दिन की लम्बाई

1. अल्प प्रदीप्तिकाली पादप (Short Day Plant)
2. दीर्घ प्रदीप्तिकाली पादप (Long Day Plant)
3. दिवस निरपेक्ष पादप (Day Neutral Plant)

4. मध्यवर्ती पादप (Intermediate Plant)
5. उभय प्रदीप्तिकालिक पादप (Amphi Photoperiodic Plant)

1. **अल्प प्रदीप्तिकाली पादप (Short Day Plant)** - ये सामान्यत: तब विकसित होते जब दीप्तिकाल एक क्रान्तिक (12 से 14 घण्टों के मध्य) समय से कम हो । इनके उदाहरण धतुरा स्ट्रामोनियम (Dautra Stromonium), कॉस्मॉस बाइपिनैट्स (Cosmos bipinnatus) तथा सैल्विया स्पलैन्डन्स (Slvia splendens) हैं ।
2. **दीर्घ प्रदीप्तिकाली पादप (Long Day Plant)** - ये पादप पुष्पन के लिए एक निश्चित क्रान्तिक न्यूनतम प्रदीप्तिकाल से अधिक (14 से 18) का प्रकाश चाहते हैं । क्रान्तिक प्रदीप्तिकाल से कम अवधि का प्रकाश मिलने पर ये कायिक अवस्था में ही बने रहते हैं । उदाहरण- ब्रैसिका रापा (Brassica rapa), सिकेल सिरियल (Secale cereale), सोरघम वल्गेयर (Sorghum valgare) है।
3. **दिवस निरपेक्ष पादप (Day Neutral plant)** - इस वर्ग में ऐसे पादप सम्मिलित किए गए है जो सभी सम्भव प्रदीप्तिकालों में पुष्पीकरण करते हैं, अर्थात इन पादपों में पुष्पन की किया प्रदीप्तिकाल से प्रभावित नही होती हैं, इन्हें दिवस निरपेक्ष अथवा दिवस उदासीन पादप (Day Neutral Plant) कहते हैं । ये पादप सतत् अन्धकार अथवा सतत् प्रकाश में भी पुष्पन कर सकते हैं । इस वर्ग में सम्मिलित प्रमुख उदाहरण हैं- कपास गौसिपियम हिर्सुटम (Gossipium hirsutum), तम्बाकू, निकोटिआना (Nicotiana tobacum), मटर, पाइसम सैटाइवम (Pisum sativa) आदि ।
4. **मध्यवर्ती पादप (Intermediate plants)** - कुछ पादप ऐसे होते हैं जिनमें पुष्पन केवल एक विशिष्ट प्रदीप्तिकाल में ही होता है । इस निश्चित प्रदीप्तिकाल से कम या अधिक प्रदीप्तिकाल में यह कायिक अवस्था में ही बने ही रहते है अर्थात पुष्पन नही होता है । इस प्रकार के पादप मध्यवर्ती प्रदीप्तिकाल (Intermediate plant) कहते है । उदाहरण गन्ने की कुछ किस्में सैकेरम ओफिसिनेरम तथा अन्य स्पीसिज ।
5. **उभय प्रदीप्तिकालिक पादप (Amphi photoperiodic plant):** इन पादपों की अनुक्रिया मध्यवर्ती पादपों से विपरीत प्रकार की होती है अर्थात ये पादप दीप्तिकाल के निश्चित परास से उपर तथा नीचे पुष्पन को क्रिया करते हैं । ये पादप मध्यवर्ती दिवस अवधि (Intermediate Day) पर कायिक अवस्था में बने रहते हैं । उदाहरण मीडिया एलिगेन्स (Media elegans)।

2.2.5 छायातापी एवं सूर्यतापी पादप (Sciophytes and Helliophytes)

अलग-अलग प्रकाश की तीव्रता में उगने वाले पौधों को उपलब्ध प्रकाश तीव्रता के आधार पर दो वर्गो में बाँटा जा सकता हैं

1. **छायातापी पादप (Sciophytes)**
2. **सूर्यतापी पादप (Heliophytes)**

1. **छायातापी पादप (Sciophytes)** - वे पौधे जो कम प्रकाश तीव्रता या छाया में अपना जीवन यापन करते हैं, उनको छायातापी (Sciophyte) कहा जाता हैं ।

2. **सूर्यतापी पादप (Heliophytes)** - वे पौधे जो प्रायः तेज धूप या उच्च प्रकाश की तीव्रता में उगते हैं,उनको सूर्यतापी (Heliophytes)ए कहते हैं ।

छायातापी पादपों में बाहय एवं आन्तरिक संरचना निम्न प्रकार से होती है-

1. **बाहय संरचना (External Morphology)** - इनकी जडे छोटी, अल्पशाखित एवं कम गहराई वाली होती हैं । इनका तना अपेक्षाकृत कोमल एवं दुर्बल होता हैं । इनके पादप शरीरों में शाखाएं कम संख्या में, पर्व लम्बे (Long Internodes) तथा पर्वसंधिया (Nodes) दूर-दूर होती हैं । तने एवं पत्तियों पर रोम कम मात्रा में एवं बिल्कुल ही नही पाये जाते हैं । इनकी पत्तियां बडी, चौड़ी, गहरे रंग की व पतली होती हैं । ये पौधे अपेक्षाकृत लम्बी अवधि की शुक एवं अधिक ताप वाली स्थिति को सहन नही कर सकतें । इन पौधों का शुष्क भार (Dry Weight) कम होता हैं इनके कार्बोहाइड्रेट व नाइट्रोजन का अनुपात (C/N Ratio) कम होता हैं । बीज के प्रति ग्राम षुश्क भार ऊर्जा की कैलोरीज कम होती हैं ।

2. **आन्तरिक संरचना (Internal Morphology)** - बाहयत्वचा एक पंक्तिक होती हैं तथा पत्तियों की दोनो सतहों की बाहय त्वचा की कोशिकाएँ हरित लवक युक्त होती हैं, जिन पर क्यूटिन (Cutin) की पतली परत पाई जाती हैं । इनके पर्ण मध्योत्तक में प्रायः केवल एक ही प्रकार की कोशिकाएं अर्थात स्पंजी मृदुतक पाई जाती हैं, जिनके बीच अन्तरकोशिकीय स्थान (Intercellular Spaces) भी बडे व सुस्पष्ट होते हैं । जाइलम की मात्रा भी अपेक्षाकृत कम होती हैं । पर्णरंध्र अपेक्षाकृत कम संख्या में एवं पत्तियों की दोनों सतह पर समान रूप से वितरित होते हैं । यांत्रिक ऊतक (Mechanical Tissue) प्रायः अल्पविकसित या अनुपस्थित होता हैं । इन पौधे में पुष्पन प्रायः देरी से होता हैं । पुष्प व फल विकसित करने की क्षमता भी कम होती है । इनके कोशिका रस का चभ्मान अधिक एवं परासरण दाब कम होता हैं । इनमें पोटेशियम की मात्रा अधिक होती हैं । वाष्पोत्सर्जन की दर कम लेकिन प्रकाश संश्लेषण अधिक होता हैं । उदाहरण- जाइलिया (Xylia), एबीज (Abeis), टेक्सस (Taxus) । सूर्यतापी पादपों में बाहय एवं आन्तरिक संरचना निम्न प्रकार से होती है-

1. **बाहय संरचना (External Morphology)** - इनकी जडे अत्यधिक गहरी,सघन एवं अत्यधिक शाखित होती हैं । इनका तना सुदृढ एवं मोटा होता हैं । यही शाखाएं अधिक, पर्वसंधियों पास-पास एवं पर्व छोटे होते हैं । तना एवं पतियों सघन रोमिल (Densely Hairy) होती हैं । इनकी पत्तियां छोटी, चर्मिल व मोटी तथा हल्के रंग की होती हैं । ये कटी हुई या पिच्छकी रूप से संयुक्त (Pinnately Compound) होती हैं । अधिक शुष्कता एवं ताप को ये पौधे आसानी से सहन कर सकते हैं । इनका शुष्क भार अधिक होता हैं । (C/N) अनुपात अधिक होता हैं । बीजों में ऊर्जा अधिक मात्रा में पाई जाती हैं ।

2. **आन्तरिक संरचना (Internal Morphology)** - इनकी पत्तियों की उपरी बाहयत्वचा बहुपंक्तिक होती हैं जिनमें हरितलवक नही पायें जाते है । बाहयत्वचा के ऊपर मोटी क्यूटिकल

की पर्त होती हैं । इनके पर्ण मध्योत्तक में स्पष्ट रूप से दो प्रकार की कोशिकाएं, पेलीसेड ऊतक एवं स्पंजी मृदुतक पाई जाती है । स्पंजी मृदुतक में अन्तरकोशीय स्थान छोटे होते हैं । खम्भ उतक में बिल्कुल नही होते । इनमें जाइलम सुविकसित होता हैं । पर्णरंध्र प्रायः निचली सतह पर अधिक संख्या में एवं ऊपरी सतह पर कम मात्रा में मौजूद होते हैं । यांत्रिक ऊतक सुविकसित होता हैं । इसमें पुष्पन अपेक्षाकृत शीघ्र होता है, तथा पुष्प एवं फल पैदा करने में पर्याप्त सक्षम होते है । इनका कोशिका रस अधिक अम्लीय व परासरण दाब (Osmotic Pressure) भी अधिक होता है । इनमें पोटेशियम की मात्रा कम होती है । प्रकाश संश्लेषण दर कम किन्तु वाष्पोत्सर्जन एवं श्वसन की दर अधिक होती है । उदाहरण सेमल (Salmalia malabarica) ,सूरजमुखी (Helianthus annuus), सागवान (Tactona grandis) और साल (Shorea robusta) आदि ।

2.2.6 तापमान : राउकीयर का पादप वर्गीकरण (Raunkiaer's Plant Classification)

प्राचीन समय में पारिस्थितिकीविज्ञों ने पादप समुदाय की उपस्थिति (जो विभिन्न पादप जातियों की ऊँचाई, उनके फैलाव और जीवन के विभिन्न गुणों से निर्धारित होती है) को जैव समुदायों के अध्ययन का आधार माना । यह तरीके रुपात्मक तरीके (Physiognomic methods) कहलाते है । इनमें से स्वीडन के पादप पारिस्थितिकी विज्ञानी राउंकीयर (Raunkiaer) ने सर्वप्रथम पौधों के उन अनुकुलन लक्षणों का विशेष रुप से उल्लेख किया जिनका संबंध जलवायु से होता है । इसी कारण राउंकीयर द्वारा दिये गये समुदाय के विभिन्न पौधों में के वर्गीकरण जिनका आधार प्रस्तुत जीवन प्रारुप (life Form) है को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई। पौधें की मौसम के साथ अनुकूलताओं के योग को जीवनरुप (Life Form) कहते है ।

राउंकीयर ने माना कि वे तरीके जिनमें विभिन्न जातियाँ विपरीत पर्यावरणीय दशाओं में जीवित रहती है, उनके वितरण की सीमा निर्धारित करते है । इसीलिए पौधों की जलवायु को एक निश्चित भाग की वनस्पति के जीवन रुप की गणना संबंधी वितरण के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । किसी पौधे की वंशवृद्धि या अर्न्तजीविता, बीजों के अतिरिक्त चिरकालिता संरचनाओं (Perennating organs) पर निर्भर करती है। काष्ठीय पौधों में यह भोजन संचयी (Food Storage) भूमिगत संरचनाओं जैसे कन्द, प्रकन्द, घनकन्द, या पत्रकन्द इत्यादि के रुप में पायी जाती है । यदि यह चिरकालिता सूचनाएं जलवायु की विषमताओं को सहन कर सकते हैं और अपने आप को इस प्रकार सुरक्षित रखते है कि अत्यधिक गर्मी या सर्दी होने पर भी जीवन क्षम रहे, तो यह पौधे पादप समुदाय में बने रहते है अन्यथा समाप्त हो जाते है ।

पौधों के चिरकालिक कली (Perennating) इनके और विपरीत दशाओं में अपनी सुरक्षा करने की क्षमता के आधार पर राउंकीयर (Raunkiaer) ने विभिन्न पौधों को जीवन प्रारुप (Life Form) की पांच श्रेणियों में विभेदित किया है यह निम्न प्रकार से है

1. फेनरोफाइट्स (Phanerophytes)
2. केमेफाइट्स (Chamaephytes)

3. हेमीक्रिप्टोफाइट्स (Hemicryptophytes)

4. क्रिप्टोफाइट्स या जीयोफाट्स (Cryptophytes or Geophytes)

5. थीरोफाइट्स (Therophytes)

1. **फेनरोफाइट्स (Phanerophytes)** : इनकी कलियां नग्न या शल्क से ढकी हुई और पौधे के उपरी भाग में स्थित होती है । इनके जीवन रुप के अन्तर्गत पेड़ (Tree), शाक (Shurb) और प्रतान (Climbers) है । जो सामान्यत: उष्णकटिबंधीय जलवायु (Tropical Climate) में पाये जाते है । अपने आकार के अनुसार इनको पुन: निम्न उपवर्ग मे बांटा गया है

(i) **मेगाफेनरोफाइट्स (Megaphanerophytes)** : ये वृहतकाय वृक्ष होते है, जिनकी ऊंचाई प्रायः 30 मीटर या इससे अधिक होती है ।

(ii) **मिजोफेनरोफाइट्स (Mesophanerophytes)** : ये मध्यम ऊंचाई के वृक्ष होते है, जिनकी ऊंचाई 8 से 30 मीटर तक होती है ।

(iii) **माइक्रोफेनरोफाइट्स (Microphanerophytes)** : ये छोटे वृक्ष या बड़ी झाड़ियाँ होती है, जिनकी ऊंचाई 2 से 8 मीटर तक की होती है ।

(iv) **नेनोफेनरोफाइट्स (Nanophanerophytes)** : ये छोटी झाड़ियाँ अथवा उपक्षुब (Under Shrub) पादप होते है, जिनकी ऊंचाई 2 मीटर से कम होती है ।

उपरिरोही (Epiphytes) या तो फेनरोफाइट्स (Phanerophytes) के अन्तर्गत आते है या कभी-कभी एक पृथक जीवन रूप (Life form) के अन्तर्गत आते है ।

2. **केमैफाइट्स (Chamaephytes)** ये छोटी झाड़ियाँ अथवा भूस्पर्शी पौधे होते है, जिनमें इनकी कलियाँ भूमि सतह के निकट स्थित होती है । ये अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर सामान्य रुप से 25 सेमी. से कम ऊँचाई पर पाये जाते है । इनमें भूमि के समान्तर फैलने वाले शाकीय अथवा काष्ठीय बहुवर्षीय पौधे सम्मिलित किय गये है, जैसे ट्राईफोलियम रिपेन्स (Trifolium repens)

3. **हेमीक्रिप्टोफाइट्स (Hemicryptophytes)** : ये सामान्यत: ठण्डे शीतोष्ण भागों (Cold Tropical Zone) में पाये जाते है । इनकी कलियाँ भूमि सतह के नीचे छिपी होती है, और मिट्टी के द्वारा इन्हें सुरक्षा प्रदान की जाती है । इनके तने सामान्यत: प्रत्येक वर्ष समाप्त हो जाते है । उदाहरणार्थ - कारेक्स (Carex) एवं कॉनवाल्वुलस (Convolvulus) इत्यादि ।

4. **क्रिप्टोफाइट्स या जीयोफाट्स (Cryptophytes or Geophytes)** इनकी कलियाँ पूर्णतया मिट्टी में पायी जाती है जैसे कन्द (Bulbs) और प्रकन्द (Rhizomes), इनमें से अधिकतर शुष्क भागों (Arid Zone) मे पाये जाते है । जलोद्भिद (Hydrophytes) पौधे क्रिप्टोफाइट (Cryptophytes) के अन्तर्गत आते है कलियाँ जल सतह के नीचे पायी जाती है । इस समूह में मूल परजीवी पौधे जैसे- ओरोबेन्की (Orobanchae), रेफ्लिसीया (Rafflesia) एवं भूमिगत चिरकालिता संरचनाओं क्रमशः राइजोम व ट्यूबर युक्त पौधों जैसे- फर्न्स इत्यादि को सम्मिलित किया गया हैं ।

5. **थीरोफाइट्स (Therophytes)** : ये ऐसे मौसमी पोधे हैं जो अपना जीवन चक्र एक अनुकूलित मौसम में पूर्ण करते हैं और शेष प्रतिकूल समय से पूरे वर्ष बीज के रूप में सुषुप्त (Document) अवस्थाओं में रहते हैं । ये रेगिस्तान में सामान्य रूप से पाये जाते हैं ।

2.2.7 उष्माकालिता (Thermoperiodism) -

विभिन्न पौधों में निश्चित अवधि के लिए निश्चित ताप की उपलब्धता इनके पुष्पन (Flowering) को प्रभावित करते हैं । इसे उष्माकालिता (Thermoperiodism) कहते हैं ।

2.2.8 बसन्तीकरण (Vernalisation) -

विभिन्न पौधों में निश्चित अवधि के लिए निश्चित ताप की उपलब्धता पुष्पन (Flowering) को प्रभावित करती हैं और यदि ऐसे पौधों के बीजों की बुवाई से पूर्व इनको एक विशेष तापक्रम पर उपचारित (Treated) किया जावे तो ऐसे पौधों में समय से पहले ही पुष्प निर्माण हो जाता हैं । इस प्रक्रिया को बसन्तीकरण (Vernalisation) कहते हैं ।

एक रूसी वनस्पति शास्त्री लाईसेन्को (Lysenko, 1920) ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक आधार पर इस प्रभाव की व्याख्या की थी । उन्होंने देखा कि शीतोष्ण जलवायु के प्रदेशों में चावल की दो किस्मों- शीत किस्म तथा बसन्त किस्म (Winter Variety & Spring Variety) के अवलोकन पर पाया कि शीत किस्म शरद ऋतु के प्रारम्भ से बोई जाती हैं तथा उसमें पुष्पन अगली ग्रीष्म ऋतु में होता हैं जबकि बसन्त किस्मों मार्च में बोई जाती हैं तथा इसमें पुष्पन शीत किस्मों के साथ होता हैं । यदि शीत किस्मों को मार्च में बसन्त किस्मों के साथ बोया जाता हैं तो उनमें केवल कायिक वृद्धि होती हैं पुष्पन नही होता हैं । इससे स्पष्ट होता हैं कि शीत किस्मों में पुष्पन के लिए शीतकाल के कम ताप पर उनका उद्भाषित होना आवश्यक है । कोअर्ड (Choird) (1960) के अनुसार "शीत उपचारों द्वारा पुष्प उत्पन्न करने की क्षमता बसन्तीकरण कहलाती हैं । '"शीत किस्मों में शीत उपचारों से ये बसन्ती किस्मों के समान व्यवहार करने लगती है । इसलिए लिसेन्को के अनुसार "बसन्तीकरण शरद किस्मों को बसंत किस्मों में रूपान्तरित करने की तकनीक हैं ।"

बसन्तीकरण के लिए सामान्यत: तीन पहलू आवश्यक हैं- अल्पमत निश्चित समय तक शीत तापक्रम, प्ररोहशीर्ष अथवा आ तथा वायवीय श्वसन । बसन्तीकरण में शर्करा का पर्याप्त मात्रा में संस्करण भी आवश्यक होता हैं । ऐसा माना जाता हैं कि शर्करा श्वसनाधार के अतिरिक्त उन कारकों के, निर्माण में भी सहायक होती है जिनमें उपचारित अंग बसन्तीकरण उद्दीपन को ग्रहण करने में सक्षम होता हैं ।

बसन्तीकरण की तकनीक (Technique of Verbalization) -

बसन्तीकरण की तकनीक अत्यन्त ही सरल तकनीक हैं । सर्वप्रथम बीजों को भीगो कर अंकुरण (Germination) के लिए छोड़ दिया जाता है । अंकुरित बीजों को कम ताप पर (0°C से 5°) तक उपचारित किया जाता हैं । शीत उपचार (Cold Treatment) का समय विभिन्न जातियों मे बीजों की किस्म के अनुसार भिन्न- भिन्न होता हैं । शीत उपचार कुछ घण्टों से लेकर कुछ सप्ताह तक हो सकता हैं । शीत उपचारित बीजों को तुरन्त नही उगाना चाहिए इसके अलावा इन्हें पहले कुछ समय के लिए सुखाया जाता हैं ।

यद्यपि भारत में बसन्तीकरण के संबंध में सेन तथा चक्रवर्ती (Sen & Chakravorty), पाल तथा मूर्ति (Pal & Murti) (1951), घोश व शास्त्री (Ghosh & Shastri) (1954), चिनॉय तथा नन्दा (Chinoy & Nanda) (1951-52) आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किया हैं, परन्तु भारतीय जलवायु में बसन्तीकरण का विशेष लाभ प्राप्त नही किया जा सका हैं ।

बोध प्रश्न :-

नोट : I प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिए करे।

II अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाएं ।

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो -

I रिक्त स्थान भरो

1. प्रकाश का मुख्य स्त्रोत .... है ।
2. ग्लोबल विकिरण.............कैलोरी प्रतिवर्ग सेमी प्रति...........की दर से ग्रहण की जाती है ।
3. सूर्य के प्रकाश मे अच्छी तरह विकसित होने वाले पादप..................... है ।
4. जलाशय का सबसे गहरा स्तर .... ।
5. विभिन्न पौधों के वर्गीकरण जिनका आधार प्रस्तुत जीवन प्रारूप (स्यमि वितउ) है को .... ने प्रतिपादित किया था ।

प्रश्न 2. बहुविकल्पी प्रश्न -

II निम्न में से सही उत्तर में कोष्ठक में लिखें :

1. अम्ल प्रदीप्तकाली पौधा है -
   (अ) सैल्विया (ब) गौसीपियम
   (स) सोरधम (द) निकोटिआना
2. जलवायु में पाया जाता है?
   (अ) वेलांचली स्तर (ब) सरोवर स्तर
   (स) प्रोफण्डल स्तर (द) उपरोक्त सभी
3. हीलियोफाइट्स प्रकाश की कौनसी तीव्रता में सबसे अच्छे उगते है -
   (अ) ज्यादा (ब) कम
   (स) उपरोक्त दोनों में (द) उपरोक्त में से कोई नही
4. ठण्डे शीतोष्ण भागों में पाये जाने वाले पौधे है -
   (अ) केमेफाइट्स (ब) किप्टोफाइट्स
   (स) थीरोफाइट्स (द) हेमीकिप्टोफाइट्स

प्रश्न 3. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दीजिए -

1. क्रिप्टोफाइट्स की कलियाँ पूर्णतया कहां छिपी होती है ?

………

……………………………………………………………………………………

2. राउंकीमर ने पौधों को जीवन प्रारूप के आधार पर कितने वर्गो में वर्गीकृत किया?

………

……………………………………………………………………………………

3. उष्माकालिता किसे कहते है ?

………

……………………………………………………………………………………

2.3 सारांश (Summary) -

प्रकाश का मुख्य स्त्रोत सूर्य ही है तथा यहां उर्जा का बहुत ज्यादा उत्पादन होता है और विभिन्न प्रकार के जलवायु कारकों में प्रकाश (Light) विश्व के समस्त जीवधारियों की जीवनचर्या में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं । पृथ्वी पर आने वाला सूर्य विकिरण जो सूक्ष्म तरंगों के रूप में प्राप्त होता हैं और जिसके उच्च आवृति की लघु तरंग दैर्ध्य से लेकर निम्न आवृति की दीर्घ तरंग दैर्ध्य सम्मिलित होती हैं, ग्लोबल विकिरण कहलाती हैं । स्वपोषी पौधों में सर्वाधिक प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया नीले एवं लाल प्रकाश (480 - 710 m u) मे होती हैं और इसे नीले एवं लाल प्रकाश की तरंग दैर्ध्य को प्रकाश संश्लेषी सक्रीय विकिरण कहते हैं । अलवण जल में दो श्रेणियां होती हैं । 1. स्थिर जलीय आवास 2. प्रवाहित जलीय आवास । स्थिर जलीय आवासों जैसे- जलाशयों में जल स्थिर अवस्था में रहता है । एवं यहाँ जल का परिसंचरण भी लम्बवत् दिशा में एवं धीमी गति से होता है और गहराई परिप्रेक्ष्य में जलाशय को तीन क्षेत्रों में बाँटा हैं- 1 वेलांचली क्षेत्र, 2. सरोवर क्षेत्र, 3. प्रोफण्डल क्षेत्र

प्रकाश की तीव्रता एवं गुणवत्ता तथा दिन के प्रकाश की अवधि पादप के व्यवहार में मुख्यतः पुष्पन में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है । चौबीस घण्टे के प्रकाश एवं अप्रकाश काल के दैनिक चक्र में प्रकाशकाल की अवधि तथा इसी काल के प्रति सजीवों की अनुक्रिया दीप्तिकालिता कहलाती हैं ।

इसी तरह अलग-अलग प्रकाश की तीव्रता में उगने वाले पौधे को इनको उपलब्ध प्रकाश तीव्रता के आधार पर दो वर्गो में बाटा गया हैं । 1. छायातापी 2. सूर्यतापी पादप क्रमशः जो पौधे कम प्रकाश तीव्रता या छाया में अपना जीवनयापन करते हैं, छायातापी पादप एवं वे पादप जो अपना जीवनयापन तेज धूप या उच्च प्रकाश तीव्रता में करते हैं, सूर्यतापी पादप कहलाते हैं । पौधों के जीवन प्रारूप के आधार पर पौधों को राउंकीयर ने पाँच प्रमुख वर्गो में विभाजित किया हैं वे हैं- 1 फेनरोफाइट्स, 2. केमेफाइट्स, 3. हेमीक्रिप्टोफाइट्स, 4. किप्टोफाइट्स, 5. थीरोफाइट्स । विभिन्न पौधों में निश्चित अवधि के लिए निश्चित ताप की उपलब्धता इनके

पुष्पन को प्रभावित करती हैं, उष्माकालिता कहते है तथा शीत उपचारों द्वारा पुष्पों को उत्पन्न करने की क्षमता को बसन्तीकरण के नाम से जाना जाता हैं ।

2.4 शब्दावली (Glossary)

1. **ग्लोबल विकिरण (Global Radiation)** - पृथ्वी पर आने वाला विकिरण जो कैलोरी प्रति वर्ग सेमी प्रति मीटर की दर से ग्रहण की जाने वाली तरंग जिसमें उच्च आवृति की लघु तरंग दैर्ध्य से लेकर निम्न आवृति की दीर्घ तरंग दैर्ध्य सम्मिलित होती हैं ।

2. **प्रकाश संश्लेषी सक्रिय विकिरण (Photosynthetically Active Radiation)-** नीले एवं लाल प्रकाश (480-710 mμ) के मध्य होती हैं, प्रकाश संश्लेषी सक्रिय विकिरण (Active Photo synthetically Radiation) कहते हैं ।

3. **वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone)** - जलाशय का उथला या कम गहराई वाला क्षेत्र वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone) कहलाता हैं ।

4. **सरोवर क्षेत्र (Limnetic Zone)** - वेलांचली क्षेत्र के अतिरिक्त खुले जल का दस (10) मीटर या इससे अधिक का क्षेत्र सरोवर क्षेत्र (Limnetic Zone) कहते हैं ।

5. **प्रोफण्डल क्षेत्र (Profundal Zone)-** जलाशयों में जहाँ प्रकाश संश्लेषण व श्वसन क्रिया की दर एक समान हो जाती हैं, के नीचे वाला अधिक गहराई का व तलहटी वाला क्षेत्र प्रोफण्डल क्षेत्र (Profundal Zone) कहलाता हैं ।

6. **दीप्तिकालिता (Photoperiodism)-** दीप्तिकाल के प्रति सजीवों की अनुक्रिया दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहलाती हैं ।

7. **अल्प प्रदीप्तिकाली पादप (Short day Plant)** - जब दीप्तिकाल एक क्रान्तिक (12 से 14 घण्टों के मध्य) समय से कम विकसित हो, अल्प प्रदीप्तिकाली पादप (Short Day Plant) कहते हैं ।

8. **दीर्घ प्रदीप्तिकाली पादप (Long Day Plant)** - जब प्रदीप्तिकाल एक क्रान्तिक (14 से 18) घण्टों का समय में विकसित हो, दीर्घ प्रदीप्तिकाली पादप (Long Day Plant) कहते हैं ।

9. **दिवस निरपेक्ष पादप (Day Neutral Plant)** - जिन पादपों में पुष्पन की क्रिया प्रदीप्तिकाल से प्रभावित नही होती हैं, इन्हें दिवस निरपेक्ष अथवा दिवस उदासीन पादप कहते हैं ।

10. **मध्यवर्ती पादप (Intermediate plant)** - जिन पादपों में पुष्पन केवल एक विशिष्ट प्रदीप्तिकाल में ही होता है, मध्यवर्ती प्रदीप्तिकाल कहते है ।

11. **उभय प्रदीप्तिकालिक पादप (Amphi photoperiodic plant)** - ये पादप दीप्तिकाल के निश्चित परास से उपर तथा नीचे पुष्पन की क्रिया करते हैं, उभय प्रदीप्तिकालिक पादप (Amphi photoperiodic plant) कहलाते हैं ।

12. **छायातापी पादप (Sciophytes)** - वे पौधे जो कम प्रकाश तीव्रता या छाया में अपना जीवन यापन करते हैं, उनको छायातापी कहा जाता हैं ।

13. **सूर्यतापी पादप (Heliophytes)** - वे पौधे जो प्रायः तेज धूप या उच्च प्रकाश की तीव्रता में उगते हैं, उनको सूर्यतापी कहते हैं ।

14. **फेनरोफाइट्स (Phanerophytes)** - उष्ण कटिबंधीय जलवायु (Tropical Climate) में पाये जाने वाले पौधे जिनकी कलियाँ नम्भ या शल्क से ढकी हुई, ऐसे पादप फेनरोफाइट्स कहलाते हैं ।

15. **केमेफाइट्स (Chamaephytes)** - जिन छोटी झाडियों अथवा भूस्पर्शी पौधे जिनकी कलियाँ भूमि सतह के निकट स्थित होती है, केमेफाइट्स कहलाते हैं ।

16. **हैमीक्रिप्टोफाइट्स (Hemicryptophytes)** - ठण्डे शीतोष्ण भागों (Cold Tropical Zone) में पाये जाने वाले पौधे जिनकी कलियाँ भूमि सतह के नीचे छिपी होती है, हैमीक्रिप्टोफाइट्स कहलाते हैं ।

17. **क्रिप्टोफाइट्स (Cryptophytes)** - इनकी कलियाँ पूर्णतया मिट्टी में छिपी होती है और यह शुष्क भागों मे पाये जाते है ।

18. **थीरोफाइट्स (Therophytes)** - ये ऐसे मौसमी पोधे हैं जो अपना जीवन चक्र एक अनुकूलित मौसम में पूर्ण करते हैं

19. **उश्माकालिता (Thermoperiodism)** - विभिन्न पौधों में निश्चित अवधि के लिए निश्चित ताप की उपलब्धता इनके पुष्पन को प्रभावित करते हैं । इसे उष्माकालिता (Thermoperiodism) कहते हैं ।

20. **बसन्तीकरण (Vernalization)** - भीत उपचारों द्वारा पुष्प उत्पन्न करने की क्षमता बसन्तीकरण कहलाती है।

2.5 संदर्भ ग्रंथ (Reference Book)

1. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - प्रो0 पी.डी. शर्मा
2. इकोलॉजी (Ecology) - प्रो. डी.एन.सेन
3. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता- प्रो0 पी.सी त्रिवेदी
4. Fundamentals of Ecology - एम.सी दास

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न1. 1

1. सूर्य
2. दो, मिनट
3. टैक्सस (Taxus)
4. प्रोफण्डल स्तर
5. राउंकीयर

प्रश्न 2 II

(1) अ (2) द (3) ब (4) स

प्रश्न 3.

1. क्रिप्टोफाइट्स की कलियां भूमि सतह के निकट स्थित होती है ।
2. राउंकीयर ने पौधों को जीवन प्रारुप (Life Form) के आधार पर पांच वर्गो में वर्गीकृत किया है ।
3. विभिन्न पौधों में निश्चित अवधि के लिए निश्चित ताप की उपलब्धता इनमें पुष्पन को प्रभावित करती है । उष्माकालिता कहलाती है ।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

प्रश्न 1. प्रकाश संश्लेषण हेतु सक्रिय तरंग दैर्ध्य क्या हैं?

प्रश्न 2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए ।

1. सूर्यतापी पादप
2. छायातापी पादप
3. दीप्तिकालिता
4. उष्माकालिता
5. बसन्तीकरण

प्रश्न 3. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिए

1. दीर्घ दिवसीय पादप व लघु दिवसीय पादप
2. ग्लोबल विकिरण व प्रकाश संश्लेषी सक्रिय विकिरण
3. वेलांचली क्षेत्र व सरोवर क्षेत्र
4. केमोफाइट्स व हैमीक्रिप्टोफाइट्स
5. जियोफाइट्स व थीरोंफाइट्स

प्रश्न 4. वनस्पति का स्तरीकरण प्रमुख रूप से किस पर निर्भर करता हैं ?

प्रश्न 5. प्रकाश गुणवता का पुष्पन पर क्या प्रभाव पडता हैं ?

प्रश्न 6 पौधों के लिए प्रकाश अवधि का महत्व समझाइए ?

इकाई 3

मुद्रा

Soil

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 मृदा
3.2.1 मृदा का निर्माण
3.2.1.1 अपक्षय
3.2.1.2 मृदा जनन
3.2.1.3 परिपक्वन
3.2.2 मृदा परिछेदिका
3.2.3 मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक
3.2.4 मृदा के गुण व संगठन
3.2.4.1 खनिज पदार्थ
3.2.4.2 कार्बनिक पदार्थ
3.2.4.3 मृदा जल
3.2.4.4 मृदा वायु
3.2.4.5 मृदा जीव
3.2.5 मृदा क्रियाऐं
3.2.5.1 क्षार विनिमय
3.2.5.2 हाइड्रोजन (pH) आयन सान्द्रता
3.2.5.3 अपचयन/ऑक्सीकरण विभव
3.2.5.4 लवणता
3.2.6 भारत में मष्दा के प्रकार और उनका विवरण
3.2.7 बोध प्रश्न
3.3 सारांश
3.4 शब्दावली
3.5 संदर्भ ग्रंथ
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Objectives)

विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता, मृदा विज्ञान (Pedology) कहलाती है । इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है :-

1. मृदा जनन
2. मृदा परिछेदिका
3. मृदा संघटन
4. मृदा के प्रकार
5. कार्बनिक पदार्थ
6. मृदा जल
7. pH
8. खनिज पदार्थ

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

जीवों के निवास के विभिन्न माध्यमों जैसे-जल,वायु तथा मृदा में मृदा ही सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है । मृदा की परिभाषा उस माध्यम के रूप में दी जा सकती है जिसमें स्थलीय पौधे अपनी जडें जमाकर स्थिर रहते हैं और जिससे ये पौधे पानी व अन्य पोषक तत्वों को ग्रहण करते हैं । मृदा का कुछ अधिक समीप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मृदा केवल कुछ खनिज कणों का समूह मात्र नहीं है वरन् स्वयं में पूर्ण एक जैव तंत्र (biological system) है जो अनेकों सूक्ष्म जीवों का आवास है और अनेकों प्रक्रियाओं का माध्यम है ।

मृदा का निर्माण अनेक प्रकार की शैलों के टूटने फूटने से होता है । बाद में इन खनिज कणों के साथ कार्बनिक पदार्थ मिल जाते हैं और अनेकों रासायनिक क्रियाओं द्वारा खनिज पोषक तत्व पौधों को मिलते रहते हैं । मृदा विज्ञान की नींव रूसी वैज्ञानिक दोक्याशेव (Dokuyachev,1879) ने डाली थी । दोक्याशेव ने मृदा विज्ञान का नियम प्रतिपादित किया जिसके अनुसार "मृदा मातृ शैलों, पर्यावरण, जीवों और समय की आपसी क्रियाओं और प्रक्रियाओं का परिणाम है ।"

मृदा सिर्फ खनिज कणों का समूह नहीं है । इसमें जीव-जन्तुओं के जैव तंत्र व अन्य घटक भी आते हैं । इसलिए इसे मृदा **जटिल** (soil complex) कहा जाता है, जिसमें निम्नलिखित पाँच वर्गों के अवयव होते हैं ।

1. **खनिज पदार्थ** (Mineral matter)-यह खनिज कणों का मैट्रिक्स होता है जो मौलिक खनिज शैल के विभिन्न स्तर के खंडन द्वारा व्युत्पन्न होता है ।
2. **मृदा जैव पदार्थ या ह्रास** (Soil organic matter or humus)-यह जैव अवयव होता है । यह पदार्थ के दीर्घ और अल्पकालिक जोड़ से उत्पन्न होता है, ये पदार्थ भूमि के ऊपर तथा नीचे अर्थात् पादप, प्राणी सूक्ष्म जन्तु होते हैं ।

3. **मृदा जल/मृदा विलयन** (Soil Water/ Soil solution)-इसके अंतर्गत आता है मृदा में उपस्थित पूरा जल विलीन ठोस, द्रव्य और गैसों के साथ । मृदा जल बंधित रहता है कैपिलरी और अवषोशी बलों द्वारा मृदा कणों के बीच में और सतह दोनों जगहों पर । मृदा जल असलियत में कई कार्बनिक और अकार्बनिक यौगिकों का तनु विलयन होता है, जो कि पादप खनिज पोषकों का स्रोत है ।

4. **मृदा वायुमंडल** (Soil atmosphere)-यह मृदा कणों के बीच छिद्र अवकाशों में होता है, जो किसी भी समय, जल से भरा नहीं होता । इसकी सांद्रता धरा के ऊपर वायुमंडल से भिन्न होती है क्योंकि यह साधारणतः ऑक्सीजन में निम्न तथा कार्बन डाइऑक्साइड अंश में उच्च होता है ।

5. **जैव तंत्र** (Biological System)-उपरोक्त के अलावा, इसमें जैव तंत्र भी जोड़ा जा सकता है, चूँकि प्रत्येक मृदा की जीवाणु, कवक, शैवाल, प्रोटोजोआ, रोटिफर, नीमेटोड, ओलिगोकिट मोलस्क और आर्थोपोड की भिन्न प्राणिजात तथा वनस्पतिजात होती है ।

उपरोक्त को पढ़कर यह पता चलता है कि मृदा सिर्फ खनिज पदार्थ ही नहीं, अपितु विभिन्न अन्य प्रकार के घटक का जटिल है । इस प्रकार, जैव मृदा को कहा जा सकता है "भू-पर्पटी की अपक्षयित पृष्ठीय परत जिसमें जीव जन्तु वृद्धि करते हैं और अपनी क्रियाओं, मृत्यु और क्षय के उत्पाद भी मोचित करते हैं ।

3.2 मृदा (Soil)

3.2.1 मृदा का निर्माण (Formation of soil)

मृदा निर्माण को दो मुख्य अवस्थाओं में बांटा जाता है- अपक्षय (Weathering) और परिपक्वन (Maturation) या मृदा परिवर्धन (Pedogenesis) ।

3.2.1.1 अपक्षय (Weathering)

अपक्षय का अर्थ बडे मातृ शैलों के टूटने फूटने से है । चूंकि मृदा में मिलने वाले खनिज तत्व इन्हीं शैलों से रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त होते हैं, शैलों की रचना व रासायनिक गुण मृदा के गुणों पर प्रधान डालते हैं । शैल मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- आग्नेय, कायांतरित और अवसादी । कुछ शैलों में कैल्शियम की अधिकता होती है तो कुछ में सिलिकान या एल्यूमीनियम की । कुछ शैलों में लोहा भी पर्याप्त मात्रा में होता है ।

ये विविध शैल विभिन्न भौतिक, रासायनिक या जैविक क्रियाओं द्वारा अपक्षीण होते रहते हैं । ये क्रियाएं निम्न हैं-

भौतिक व वायुमण्डलीय अपक्षय- बड़े शैल खंडों का अपक्षय मुख्यतः भौतिक व वायुमण्डलीय कारकों से होता है जैसे पानी, तापमान, गुरुत्वाकर्षण । पहाडों से गुरुत्वाकर्षण के कारण प्रायः बडे शैल लुढ़क कर घाटियों में गिरते और टूटते रहते हैं । भूस्खलन द्वारा भी शैलखंड नीचे गिरते रहने से ये छोटे व बारीक टुकडों में बदल जाते हैं । इसी प्रकार बहते हुए पानी या बर्फ (नदियां और हिमनद) के साथ बडे-बड़े शैलखंड लुढ़क कर चूर होते रहते हैं । पहाडों में नदियों

के जल का वेग बहुत अधिक होने से यह क्रिया भी अधिक तेजी से होती है । इसको किसी नदी के उद्गम स्थान के पास या पहाडों से मैदान में उतरते समय प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । नदी के किनारे पड़ी रेत इसका प्रमाण है । बदलते हुए तापमान के कारण भी शैल अपक्षीण होते हैं । ठंडे बर्फीले प्रदेशों में शैलों के बीच की दरारों में पानी के जम जाने पर आयतन में वृद्धि के कारण ये शैल टुकड़ों में बट जाते हैं । रेगिस्तानों में शैलखंड दिन में अधिक गर्मी और रात में अधिक ठंड के कारण तेजी से फैलने और सिकुड़ने के साथ कांच के समान ही टूटते रहते हैं ।

रासायनिक व जैविक अपक्षय-शैलों के रासायनिक संगठन के अनुसार जल-अपघटन, ऑक्सीकरण, कार्बनीकरण आदि रासायनिक क्रियाओं द्वारा भी अपक्षय होता है । यह क्रिया प्रकृति में बहुत धीमी गति से होती है । वायु में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड व नाइट्रोजन के ऑक्साइड वर्षा के दौरान जल से संयोग करके कार्बोनिक अम्ल तथा नाइट्रस तथा नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं । ये अम्ल बहुत क्षीण व कम मात्रा में होने पर भी रासायनिक क्रियाओं के लिए पर्याप्त होते हैं । कुछ कार्बोनिक अम्ल पौधों द्वारा भी स्रवित होता है और जीवों के सड़ने गलने पर भी ह्यूमिक अम्ल बनते हैं । ये सभी षैलों को धीरे-धीरे अपक्षीण करते रहते है ।

3.2.1.2 मृदाजनन (Pedegenesis)

अपक्षयण के दौरान, शैल छोटे कणों में खंडित होते हैं । किन्तु यह वास्तविक मृदा नहीं होती तथा पादप इसमें नहीं उगते । अपक्षयित पदार्थों में आगे कई परिवर्तन होते हैं, जो एक जटिल प्रक्रम है, यह **मृदा जनन** (pedogenesis) या **मृदा परिवर्धन** कहलाता है । जबकि अपक्षयण में, अधिकतर भौतिक तथा रासायनिक कारक कार्य करते हैं । मृदाजनन एक जैविक परिघटना है । इस परिघटना के दौरान, जीव जन्तु जैसे लाइकेन, जीवाणु, कवक, शैवाल सूक्ष्म-आर्थोपोड, मोलस्क, इत्यादि जैव अम्लों, एन्जाइम का संश्लेषण CO_2 उत्पादन और मृत्यु के पश्चात् जैव पदार्थ के जोड़ के परिणाम से, भूरासायनिक जैव रासायनिक और जैव भौतिक प्रक्रम शुरू करते हैं । इन सभी के कारण अपक्षयित शैल मलबे की पर्पटी वास्तविक मृदाओं में परिवर्तित हो जाती है । इसमें जटिल खनिज मैट्रिक्स होता है साथ ही विभिन्न प्रकार के जैव यौगिकों के होते हैं, तथा समृद्ध जीव जन्तु समष्टि होती है ।

3.2.1.3 परिपक्वन (Maturation)

इस प्रकार मृदा जनन के दौरान, विभिन्न जैव संयुक्त मृत जैव पदार्थ और जीवित जन्तु इत्यादि खनिज पदार्थ में जुडते हैं । मृत जैविक पदार्थ के खनिजीकरण के फलरचरूप, खनिज फिर धीरे-धीरे परिवर्धनशील मृदा की भिन्न परतों में जुडते हैं । यह मृदा, जब पूरी तरह विकसित हो जाती है तो इसमें मृदा की कई परती- संस्तरस्थित (layers-horizons) देखी जा सकती है, यह **मृदा परिच्छेदिका** (soil profile) कहलाती है।

3.2.2 मृदा परिच्छेदिका (Soil profile)

मृदा के स्तरण को उसके लम्बवत काटे गए परिच्छेद में देखा जा सकता है । इसे मृदा परिच्छेदिका कहते हे । एक प्रारूपिका परिच्छेदिका **चित्र 3.1** मे दिखाई गई है और इसके

विभिन्न स्तरों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है । दोक्याशेव (1979) ने तीन प्रमुख स्तर अ (A) ब, (B) स (C) ही बताए थे परन्तु वर्तमान में इन स्तरों को निम्न प्रकार से प्रविभाजित किया। गंवा है । इन स्तरों को **संस्तरण** (Horizon) भी कहते है । संस्तरण A तथा B वास्तविक मृदा बनाते हें। जनक शैल का अर्द्ध खण्डित भाग संस्तरण C कहलाता है ।

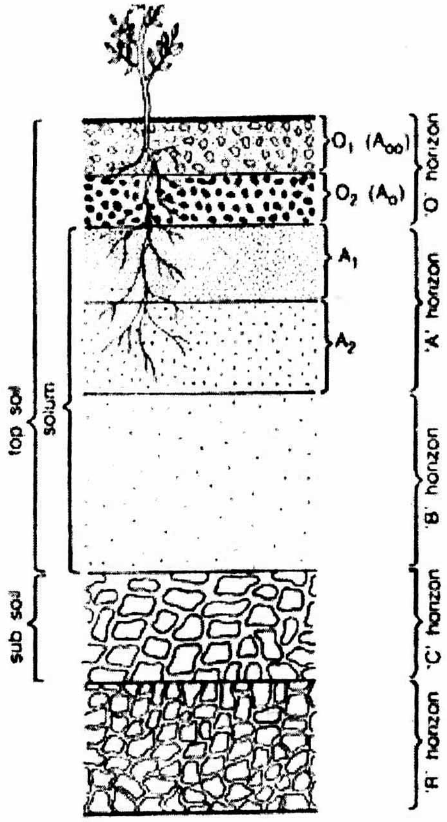

चित्र 3.1 : मृदा की प्रारूपिक परिच्छेदिका (2004)

'A' संस्तरण ('A' Horizon) - यह सबसे ऊपरी स्तर होती है । इसको शीर्ष मृदा (Top Soil) भी कहते हैं । इसमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थ अपघटन (Disintegration) की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं । इस संस्तरण की सबसे ऊपरी परत को 'A_{00}' परत कहते हैं । इसमें पत्तियों व शाखाओं के अक्षत (Intact) या आंशिक रूप से टूटे हुए टुकड़े होते हैं । इसके नीचे ' A_0' परत होती है इसमें अपूर्ण रूप से अपघटित (Partly Decomposed) कार्बनिक पदार्थ होते हैं तथा अपघटित होने वाले अंग अपनी पहचान खो चुके होते हैं । ' A_0' के नीचे ' A_4' परत होती है जिसमें पूर्णत: अपघटित कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस होता है जो खनिज पदार्थों के साथ मिला हुआ रहता है । A_1, परत गहरे रंग की होती है । A_1, के नीचे A_2 व A_3 परतों में ह्यूमस की घटती हुई मात्रा होती है तथा ये A_1, से हल्के रंग की होती हैं ।

'B' संस्तरण-यह 'A' संस्तरण से ठीक नीचे वाला संस्तरण होता है । इसे उप मृदा (Sub soil) भी कहते हैं । इस संस्तरण को भी परिपक्वता (Maturation) के घटते क्रम में B_1, B_2, B_3 परतों में उपविभाजित किया जाता है । B_1, परत, A_3 परत के ही समान होती है लेकिन

इसमें कुछ कणीय रचनाएँ भी उपस्थित हो सकती हैं । B_2 तथा B_3 में मृदा खण्ड (Soil blocks) होते हैं जो लौह (Iron) तथा एल्यूमीनियम (Aluminum) के समुच्चयन (Aggregation) से बनते हैं ।

'C' संस्तरण-यह अपूर्ण अपक्षीण (Incomplete weathered) चट्टानों का बना होता है । इस संस्तरण के नीचे पृथ्वी की चट्टानें होती हैं । इस स्तर में जीव सक्रियता भी नहीं होती है ।

'R' संस्तरण-यह स्तर मातृ शैलों का बना होता है और इसके ऊपर जल एकत्र रहता है ।

इस प्रकार मृदा के संस्तरण (Horizons) में परिपक्वन की तीन मुख्य क्रियाएं भाग लेती हैं-

(1) **मेलेनाइजेशन** (Melaniztion)

इस क्रिया में कार्बनिक पदार्थों से ह्यूमस बनता है जो पानी के साथ मृदा के A-स्तर में मिलता जाता है । इससे A-स्तर का रंग गहरा बन जाता है । यह क्रिया कम आर्द्रता वाले प्रदेषों मे अधिक होती है ।

(2) **पोडजोलीकरण** (Podsolization)

अधिक आर्द्रता वाले स्थानों में पानी के साथ A-स्तर से खनिज लवण ह्यूमस निक्षालित होकर नीचे के स्तरों में पहुंच जाते हैं । प्रायः ये पदार्थ B-स्तर के मध्य में एकत्र होकर एक कड़ा स्तर बनाते हैं । परिणामत: A -स्तर राख के समान हल्के रंग का रह जाता है । इस क्रिया को पोडजोलीकरण कहते हैं ।

(3) **ग्लाइजेशन** (Gleization)

R-स्तर के ऊपर एकत्र भूमिगत जल के प्रभाव से C-स्तर के खनिजों का जल-अपघटन और अपचयन होता रहता है । बाद में C और R -स्तरों के बीच कठोर ग्ले-स्तर (G) का निर्माण हो जाता है । इसी क्रिया को ग्लाइजेषन कहते हैं ।

4. **लैटेराइटीभवन या लैटेराइटन** (Laterization)

एक निष्क्रिय कारक- समय (time) मृदा निर्माण के लिए आवश्यक है । चूँकि यह जलवायवी और जनक पदार्थ कारकों से प्रभावित होता है इसलिए यह अत्यंत परिवर्ती है । उष्ण-कटिबंधीय परिस्थितियों में मृदा निर्माण अत्यधिक लम्बा समय ले सकता है । **मोहर** एवं **वान बेरन** (1959) ने लिखा : "उष्णकटिबंधों में लेटेराइट के प्रक्रम को भौगोलिक परिघटना मानना चाहिए । यह इसलिए क्योंकि जलवायु के पश्चात् समय कारक अपक्षयण के चक्र में अंतिम अवस्था के निर्धारण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।"उष्णकटिबंधों में तापमान प्रवृत्ति और उच्च वृष्टि के अंतर्गत सिलिकेट खनिज पदार्थ अधिक अस्थिर होते हैं और सिलिका का अधिक हास होता है, प्रायः जैसे कोलॉइडी सिलिसिक अम्ल होता है । सिलिक / सेसक्यूऑक्साइड का अनुपात अधिक निम्न हो जाता है । जनक खनिजों के एलुमिनियम और लौह सेसक्युऑक्साइड अपघटन के प्रतिरोधी होते हैं तथा कुछ एलुमिनो-सिलिकेट (alumino-silicate) विखण्डन के दौरान मुक्त आयनिक A1 और Fe से स्वस्थाने स्रावित होते हैं । यह लैटेराइटीभवन (Laterization) प्रक्रम आधार समृद्ध जनक पदार्थों पर अधिक सामस्य है तथा यह प्राथमिक लेटेराइट का अवशेष छोड़ते हैं जिसमें कुछ अन्य भी होते हैं किन्तु लौह और एलुमिनियम सेसक्युऑक्साइड और कुछ प्रतिरोधी जनक पदार्थ होते हैं ।

3.2.3. मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting soil formation)

(i) **मातृ भौल-**मातृ शैलों का रासायनिक संगठन उनसे बनने वाली मृदा की रचना, गहराई व रासायनिक गुणों को प्रभावित करता है । कैल्शियम युक्त शैलों में कार्बोनेट की अधिकता से मृदा में क्षारीय गुण आते हैं । सिलिकायुक्त शैलों का अपक्षय धीरे-धीरे होता है और मृदा की गहराई कम होती है ।

(ii) **जलवायु**-जलवायु का मृदा निर्माण पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है । जलवायु के दो मुख्य अंग-अवक्षेपण और तापमान सीधे मृदा पर, और वनस्पतियों की वृद्धि द्वारा परोक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं । अत्यधिक गर्म प्रदेशों में अपक्षय के बाद खनिजों में पानी के साथ क्रिया के कारण लोहे के जलीय ऑक्साइड बनते हैं जो सिलिका का स्थान ले लेते हैं- इस प्रकार मृदा मुख्यतः लोहे-एल्यूमीनियम युक्त (Ferralitic) चिकनी मिट्टी की बनी होती है । ठंडे (समशीतोष्ण) प्रदेशों में यही मृदा सिलिकान-एल्यूमीनियम युक्त (siallitic) होती है । ठंडे प्रदेशों में जल की अधिकता से निक्षालन अधिक होता है जिसके फलस्वरूप पोडजोलीकरण होता है । सवाना के घास के मैदानों में लम्बे शुल्क समय के कारण ह्यूमस रहित लाल मृदा का निर्माण होता है । रेगिस्तानों में अधिक ताप पर वाष्पन-उत्सर्जन बढ़ जाने से मृदा में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है ।

जलवायु के अनुरूप वनस्पतियों के विकसित होने से मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं जो मृदा के गुणों को बदलते रहते हैं ।

(iii) **भौगोलिक रचना**-पृथ्वी के धरातल की रचना से जल का बहाव स्थानीय जलवायु आदि कारक प्रभावित होते हैं । पहाड़ों पर खड़े ढाल होने से मृदा एकत्र नहीं हो पाती । शीघ्र भू-स्खलन हो जाने से मृदा हट जाती है और नंगी चट्टानें निकल आती हैं जो वनस्पतियों के जाने के अयोग्य होती हैं । मैदानों में नदियों के साथ लाई गई मृदा (अपक्षीण शैल) फैल जाती है । यदि झील या तालाब में पानी बहुत समय तक बना रहे तो उस झील या तालाब की तली में कार्बनिक पदार्थयुक्त चिकनी मिट्टी इकट्ठा हो जाती है ।

(iv) **वनस्पतियाँ**-वनस्पतियों का प्रत्यक्ष प्रभाव मृदा में ह्यूमस की मात्रा और मृदा के रासायनिक गुणों पर पड़ता है । ठण्डे प्रदेशों में शंकुधारी वनस्पतियों के बाहुल्य से मृदा पर जीव अवशेषों और सड़ान की मोटी तह जमी रहती है । साथ ही मृदा अम्लीय होती है । इसके विपरीत दूसरे प्रकार की वनस्पतियों वाले प्रदेशों में (जैसे उष्ण व उपोष्ण वन) मृदा लगभग क्षारीय होती है ।

वनस्पतियों के तापमान व जल की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों के कारण, मृदा पर परोक्ष प्रभाव भी होते हैं जिनमें खनिजों का निक्षालन और जीवों की उपस्थिति मुख्य हैं ।

3.2.4. मृदा के गुण व संघटन (Components and properties of soil)

जैसा कि इस इकाई में पहले ही बताया गया है, कि मृदा सिर्फ एक ही वस्तु नहीं है किन्तु वास्तव में यह विभिन्न घटकों द्वारा बनती है जो सब एक साथ मिलकर मृदा जटिल बनाते हैं । मृदा वास्तव में ठोस, द्रव्य और गैसीय घटकों की तीन प्रावस्था तंत्र है, इन प्रत्येक

के अपने भौतिक और रासायनिक गुण होते हैं तथा अन्य के संबंधों में ये साम्यावरक्षा में या क्षणिक अवस्था में होते हैं । इन घटकों के साथ, प्रत्येक मृदा में पृथक वनस्पतिजात और प्राणिजात होती है, जैसे- जीवाणु, कवक, शैवाल, नीले-हरे शैवाल, प्रोटोजोआ, रोटीफर निमेटोड, ओलिगोकिट मोलस्क, आर्थ्रोपोड, इत्यादि । ये जन्तु मृदा का जैविक घटक बनाते हैं । द्रव्य और गैसीय प्रावस्था कम आयतन में प्रायः एक समांग होती है, जबकि ठोस प्रावस्था विषमांग होती है, इसमें भिन्न आमाप के अकार्बनिक सम्मिश्र होते हैं जैसे सिलिका, सिलिकेट, मृत्तिका, धातु ऑक्साइड और अन्य लघु घटक । ये सभी भिन्न प्रकार के जैविक या कार्बनिक पदार्थ के साथ भिन्न सहचर्य में उपस्थित होते हैं ।

मृदा के घटक (Componenets of soil)-मृदा के चार मुख्य घटक होते हैं-

(i) खनिज पदार्थ (Mineral matter)

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter)

(iii) मृदा जल (Soil water)

(iv) मृदा वायु (Soil air)

उपजाऊ भूमि की मृदा में खनिज पदार्थ लगभग 40 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ 10 प्रतिशत, मृदा जल 25 प्रतिशत एवं मृदा वायु 25 प्रतिशत होती है ।

3.2.4.1 खनिज पदार्थ (Mineral matter)

जनक खनिज शैल के अपक्षयण के भिन्न स्तरों के फलस्वरूप, भिन्न आमाप के खनिज कण निर्मित होते हैं । मृदा के किसी भी नमूने में, भिन्न आमाप के कण भिन्न अनुपातों में पाए जा सकते हैं । इनके आमाप (व्यास आधार) के आधार पर, मृदा विज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Society of Soil Science) ने इन खनिज कणों को भिन्न नाम दिए, जो इस प्रकार हैं-

कण का नाम	**व्यास श्रेणी (मिमी)**
चिकनी मिट्टी गाद (clay)	0.002 से कम
सिल्ट (Slit)	0.002-0.02
महीन बालू (Fine sand)	0.02-0.20
स्थूल बालू (Coarse Sand)	0.20-2.0
पत्थर और बजरी (Gravel)	2.0 से ऊपर

चित्र 3.2 में विभिन्न आकार के कणों के अनुपात के आधार पर मृदा गठन (Texture) का वर्गीकरण दिया गया है । चिकनी मिट्टी के कणों की अधिकता (प्रतिशत के आधार पर) से मृदा को चिकनी मिट्टी, बालू की अधिकता से बालुई मिट्टी, और बालू तथा गाद या चिकनी मिट्टी दोनों के कणों के लगभग समानुपात में होने से इसको दोमट कहते हैं । चिकनी मिट्टी के कण कोलायडी प्रकृति के होने के कारण पौधों को जल व पोषक तत्वों की आपूर्ति में सहायक होते हैं ।

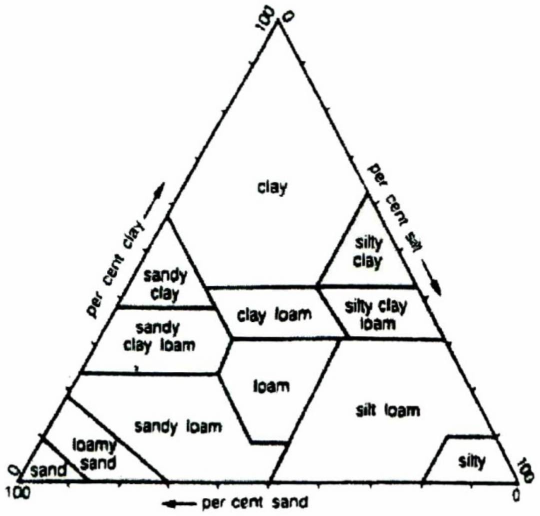

चित्र 3.2 : मृदा के गठन का वर्गीकरण (शर्मा, 2004)

मृदा का गठन (Soil texture) मष्दा का गठन उसमें उपस्थित विभिन्न आमाप (Different size) के खनिज कणों के आपेक्षिक अनुपात द्वारा निर्धारित होता है । कणों के आपेक्षिक अनुपात के आधार पर मृदा को छः प्रकारों में विभक्त किया गया है-

मृदा का प्रकार	**प्रतिशत के आधार पर कणों की मात्रा**
(i) बलुई मिट्टी (Sandy soil)	(i) बालू कणिकाओं (Sand particles) की अधिकता ।
(ii) चिकनी मिट्टी (Clay soil)	(ii) चिकनी मिट्टी के कणों (Clay particles) की अधिकता ।
(iii) दोमट मिट्टी (Loan soil)	(iii) बालू गाद व चिकनी मिट्टी के कण बराबर की प्रतिशतता में।
(iv) बलुई दोमट मिट्टी (Sandy loam soil)	(iv) दोमट मिट्टी जिसमें बालू की अधिकता हो ।
(v) गाद दोमट मिट्टी (Silt loam soil)	(v) दोमट मिट्टी जिसमें गाद कणों की अधिकता हो ।
(vi) चिकनी दोमट मिट्टी (Clay loam soil)	(vi) दोमट मिट्टी जिसमें चिकनी मिट्टी के कण अधिकता में हो ।

मृदा का गठन का सम्बन्ध मृदा जल (Coarse particles), वातायन (Aeration) व मूल वेधन (Root penetration) से है ।

बलुई मिट्टी मोटे कणों (Coarse particles) से गठित होती है तथा हल्के गठन वाली (Light textured) कहलाती है । इसकी जल धारण क्षमता (Water holding capacity) व इसमें पोषकों (Nutrients) की मात्रा कम होती है जबकि रन्ध्र अवकाश (Pore space) अधिक होता है । चिकनी मिट्टी कोलायडी कणों (Colloidal particles) की बनी होती है तथा

भारी गठन (Heavy textured) वाली कहलाती है । इसकी जल धारिता अधिक तथा वातायन (Aeration) कम होता है । चिकनी मष्दाओं में जल आक्रान्ता (Water logging) होती है । दोमट मिट्टी पादपों की वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त होती है क्योंकि इसमें बलुई (Sandy), गाद (Silty) व चिकनी (Clayey) मिट्टी लगभग समान मात्रा में होती है । इसलिए दोमट मिट्टी में वायु व जल का अच्छा आवागमन, सरल मूल वेधन (easy root penetration) बलुई की उपस्थिति के कारण तथा उच्च जल धारिता एवं उर्वरता चिकनी मिट्टी की उपस्थिति के कारण होती है ।

3.2.4.2 कार्बनिक पदार्थ (Organic matter)

कार्बनिक पदार्थ मृदा को खनिजों की वापसी का मुख्य स्रोत है । इसमें जलधारण क्षमता भी अधिक होती है । यह खनिजों को आयन की तरह अवशोषण द्वारा धारित करता है तथा मृत्तिका कणों को पुंज में बांधता है । यह मृत्तिका मृदाओं का छिद्रित (porous) बनाता है और इस तरह मृदा का वातन बढता है और मृदा में जल का आसान संचरण भी करता है ।

मृदा के खनिज पदार्थों के साथ वर्ष दर वर्ष कार्बनिक पदार्थ जुडते रहते हैं । यद्यपि मृदा में कार्बनिक पदार्थो का प्रतिशत कम (10 प्रतिशत) ही होता है फिर भी किसी स्थान की वनस्पति एवं पादप वृद्धि पर ये व्यापक प्रभाव डालते हैं । मृदा में पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों के अपघटन के फलस्वरूप कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता है । मृत भागों का अपघटन मृदा जीवों द्वारा किया जाता है ।

भूमि की सतह पर सूखे मृत या टूटे वनस्पति के भागों (पत्तियाँ, टहनियाँ, फल, फूल, मूल, आदि) एवं मृत जन्तुओं की एक परत बन जाती है । इस परत में मृत भाग अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं । इस परत का वह भाग जिसमें पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन नहीं हुआ हो अर्थात् सभी मृत भाग अपनी पहचान बनाये हुए हों, **लीटर** (litter) कहलाता है । लीटर के नीचे का वह भाग जिसमें मृत भागों का आंषिक अपघटन हो गया हो लेकिन उन भागों को पहचाना जा सकता हो, **'डफ'** (Duff) कहलाता है । इससे नीचे की परत में पौधों के मृत भागों का अपघटन अधिक होने के कारण इन भागों को नहीं पहचाना जा सकता, इस परत को ह्यूमस परत कहते हैं । इस प्रकार पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों के सड़ने गलने से, ये काले और भूरे पदार्थ में बदल जाते हैं । इस काले भूरे पदार्थ को ही ह्यूमस (Humus) कहते हैं । ह्यूमस का और अधिक अपघटन होने से खनिज लवण मुक्त हो जाते है । पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन होकर ह्यूमस में परिवर्तन के प्रक्रम को ह्यूमीफिकेशन (Humification) कहते हैं तथा ह्यूमस का खनिज लवणों में परिवर्तन **खनिजीकरण** कहा जाता है ।

ह्यूमस का निर्माण (formation of Humus) - ह्यूमस निर्माण में पहला चरण होता है मौलिक पादप खंडों का मृदा प्राणिजात द्वारा अवचूर्ण(comminution) और अभिगमन । इस प्राथमिक विखण्डन के पश्चात्, मृदा प्राणीजात सूक्ष्मजन्तुओं द्वारा हमला (जीवाणु, कवक, एक्टीनोमाइसिटिस) तीव्रता से शुरू हो जाता है तथा मौलिक पदार्थ शीघ्र ही अधिक प्रतिरोधी

लिग्नीन और लिग्नीन-व्युत्पन्न का अवशेष छोड़ते हुए अधरोष्ठ अवयवों जैसे विलेय शर्करा, पॉलिसेकेराइड, प्रोटीन और वसा को अधरोष्ठ करते हैं । इस तरह अधिकतर मिट्टियों में, बड़े अनुपात की ह्यूमस मृदा प्राणिजात और सूक्ष्म जन्तुओं की मिली जुली क्रिया से व्युत्पन्न होती है ।

कार्बनिक पदार्थ की प्रकृति निवेश और 'मृदा उपापचय' (Soil Metabolism) पर निर्भर करती है । साथ ही वनस्पति, जलवायु, जनक पदार्थ और स्थलाकृति सभी का गहरा प्रभाव होता है । मृदा के कार्बनिक पदार्थ की सांद्रता इसलिए न सिर्फ करकट रसायन से अपितु सूक्ष्म जैविक पुन: संश्लेषण की प्रकृति द्वारा भी प्रभाव होता है । ह्यूमस निर्माण की दर और इसका संचयन अपघटन में सूक्ष्म जन्तुओं की प्रकृति द्वारा तथा मृदा के तापमान, आर्द्रता, वातन और pH द्वारा चालित होती है ।

ह्यूमस के रूप (Forms of humus)-शीतोष्ण जलवायु में कार्बनिक पदार्थ के प्रकारों की श्रेणी मृदा समूहों के बीच ग्रॉस भिन्नता को प्रदर्शित करती है । जनक पदार्थ, वनस्पति तथा जलवायवी परिस्थितियों की प्रकृति के आधार पर, दो मुख्य प्रकार की ह्यूमस उत्पन्न होती हैं- **मॉर** (Mor) ह्यूमस और **मल** (mull) ह्यूमस । ये दोनों शब्द मुल्लर द्वारा 1800 में प्रयुक्त किए गए थे । ये इस प्रकार हैं-

ह्यूमस दो प्रकार के होते हैं जिनके गुण निम्नलिखित हैं-

(i) मॉर ह्यूमस (Mor humus)	(ii) मल्ल ह्यूमस (Mull humus)
1. ह्यूमस की परत कठोर व रंध्रहीन (Non porous) होती है।	1. जीवों की बाहुल्यता होती है।
2. मृदा में अपघटनकारी जीवों का अभाव होता है।	2. ह्यूमस की परत ढीली (Loose) 3. व रंध्रमय होती है।
3. अपघटनकारी क्रिया मन्द गति से होती है।	4. अपघटन क्रिया तीव्र गति से होती है।
4. मृदा में केंचुएँ नहीं पाये जाते हैं।	5. खनिज लवण व ह्यूमस बराबर मात्रा में होते है।
5. खनिज लवण कम होते है।	6. केंचुएँ अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

मृदा में ह्यूमस पादपों के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं-

(1) ह्यूमस में खनिज लवणों की प्रचुरता होती है अत: यह पादप पोषकों का भण्डार हैं । इससे मृदा की उर्वरता में भी बढोत्तरी होती है ।

(2) ह्यूमस मृदा की जल धारिता बढ़ा देता है । ह्यूमस के कारण मृदा की रन्ध्रता (porosity) बढ़ जाती है जिससे जल का रिसाव (Percolation) व गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है ।

(3) ह्यूमस मृदा जीवों के लिए भोजन का स्रोत है ।

(4) ह्यूमस मूलों के श्वसन हेतु ऑक्सीजन व जल का स्रोत है ।

3.2.4.3 मृदा जल (Soil water)

किसी भी स्थान पर पहुँचने वाले जल का सारा भाग मृदा में पौधों के लिए उपलब्ध नहीं रहता । धरती की सतह के कुछ जल के बह जाने के बाद, मृदा द्वारा शोषित जल का एक बहुत बड़ा भाग गुरुत्वाकर्षण द्वारा मृदा के नीचे भूमिगत जल के रूप में पहुँच जाता है, इसे गुरुत्वाकर्षित जल कहते हैं । कुछ जल कणों के बीच की केशिकाओं में गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध पृष्ठ तनाव के कारण रह जाता है, इसे केशिकाय जल कहते हैं । यही पौधों के लिए अधिक उपयोगी रहता है । इसके सूखने पर जल की कुछ मात्रा जलाकर्षण के कारण खनिज कणों के चारों ओर झिल्ली के समान चिपकी रहती है और कुछ जल कणों के बीच वाष्प रूप में भी रहता है ।

मृदा के जल सम्बन्धी गुण कई भागों में बांटे गये हैं-

(अ) **क्षेत्र क्षमता या केशिका क्षमता**-वर्षण उपरांत मृदा में गुरात्वाकर्षण द्वारा जल के तत्काल नीचे चले जाने के पश्चात् केशिकाओं में बचे हुए जल की प्रतिशत मात्रा (शुक भार के आधार पर) क्षेत्र क्षमता कहलाती है ।

(ब) **जल धारण क्षमता**-गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध केशिकाओं में समा सकने वाले जल की प्रतिशत मात्रा को जल धारण क्षमता कहते हैं ।

(स) **जलाकर्शण गुणांक**-यदि शुष्क मृदा को जल वाक से संतृप्त वायुमंडल में रखा जावे तो मृदा द्वारा शोषित जल वाष्प की प्रतिशत मात्रा को जलाकर्षण गुणांक कहते हैं ।

(द) **आर्द्रता तुल्यांक**-यदि नम मृदा को गुरुत्वाकर्षण से एक हजार गुना बल पर अपकेन्द्रित किया जावे तो मृदा में बच गई प्रतिशत जल की मात्रा को आर्द्रता तुल्यांक कहते हैं ।

(य) **म्लानि गुणांक**-मृदा में जल की वह प्रतिशत मात्रा जिस पर कोई पौधा स्थायी रूप से मुरझा जावे, ग्लानि गुणांक कहलाती है ।

उपरोक्त विभिन्न जल सम्बन्धी गुणों में साधारणतया निम्न सम्बन्ध होता है :-

म्लानि गुणांक = आर्द्रता तुल्यांक = जल धारण क्षमता = जलाकर्षण गुणांक

1.84 2.9 0.68

मृदा में जल का व्यवहार (Behaviour of forms of water in soil)

जल मृदा कणों के अवकाशों व इर्द गिर्द उपस्थित होता है । इसके अतिरिक्त, मृदा में कुछ अन्य प्रकार के जल धारित भी होते हैं, जैसे **संयुक्त जल** (combined water) और **जलवाष्प** (water vapour) । इस तरह मृदा में जल निम्न पाँच रूपों (अवस्थाओं) में उपस्थित होता है-

(a) **आर्द्रताग्राही जल** (Hygroscopic water)- यह जल मृदा कणों के पृष्ठीय बलों द्वारा बंधित रहता है । मृदा कण जल की आणविक परतों की फिल्म द्वारा घिरे रहते हैं । जल कण के इर्द गिर्द कड़ाई से बंधित रहता है और ससंजक (Cohensive) आसंजक बलों द्वारा और यह पादपों द्वारा आसानी से हटाया नहीं जा सकता ।

(b) **केशिकीय जल** (Cohesive water)-मृदा में यह जल मृदा कणों के रंध्रों (रंध्रावकाश) और उनके बीच के कोणों के बीच मुख्यतः बंधित रहता है, और केशिकाओं का तंत्र बनाता है । यह जल, कणांतर मिनिस्कस प्रभाव द्वारा बंधा रहता है गुरुत्व द्वारा हटाया जाता है, यह **केशिकीय जल** कहलाता है । पादपों के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण जल है ।

(c) **गुरुत्वीय जल** (Gravitational water)-यह जल गुरुत्व के प्रभाव में आर्द्र मृदा के द्वारा नीचे की ओर जाता है । इस प्रकार यह जल मृदा से सिर्फ गुरुत्व द्वारा हटाया जाता है । वास्तव में गुरुत्वीय मृदा के जल प्रतिधारण क्षमता (पृष्ठीय बलों और कणांतर निमिस्कस प्रभावों के कारण) का अधिशेष होता और इस प्रकार पृथ्वी की गहरी संतृप्त जोन पर पहुँचने से जलोत्सारित होता है- **भौमजल** (Ground water), जिसकी ऊपरी सतह **भौमजल स्तर** (water table) होते हैं ।

(d) **संयुक्त जल** (Combined water)-यह जल मृदा में उपस्थित एल्युमीनियम, लौह, सिलिकॉन, इत्यादि के जलयोजित ऑक्साइड की तरह उपस्थित जल का रूप है ।

(e) **जल वाश्प** (Water vapour)-मृदा में कुल जल मृदा कणों के बीच रंध्राकाशों में वाष्प अवस्था में उपस्थित होता है ।

वृष्टि के पश्चात्, जल मृदा में प्रवेश करता है और यह मृदा कणों के बीच अवकाश को भर देता है तथा वह आयतन जो भरता है **रंध्रावकाश** (pore space) कहलाता है, जो मृदा की संव्यूति और संरचना के साथ भिन्न होता है । जैसा कि पहले बताया गया है, मृदा में उपस्थित सारा जल पादपों को प्राप्य नहीं होता । मृदा में उपस्थित जल की कुल मात्रा **संपूर्ण जल** (holard) कहलाती है तथा पादपों द्वारा मृदा से अवशोषित जल की मात्रा **प्राप्य मृदा जल** (chresard) या **प्राप्य जल** कहलाती है और शेष, जो पादपों द्वारा अवशोषित नहीं होती **इकार्ड** (echard) या **अप्राप्य** कहलाती है । इस तरह पूर्ण पूरित क्षमता के बीच जल की मात्रा अधिकतम और म्लानि गुणांक (wilting coefficient) न्यूनतम की तरह प्रदर्शित करते हैं ।

3.2.4.4मृदा वायु (Soil air)

मूलों के श्वसन में O_2 की आवश्यकता होती है । श्वसन से प्राप्त ऊर्जा, मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए आवश्यक होती है जिससे जल अवशोषण निरन्तर बना रहें । क्षीण वातन वाली मृदा में मूल के आस-पास CO_2 एकत्रित हो जाती है जो पादप मूलों के लिए विषैली होती है । O_2 की कमी तथा O_2 की अधिकता के कारण कुछ विषैले पदार्थ जैसे H_2S, फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, ऑक्सेलिक अम्ल, आदि का निर्माण हो जाता है जो पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं ।

मृदा के कणों के बीच उपस्थित अन्तराल जिन्हें रन्ध्र स्थान (pore space) कहते हैं, जल एवं वायु से भरे रहते हैं । रन्ध्र स्थानों में पाई जाने वाली गैसें ही मृदा वायुमण्डल का निर्माण करती है । मृदा वायु पौधों के लिए निम्नलिखित प्रकार से महत्वपूर्ण है-

(i) पादपों के भूमिगत भागों तथा मृदा जीवों की श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक है ।

(ii) ह्यूमस निर्माण एवं बीजों के अंकुरण के लिए मृदा वायु अत्यावश्यक है ।

(iii) सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन क्रिया O_2 पर निर्भर करती है ।

(iv) मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए मृदा में वातन आवश्यक है ।

मृदा की क्षीण वातन (Poor aeration) होने के कारण पौधों में आकारिकीय, कार्यिकीय एवं शारीरिय गुणों में परिवर्तन आ जाते हैं जैसे- न्यूमेटोफोर (Pneumatophore), बटरस या पुश्ता मूल (Buttress root) आदि का पाया जाना ।

मृदा तापमान (Soil temperature)-मृदा तापक्रम मृदा में होने वाले भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रमों को प्रभावित करने के अतिरिक्त (i) मूलों द्वारा जल एवं लवणों के अवशोषण की दर (ii) बीजों के अंकुरण एवं (iii) पादप के भूमिगत भागों की वृद्धि, को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित करता है । पादप में उच्चतम उपापचयी क्रियाएँ एवं मूलों द्वारा जल का उच्चतम अवशोषण सामान्यत: 20^0C से 30^0C के मध्य होता है । 20^0C से निम्न तापमान जल की अवशोषण दर को काफी कम कर देता है । हिमांक पर अवशोषण दर नगण्य होती है । अत: शीत मृदाओं (Cold soils) में क्षीण वनस्पति (Poor vegetation) होती है तथा पौधे बौने (Draft) बने रहते हैं । उष्ण मृदाओं (Warm soils) की वनस्पति में वृक्षों की अधिकता होती है । मृदा तापक्रम का मापन मृदा तापमापी (Soil thermometer) द्वारा किया जाता है ।

मृदा तापक्रम निम्न कारकों पर निर्भर करता है- (i) मृदा सतह का रंग एवं गठन, (ii) मृदा जल की मात्रा एवं मृदा रन्ध्रता, (iii) वनस्पति का आवरण, (iv) ढाल की दिशा, आदि ।

3.2.4.5 मृदा जीव (Soil organisms)

जैसा कि पहले बताया गया है, ठोस, द्रव्य और गैसीय अवयवों के अतिरिक्त, प्रत्येक मृदा में स्वयं की पृथक वनस्पतिजात तथा प्राणिजात (जीवाणु, कवक एक्टीनोमाइसीटीस शैवाल, नीले हरे शैवाल, प्रोटोजोआ, रॉटीफर, निमेटोड, केंचुए, मोलस्का, आर्थ्रोपोडा, इत्यादि) होते हैं, जो मृदा जटिल का 'जैविक तंत्र' (Biological system) बनाते है । इन जन्तुओं में, कुछ नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Nitrogen fixation) द्वारा मृदा उर्वरता के अनुरक्षण में सहायक होते है तथा अन्य अनिवार्य पोषक को लौटाने के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

मृदा जीवों का महत्व (Importance of soil organisms)

(i) अनेक जीवाणु (Bacteria) तथा कवकें (Fungi) पादपों एवं जन्तुओं के मृत शरीर या उनके मृत अंगों में उपस्थित जटिल कार्बनिक पदार्थों का विघटन कर उन्हें सरल, यौगिकों में परिवर्तित कर पुन: जीवों को उपलब्ध कराते हैं तथा मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं । इस प्रकार पोषकों का चक्रीकरण सम्भव हो पाता है ।

(ii) कुछ जीवाणु जैसे- एजेटोबैक्टर (Azatobacter), क्लॉस्ट्रिडियम (Clostridum) तथा राइजोबियम (Rhizobium) एवं नील हरित शैवाल, वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं ।

(iii) कुछ बड़े जीव जैसे केंचुएँ (Earthworms), चूहे (Rats) आदि भूमि खोदकर बिल (Tunnel) बनाते रहते हैं जिससे नीचे की मिट्टी ऊपर तथा ऊपर की नीचे होने से मृदा को

एकरूपता प्रदान करते हैं । मृदा में बिल बनाने से मृदा की अन्दर की परतों में गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है ।

(iv) जीवाणुओं एवं कवकों द्वारा वृद्धिकारी पदार्थों (Growth stimulating substances) का स्त्राव किया जाता है जो पौधों की वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं । कभी-कभी मृदा जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थों की अपूर्ण सड़ने के कारण, विषैले पदार्थों का उत्पादन होता है जो पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं ।

(v) मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव विशेषकर जीवाणु व कवक पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन कर मृदा में ह्यूमस के रूप में मिश्रित कर देते हैं । इस प्रकार ये जीव प्राकृतिक अपमार्जकों (Natural seavanger) का कार्य करते हैं ।

(vi) कुछ शैवाल तथा जीवाणु श्लेष्मा (Mucilage) पदार्थ स्रावित करते हैं । इन श्लेष्मा के कारण मृदा के विभिन्न कण आपस में बंधे रहते हैं ।

3.2.5. मृदा क्रियाएं (Soil reaction)

मृदा में पौधों के पोषण की दृष्टि से दो मुख्य रासायनिक पदार्थ होते हैं- कार्बनिक पदार्थ (ह्यूमस के रूप में) और विभिन्न घुलनशील लवण । कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर मृदा की जल धारण क्षमता भी निर्भर करती है । इनके अतिरिक्त मृदा के जलीय घोल की क्षरता या अम्लता और मृदा के ऑक्सीकारक पदार्थों की मात्रा भी महत्वपूर्ण कारक होते हैं ।

मृदा में कार्बनिक पदार्थ, मुख्यतः ह्यूमस अपने कोलायड गुणों के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं । इन पर मृदा की जल धारण क्षमता और पोशक तत्वों की आपूर्ति निर्भर होती है । कार्बनिक पदार्थों की मात्रा शुष्क मृदा को 550^0C पर जलाकर या अनुमापन विधि द्वारा ज्ञात की जा सकती है ।

3.2.5.1 क्षार विनिमय (या धनायन विनिमय क्षमता)

जब मृदा में खनिज लवण पानी में घुलते हैं तो उनका आयनीकरण हो। जाता है जिनमें धनायन (कैल्शियम, पोटेशियम, सोडियम, मैग्नीशियम, आदि) पोषण के लिए अधिक महत्वपूर्ण होते हैं । ये आयन चिकनी मिट्टी या ह्यूमस के कणों के चारों ओर उनके कोलायड गुणों के अनुसार अधिशोषित हो जाते हैं । इन आयनों को तेज अस्त के तनु घोल या लवणों (नोसादर या बेरियम क्लोराइड) के सान्द्र घोल को मृदा में मिलाने से घोल में अलग किया जा सकता है । इसका कारण यह है कि आयनों की अधिशोषण क्षमता उनके अणु भार या संयोजकता के साथ बढ़ती जाती है । इस प्रकार विभिन्न आयनों की अधिशोषण क्षमता निम्न क्रम में होती है-

$$Ba^{++}>Ca^{++}>Mg^{++}>K^{+}>NH_4^{+}>Na^{+}$$

3.2.5.2 हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (pH)

किसी घोल की क्षारता या अम्लता को उसमें उपस्थित हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता के रूप में व्यक्त करते हैं । अम्लीय घोल में आयनों की सान्द्रता अधिक और क्षारीय घोल में कम होती है । इसके लिए एक मापदण्ड बनाया गया है जिसे हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता के

व्युत्क्रम के लाग (pH) के रूप में 1 से 14 तक विभाजित किया जाता है । इसमें pH 7 का अर्थ उदासीन घोल से होता है । 7 से नीचे pH का घोल अम्लीय और इससे ऊपर क्षारीय होता है । कुछ पादक अम्ल सह (Acid tolerant) होते हैं । अधिक क्षारीय मृदा ऊसर (Barren) होती है तथा रेह (Reh) कहलाती है ।

उदासीन या आंशिक अम्लीय मृदा अधिकांश पौधों के लिए उपयुक्त होती है । कृष्ट पादपों (Cultivated plants) की कुछ जातियाँ अम्लीय मृदा में उग सकती हैं जबकि शिम्बी पादपों (Leguminous plants) की ऐसी मृदा में अल्प वृद्धि (poor growth) होती है । मृदा की अम्लीयता (विभिन्न कृत), वनस्पति का प्रकार निर्धारित करने में महत्वपूर्ण होती है । pH के आधार पर वनस्पति को निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है-

1. अम्लीयता (Acidity)	pH	वनस्पति का प्रकार (Vegetation type)
2. अत्यधिक अम्लीय	3.7 से कम	लाइकेन्स एवं छोटी झाड़ियाँ
3. उच्च अम्लीय	3.7-4.5	हेमलोक, स्प्रूस, आदि
4. अम्लीय	4.5-5.5	शंकुधारी व पर्णपाती पौधे
5. आंशिक अम्लीय	5.5-6.9	पर्णपाती वन
6. उदासीन या क्षारीय	7.0-8.0	घासस्थल

इसको pH मीटर से नापा जाता है । इसका कम सही अनुमान लिटमस कागज से भी लगाया जा सकता है ।

3.2.5.3 अपचयन/ऑक्सीकरण विभव

इसका अध्ययन सर्वप्रथम पियरसाल ने 1920 में किया था और बाद में इंगलैंड की झीलों के पारिस्थितिक अध्ययन में पियरसाल (1938), पियरसाल और मोर्टिमर (1939) तथा मिश्रा (1938) ने इसके बारे में अधिक पता लगाया । यह विभव मष्दा में उपस्थित अपचयनकारी और ऑक्सीकारक पदार्थों की मात्रा के अनुपात के बराबर होता है । इस प्रकार यह विभव मृदा में वायु की उपस्थिति का द्योतक है । जलीय आवासों की मृदा में पानी से ढके रहने और जीवों द्वारा श्वसन करते रहने के कारण ऑक्सीजन की कमी हो जाती है । फलस्वरूप कुछ पोषक तत्व (जैसे-लोहा) पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते । उदाहरणतः आक्सीजन की अनुपस्थिति में नाइट्रेट अमोनिया में, सल्फेट सल्फाइड में और फैरिक यौगिक (Fe^{+++}) फैरस (Fe^{++}) में बदल जाने से पौधों को प्राप्य नहीं रहते है ।

3.2.5.4 लवणता

मृदा में साधारण लवण की मात्रा भी बहुत महत्वपूर्ण होती है । सोडियम, मैग्नीशियम और पोटेशियम के क्लोराइड जैसे घुलनशील लवणों के कारण मृदा साधारण वनस्पतियों के योग्य नहीं रहती । इसी प्रकार इन तत्वों के सल्फेट, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट आदि की अधिकता से मृदा क्षारीय हो जाती है जिसका पौधों की वृद्धि पर बुरा असर पड़ता है । मृदा अपने भौतिक

और रासायनिक गुणों के अतिरिक्त उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों के द्वारा भी पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है ।

3.2.6 भारत में मृदा के प्रकार और उनका विवरण (Soil types in India and their distribution)

भारत उपमहाद्वीप में जलवायु की विभिन्नता व अन्य स्थानीय कारणों से अनेकों प्रकार की मृदा मिलती है । लगभग प्रत्येक प्रान्त में एक से अधिक प्रकार की मृदा पाई गई है । इनका विस्तृत विवरण राय चौधरी अदि (1963) ने किया है । यहां पर केवल कुछ मुख्य प्रकारों का विवरण संक्षेप में दिया जा रहा है-

(i) **जलोढ़ मृदा** -

भारत के एक बड़े भू भाग में जलोढ़ मृदा पाई जाती है और कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है । यह मृदा नदियों द्वारा लाए गए अपक्षीण शैलों से प्राप्त रेत व गाद की बनी होती है । कुछ नई जलोढ़ मृदा हल्के रंग की होती है जबकि पुरानी मृदा में चिकनी मिट्टी और कंकड़ की अधिकता होती है । ये कंकड, मृदा के बीच के स्तरों में चिकनी मिट्टी, सिलिका और कैल्शियम युक्त पदार्थों के संयोग से बन जाते हैं । ककड़ पंजाब, दिल्ली और उ. प्र. की भूमि में अधिक पाए जाते हैं । आसाम मे पुरानी जलोढ़ मृदा अम्लीय होती है । ब्रह्मपुत्र की घाटी में जलोढ़ मृदा में पोटेशियम और फास्फेट अधिक मात्रा में, और नाइट्रोजन व कार्बनिक पदार्थ साधारण मात्रा में मिलते हैं । बिहार के मैदानों में गंगा के उत्तर की जलोढ़ मृदा रेतीली दोमट होती है जिसमें चूना व पोटेशियम अधिक होता हो परन्तु फास्फेट कम । गंगा के दक्षिण की मृदा गहरे रंग की दोमट होती है जिसमें चूना कम और पोटेशियम वे फास्फोरस अधिक होता है। मद्रास (तमिलनाडु) की जलोढ़ मृदा डेल्टा वाले क्षेत्रों में और समुद्र के किनारे मिलती है । गोदावरी द्वारा लाई गई मृदा उपजाऊ होती है जबकि कावेरी की मृदा में पोषक तत्वों की कमी होती है । अन्य प्रदेशों में भी कुछ जलोढ़ मृदा पाई जाती है ।

(ii) **काली मिट्टी (रेगूर)-**

दक्षिण के ट्रेप से बनी मृदा काली मिट्टी होती है जिसे रेगर भी कहते हैं । यह महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर आंध्र प्रदेश व गुजरात के भागों में मिलती है । दक्षिण और राजमहल के ट्रैप से बनी मिट्टी गहरी होती है जबकि लोहायुक्त ग्नाइस और शिस्ट से प्राप्त मृदा (जैसे-मद्रास में) कम गहरी होती है । काली मृदा महीन दानेदार, गहरे रंग वाली, कैल्शियम और मैग्नीशियम के कार्बोनेट से युक्त, अधिक जल धारण क्षमता वाली और उपजाऊ होती है । इसमें चिकनी मिट्टी अधिक होने से चिपचिपापन होता है और इसमें सूखने पर दरारें पड़ जाती हैं । लोहा, चूना, मैग्नीशियम और एल्यूमीनियम की अधिक मात्रा मिलती है परन्तु नाइट्रोजन फास्फोरस और कार्बनिक पदार्थ बहु त कम मात्रा में होते हैं ।

(iii) **लाल मृदा** -

यह मृदा रवेदार और कायांतरित शैलों के अपक्षय से बनी है । इसमें साधारणतः नाइट्रोजन, फास्फोरस, ह्यूमस, चूने, पोटेशियम, लोहे के ऑक्साइड की कमी होती है । यह मृदा

तमिलनाडु, मैसूर, दक्षिण पूर्व महाराष्ट्र, पूर्वी आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छोटा नागपुर, संथाल परगना, वीरभूम, मिर्जापुर, खासी, आदि क्षेत्रों में मिलती है।

मद्रास की लाल मृदा में कार्बनिक पदार्थ और क्षारीय लवण कम होते हैं जबकि मैसूर में इस मृदा में पोटेशियम और फास्फोरस की काफी मात्रा में होते हैं । बिहार में यह मृदा अम्लीय और कम फास्फेटयुक्त होती है।

(iv) **लेटराइट मृदा** -

यह मृदा उष्ण प्रदेशों में लोहे व एल्युमीनियम के जलीय आक्साइडों से युक्त शैलों के अपक्षीण होने से बनती है । यह विशेषकर पहाड़ी इलाकों में मिलती है । इनमें चूने, मैग्नीशियम और नाइट्रोजन की भारी कमी होती है । लोहे के फास्फेट और कार्बनिक पदार्थ प्रायः काफी मात्रा में पाए जाते हैं ।

इन मृदा प्रकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की मृदा भी मिलती है जो निम्न है-

(v) **वनों की मृदा** -

वनों में पाई जाने वाली मृदा में कार्बनिक पदार्थ की अधिकता होती है । ये अम्लीय परिस्थितियों में अम्लीय ह्यूमस और कम क्षार वाली होती है तथा कम अम्लीय या उदासीन परिस्थितियों में अधिक क्षार वाली होती है । आसाम के कुछ पहाड़ी इलाकों में इस मष्दा में कार्बनिक पदार्थ व नाइट्रोजन काफी अधिक होते हैं । उत्तर प्रदेश में यह मृदा विशेषकर भाभर और तराई के क्षेत्रों में मिलती है ।

(vi) **रेगिस्तानी मृदा** -

राजस्थान व पंजाब के शुष्क और अति शुष्क प्रदेशों में यह मृदा मिलती है । यह रेतीली है जिसमें कार्बनिक पदार्थों व पोषक तत्वों की कमी होती है । इनमें प्रायः घुलनशील लवण व क्षार अत्यधिक मात्रा में मिलते है।

(vii) **लवणयुक्त व क्षारीय मृदा** -

जलोढ़ मैदानों में जहाँ कहीं पानी की निकासी ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, घुलनशील लवण मृदा में एकत्र हो जाते हैं और प्रायः मृदा के ऊपर पर्त के रूप में जम जाते हैं । इनको ऊसर मृदा भी कहते हैं । ये उत्तर प्रदेश व पंजाब में अधिक पाई जाती है ।

क्षारीय मृदा गुजरात और महाराष्ट्र में अधिक होती है । क्षार व लवणों की अधिकता से थे मृदा कृषि योग्य नही होती ।

(viii) **पीट** -

केरल के कुटुनाड क्षेत्र में धान की खेती वाले इलाकों में वर्षा ऋतु में पानी से ढकी यह मृदा मिलती है । यह काली, भारी अम्लीय और कार्बनिक पदार्थों की अधिकता वाली होती है । इसमें जल में धुलनशील क्षारीय लवण भी एकत्र हो जाते हैं ।

3.2.7 बोध प्रश्न

नोट: (i) प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें ।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से मिलाए ।

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो -

I रिक्त स्थान भरो:

1. वायु द्वारा स्थानान्तरित मृदा को .... मृदा कहते है ।
2. मृदा के अध्ययन की विधा को .... कहते है ।
3. मृदा पौधों के .... में उपयोगी है ।
4. मृदा निर्माण के अन्तर्गत अपघटन क्रिया .... में धीमी गति से होती है ।

प्रश्न 2. बहुविकल्पी प्रश्न-

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें

1. मृदा के परिवर्धन को कहते है

   (अ) अपक्षय (ब) अपपत्रन

   (स) मृदा परिवर्धन (द) पुनरूद्भवन

2. मृदा के निर्माण मे ऑक्सीकरण प्रक्रिया पाई जाती है

   (अ) भौतिक अपक्षय में (ब) जैविक अपक्षय में

   (स) बिजली गिरने पर (द) रासायनिक अपक्षय में

प्रश्न 3. निम्न में से कौन सा कथन सत्य/असत्य है:

1. मृदा परिवर्धन में बड़ी चट्टानें टूटकर छोटे-छोटे कणों में परिवर्तित हो जाती है ।
2. अवशिष्ट मृदा अपनी मातृक चट्टानों के पास ही पाई जाती है ।
3. पौधों की जड़ों द्वारा चट्टानों की दरारों का चौड़ा होना जैविक अपक्षय का उदाहरण है ।
4. मष्दा की pH 7 होने पर वह उदासीन होती है ।

प्रश्न 4. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दो

1. मृदा परिवर्धन से क्या तात्पर्य है?

   ....

   ....

2. ह्यूमस को परिभाषित कीजिए ।

   ....

   ....

3. रेह किसे कहते है ?

   ....

   ....

3.3 सारांश (Summary)

मिट्टी पृथ्वी के बाहरी धरातल की ऊपरी उथली सतहों का सामान्यीकृत नाम है जो कि नीचे स्थित, के ऋतुक्षरण के फलस्वरूप बनती है तथा कार्बनिक पदार्थों एवं जीवित प्राणियों से युक्त होने के कारण पौधों एवं प्राणियों के लिए उपयुक्त आवास का कार्य करती है । मिट्टी में विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थों के साथ-साथ पौधों की जडें तथा बिल में रहने वाले जीव उपस्थित रहते हैं जो कि पारस्परिक पारिस्थितिक अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप मिट्टी में बहुत ही जटिल सम्बन्धों की रचना करते हैं इस प्रकार मृदा यथार्थ में एक बहुत ही जटिल तन्त्र है जो विभिन्न कार्बनिक, अकार्बनिक और जीवित संस्थानों में एक्य निर्माण करता हुआ क्रियाशील रहता है ।

3.4 शब्दावली (Glossary)

1. **मृदा विज्ञान (Pedology):** वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता है ।
2. **भीर्श मृदा (Top Soil):** मिट्टी सतह की सबसे ऊपरी परत ।
3. **लीटर (Litter):** वह भाग जिसमें पौधों एवं जन्तुओं का अपघटन नही हुआ हों ।
4. **डफ (Duff):** लीटर के नीचे का भाग जिसमें मृत भागों का आंशिक अपघटन हो गया हो ।
5. **मोर ह्यूमस (Mor-Humus):** मृदा में अपघटन जीवों का अभाव होने से खनिज लवण कम होते है ।
6. **मल्ल ह्यूमस (Mull-Humus):** मृदा में जीवों की बाहुल्यता होने से खनिज लवण व ह्यूमस बराबर मात्रा में होते है ।
7. **होलार्ड (Holard)** - पृथ्वी पर पाये जाने वाले जल की कुल मात्रा ।
8. **रेह (Reh)** अधिक क्षारीय मृदा, जो ऊसर (Barren) होती है ।
9. **जल धारण क्षमता (Water holding capacity)** मृदा में गुरूत्व बल के विरूद्व रह जाने वाले जल की प्रतिशत मात्रा ।

3.5 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल के मूल तत्व- डॉ. बृज गोपाल (1975) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ।

2. पर्यावरण तथा प्रदूषण - अरूण रघुवंशी, चन्द्रलेखा रघुवंशी (1995), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल ।

3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी.डी. शर्मा (2004), रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।

4. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल - एम.एल.वर्मा, जे.पी.गुप्ता, बी.एल.यादव (2001) अलका पब्लिशर्स, अजमेर ।

5. Concepts of Indian Ecology -D.N. Sen (1978), S. Nagin & Co.,Jalandhur.

6. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता निरंजन शर्मा, पी.सी.त्रिवेदी, आर.एस.धमुकड़ (2005), रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

7. Ecology -N.S. Subrahmanyam, A.V.S.S Sambamurty (2000), Narosa Publishing House, New Delhi.

8. A Text Book of Plant Ecology- R. S. Ambast, N. K. Ambast (1999), C.B.S. Publishers & Distributors, New Dehli.

9. Ecology, Enviroment & Resource Conservation - J. S. Singh, S. P. Singh, S. R. Singh (2008), Anamaya Publishers, New Dehli.

10. A Text Book of Plant Ecology - V. Verma (1996), Emkay Publications, Dehli

11. Plant Ecology and Soil Science - R. S. Shulkla, P. S. Chandel (1984), S. Chand & Co. Ltd., New Dehli.

3.6 बोध प्रश्न के उत्तर

प्रश्न 1.I

1. वातोढ़
2. मृदा विज्ञान
3. स्थिरीकरण
4. पोडसोलीकरण

प्रश्न 2- II

(1) स (2) द

प्रश्न 3

(1) असत्य	(2) सत्य	(3) सत्य	(4) सत्य

प्रश्न 4. 1. अपक्षयण के दौरान, शैल छोटे-छोटे कणों में खंडित होते हैं, जिनमें पादप उगने हेतु कई जटिल परिवर्तन होते हैं, यह **मृदा जनन (Pedogenesis)** या **मृदा परिवर्धन** कहलाता है।

2. पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों के सड़ने गलने से, ये काले और भूरे पदार्थ में बदल जाते हैं, इसे ही **ह्यूमस** (Humus) कहते हैं ।

3. अधिक क्षारीय मृदा ऊसर (Barren) होती है तथा रेह (Reh) कहलाती है ।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

1. मृदा वायु की पौधों के लिए उपयोगिता का वर्णन दीजिए ।
2. मृदा निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षेप मे वर्णन कीजिए ।
3. निम्न पर टिप्पणियां लिखिये

i. मृदा जल

ii. मृदा वायु

iii. नाइट्रोजन स्थिरीकरण ।

इकाई 4

सजीवों की पारस्परिक क्रिया (जैविक कारक)

INTERACTIONS AMONG ORGANISMS (BIOTIC FACTORS)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 जैविक अन्योन्यक्रियाएं

4.2.1 धनात्मक अन्योन्य क्रियाऐं

4.2.1.1 सहोपकारिता

4.2.1.2 सहभोजिता

4.2.1.3 प्राक्सहभोजिता

4.2.2 ऋणात्मक अन्योन्य क्रियाऐं ।

4.2.2.1 शोषण

4.2.2.2 प्रतिजीविका

4.2.2.3 प्रतिस्पर्धा

4.2.3 प्राणियों को वनस्पति पर प्रभाव ।

4.2.4 बोधप्रश्न

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 संदर्भ ग्रन्थ

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रकृति में सभी जीव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से प्रभावित रहते है । इस प्रकार जीवों के मध्य परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का एक जैविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । इन्हीं सम्बन्धों का अध्ययन जैविक कारकों के अन्तर्गत किया जाता है । इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की है -

1. धनात्मक अन्योन्यक्रियाऐं ।
2. सहोपकारिता
3. सहभोजिता
4. प्राक्सहभोजिता

5. ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं
6. शोषण
7. प्रतिजीविका
8. प्रतिस्पर्धा

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रकृति मे कोई भी जीव पूर्णत स्वतंत्र नहीं है सभी एक दूसरे को किसी न किसी रूप से प्रभावित करते रहते हैं तथा स्वयं भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित होते रहते हैं । इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटक पेड़-पौधे, जन्तु तथा मानव परस्पर कारकों की तरह व्यवहार करते हैं तथा जैविक कारक कहा जाता है । उदाहरण के लिए एक स्थान विशेष में उत्पन्न होने वाले एक दूसरे को प्रभावित हैं । इन पौधों के बीच बसने वाले जन्तु पौधों को प्रभावित करते हैं तथा स्वयं भी उनसे प्रभावित होते हैं । भी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं । इस प्रकार जीवों के बीच परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया का एक जैविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । इन्हीं जैविक सम्बन्धों का अध्ययन जैविक कारकों के अन्तर्गत किया जाता है । जैविक सम्बन्ध भोजन प्रजनन, सहायता, प्रतिस्पर्धा, परजीविता, सहभोजिता, दासत्व, इत्यादि रूपों में परिलक्षित होते हैं । जीवों के ये सम्बन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं ।

1. **अन्त:जातीय सम्बन्ध**-एक ही जाति के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अन्त:जातीय सम्बन्ध कहलाते हैं ।
2. **अन्तर्जातीय सम्बन्ध**-विभिन्न जातियों के सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध अन्तर्जातीय सम्बन्ध कहलाते हैं ।

किन्हीं दो जातियों के जीवों के बीच होने वाली अन्योन्य क्रियाओं को हास्केल (Haskel, 1949) और बर्कहोल्डर (Burk Holder, 1952) ने नौ वर्गों में बांटा है जिन्हें सारणी 1 में दिया गया है ।

सारणी 1 - दो जातियों के जीवों के बीच होने वाली अन्योन्य क्रियाएं

क्रिया	जाति		अन्योन्यक्रिया का प्रभाव
	1	2	
तटस्थता(Neutralism)	0	0	दोनों समष्टियां एक दूसरे से प्रभावित नहीं होती हैं ।
स्पर्धा-स्पष्ट व्यतिकरण(Competition: Direct interference type)	-	-	दोनों समष्टियां एक दूसरे की वृद्धि रोकती हैं ।
स्पर्धा-संसाधन सापेक्ष (Competition: Resources Use type)	-	-	यदि समान रूप से आवश्यक संसाधन कम मात्रा में उपलब्ध हों तो परोक्ष रूप से दोनों समष्टियां एक दूसरे की वृद्धि कम करती हैं ।

अभोजिता(Amensalism)	-	0	एक समष्टि की वृद्धि रुकती है, दूसरी को कोई हानि या लाभ नहीं होता ।
सहभोजिता(Commensalism)	-	0	एक समष्टि को लाभ होता है, दूसरी पर कोई प्रभाव नहीं होता ।
परजीविता(Parasitism)	+	-	बड़े आतिथेय पर छोटा परजीवी निर्भर होता है । परजीवी, आतिथेय को हानि पहुंचाकर स्वयं लाभान्वित होता है ।
परभक्षिता (Predation)	+	-	परभक्षी भक्ष्य से बड़ा होता है व भक्ष्य को अधिक हानि होती है ।
प्राक्सहयोगिता (protocooperation)	+	+	परस्पर क्रियाओं के फलस्वरूप दोनों जीवों को लाभ होता है पर यह जीवों के लिए आवश्यक नहीं होतीं ।
सपरोपकारिता(Mutualism)	+	+	पारस्परिक क्रियाएं दोनों जीवों के लिए परम आवश्यक और लाभकारी होती हैं ।

0 = कोई अन्योन्य क्रिया नहीं होती; - = समष्टि की वृद्धि रुकती है या अन्य हानि होती है और + = समष्टि की वृद्धि अधिक होती है या अन्य लाभ होता है ।

इसके अतिरिक्त एक ही जाति (या समष्टि) के जीवों की पारस्परिक क्रियाओं को केवल सघनता का प्रभाव माना गया हैं, यद्यपि अनेकों वैज्ञानिकों ने इसे स्वजातीय स्पर्धा (Intraspecific competition) कहा है । विभिन्न अन्योन्य क्रियाओं में स्पर्धा का महत्व सर्वाधिक है क्योंकि समुदायों के अनुक्रमण और जीवों के विकास में इसी क्रिया का प्रमुख योगदान होता है ।

हास्केल (Haskel, 1949) ने तथा बाद में बर्क होल्डर (Burk Holader, 1952) ने जीवों के मध्य होने वाली अन्योन्यक्रियाओं को '0' (शून्य), '+' (धनात्मक) तथा - ऋणात्मक चिन्हों का उपयोग करते हुए इनके विभिन्न समायोजनों (Combinations) के आधार पर उपरोक्त 9 श्रेणियाँ बनाई हैं जहाँ इन चिन्हों का तात्पर्य इस प्रकार है- '0' (शून्य) = कोई महत्वपूर्ण अन्योन्य क्रिया नहीं, '+' (धनात्मक) = समष्टि (Population) की वृद्धि या अन्य लाभ होता है, - (ऋणात्मक) = समष्टि की वृद्धि रुक जाती है अथवा कोई अन्य हानि होती है । प्राय: जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों में सहजीविता (Symbiosis) की चर्चा होती है । इस शब्द को उपरोक्त सारिणी में नहीं रखा गया है क्योंकि सहजीविता में दो भिन्न जीव साथ-साथ रहते हैं और उनके सम्बन्ध सहोपकारिता, परजीविता और सहभोजिता में से किसी भी एक प्रकार के हो सकते हैं । उदाहरणार्थ, अधिकांश अधिपादपी आरकिड बीजों के अंकुरण के समय से ही कुछ विशेष कवकों पर आश्रित रहते हैं । इन आरकिडों और कवकों के सम्बन्ध प्रायः सहजीविता के

अन्तर्गत वर्णित होते हैं परन्तु नवीनतम शोधों से ज्ञात हुआ है कि अंकुरण के बाद कुछ समय तक नवोद्भिद कवकों पर परजीवी होता है और इन कवकों से भोजन ग्रहण करता है ।

4.2 जैविक अन्योन्यक्रियाएँ (Biotic Interactions)

ओडम (1971) ने 'सहजीविता' शब्द का प्रयोग विस्तृत रूप से किया और उपरोक्त प्रकार के सहजीवी अन्योन्यक्रियाओं को दो मुख्य समूहों में विभाजित करना पसंद किया-

1. **धनात्मक अन्योन्यक्रियाएँ** (Positive interactions) - जहाँ समष्टि एक दूसरे की सहायता करती है, अन्योन्यक्रिया या तो एकमार्गी (one way) या व्युत्क्रम की होती है । इसके अन्तर्गत- (i) सहभोजिता (ii) आदिसहकारिता (Protocooperation) (iii) सहोपकारिता (mutualism) आते हैं।

2. **ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएँ** (Negative interactions) - जहाँ एक समष्टि के सदस्य अन्य समष्टि के सदस्यों को खा सकते हैं, भोजन के लिए स्पर्धा, हानिकारक अपशिष्टों के उत्सर्जन, या अन्यथा अन्य समष्टि के साथ अन्तर्क्षेप करते हैं । ये-(i) स्पर्धा (ii) भक्षण (iii) परजीविता और (iv) प्रतिजीविता में उपविभाजित हैं ।

4.2.1 धनात्मक अन्योन्यक्रियाएँ (Positive interactions)

यही समष्टियाॅ (Populations) एक दूसरे की सहायता करती है, और या तो एक या दोनों जातियों को लाभ होता है । यह लाभ हो सकता है भोजन, आवास, आधार या परिवहन का और साहचर्य सतत् या क्षणिक, अविकल्पी या विकल्पी हो सकते हैं और दो भागीदार या तो निकट संपर्क में सहते हैं या उनमें से एक अन्य के विशिष्ट क्षेत्र के अन्दर रहता है या उसकी सतह से चिपका रहता है । ये लाभकारी अन्योन्यक्रिया तीन भागों में विभाजित हैं-

(i) सहोपकारिता (Mutualism)

(ii) सहभोजिता (Commensalism)

(iii) प्राक्सहयोगिता (Protocoopetation)

4.2.1.1 सहोपकारिता (Mutualism)

जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों के परस्पर साहचर्य (Association) में रहने से दोनों को लाभ पहुंचता हो । पुन: दोनों जीवों को जीवित रहने के लिए दोनों का साथ रहना अर्थात् साहचर्य भी आवश्यक हो तो इस सम्बन्ध को **सहोपकारिता** (Mutualism) कहते हैं । यह सम्बन्ध दो पादपों के बीच, दो जन्तुओं के बीच अथवा जन्तुओं व पादपों के बीच हो सकते हैं। इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं-

1. **प्राणियों द्वारा परागण** (Pollination by animals) - भक्षिका, माॅथ, तितलियाँ, इत्यादि मकरंद (nectar) या अन्य पादप उत्पाद से भोजन व्युत्पन्न करते हैं और बदले में परागण करते हैं ।

2. **फल और बीजों का प्रकीर्णन** (Dispersal of fruits and seeds) - बीज और फल सामान्यत: प्राणियों द्वारा परिक्षेपित होते हैं । फल पक्षियों, स्तनधारियों, इत्यादि द्वारा खाए जाते हैं, और उनके अंदर के बीज उत्सर्जन में विभिन्न स्थानों पर गिरते हैं ।

3. **भौक** (Lichens) - कवक एवं शैवाल दोनों मिलकर एक जटिल जीव का निर्माण करते हैं जिसे **भौक या लाइकेन** (Lichen) कहते हैं । लाइकेन का थैलस मुख्यतः कवक का होता है तथा शैवाल घटक इसमें लिपटा रहता है । ये दोनों घटक लाइकेन में साथ-साथ रहकर एक दूसरे को लाभान्वित करते हैं । इसमें शैवाल सहभागी प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं जिसका उपयोग कवक भी करती है । इसके प्रतिफल में कवक से शैवाल को जल, खनिज लवण तथा सुरक्षा प्राप्त होती है ।

4. **सहजीवी नाइट्रोजन यौगिक** (Symbiotic nitrogen) - सहोपकारिता के ज्ञातव्य - उदाहरण हैं जीवाणु राइजोबियम (Rhizobium) जो शिंबी पादपों (leguminous plants) की जडों (roots) में ग्रंथिकाएँ बनाते हैं, और पोशी के साथ सहजीविता रूप से रहते हैं ।

ग्रन्थिल मूलों में निवास कर रहे जीवाणुओं को पौधे से भोजन तथा रहने के लिए आश्रय प्राप्त होता है । जीवाणु भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधे को उपलब्ध कराते रहते हैं जिसकी सहायता से पादप में प्रोटीनों का संश्लेषण सुगम होता है । इसी प्रकार साइकस की प्रावलाभ मूल (Coralloid root), अजोला (Azola) तथा ब्रायोफाइट के एन्थोसिरोस में नील हरित शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का कार्य करती है एवं पादप शरीर में सुरक्षित रहती हैं ।

5. **कवकमूल साहचर्य** (Mycorrhizal associations)-पादपों की मूलों एवं कवक के साहचर्य को कवक मूल (Mycorrhizal) कहते हैं । यह भी कवक में समान पोषण का उदाहरण है, जो मूलों के अन्दर या पादपों के बाह्य सतह पर कवक मूल संरचनाएं

बनाते हैं । कवक, मूल के बाह्य सतह पर ही लिपटी हो सकती है जिसे **बहिर्पोशी** (Ectotrophic) कहते हैं जैसे पाइनस, ओक, आदि । कुछ कवकमूलों में कवक मूल के अन्दर कोशिकाओं में भी हो सकती हैं जिसे परान्तपोषी (Endotrophic) कवक मूल कहते हैं, जैसे ऑर्किडेसी (Orchidae), एरिकेसी (Ericaceae), आदि । इन दोनों प्रकार की कवक मूलों मे कवक भाग जल एवं खनिज लवणों का अवशोषण कर वृक्षों को उपलब्ध कराती है तथा स्वयं मूलों से भोजन प्राप्त करती है । कुछ तत्वों जैसे फास्फोरस को पौधे सीधे मृदा से ग्रहण नहीं कर पाते हैं । कवक विशेष क्रिया द्वारा इनका अवशोषण कर पौधों को उपलब्ध कराती है । सामान्यत: देखा गया है कि जिन पौधों में कवकमूल होती है उनकी मूलों में रोम नहीं पाये जाते । मूल रोमों का कार्य कवक तन्तुओं द्वारा किया जाता है ।

सहोपकारिता का एक बहुत अच्छा उदाहरण दीमक तथा उनकी आँतों में पाये जाने वाले प्रोटोजोआ वर्ग के कशाभि (flagellates) प्राणियों का सम्बन्ध है । दीमक लकड़ी में उपस्थित सभी अवशेषों का पाचन कर लेती है किन्तु उसमें उपस्थित सेल्यूलोज को नहीं पचा पाती । किन्तु दीमक की आँतों में उपस्थित कशाभि प्राणी सेल्यूलोज के पाचन में सक्षम होते हैं । इस प्रकार सहयोग से पचा हुआ भोजन दोनों प्राणियों को उपलब्ध हो जाता है । यह भी देखा गया

है कि कशाभियों (flagellates) की अनुपस्थिति में दीमक भूख से मर जाती है, तथा कशाभि भी स्वतन्त्र जीवन यापन करने में असमर्थ होते हैं ।

इन सम्बन्धों से फ्लेजिलेट्स को तीन लाभ होते हैं- (i) उन्हें भोजन प्राप्त होता रहता है, (ii) शत्रुओं से सुरक्षा प्राप्त होती रहती है, एवं (iii) एक स्थायी वातावरण मिलता है ।

4.2.1.2 सहभोजिता (Commensalism)

सहभोजिता दो जातियों के जीवों का ऐसा सहवास (association) होता है जिसमें एक पक्ष लाभान्वित होता है तथा दूसरा पक्ष न तो लाभान्वित होता है और न ही उसे हानि पहुँचती है । ये सम्बन्ध निम्न प्रकार के हो सकते

(अ) **अधिपादप** (Epiphytes)-अधिपादप वह पौधे होते हैं जो अन्य पादपों पर दु:स्थित होते हैं । ये अन्य पादपों का प्रयोग सिर्फ आधार के लिए करते हैं, जल या खाद्य आपूर्ति के लिए नहीं । ये कंठलताओं से भिन्न होते है चूँकि इनकी मूल मृदा में नहीं होती । अधिपादप वृक्षों, झाडियाँ (Shrubs) या बड़े निमग्न पादपों पर उग सकते हैं । ये तने (trunks) या पत्तियों पर उगते हैं । अधिपादप उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में सामान्य होते हैं ।

ये पौधे स्वपोषी तथा छोटे होते हैं । सघन वनों में प्रकाश की अत्यधिक समस्या होती है । अधिपादप प्रकाश व आर्द्रता प्राप्त करने के लिए दूसरे वृक्षों के तनों, शाखाओं या पर्णों पर चिपके रहते हैं । इनमें दो प्रकार की मूलें होती है-- **अनुलग्न मूलें** (Clinging roots) जो अधिपादप को दूसरे वृक्ष के तने या शाखाओं पर चिपकाने का कार्य करती है । **निलम्बी मूलें** (Hanging roots) -जो **आर्द्रताग्राही गुंठिका** (Velamen) या **वेलेमन** नामक मष्त स्पंजी ऊतक के आवरण युक्त होती है जिसकी सहायता से ये मूल वायुमण्डल की नमी, ओस, वर्षा, आदि के जल को अवशोषित करती है । प्रकाश की उपस्थिति मे ये पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते है । अत: अधिपादप जिस वृक्ष चिपके रहते हैं उस वृक्ष को इनसे किसी मी प्रकार की हानि नही होती है ।

कुछ पादप प्राणियों की सतहों पर उगते हैं । उदाहरण के लिए, हरित शैवाल, स्लॉथ के लम्बे, खाँचेदार बालों (grooved hairs) पर उगता है । इसी समान, बेसीक्लेडिया (Basicladia) (क्लेडोफोरेसी) अलवणजलीय कर्कट (Carb) की पीठ पर उगते है।

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जन्तु, मृतपोशित जीवाणु (Saprophytic bacteria) और कवक तथा प्रोटोजोआ उच्चवर्गीय पादपों और प्राणियों के ऊतकों या गुहाओं के अंदर रहते हैं । कुछ सूक्ष्म जीवाणु प्राणियों की निम्न आंत्र में पाए जाते हैं । इश्चेर्शिया कोलाई (Escherchia coli) मानवीय कोलन (Human commensals) में पाए जाते हैं । कुछ अकशेरूकी पादप या अन्य प्राणियों से चिपके हुए बद्ध सहभोजी (fixed commensals) की तरह वृद्धित होते हैं । ओस्ट्रिया फ्रांस (Ostera frons) लाल मैंग्रुव (Red mangroove) की जड़ों पर उगते हैं और कुछ बार्नेकल (barnacle) व्हेल की पीठ पर पाए जाते है । मोलरक, बार्नेकल और नाल कृमि (tube worms) की विभिन्न जातियाँ अश्वनाल कर्कट (horse shoe crab), लिमुलस पॉलीफेमस (Limulus polypheimus) के कवचों से चिपके हुए पाये जाते हैं ।

(ब) **कंठलताएँ (**Lianas) - ये काष्ठीय आरोही पादप है जो अपनी जड़ों द्वारा स्थिर रहते हैं लेकिन अन्य हॉ की सहायता से इनके शीर्ष भागों पर फैले रहते हैं । नम उष्ण कटिबन्धीय वनों (Moist tropical forest) मे ऊँचे हो की सघनता के कारण नीचे के स्तरों की वनस्पति को पर्याप्त प्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता है । इसी कारण कंठलताएँ प्रकाश ग्रहण करने के उद्देश्य से दूसरे पादपों के सहारे ऊँचाई पर पहुँच जाती है जहाँ पत्तियों को फैलाकर उपयुक्त प्रकाश ग्रहण कर भोजन निर्माण करते हैं । यहाँ पर उन पौधों को जिनसे ये कठलताएँ सहारा (Support) प्राप्त करती हैं कोई हानि नहीं होती है । अपने वृक्ष आधार को आरोही के लिए प्रयुक्त युक्ति के अनुसार ये कंठलताएँ (lianas), लीनर्स (leaners), कण्टक कंठलताएँ (thorn linanas), वल्लरियॉ (twiners) या प्रतान कंठलताएँ (tendril lianas) हो सकती हैं । सामान्य कंठलताओं की जातियाँ हैं बोहिनीया (Bauhinia), फाइकस (Ficus) और टिनोस्पोरा (Tinospora) । कंठलताएँ मूलों की सहायता से भूमि से सम्बन्ध बनाये रखती हैं जबकि अधिपादपों का मूलों द्वारा भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है ।

विभिन्न सहभोजी अन्य जन्तुओं के साथ अस्थायी संपर्क रखते है । उदाहरण के रूप में गिलहरी, बन्दर, वृक्षीय मेंढक, सर्प, पक्षी, कीट इत्यादि वृक्षों या अन्य पादपों का प्रयोग आधार, आवास या प्रजनन स्थानों (breeding sites) के लिए करते हैं ।

4.2.1.3 प्राक्सहयोगिता (protocooperation)

इस प्रकार के सम्बन्ध में साथ रहने वाली दोनों समष्टियों (Populations) को लाभ होता है लेकिन दोनों के जीवित रहने के लिए यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है । समुद्री एनीमोन तथा साधु केंकड़े (Hermitcarb) के बीच प्राक्सहयोगिता पाई जाती है । समुद्री एनीमोन, साधु केंकड़े के खोल पर चिपका रहता है । हरमिट क्रेब (साधु केंकड़ा) इसको भोजन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है तथा समुद्री एनीमोन अपनी दंश कोशिकाओं (Nematocyst) से क्रेब को बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करता है । दोनों जीव स्वतन्त्र रूप से भी जीवन यापन करने में सक्षम है अत: साहचर्य दोनों के जीवित रहने के लिए अनिवार्य नहीं है ।

कुछ पारिस्थितिक विज्ञानियों ने इस साहचर्य को सहभोजिता के अंतर्गत रखना पसन्द किया ।

4.2.2 ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएँ (Nagative Interactions)

इसके अंतर्गत वह सम्बन्ध आते हैं जिनमें या दोनों जातियों को अपने जीवन के काल के दौरान कभी भी हानि हो सकती है । कुछ (क्लार्क 1954) ने इस प्रकार के साहचर्य को विरोध (antagonism) कहना पसंद किया । इस प्रकार की ऋणात्मक अन्योन्य क्रियाएँ साधारणतः तीन विस्तृत वर्गों के अन्तर्गत वर्गीकृत की गई हैं जैसे शोषण (exploitation), प्रतिजीविता (antibiosis) और स्पर्धा (competition) जो विस्तार से नीचे दी गई है ।

4.2.2.1 शोषण (Exploitation)

यहाँ एक जाति दूसरे को उसके आधार, आवास या भोजन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपयोग करके हानि पहुँचाती है । इस प्रकार का शोषण आश्रय या खाद्‌य के संदर्भ में हो सकता है । भोजन के संदर्भ में विभिन्न संबंध निम्न के अंतर्गत आ सकते है-

(a) **परजीविता (Parasitism)-**परजीवी वह जीव होता है जो अन्य जीव के शरीर के ऊपर या अंदर रहता है और अधिक या कम स्थायी रूप से अपने ऊतकों से उसका खाद्‌य प्राप्त करता है । वह जीव जो अपना पोषण सिर्फ अधूरे रूप में व्युत्पन्न करते हैं और अपने जीवन चक्र के छोटे कालांश के लिए अपने पोषी के संपर्क में आते रहते हैं किन्तु वास्तविक परजीवी (true parasites) नहीं होते । प्ररूपी परजीवी (typical parasite) बिना उसकी मृत्यु किए, अपने पोषी में रहता है जबकि परभक्षी (predator) अपने शत्रु को मार देते है जिसका वह भोजन करता है । फिर भी ऐसे परजीवी होते हैं जो अपने पोषी को मार देते हैं और ऐसे परभक्षी भी होते हैं जो सिर्फ अपने शत्रु का कुछ भाग खाते है । पादपों और प्राणियों की विस्तृत प्रजाति परजीवी हैं अपने अस्तित्व के तरीके में । कुछ लोग परजीवी संवहनी पादप को परजीवी के अंतर्गत रखते हैं । क्सक्युटा (Cuscutt) (पूर्ण स्तम्भ परजीवी) की जातियाँ अन्य पादपों पर वृद्धित होती है जिस पर वे पोषण के लिए निर्भर होते हैं । तरुण स्तम्भ पोषी स्तम्भ के इर्द-गिर्द हो जाते हैं जिससे अपस्थानिक मूल (adventitious roots) निकलती हैं जो अंततः पोषी के तने में प्रवेश कर जाती हैं तथा उसके चालक तत्वों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं । ये विशिष्ट मूल चूशकांग (haustoria) कहलाती हैं (चित्र 4.।) । ऐसे साहचर्य के अन्य उदाहरण हैं पूर्ण मूल परजीवी जैसे ओराबेन्की (Orabanche), कोनोफोलिस (Conopholis) और एपीफेगस (Epifagus) (ओरोबेंकेसी) जो उच्च वर्गीय पादपों के मूल पर पाए जाते हैं । रेफलेसिया विटिस (Vitis) के मूल पर पाया जाता है । लोरेन्थेसी (Loranthaceae) परिवार के सदस्य विस्कम एल्बम (Viscum album) एवं लोरेन्थस (Loranthus) आंशिक स्तम्भ परजीवी (Partial stem parasites) हैं । ये पोषी वृक्ष की शाखाओं में मूल वृद्धि करते हैं । इनके मूल पोषी पादपों से चिपके रहते है । अधिकतम परजीवी सूक्ष्म जन्तु होते हैं, जिसमें से कवक, जीवाणु, माइकोप्लाज्मा (mycoplasma), रिकेट्सिया (rickettsias) और विषाणु पादपों के साथ ही प्राणियों पर परजीवित होते हैं । प्राणी जो प्राणियों पर परजीवी होते हैं प्रोटोजोआ, विभिन्न अकशेरुकियों और कुछ कशेरुकियों के अंतर्गत आते हैं, जबकि पादपों को परजीवी करने वाले प्राणी होते हैं कुछ पिटिका बर्र (gall wasps) और डांस (gnats), जिनके अण्डे पादपों के तने और पत्तियों पर दिए जाते हैं । परजीविता जातियों के अंदर भी होते हैं । उदाहरण के लिए, गंभीर समुद्र में वडिश मीन (anger fish), फोटोकोरीनस स्पीनीसेप्स (Photocorphynus spiniceps) नर रुधिर आपूर्ति के लिए पोषण प्राप्त करने हेतु मादा के सिर पर या एक तरफ, स्थायी परजीवी की तरह रहते हैं । इस प्रकार का सम्बन्ध उच्चवर्गीय पादपों में सामान्य है जहाँ वृद्धित परागनलिका (pollen tube) को यह कहा गया कि ये नर पादप पुष्प के वर्तिका और वर्तिकाग्र के ऊतकों पर परजीवी हैं । इस सम्बन्ध में **परात्परजीवी** (hyperparasites) भी जोड़े

जा सकते हैं, जो मुख्यतः कवक होते हैं जो अन्य परजीवियों पर परजीविता रूप से वृद्धित होते हैं । उदाहरण के लिए पिक्नीडियल (pycnidial) कवक सिसिनोबोलस सीसाटी (Cicinnobolus cesatti) कई चूर्णिल आसिता कवकों पर परात्परजीवी होते हैं ।

वे जीव जो अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते वरन् इसके लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं । परजीवी (parasite) जिस जीव से भोजन लेता है वह परपोषी (Host) कहलाता है । परजीवी आश्रयदाता या परपोषी से चूशकांगों (Haustoria) की सहायता से भोजन प्राप्त करते हैं । परजीवी अन्त: परजीवी (Endoparasite) या बाह्य परजीवी (Ectoparasite) हो सकते हैं । कवक तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछ पुष्पीय पौधे भी परजीवी होते हैं । ये पौधे दूसरे पौधों की मूलों पर मूल परजीवी (Root parasite) या स्तम्भ पर स्तम्भ परजीवी (Stem parasite) होते हैं । ये आंशिक (Partial) या पूर्ण (Total) परजीवी हो सकते हैं । परजीवी पुष्पीय पौधों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

(i) पूर्ण स्तम्भ परजीवी (Total stem parasite)-जैसे अमरबेल (Cuscuta) (चित्र 4.1) जो बेर (Ziziphus), आक (Calotropis) आदि के स्तम्भ पर पाया जाता है । यह परजीवी मूल एवं पत्तियों रहित होता है । अत: पूर्ण रूप से परपोषी पर जीवित रहता है । कसाईथा (Cassytha) नीम पर पूर्ण स्तम्भ परजीवी है ।

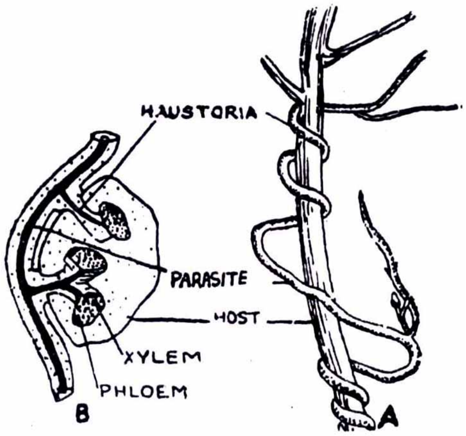

चित्र 4.1 : पूर्ण स्तम्भ परजीवी-अमरबेल : परपोषी पर (A), एवं अनुदैर्ध्य काट में चूषकांक परपोषी के अन्दर (B) (शुक्ला एवं चन्देल, 1994)

(ii) **आंशिक स्तम्भ परजीवी** (Partial stem parasite)- जैसे लोरेन्थस लोंगीफ्लोरस (Loranthus longiflorus), जो बोसविलीया (Boswellia) के स्तम्भ पर, डंड्रोफ्थी (Dendrophthae) आम के स्तम्भ पर तथा विस्कम (Viscum) सेब, पाइनस आदि के स्तम्भ पर । ये परजीवी आंशिक रूप से परपोषी पर निर्भर रहते हैं ।

(iii) **पूर्ण मूल परजीवी** (Total root parasite) - जैसे स्ट्राइगा (String) घासों व लेपिडीगैथिस (Lepedogathes) की मूल पर, रैफलेशिया (Raffles), फिग(Fig) व सीसस

(Cissus) की मूल पर, आरोबैंकी (Orobanche) सोलेनेसी व ब्रेसिकेसी कुल के पौधों की मूलों पर, बैलेनोफोरा (Balnophora) अनेक उष्ण कटिबन्धीय वनों के वृक्षों की मूलों पर ।

(iv) **आंशिक मूल परजीवी** (partial root parasite)-जैसे चन्दन (Santalum album), शीशम, सीरस की मूलों पर

(b) **परभक्षिता** (predation)-परभक्षिता में परभक्षी (दूसरे जीवों को खाने वाला) अन्य जाति के प्राणियों को पकड़कर, मारकर भोजन के रूप में काम लेता है । जो परभक्षी जन्तुओं को खाते हैं उन्हें मांसाहारी (Carnivores) तथा जो पौधों को खाते हैं उन्हें शाकाहारी (Herbivores) परभक्षी कहते हैं । अधिकाश परभक्षी जन्तु ही होते हैं । स्वयं मनुष्य एक परभक्षी है । कतिपय पादप भी परभक्षी होते हैं ।

परभक्षण के कुछ सामान्य उदाहरण निम्नलिखित हैं-

1. **चारण और चराई** (Browsing and grazing)- शाकभक्षी पादपों को मारते हैं और अशस्यीत (Unharvested) शाक, क्षुप या वृक्ष भी उनके खाद्य की तरह प्रयोग में लिए जाते हैं और कभी-कभी प्राकृतिक और कृत्रिम वनस्पतियाँ की व्यवस्था की समस्याएँ खड़ी करते हैं । भिन्न पादप चारण और चराई के परिणामस्वरूप विभिन्न स्तर की हानि पाते हैं । पशु, ऊँट, बकरी इत्यादि क्षुप के कोमल प्ररोह को चरते रहते हैं और भेड़ घासों को चरती हैं । चराई और चारण वनस्पति में परिवर्तन लाते हैं ।

2. **बीज और बीजाणु विनाश** (Seeds and seedling destruction)- प्राणी जैसे कीट, गिलहरी, चूहे, रोडेन्ट इत्यादि बीजों की अधिक मात्रा में खाद्य की तरह खपत करते हैं । इसके अलावा, ये झाड़ियों और वृक्षों के बीजाणु को चरते हैं, और उन्हें पैरों से कुचल कर क्षतिग्रस्त करते हैं ।

3. **पादप खाद्य की तरह** (Plants as food)- जलीय पादप प्राणियों जैसे बतख, मछली, कस्तूरी, (muskrat) इत्यादि द्वारा खाए जाते हैं और ये इन जलाशयों की व्यवस्था के लिए समस्या उत्पन्न करते हैं । जलीय निस्यंदक भोजी डायटम, कशाभियों और अन्य शैवाल का विनाश करते हैं ।

4. **मांसाहारी पादप** (Carnivorous plants)- कई पादप जैसे नीफेन्थेस (Nepenthes), डार्लिंग्टोनिया (Darlingtonia), सेरासीनिया (Sarracenia), ड्रोसेरा (Drosera), यूट्रीकुलेरिया (Utricularia), डाईओनिया (Dionea) कीड़े और अन्य छोटे प्राणियों का अपने खाद्य के लिए उपभोग करते हैं । ये कीटाहारी पादप (insectivorous plants) भी कहे जाते है । अपने शिकार को आकर्षित, जकड़ने और पाचित करने के लिए ये अपूर्व तरीकों में अनुकूलित होते हैं । कीटों के पाचन के लिए उनकी पत्तियाँ या पर्णित उपांग प्रोटीनलयी एन्जाइम उत्पन्न करते हैं । पादपों में मांसाहारी व्यवहार उनके पोषण, का एक अलग लक्षण कहा जाता है क्योंकि उनमें से कोई भी नाइट्रोजनी यौगिकों के लिए भक्षी पर निर्भर नहीं होता ।

4.2.2.2 प्रतिजीविता (Antibiosis)

दो जीवों या जीव समूहों के इस प्रकार के परस्पर सम्बन्ध जिससे दोनों को ही लाभ नहीं होता है । इसमें एक जीव द्वारा कुछ रासायनिक पदार्थों के स्रवण (Secretion) के कारण दूसरे जीव की वृद्धि पूर्ण या आंशिक रूप से अवरुद्ध हो जाती है या उसकी मृत्यु हो जाती है । रसायनों का उत्पादन जो सूक्ष्मजीवाणु के विरोधी होते हैं- प्रतिजैविक (antibiotic) जाने जाते हैं । कवक, जीवाणु तथा एक्टिनोमाइसीट्स इस प्रकार के पदार्थो का स्रवण (Secretion) करते हैं । अनेक नील हरित शैवाल अतिवृद्धि कर जल की सतह पर छा जाते हैं तथा हाइड्रोक्सिल अमीन जैसे जहरीले पदार्थो का स्रवण करती हैं जिससे मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है । जीवाणु, एक्टीनोमाइसिटीस और कवक कई प्रतिसूक्ष्मजीवी तत्वों को उत्पन्न करते है जो प्रकृति में विस्तृत रूप से प्रकीर्णन हैं । बर्क होल्डर (1952) ने यह रिपोर्ट दी कि एक्टीनोमाइसिटीस की लगभग 50 प्रतिशत जातियाँ, और 50 प्रतिशत लाइकेन साथ ही बड़ी संख्या में उच्चवर्गीय पादप वह तत्व उत्पन्न करते हैं जो मोल्ड और जीवाणु को निरोध करे हैं । विरोधी तत्व कुछ शैवाल में भी बताए गए हैं, जैसे उदाहरण के लिए क्लोरेला वल्गेरीस (Chlorell vulgaria) के संवर्धन में कुछ तत्व संचित होते हैं जो डायटम निटजचिया फ्रसाटुलम (Nitzschia frustulum) की वृद्धि का निरोध करता है । क्लोरेला (Chlorella) और डयटम, नेविकुला (Navicula) और सेनडेसमस (Scendumus) के जीर्यमान संवर्धन द्वारा उत्पादित तत्व प्रयोगशाला में डेफनिया (Daphnia) के निस्यंदी अशन का निरोध करते हैं । नीले हरित शैवाल के पुष्पपुंज ताल मुख्यतः माक्रोसिसटिस (Microcystis) आंविष उत्पन्न करने के लिए जाने जाते हैं जैसे- 'हाइड्रोक्सिलअमीन (Hydroxylamine) जो मछली और पशु की मृत्यु करता है । समुद्री जल में कुछ सूक्ष्म जीवियों की जनसंख्या, जिसे लाल ज्वार भाटा (red tide) कहा जाता है मछली और अन्य प्राणियों का भयंकर विनाश करती है । इस विषय पर दिनोदिन अधिक जानकारी प्राप्त हो रही है । शब्द प्राणिजीविता के अन्तर्गत इस प्रकार के परिघटक भी आने चाहिएं जैसे अतिसंवेदी अभिक्रियाएँ (hypersensitive reactions) जो सूक्ष्म जन्तुओं के बीच अन्योन्यक्रिया करते हैं, विशेषकर रोगजनक और एक या दोनों के लिए हानिकारक होते हैं ।

4.2.2.3 प्रतिस्पर्धा (Competition)

विभिन्न जातियों के प्राणी एक ही आवास स्थान जैसे कि तालाब, जंगल या दलदल इत्यादि में साथ-साथ रहते पाये जाते हैं । इन प्राणियों की संख्या की अधिकता से भोजन, पानी, आवास, इत्यादि हेतु परस्पर प्रतिस्पर्धा चलती रहती है । परन्तु क्या कोई दो जातियाँ अपने आवास स्थान के एक पारिस्थितिक निशे (Ecological nich) में एक ही समय में रह सकती हैं? इस विषय पर डार्विन के विचार थे कि यह नितान्त असंभव है क्योंकि इन दोनों जातियों में से कोई एक निश्चित ही दूसरी से कुछ अधिक अनुकूलित होने के कारण बहुत लम्बे समय तक प्रतिस्पर्धा के द्वारा दूसरी जाति का निवारण करने में सफल हो ही जाती है ।

पिछले दशक में कुछ वैज्ञानिकों विशेषकर इटली के व्ही वोल्टेरा तथा रूस के जी. एफ. गॉस ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए प्रतिस्पर्धा द्वारा निष्कासन के सिद्धान्त (Principle of Competitive exclusion) को प्रतिपादित किया ।

पौधों में स्पर्धा पर्यावरणीय कारकों (खनिज, प्रकाश, जल, लवण, CO_2, O_2 आदि) की अपर्याप्त उपलब्ध के कारण उत्पन्न होती है । एक ही जाति के पौधों के बीच होने वाली स्पर्धा को **स्वजातीय** या **अन्तराजातीय स्पर्धा** (Intraspecific competition) तथा दो भिन्न जातियों के पादपों के बीच होने वाली स्पर्धा को **अन्तरजातीय स्पर्धा** (Interspecific) कहते हैं । कुछ पौधे विशेष प्रकार के रसायनों का स्रवण करते हैं जो दूसरे पौधों के लिए हानिकारक होते हैं, इसे **एलीलोपेथी** (Allelopathy) कहते हैं । ऐरिस्टिडा ओलिकेन्था (घास) फीनोल जैसे पदार्थों का स्राव करती है जिससे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं एवं शैवालों की वृद्धि रुक जाती है । इसी प्रकार लेन्टाना कमाल (Lantana camera) तथा पार्थिनियम हिस्टेरोफोरस (Parthenium hysterophorus) भी कुछ विशेष रसायनों का स्रवण करता है, जिनके कारण इन पौधों के आस-पास अन्य शाकीय पौधों की वृद्धि रुक जाती है या उनकी मृत्यु हो जाती है ।

एक ही पर्यावरण में निवास करने वाली दो विभिन्न जातियों की क्रिया प्रतिक्रिया के कुछ सामान्य परिणाम यहाँ दिये जा रहे हैं ।

(क) अगर दोनों ही जातियों की आवश्यकतायें समान हैं तो क्रिया-प्रतिक्रिया के अन्त में कोई एक जाति दूसरी जाति का निष्कासन करने में सफल हो जाती है ।

(ख) अगर दोनों जातियों की आवश्यकतायें कुछ भिन्न हुई तो वे उस स्थान विशेष में साथ-साथ जीवन यापन करती रह सकती हैं ।

(ग) अगर दोनों जातियाँ परपोषी, परजीवी अथवा भक्ष्य-भक्षक सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे पर निर्भर हैं तो आक्रामक प्रकृति की जाति दूसरी जाति का समूल नाश कर देती है तथा अन्य प्रकार के भोजन की ओर उन्मुख हो जाती है।

(घ) उपरोक्त प्रक्रिया में यदि आक्रामक जाति अन्य जातियों का समूल नाष नहीं कर पाती है तो आगे चलकर दोनो जातियाँ उस क्षेत्र विशेष में अपेक्षाकृत स्थिर अथवा परिवर्तनशील साम्यावस्था में रहने लगती है ।

इस प्रकार प्राकृतिक समुदायों में प्रतिस्पर्धा से विभिन्न प्राणियों का जीवन अनेक प्रकार से प्रभावित होता है ।

4.2.3 प्राणियों का वनस्पति पर प्रभाव (Effect of animal on vegetations)

पौधे तथा प्राणी दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं पर प्राणी अपनी गतिशीलता तथा अनुकूलन के कारण पौधों के अपेक्षाकृत जीवन को अधिक प्रभावित करते हैं । प्राणियों का पौधों पर प्रभाव लाभदायक भी हो सकता है और हानिकारक भी ।

1. **लाभदायक प्रभाव** (Useful effects)

प्राणी परागण, फल एवं बीजों के प्रकीर्णन, मृदा की उर्वरकता में वृद्धि इत्यादि में सहायक होकर पौधे के जीवन को प्रभावित करते हैं ।

(i) विभिन्न कीट जैसे मधुमक्खियॉ तितलियॉ तथा भंवरे, इत्यादि भोजन की खोज में एक फूल से दूसरे फूल पर उड़कर बैठते हैं उनके शरीर पर परागकण चिपक कर दूसरे पौधों के फूलों तक पहुँच जाते हैं । इस प्रकार परागण तथा इसके फलस्वरूप निषेचन की क्रिया प्राणियों द्वारा सम्पन्न होती है । कुछ पक्षी भी इसी प्रकार परागण में सहायक होते हैं । कीटों द्वारा होने वाला परागण कीट परागण (entomophily) तथा जन्तुओं द्वारा होने वाला परागण जन्तु परागण (zoophily) कहलाता है ।

(ii) अनेक पौधों के बीजों तथा फलों में संलग्नन हेतु कुछ विशेष रचनायें उपस्थित रहती हैं जिनकी सहायता से प्राणियों के शरीर से चिपक कर दूर-दूर तक प्रकीर्णित हो जाते है । कुछ प्राणी फलों को खाकर उनके बीज निगल जाते हैं । ये बीज अत्यधिक कठोर होने के कारण पाचक रस द्वारा नष्ट नहीं होते हैं वरन् मल के साथ बाहर निकल आते हैं तथा नये स्थान पर अंकुरित होने में सफल हो जाते हैं । इस प्रकार का प्रकीर्णन मुख्यतः पक्षियों, भेड़-बकरी, गाय तथा भैंस इत्यादि द्वारा होता है ।

(iii) प्राणियों के शरीर नष्ट होकर जब मृदा में मिलते हैं तो मृदा की उर्वरता बढ़ जाती है जिसका पौधों की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है ।

2. **हानिकारक प्रभाव**

(i) **प्राणियों द्वारा चारण**-वनों तथा घास स्थलों में पालतू एवं जंगली पशुओं की चारण प्रक्रिया जैसा कि पहले बतलाया गया है, एक महत्वपूर्ण जैवीय कारक की भूमिका निभाती है । गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी जैसे पालतू पशु तथा हाथी, नीलगाय, जंगली भैंसा, हिरण, सूअर, इत्यादि जंगली पशु पर्याप्त मात्रा में घास तथा दूसरे पौधों को चर कर नष्ट कर देते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ पौधे इन प्राणियों के पैरों तले रौंद कर नष्ट हो जाते हैं । चारण से जहाँ प्रत्यक्ष रूप में वनस्पति नष्ट होती है वहीं परोक्ष रूप में, चारित क्षेत्र की मृदा कठोर होती जाती है जिससे उसमें बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है । इसके अतिरिक्त अत्यधिक चारण वाले क्षेत्रों की मृदा में मृदा जल, जैव पदार्थ, सूक्ष्म जीव, इत्यादि की मात्रा में कमी आ जाती है । ऐसे क्षेत्रों में केवल चारण प्रतिरोधी जातियाँ ही जीवित रह पाती हैं । वनस्पति के अभाव में मृदा क्षरण अधिक होने लगता है तथा कुछ समय में पूरा क्षेत्र बंजर भूमि का रूप ले लेता है । इस प्रकार चारण, क्षेत्र विशेष की पादप आकृति, रचना तथा जीव प्रकारों को प्रभावित करता है ।

(ii) **नाशक जीव** (Pests)-अनेक कीट (जैसे टिड्डे, दीमक, इत्यादि) कुछ पक्षी कृन्तक पक्षी जैसे खरगोश, गिलहरी, चूहे, इत्यादि जीव फसली पौधों के विभिन्न भागों को खाकर क्षति पहुँचाते हैं तथा उत्पादन को घटाते हैं । इसमें से कुछ जीव पत्तियों तथा जड़ों को खाते व नष्ट करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है । कुछ जीव फलों तथा बीजों का भक्षण करते हैं जिससे उनके गुणन (Muliplication) की दर घटती है ।

कुछ परोपजीवी कीट तथा पौधे जैसे- नागफनी (Opuntia), अपतृण (weeds) इत्यादि अनुपयोगी पौधों का नाश करते हैं तथा इस प्रकार जेव नियन्त्रण (Biological control) में सहायक होते हैं ।

मानव की भूमिका

जैविक कारकों में सर्वाधिक प्रभावी कारक मनुष्य को कहा जा सकता है । सभ्यता के आरम्भ ही से मानव पौधों के जीवन को प्रभावित करता आ रहा है । विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ मनुष्य के मुख्य खाद्यों में सम्मिलित होती हैं जिन्हें वह अपने उपयोग की दृष्टि से प्रयत्नपूर्वक उपजाता है । इसके विपरीत निर्माण कार्यों हेतु उपयोगी वृक्षों की कटाई कर वनों को नष्ट भी करता रहा है । मनुष्य द्वारा स्वयं के लिए उपयोगी पौधों की अधिक वृद्धि तथा अनुपयोगी पौधों के अत्यधिक नाश के प्रयत्नों के कारण प्राकृतिक सन्तुलन नष्ट हुआ है ।

वर्तमान में मानव निजी हितों के लिए वनों को साफ कर कृषि तथा चारागाह क्षेत्र बनता जा रहा है । शहरों के असीमित विस्तार, बडे-बड़े भवनों का निर्माण, कारखानों, बांधों, सड़कों एवं रेलमार्गों के निर्माण आदि के लिए वनस्पति का सफाया किया जा रहा है, फलस्वरूप अनेक समस्याओं जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय तापमान का बढ़ना, प्राकृतिक संसाधनों में कमी आदि के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है । परन्तु हाल के कुछ वर्षो से पारिस्थितिक तंत्र के सन्तुलन में मनुष्य ने स्वयं की भूमिका को अनुभव करते हुए कुछ समझदारी पूर्ण कदम उठाने आरम्भ किये हैं । वन संरक्षण (Forest conservation), वन महोत्सव (Forest festival), सामाजिक वानिकी (Social forestry) तथा मृदा संरक्षण (Soil conservation) इसके उदाहरण हैं । इस प्रकार पौधों के जीवन में मनुष्य एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

भौतिक कारकों के अतिरिक्त प्रत्येक जीव को अन्य जीव भी विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं । जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों में जीवों की भोजन के लिए अन्योन्याश्रयता, ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी महत्वपूर्ण गैसों के लिए परनिर्भरता तथा पौधों की परागण तथा विकिरण के लिए जीवों पर निर्भरता, सर्वविदित है । यदि हम केवल पौधों को ही अध्ययन का आधार मानें, तो भी विभिन्न वनस्पतियां हरे पौधों के साथ अन्योन्यक्रियारत होती है । जैविक कारकों का क्रियाक्षेत्र इतना विस्तृत है कि एक ही समष्टि और जाति के पौधे (या अन्य जीव भी) आपस में एक दूसरे के जीवन को प्रभावित करते हैं । इसीलिए इसे केवल जैविक कारकों की संज्ञा न देकर, समष्टियों की अन्योन्यक्रियाओं के रूप में समझना उचित होगा ।

4.2.4 बोध प्रश्न

नोट : (i) प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें ।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से मिलाए ।

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :

I रिक्त स्थान भरों :

1. अधिपादप .... का उदाहरण है ।
2. जैविक कारक .... होते है ।
3. लाइकेन .... का उदाहरण है ।
4. वेलामेन (Velamen) .... ऊतक है ।

प्रश्न 2. बहु विकल्पी प्रश्न

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें :

1. सहजीवन शब्द को प्रस्तुत किया था :

(अ) डाबर मायर ने (ब) ऊस्टिंग ने

(स) ओडम ने (द) डी बेरी ने

2. जीवों की धनात्मक एवं ऋणात्मक क्रियाओं की अवधारणा दी थी.

(अ) ओडम ने (ब) शिम्पर ने

(स) मिश्रा ने (द) ब्लेक मेन ने

प्रश्न 3. निम्न में से कौन सा कथन सत्य /असत्य है :

1. प्राणियों द्वारा परागण सहोपकारिता का उदाहरण है ।
2. जीवों की पारस्परिक क्रियाओं की व्याख्या बर्कहोल्डर द्वारा की गई थी ।
3. अमर बेल आंशिक स्तम्भ परजीवी है ।
4. ऑर्किड्स में आर्द्रताग्राही जड़े होती है ।

प्रश्न 4. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दो ;

1. परजीवी किसे कहते है?

....

....

2. सहोपकारिता क्या है?

....

....

3. जैविक कारको की परिताषा दीजिए-

....

....

3.3. सारांश (Summary)

पृथ्वी पर सभी प्रकार के जीवधारी साथ-साथ रहते है, कोई भी जीव स्वतंत्र रूप ले अस्तित्व प्रदर्शित नहीं करता है । जीवों का एक साथ रहने से वे निरन्तर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है व सयुक्त रूप से पर्यावरण को भी प्रभावित करते है तथा बदले में पर्यावरण अर्थात् आसपास के वातावरण ले प्रभावित होता है । इस प्रकार सजीवों के एक दूसरे पर एवं सयुंक्त रूप से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को जैविक कारक कहा जाता है । इन प्रभावों के कारण जीवों के बीच लगातार पारस्परिक क्रियाऐं होती रहती है जो पौधों से पौधों के बीच या पौधों व जन्तुओं के बीच पाई जाती है । सजीवों के बीच ये आपसी सम्बन्ध एक दूसरे के लिए लाभदायक, हानिकारक या एक के लिए लाभदायक एवं दूसरे के लिए हानिकारक हो सकते है । सजीव आवास के समष्टियों पर पड़ने वाले प्रभावों को क्रिया, समष्टियों का आवास

पर प्रभाव प्रतिक्रिया एवं समष्टियों के बीच होने वाली पारस्परिक क्रिया को अन्तरक्रिया या अन्योन्यक्रिया कहते है ।

3.4 शब्दावली (Glossary)

1. **जैविक कारक (Biotic factors) :** जीवों में होने वाली समस्त अन्योन्यक्रियाएँ ।
2. **सह जीवन (Symbiosis)** : जीवों के बीच का सम्बन्ध जिसमें एक या दोनो को लाभ होता है।
3. **तटस्थता (Neutralism)** : दोनो समष्टियों द्वारा एक दूसरे को प्रभावित नहीं करना।
4. **कवकमूल साहचर्य (Mycorrhizal assciations)** : पादपों की मूलों व कवक का साहचर्य।
5. **आर्द्रता ग्राही गुंठिका (Velaman)** : अधि पादपों की जड़ों में पाये जाने वाला ऊतक जो वायुमण्डल की नमी को अवशोषित करता है ।
6. **कीटभक्षी पादप (Insectivorous plants)** : वे पौधे जो कीटों को पकड़कर भोजन के रूप में उपयोग करते है ।
7. **भौक (Lichens)** : कवक एवं शैवाल का परस्पर साहचर्य ।

3.5 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल के मूल तत्व- डॉ. बृज गोपाल (1975), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।
2. पर्यावरण तथा प्रदूषण - अरूण रघुवंशी, चन्द्रलेखा रघुवंशी (1995), मध्य प्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी.डी शर्मा (2004), रस्तौगी पब्लिकेशन्स मेरठ ।
4. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल - एम.एल.वर्मा, जे.पी.गुप्ता, बी.एल.यादव (2001) अलका पब्लिषर्स, अजमेर ।
5. Concepts of Indian Ecology - D.N. Sen (1978), S. Nagin & Co., Jalandhur.
6. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता निरंजन शर्मा, पी.सी.त्रिवेदी, आर.एस.धनकड़ (2005) रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
7. Ecology- N.S. Subrahmanyam, A.V.S.S. Sambamurty (2000), Narosa Publishing House, New Delhi
8. A Text Book of Plant Ecology- R.S. Ambasht, N.K Ambasht (1999), C.B.S Publishers & Distributors, New Delhi.
9. Ecology, Environment & Resource Conservation - J.S. Singh, S.P. Singh, S.R. Gupta (2008), Anamaya Publishers, New Delhi.
10. A Text Book of Plant Ecology- V. Verma (1996), Emkay Publication, Delhi.

11. Plant Ecology and Soil Science - R.S. Shukla, P.S. Chandel (1984), S. Chand & Co. Ltd., New Delhi.

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. I

1. सहभोजिता
2. सजीवों के प्रभाव से
3. सहोपकारिता
4. आर्द्रताग्राही

प्रश्न 2. II

(1) स (2) अ

प्रश्न 3

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

प्रश्न 4. 1. वे जीव जो अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते वरन् इसके लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं ।

2. जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों के परस्पर साहचर्य (Association) में रहने से दोनों को लाभ पहुंचता हो । पुन: दोनों जीवों को जीवित रहने के लिए दोनों का साथ रहना अर्थात् साहचर्य भी आवश्यक हो तो इस सम्बन्ध को **सहोपकारिता** (Mutualism) कहते हैं ।

3. प्रकृति में कोई भी जीव पूर्णत: स्वतंत्र नहीं है । सभी एक दूसरे को किसी न किसी रूप से प्रभावित करते रहते हैं गया स्वयं भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित होते रहते हैं । इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटक पेड़-पौधे, जन्तु तथा मानव परस्पर कारकों की तरह व्यवहार करते हैं तथा इन्हें जैविक कारक कहा जाता है ।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्राक्सहयोगिता का वर्णन कीजिए ।
2. ऋणात्मक जैविक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए ।
3. अन्तर स्पष्ट कीजिए :

i. परजीविता व परभक्षिता
ii. अधिपादप एवं कंठलताऐं
iii. अन्तराजातीय एवं अन्तरजातीय अन्योन्यक्रियाएँ

4. निम्न पर टिप्पणियां लिखिये

i. स्पर्धा
ii. धनात्मक अन्योन्यक्रियाएं
iii. सहोपकारिता ।

इकाई 5

पादप समुदाय
PLANT COMMUNITY

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 समष्टि

- 5.2.1 समष्टि के लक्षण
- 5.2.2 समष्टि गतिकी
- 5.2.3 समष्टि घनत्व का नियमन
- 5.2.4 पारिस्थितिकी आयाम
  - 5.2.4.1 पारिज
  - 5.2.4.2 पारिस्थितिकी प्रारूप
  - 5.2.4.3 पारिजाति

5.3 पादप समुदाय के लक्षण

- 5.3.1 जातीय विभिन्नता
- 5.3.2 प्रभाविता
- 5.3.3 वितरण संरचना
- 5.3.4 पोषण संरचना
- 5.3.5 समुदाय गतिकी
- 5.3.6 पादप समुदाय के अध्ययन के आधार
  - 5.3.6.1 विश्लेषणात्मक लक्षण
  - 5.3.6.2 संश्लेषणात्मक लक्षण
- 5.3.7 पादप समुदायों का वर्गीकरण
- 5.3.8 बोध प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य (Objectives)

समष्टि (Populations) के अन्तर्गत एक ही प्रजाति के समूह का अध्ययन किया जाता है । एक से अधिक प्रजातियों के समूह को पादप समुदाय (Plant community) कहते हैं । प्रकृति में अनेक प्रजातियों के पौधे व प्राणी एक साथ पाये जाते हैं तथा एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं । अत: यहां अनेक प्रजातियों के समूह या समुदाय को अध्ययन की एक इकाई माना गया है, क्योंकि प्रकृति में किसी भी प्रजाति के जीव अकेले न रहकर इनके बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप एक साथ मिलते हैं । इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है

1. समष्टि
2. पारिस्थितिकी प्रारूप
3. पारिज
4. पादप समुदाय के लक्षण
5. जीव प्रारूप
6. जैविक वर्णक्रम
7. आवषति
8. घनत्व
9. आवरण

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारिस्थितिकी की परम्परागत शाखा स्वपारिस्थितिकी का अध्ययन क्षेत्र किसी एक ही जाति के जीवों के पर्यावरणीय सम्बन्धों तक सीमित होता है । चूंकि किसी भी जीव समुदाय की इकाई जाति होती है और विकास भी जाति के स्तर पर ही होता है, इसलिए स्वपारिस्थितिकी अध्ययनों का विशेष महत्व होता है । किसी एक ही आवास में एक ही जाति के जीव समूह को समष्टि कहते हैं । इस प्रकार स्वपारिस्थितिकी को समष्टि पारिस्थितिकी भी कह सकते हैं । प्रकृति में किसी भी जाति के जीव अकेले नहीं मिलते वरन् समष्टियों के रूप में ही पाए जाते हैं । जीव के समान ही समष्टि का भी एक जीवन चक्र होता है परन्तु समष्टि के कुछ विशेष गुण होते है जो किसी एक जीव में नहीं पाए जाते हैं । समष्टि के जीव आपस में प्रक्रियारत रहते हैं और इन प्रक्रियाओं और अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप समष्टि के गुण, उनके जीवों के गुणों के योग द्‌वारा व्यक्त नहीं किए जा सकते ।

समष्टि पारिस्थितिकी (Population ecology) के अध्ययन के अन्तर्गत हमें एक ही प्रजाति के सजीवों का अध्ययन इस परिप्रेक्ष्य में करना होता है, कि ये एक ही प्रजाति के सदस्य एक समूह के रूप में किस प्रकार से व्यवहार करते हैं, इनका एक दूसरे के प्रति क्या रवैया होता है, एक दूसरे पर ये कितना निर्भर करते हैं तथा पर्यावरण से ये किस प्रकार प्रभावित होते हैं या पर्यावरण के प्रति इनकी पारस्परिक क्रिया कैसी होती है । दूसरे शब्दों में, समष्टि के सदस्यों पर विभिन्न पर्यावरण कारकों का क्या प्रभाव होता है, इसका अध्ययन भी समष्टि पारिस्थितिकी

के अन्तर्गत किया जाता है । समष्टि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत ऐसी समष्टियों का अध्ययन करते हैं जो न केवल एक ही सजीव प्रजाति की होती हैं, अपितु ये अन्य प्रजातियों की समष्टियों (population) से विच्छिन्न या पृथक (isolated) रूप में पाई जाती हैं । समष्टि पारिस्थितिकी का सर्वप्रथम अध्ययन बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ प्राणी पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, लेकिन पादप समष्टियों के बारे में पारिस्थितिक अध्ययन तुलनात्मक रूप से बहुत बाद में प्रारम्भ किया गया था । आज के युग में पादप समष्टियों के बारे में गहन अध्ययन किया जा रहा है तथा आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार समष्टि पारिस्थितिकी का अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के निदान में सहायक हो सकता है ।

विभिन्न पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने समष्टि की परिभाषा अलग-अलग रूप में दी है, लेकिन इन सभी परिभाषाओं का मूल अर्थ एक समान है । रूट (Root, 1967) के अनुसार 'किसी सजीव प्रजाति की कार्यशील इकाई के सदस्यों का वह समूह जो पर्यावरण से सीधे ही पारस्परिक क्रिया करते हुए स्थान विशेष के प्राकृतिक स्रोतों का समान रूप से दोहन करते हैं, समष्टि कहलाता है ।"क्लार्क (Clark, 1968) के अनुसार, 'वे सजीव समूह जो किसी निश्चित स्थान पर निश्चित समूह में पाये जाते हैं, समष्टि कहलाते हैं ।"

कुछ पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों के अनुसार समष्टियाँ दो प्रकार की पाई जाती हैं-

(1) **एक प्रजातीय समष्टि** (Monospecific population)-किसी स्थान विशेष पर यदि किसी एक ही प्रजाति के सदस्य पाये जावें, तो इसे एक प्रजातीय समष्टि (Monospecific population) कहते हैं । प्रकृति में इस प्रकार की समष्टि यदा-कदा ही दुर्लभ रूप में पाई जाती है ।

(2) **मिश्रित या बहुप्रजातीय समष्टि** (Mixed or Polyspecific population)-यदि किसी स्थान विशेष में एक से अधिक प्रजातियों के सदस्य समष्टि रूप में पाये जावें तो इसे मिश्रित या बहुप्रजातीय समष्टि (Mixed or Polyspecific population) कहते है। एक प्रारूपिक पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) में प्राकृतिक रूप से इसी प्रकार की समष्टियॉ पाई जाती हैं। पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों के अनुसार बहुप्रजातीय समष्टि को समुदाय (community) भी कहा जाता है ।

5.2 समश्टि (Population)

5.2.1 समश्टि के लक्षण (Population characteristics)

समष्टि को ऐसे गुणों के आधार पर, जैसे-वितरण (dispersion), घनत्व का उतार-चढाव (fluctuations in density), लैंगिक अनुपात (sex ratio), जन्मदर (birth rate) और मृत्यु दर (death rate) द्वारा स्पष्ट किया जाता है । एक जाति के पौधे समष्टि सामान्यत: प्रजनन और जीवों के सक्रिय परिवहन (active transport) के कारण या उनके निश्क्रिय परिवहन (passive transport), जो वायु और जल इत्यादि के द्वारा होता है के फलस्वरूप उत्पन्न

होती है । समश्टि वृद्धि के ये तीनों तथ्य पर्यावरण के कारको द्वारा तथा उसी प्रकार जाति के जीवों के गुणों द्वारा प्रभावित होते हैं । अनुकूल स्थिति के अन्तर्गत एक जाति के जीवों का समूह संख्या में बढ़ता है यद्यपि वातावरण कभी एक जैसा नहीं रहता बल्कि लगातार समय-समय पर बदलता रहता है अर्थात् गतिक (dynamic) होता है । इस प्रकार पर्यावरण समष्टि पर एक प्राकृतिक जाँच के रूप में कार्य करता है । एक जाति के जीवों की समश्टि में वृद्धि उस जाति के स्वत: प्रभावों से तथा उस क्षेत्र में रहने वाली दूसरी जातियों से प्रभावित होती है । इस प्रकार की वृद्धि जातियों पर हानिकारक व लाभदायक प्रभाव डालती है । इसमें से पहले वाला प्रभाव मुख्य रूप से संघर्ष के कारण होता है, जो विशेष रूप से भोजन तथा स्थान के लिये अन्तरजातीय संघर्ष लाभ वाले प्रभाव के अन्तर्गत सुरक्षा, प्रजनन पर प्रभाव और श्रम के विभाजन (dispersion of labour) आते हैं ।

समष्टि पारिस्थितिकी विषय का अध्ययन इस प्रकार से किया जा सकता है-

1. **एक समष्टि का विवरण : समष्टि के गुण** (Describing a population : Population characteristics)-वे अनेक गुण जो एक समूह (समष्टि) पर, किसी भी व्यष्टि पर नहीं, पूरी तरह से समान हों कुछ गणितीय तरीकों के साथ विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है ।

2. **समश्टि गतिक** (Population dynamics)-इसके अन्तर्गत समष्टि वृद्धि को स्पष्ट करने के लिए अनेक सिद्धान्त हैं, तथा

3. **समष्टि का निर्देशन** (Regulation of Population)-वे कारक जो समष्टि घनत्व (Population density) को निर्देशित करते हैं ।

किसी सजीव समष्टि की अपनी एक विशेष पहचान होती है एवं पृथक संगठन व संरचना होती है । ऐली (Ally 1949) के अनुसार एक प्रारूपिक समष्टि का आधारभूत लक्षण (basic character) इसका आकार या घनत्व (Density) होता है । अनेक कारक समष्टि घनत्व को प्रभावित करते हैं । इनमें प्रमुख कारक निम्न प्रकार से हैं-

1. समष्टि का आकार और घनत्व (Population size and density)
2. समष्टि प्रसार या फैलाव (Population dispersion)
3. आयु संरचना (Age structrure)
4. जन्म दर (Natality)
5. मृत्यु दर (Mortality)
6. जैविक क्षमता या विभव (Biotic potential) ।
7. समष्टि दोलन (Population fluctuation)
8. समष्टि साम्य (Population equilibrium)

1. **समष्टि का आकार और घनत्व** (Population size and density) किसी स्थान विशेष की एक क्षेत्रफल इकाई में पाये जाने वाले सजीवों की संख्या को समष्टि घनत्व (Population density) कहते हैं, यह एक संख्यात्मक मानदण्ड (quantitative parameter)

है, जैसे 500 वृक्ष प्रति एकड़ या 250 मछलियाँ प्रति किमी तल सतह या 25 लाख डायटम (diatoms) प्रति घन मीटर इत्यादि । दूसरे शब्दों में यह समष्टि धनत्व अध्ययन प्रतिदर्श क्षेत्र (sample area) में समष्टि के परिणाम का माप है । व्यापक अर्थों में एक ही प्राकृतिक आवास में पाये जाने वाले एक सजीव प्रजाति के सदस्यों की कुल संख्या समष्टि घनत्व द्वारा परिलक्षित होती है । समष्टि घनत्व की गणना सरलतापूर्वक निम्न सूत्र के द्वारा की जा सकती है-

$$d = \frac{N/a}{t}$$

यदि d = Density (घनत्व)

N = Number (सजीव संख्या)

a = Area (क्षेत्रफल)

t = Time (समय की इकाई)

समष्टि प्रायः स्थायी प्रकृति की न होकर परिवर्तनशील होती है । अत: किसी समष्टि में बदलाव के साथ-साथ इसके घनत्व में भी परिवर्तन होता रहता है । इसलिए यदि समष्टि घनत्व के परिवर्तन को निरूपित करने के लिए उपर्युक्त सूत्र में सजीव सदस्य संख्या n के साथ Δ (डेल्टा) चिन्ह भी लगा दिया जावे तब-

Δn= सजीव सदस्यों की संख्या में परिवर्तन

$\frac{\Delta n}{\Delta t}$ = वृद्धि दर या विशेष समय में सजीव संख्या में औसत परिवर्तन दर

$\frac{\Delta n}{n\Delta t}$ = सदस्य संख्या वृद्धि या विशिष्ट वृद्धि दर (Specific growth rate)

इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त सूत्र द्वारा समय या संख्या की परिवर्तनशीलता को, इनके मान (Value) से पहले Δ (डेल्टा) चिन्ह से प्रदर्शित करके परिवर्तनशील समष्टि के घनत्व की गणना भी की जा सकती है ।

यदि सूत्र $\frac{\Delta n}{n\Delta t}$ के मान को 100 से गुणा किया जावे $\left(\frac{\Delta n}{n\Delta t}\times 100\right)$ तो वृद्धि दर की प्रतिशत मात्रा को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है । उदाहरण के तौर पर 50 अमीबा प्राणी-प्रजनन द्वारा वृद्धि करके अपनी संख्या 150 कर लेते हैं, तो-

n = (प्रारम्भिक संख्या)= 50

Δn = (संख्या में बदलाव) = 100

$\frac{\Delta n}{\Delta t}$ = अमीबा वृद्धि दर 100 प्रति घन्टा

$\frac{\Delta n}{n\Delta t}$ = 2 अमीबा प्रति घंटा प्रति अमीबा या प्रति घंटा 200% वृद्धि

किसी स्थान विशेष पर समष्टि घनत्व वहाँ की ऊर्जा प्रवाह या उत्पादकता पर निर्भर करता है, जैसे संचित क्षेत्र में समष्टि घनत्व मरुस्थल की तुलना में अधिक होता है । यही नहीं,

समष्टि घनत्व का उच्चतम एवं न्यूनतम स्तर भी निर्धारित होता है । समष्टि में अधिकाधिक वृद्धि के साथ ही समष्टि के घनत्व में भी कमी आती है, क्योंकि समष्टि के विभिन्न सदस्यों में प्रायः आवास, भोजन एवं उनकी अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए स्पर्धा या संघर्ष होता है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक सजीव सदस्यों की मृत्यु हो जाती है । इसके विपरीत समष्टि की सदस्य संख्या में यदि कम मात्रा में वृद्धि हो, तो इसकी वजह से समष्टि घनत्व में भी बढ़ोत्तरी होती है, क्योंकि इस स्थिति में भोजन, आवास एवं अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समष्टि के सदस्य जीवों के बीच संघर्ष की सम्भावना कम हो जाती है । इनको भोजन एवं आवास आसानी से प्राप्त हो जाते है ।

समष्टि घनत्व प्रायः दो प्रकार का होता है-

1. **अपक्व घनत्व** (Crude Density)-यह वह घनत्व है जो कुल क्षेत्र प्रति इकाई के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

2. विशिष्ट **या पारिस्थितिकीय अथवा आर्थिक घनत्व** (Specific or ecological or economic density)- यह वह घनत्व है जो आवासीय क्षेत्र (habitat space) अर्थात् उपलब्ध क्षेत्र या वह आयतन जो समष्टि के द्वारा वास्तविक रूप से भरा गया हो, प्रति इकाई होता है ।

यह अन्तर इस तथ्य के कारण प्रमुख हो जाता है कि जीव प्रकृति में सामान्यत: समूह के रूप में विकसित होते हैं और बहुत कम समान रूप से वितरित होते हैं, उदाहरणार्थ- पौधों की जातियों में जैसे कैसिया टोरा (Cassia tora), आप्लिसमेनस बरमेनई (Oplismenus burmanni) इत्यादि में जीव अकेला अत्यधिक समूह (गुच्छा) शैडी पेचेज (Shady Patches) के रूप में पाये जाते हैं और कुछ उसी क्षेत्र के दूसरे भागों में पाये जाते हैं । इस प्रकार कुल क्षेत्र का घनत्व ज्ञात किया जाये तो वह एक **अपक्व घनत्व** (Crude density) होगी, जबकि केवल छायाकृत क्षेत्र (shady region) का मूल्यांकन किया जाये तो वह पारिस्थितिकी घनत्व (ecological Density) होगा ।

अपक्य घनत्व (Crude density) और पारिस्थितिक घनत्व (ecological Density) कोर, बीच दूसरा अन्तर चित्र 5. 1 में दर्शाया गया है जो **केहेल** (Kahl, 1964) द्वारा मछली के घनत्व पर किये गये। अध्ययन पर आधारित है । जैसा चित्र में दर्शाया गया है कि छोटी मछली का अपक्व घनत्व पूरे क्षेत्र को मानते हुए, सर्द शुष्क मौसम में जल स्तर गिरने के साथ नीचे गिरता है, परन्तु पारिस्थितिक घनत्व छोटे जल क्षेत्र में ' मछलियों के होने के कारण बढ़ जाता है । इस प्रकार समय, जल स्तर और कुछ मछलियों की जनसंख्या के पर दोनों घनत्वों में अन्तर पाया जाता है । केवल बदलती हुई परिस्थितियों में ही नहीं बल्कि एक निश्चित में भी दोनों में अन्तर होता है ।

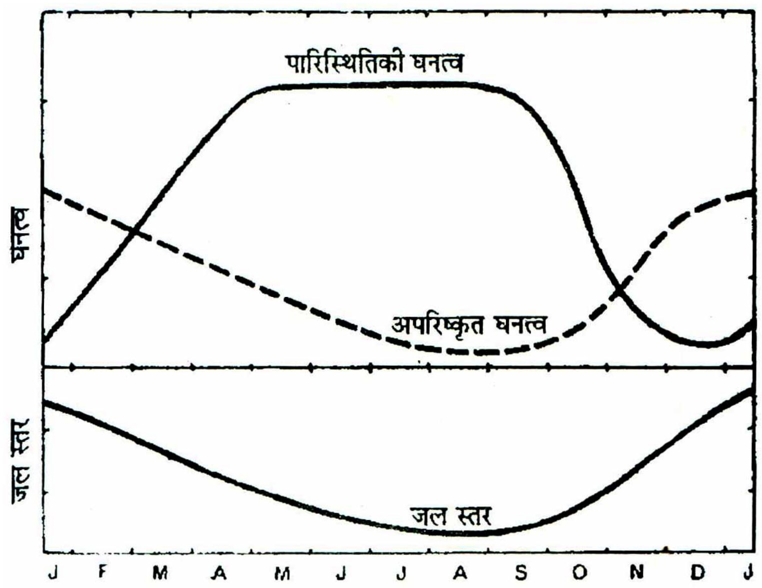

चित्र 5.1. आवास में परिवर्तन के साथ पारिस्थितिक और अपरिष्कृत घनत्व में सम्बन्ध (वृजगोपाल 1975)

जब समष्टि लगातार बदल रही है (बढ़ या घट रही है) तब यह जानने से ज्यादा जरूरी है कि प्रत्येक क्षण उसके आकार (Size) का ज्ञान हो । दो घनत्व प्रत्येक दशाओं में भिन्न होंगे । बदलती हुई समष्टि में आपेक्षिक प्रचुरता (relative abundance) के सूचक अधिक लाभदायक होते हैं । ये सूचक 'समय आपेक्षिक' (time relative) हो सकते हैं जैसे उदाहरण के तौर पर प्रति घण्टे जन्तुओं की संख्या या विभिन्न प्रकार के प्रतिशत जो वनस्पति के अध्ययन में विस्तृत रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं ।

समष्टि घनत्व की गणना अथवा इसके निर्धारण के लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है । कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ निम्न प्रकार से हैं-

(1) **प्रत्यक्ष गणना विधि** (Direct count method)- पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों द्वारा इस विधि का उपयोग समूहों में रहने वाले बडे आकार के सजीवों का समष्टि घनत्व ज्ञात करने के लिये किया जाता है । इस विधि का उपयोग वृक्षों, चिड़ियों एवं बडे स्तनधारियों के घनत्व की जानकारी के लिए प्रमुख रूप किया जाता है । इस विधि में एक निश्चित क्षेत्र में उपस्थित एक-एक जीव की गणना की जाती है एवं इसके द्वारा समष्टि घनत्व की गणना सटीक (accurate) होती है । प्रत्यक्ष गणना विधि के सर्वोत्तम उदाहरण मनुष्यों जनगणना, अभयारण्य में वन्य प्राणियों की गणना इत्यादि हैं । हमारे देश में प्रत्येक दस वर्ष में मनुष्यों की ' जनगणना कार्यक्रम (census) के द्वारा ज्ञात की जाती है, यह वस्तुतः मनुष्यों की समष्टि संख्या होती है ।

(2) **प्रतिदर्श या नमूना विधि द्वारा** (Sampling method)- पारिस्थितिक विज्ञान के अध्ययन में अधिकांश सजीवों का समष्टि घनत्व प्रायः इस विधि के द्वारा ही ज्ञात किया जाता है । विधि में अलग-अलग स्थानों में अनेक प्रतिदर्श या नमूने के निश्चित क्षेत्रफल वाली

इकाइयों का चयन जाता है । प्रत्येक नमूना इकाई के एक-एक सजीव की गिनती की जाती है और इसके बाद उसका औसत निकाला जाता है और समष्टि घनत्व ज्ञात किया जाता है ।

(3) **अंकन एवं पुनर्ग्रहण विधि** (Marking and Recapture Method)-इस प्रक्रिया का उपयोग प्रायः बड़े आकार के प्राणियों जैसे खरगोश, गिलहरी एवं बड़ी चिड़ियाओं इत्यादि की गणना के लिए किया जाता है । इस विधि के अन्तर्गत प्राणि समष्टि का एक प्रतिदर्श (Sample) निश्चित संख्या में पकड़ा जाता है । नमूने के रूप में पकड़े गये प्राणियों के शरीर पर विशेष चिन्ह अंकित कर उनको छोड़ दिया जाता है, जिससे ये प्राणि सम्पूर्ण समष्टि में मिश्रित हो जावें । एक निश्चित अवधि के पश्चात् फिर इसी प्रकार से नमूना प्राप्त किया जाता मे यहाँ पकड़े गये जन्तुओं में चिन्हित किये गये जन्तुओं की गणना की जाती है ।

(4) **अप्रत्यक्ष विधियाँ** (Indirect Methods)- कुछ अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा प्रयोगशाला में समष्टि घनत्व ज्ञात किया जाता है । ये विधियाँ निम्न प्रकार हैं-

(a) ऑक्सीजन के उपयोग एवं CO_2 के उत्पादन के आधार पर समष्टि घनत्व ज्ञात किया जाता है ।

(b) सजीवों द्वारा प्रयुक्त भोजन, या खनिज तत्वों की मात्रा के आधार पर समष्टि घनत्व ज्ञात किया जाता है ।

(c) परभक्षियों के आमाशय में शिकार के अवशेशों की आकृति से भी समष्टि घनत्व की जानकारी मिल सकती है ।

(5) **नमूना या प्रतिदर्श क्षेत्र विधि** (sample plot methods)- समष्टि घनत्व को ज्ञात करने के लिए पारिस्थितिकी में इस विधि का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है, साथ ही यह सबसे सरल विधि भी है । इसके अन्तर्गत जिस क्षेत्र में समष्टि घनत्व का अध्ययन करना हो, तो उस क्षेत्र को बराबर क्षेत्रफल के टुकड़ों (plots) में बाँट दिया जाता है । अब कुछ निश्चित टुकड़ों में सजीवों की संख्या गिनकर ज्ञात की जाती है । इसके बाद सजीवों की औसत संख्या को सभी टुकड़ों की संख्या के योग से गुणा करके उस क्षेत्र का समष्टि घनत्व ज्ञात करते हैं ।

वृद्धि दर की विचारधारा (Concept of growth rate)- समष्टि के दूसरे गुणों को जानने से पूर्व वृद्धि दर (growth rate) के सिद्धान्त को जानना आवश्यक है । जैसा कि समष्टि एक बदलती हुई स्थिति है, जिसमें हम केवल उसके आकार और संगठन में ही नहीं बल्कि प्रकृति में उसके बदलाव में भी रुचि रखते हैं । जैसे- यह स्थान-स्थान पर भिन्न होती है उसी प्रकार समष्टि घनत्व समय के साथ भी बदलता है । समष्टि स्थिर हो सकती से उसमें बदलाव हो सकता है या वे दृढता से बढ़ या घटा सकती है, इस प्रकार के बदलाव समष्टि पारिस्थितिकी के मुख्य घटक हैं । ये चार कारकों के द्वारा घटित होते रहते हैं । जन्म दर (Birth rate) और देशान्तरवास (immigration) समष्टि के घनत्व को बढ़ाते हैं जबकि मृत्यु दर (death rate) और स्वदेश त्याग (emigration), समष्टि को घटाते हैं ।

2. **समष्टि प्रसार** (Population Dispersion)- किसी सजीव समष्टि में जीवधारियों के वितरण प्रारूप को **समष्टि प्रसार** (population dispersion) कहते हैं । इसके द्वारा समष्टि की आन्तरिक संरचना एवं अन्य लक्षण प्रभावित होते हैं । इसके साथ ही समष्टि घनत्व भी

प्रसार या फैलाव द्वारा प्रभावित होता है । इसीलिए समष्टि घनत्व की गणना करते समय इसके प्रसार (dispersion) को ध्यान में रखना आवश्यक होता है । इसके प्रसार की जानकारी के द्वारा समष्टि की आन्तरिक संरचना को ज्ञात किया जा सकता है । एक समष्टि में सजीवों के प्रसार के निम्न प्रारूप पाये जाते हैं (चित्र 5.2)-

(A) समान प्रसार (Uniform dispersion)

(B) अनियमित प्रसार अथवा यादच्छिड़क प्रसार (Random dispersion)

(C) सपुंजित प्रसार (Clumped dispersion)

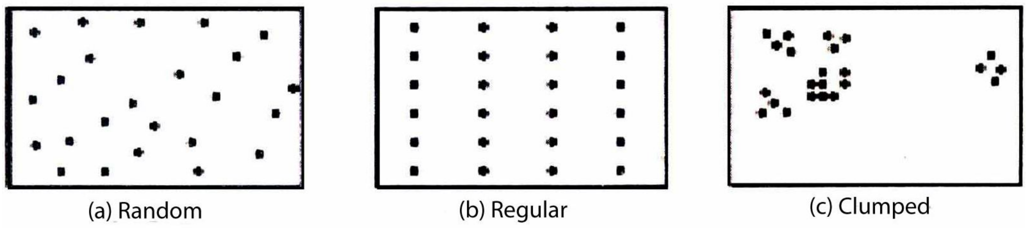

चित्र 52 वितरण के प्रकार : (a) यादृच्छिक (Random), (b) नियमित (Regular); एवं (C) समूहबद्ध यादृच्छिक (Clumped) (सिंह व अन्य, 2008)

1. **समान वितरण** (Uniform dispersion)-इसमें जीव एक-दूसरे से समान दूरी पर वितरित होते हैं । यह प्रकृति में बहुत कम परन्तु व्यवस्थित तंत्र (फसल की भूमि) में सामान्य होता है (चित्र 5.2) । जन्तु प्रादेशिक व्यवहार के साथ इस प्रकार का वितरण दर्शाते हैं ।

2. **आकस्मिक या असमान वितरण** (Random dispersion)-इसमें एक जीव की स्थिति अपने पड़ौसी से सम्बन्धित नहीं होती (चित्र 5.2) । प्रकृति में इस प्रकार के वितरण की भी कम अपेक्षा होती है ।

3. **सपुंजित प्रसार** (Clumped dispersion)-प्रकृति में इस प्रकार का समष्टि प्रसार सर्वाधिक पाया जाता है । यही समष्टि के सदस्य सजीव व्यष्टि पुंजों या समूहों में पाये जाते हैं, अर्थात् व्यष्टियों के पुंजित या गुच्छों (clumps) में रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है (चित्र 5.2) । प्रकृति में तीन प्रकार का सपुंजित प्रसार पाया जाता है- (1) यादृच्छिक सपुंजन (Random clumped dispersion) (2) समरूपी या समान सपुंजन (Uniform clumped); एवं (3) पुंजित सपुंजन (Aggregate clumped)

प्रकृति में उपर्युक्त तीनों प्रकार के सपुंजित प्रसार समान रूप से पाये जाते हैं । समष्टि में सजीवों के सपुंजित अवस्था में रहने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं-

1. स्थानीय आवास स्थली में विभिन्नता, 2. वातावरण में पाये जाने वाले दैनिक एवं मौसमी परिवर्तन, 3. जनन क्रियाएँ सम्पन्न करने के लिए, 4. परस्पर आकर्षण या सामाजिक सुरक्षा के लिए, 5. आसानी से भोजन प्राप्ति हेतु, एवं 6. स्वयं को सुरक्षित रखने हेतु ।

प्राकृतिक अवस्थाओं में दोनों प्रकार की अर्थात् पादप एवं प्राणी समष्टियों दोनों में सपुंजित प्रसार दृष्टिगोचर होता है । कुछ प्राणियों की समष्टियों में सपुंजित प्रसार का सामाजिक आधार भी उपलब्ध होता है, जैसे ततैया (Wasp), दीमक एवं मधुमक्खी, इत्यादि ।

समष्टि में उपस्थित सजीवों के लिए सपुंजित प्रसार लाभकारी एवं हानिकारक दोनों ही प्रकार के होते हैं । इसके हानिकारक पहलू निम्न प्रकार से हैं-

1. सपुंजित प्रसार के कारण समष्टि के सजीवों में स्थान तथा भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होती है ।
2. सजीवों में रोग एवं महामारी फैलने की आशंका रहती है ।
3. सजीवों में प्रजनन के लिए भी आपसी संघर्ष होता है ।

वहीं दूसरी ओर समष्टि में सपुंजित प्रसार के लाभदायक पहलू निम्न प्रकार से हैं-

1. समष्टि में उपस्थित सपुंजित सजीव वहाँ की सूक्ष्म जलवायु (microclimate) को अपने अनुकूल बना लेते हैं ।
2. सपुंजित प्रसार के कारण समष्टि के सजीवों में प्रतिकूल परिस्थितियों में या बाहरी आक्रमण के द्वारा होने वाली सम्भावित मृत्यु दर में कमी आती है ।
3. **आयु संरचना** (Age structure)

अधिकतर समष्टियों में जीवन अलग-अलग आयु के होते हैं । प्रत्येक समूह के जीवों का अनुपात उस समष्टि की **आयु सरंचना** (age structure) कहलाती है ।

आयु वितरण (age distribution) एक मुख्य कारक है, जो समष्टि की मृत्युदर और जन्म दर दोनों को प्रभावित करता है । किसी समष्टि में विभिन्न आयु के समूहों का अनुपात उसकी वर्तमान प्रजनन स्थिति को निर्धारित करते हैं, कि उसका भविष्य किस प्रकार का होगा । पारिस्थितिकी के आधार पर किसी समष्टि में तीन प्रमुख पारिस्थितिक आयु (ecological ages) होती हैं जिनको प्रजनन से पहले, प्रजनन के समय की ओर प्रजनन के बाद की आयु के रूप में जान सकते हैं । इन आयु के समूह की आपेक्षिक अवधि जीवन यापन के अनुपात से भिन्न होती है । मनुष्य में तीनों आयु की लगभग समान अवधि होती है । लगभग आयु का पक तिहाई भाग प्रत्येक दशा में होता है । अनेक पौधे और जन्तुओं में प्रजनन से पहले की आयु काफी लम्बी होते है । कुछ जीवों में विशेषतः कीड़ों मे प्रजनन से पहले की उम्र बहुत बडी, प्रजनन काल बहुत छोटा तथा प्रजनन के बाद की कोई आयु नहीं होती ।

आयु पिरामिड (Age pyramid)- प्रारूपिक समष्टि में विभिन्न सजीवों के आयु समूह को पिरामिड द्वारा किया जाता है (चित्र 5.3), इस प्रकार प्राप्त पिरामिड को **आयु पिरामिड** (age pyramid) कहते है । इस प्रकार के प्रतिरूपण (presentation) में विभिन्न आयु वर्गों के सजीवों की संख्या उत्तरोत्तर आड़ी या क्षैतिज पट्टियों की तुलनात्मक चौड़ाई द्वारा निरूपित होती है (चित्र 5.3) । समष्टि पारिस्थितिकी के अध्ययन क्षेत्र में निम्न प्रकार के आयु पिरामिड पाये जाते हैं ।

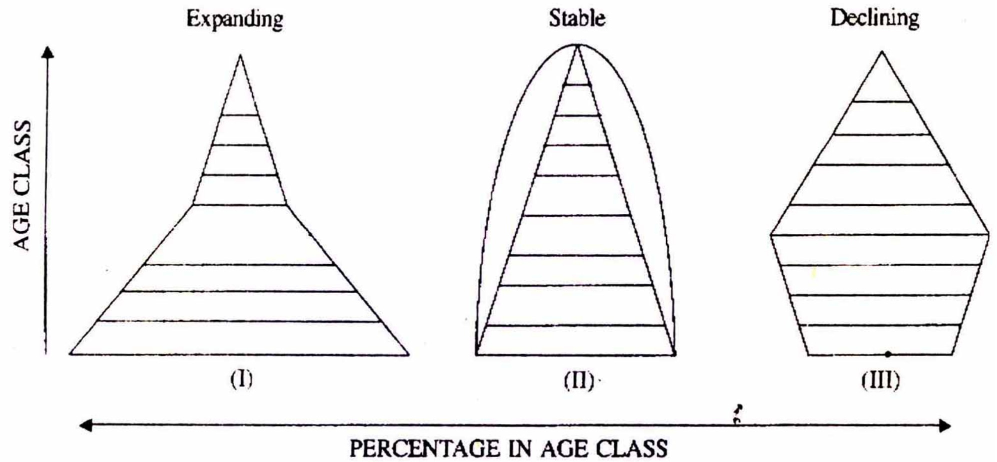

चित्र 5.3 समष्टि में विभिन्न आयु के जीवों के अनुपात की तीन सम्भावनाएँ (पिरामिड्स) (सिंह व अन्य, 2008)

(A) **पिरामिड चौड़े आधारीय भाग वाला** (Board base Pyramid)- इस प्रकार के आयु पिरामिड का आधारीय भाग चौड़ा होता है तथा इसे शिशु संतति या व्यष्टि द्वारा निरूपित किया जाता है (चित्र 5.3) । तीव्र वृद्धि करने वाली समष्टि में जन्म-दर प्रायः अधिक होती है, तथा समष्टि की वृद्धि तीव्र होती है । इस प्रकार की परिस्थितियों में सजीवों की संख्या पूर्ववर्ती पीढ़ियों की तुलना में अधिक पाई जाती है । ऐसे पिरामिड निम्नवर्गीय सजीवों जैसे यीस्ट एवं पैरामीसियम में पाये जाते हैं ।

(B) **पॉलीगोन या घंटी के आकार का पिरामिड** (Bell shaped Polygon)- वह समष्टि जिसमें इस प्रकार का पिरामिड पाया जाता है, उसकी वृद्धि दर मंद एवं स्थिर हो जाती है । इसके साथ ही पूर्व जननीय एवं जननीय आयु समूहों के सजीवों की संख्या लगभग बराबर हो जाती है । पश्च जननीय आयु समूह सबसे छोटा रह जाता है । इस प्रकार की स्थायी समष्टि में सजीवों का आयु वितरण घंटी के आकार का पाया जाता है (चित्र 5.3) ।

(C) **प्यालाकार पिरामिड** (Urn- shaped Pyramid)- इस प्रकार की सजीव समष्टि में शिशु व्यष्टि या सजीव बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं, क्योंकि यहाँ जन्म-दर बहुत ही कम हो जाती है । इस प्रकार के पिरामिड में पूर्व जननीय आयु समूह की तुलना में जननीय एवं पश्च जननीय आयु समूह बड़े होते हैं । इसके परिणामस्वरूप ऐसी समष्टि का आयु पिरामिड प्याले या जलपात्र के आकार (Urn-shaped) का हो जाता है (चित्र 5.3) ।

4. **जन्म-दर** (Natality)

प्रायः सभी सजीव प्रजनन के द्वारा संतति उत्पन्न कर अपनी वंश वृद्धि करते हैं तथा इस प्रकार प्रजाति विशेष की समष्टि सदस्य संख्या में भी वृद्धि होती है । जनन क्रिया प्रायः सजीवों का आधारभूत लक्षण कही जा सकती है । सजीवों द्वारा संतति उत्पन्न करने या नयी व्यष्टि (individual) को जन्म देना जन्म-दर (Natality of birth rate) कहलाता है । दूसरे शब्दों में, "एक निश्चित अवधि में किसी भी समष्टि द्वारा उत्पन्न नये सजीवों या इनकी संतति की औसत संख्या को उस समष्टि की जन्म-दर कहा जाता है ।"

यह सामान्यत: एक विस्तश्त शब्दावली है जो किसी जीव के नए जीवों के उत्पादन को दर्शाती है । ये नये जीव जन्म लेते हैं, अण्डों से बाहर निकलते हैं, अंकुरित होते हैं या विभाजन के फलस्वरूप उदय होते हैं, इत्यादि । जन्म दर एक जाति की मादा के द्वारा एक निश्चित समय में जन्मित जीवों की समष्टि है ।

विभिन्न सजीवों में जन्मदर दो प्रकार की क्रमशः (i) **अधिकतम जन्म-दर या सम्भावित जन्म-दर** (potential Natality or maximum birth rate) एवं वास्तविक जन्म-दर के रूप में हो सकती है । सभी सजीवों में अधिकतम जन्म-दर की क्षमता होती है, अर्थात् ये अनुकूल परिस्थितियो में अधिकाधिक संतति उत्पन्न करते हैं । सभी सजीवों की अधिकतम जन्म-दर सुनिश्चित होती है, लेकिन प्राकृतिक अवस्थाओं में अधिकतम जन्म-दर को प्राप्त करना किसी भी सजीव के लिए सम्भव नही है । इसके विपरीत प्रयोगशाला परिस्थितियों में अधिकतम जन्म-दर या सम्भावित जन्म-दर का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है ।

(ii) **वास्तविक या पारिस्थितिकी जन्म-दर** (actual or ecological birth rate)- सामान्य में सजीवों द्वारा उत्पन्न सजीवों या व्यष्टियों की संख्या को वास्तविक या पारिस्थितिक जन्म-दर कहते हैं । यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रकृति में अनेक प्रतिकूल कारक भी सजीवों के लिए मौजूद हैं, अत: ऐसी अवस्था मे अधिकतम जन्म-दर को प्राप्त करना सम्भव नहीं होता । किसी प्रजाति समष्टि के ' वास्तविक जन्म दर का मान सुनिश्चित नहीं होकर विभिन्न भौतिक या वातावरणीय परिस्थितियो के ' परिवर्तित हो सकता है । विभिन्न प्रजाति समष्टियों की जन्म-दर भी अलग-अलग हो सकती है तथा इसकी गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जा सकती है- ।

जन्म-दर $= \frac{B}{t}$

यदि B = उत्पन्न सजीवों की संख्या, t = समय ।

किसी स्थान विशेष पर निश्चित समय में जन्म-दर निम्न कारकों द्वारा नियंत्रित है-

1. प्रजनन की दृश्टि से परिपक्व सजीवों का आयु अनुपात (Age ratio)
2. लिंग अनुपात (Sex ratio)
3. मृत्यु-दर (Mortality)
4. विभिन्न वातावरणीय परिस्थितियां जैसे प्रतिकूल तापमान, भोजन की कमी, पक्षियों में लिए घोंसले बनाने के स्थानों का अभाव, समागम स्थलों (जन्तुओं के लिए) का अभाव एवं प्रतिकूल मौसम इत्यादि ।
5. परभक्षिता एवं परजीविता ।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियाँ एकल अथवा संयुक्त रूप से जन्म-दर को प्रभावित करने में सक्षम होती हैं । इस प्रकार जन्म-दर में वृद्धि या कमी किसी भी समष्टि को सीधे ही प्रभावित करती है । जन्म-दर में वृद्धि की वजह से किसी भी समष्टि की संख्या में वृद्धि होती है । इसके विपरीत जन्म-दर में कमी की वजह से समष्टि से सदस्य संख्या में भी कमी आती है ।

उष्णकटिबंधीय (tropacil) और शीतोष्ण (temprate) समष्टि में जन्मदर के तरीके भिन्न होते हैं । प्रजनन समय और क्लच आकार (clutch size) ये दो अलग प्रमुख प्रमाण हैं । उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क काल में प्रजनन उसी प्रकार मौसमी (seasonal) होता है जैसा कि शीतोष्ण क्षेत्रों में । लगातार आर्द्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्रजनन लगभग पूरे वर्ष होता है । जिनमें कुछ जनसंख्या एक चरम मौसमी स्तर दर्शाता है । शीतोष्ण भागों के मुकाबले उष्णकटिबंधीय वातावरण में क्लच साइज (clatch size) छोटा है । अनेक चिड़िया, कुछ पौधे, कुछ कीड़े और कुछ छोटे स्तनधारी इस तरीके की ओर झुकाव प्रकट करते हैं ।

5. **मृत्यु-दर** (Death rate or Mortality)

इसे जन्म-दर के ठीक विपरीत कहा जा सकता है । मृत्यु-दर भी किसी समष्टि जन्म-दर के समान ही प्रभावित करती है । सभी जीवधारियों का अपना एक निश्चित जीवनकाल होता है, एवं ये सभी अपना जीवन-चक्र पूर्ण करने के बाद अर्थात् निश्चित समय के बाद मृत्यु को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार, 'एक निश्चित समय में समष्टि में मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीवों की संख्या को मृत्यु-दर (death rate or mortality) कहते हैं ।" किसी समष्टि की मृत्यु-दर भी वातावरण से प्रभावित होती है । मृत्यु-दर में वृद्धि के समष्टि के सदस्यों की संख्या में कमी आती है, जबकि मृत्यु दर में कमी से समष्टि में वृद्धि होती है । जन्म-दर क,ए समान मृत्यु-दर भी दो प्रकार की होती है-

1. **न्यूनतम मृत्यु दर** (Minimum mortality)-यह विशिष्ट (specific) और सम्भावितमृत्यु दर भी कहलाती है । यह आदर्श या असीमाकारी दशाओं में नियमानुसार कम हानि दर्शाती है । यह एक के लिये निश्चित होती है । इस प्रकार अच्छी दशाओं के अन्तर्गत जीवों की मृत्यु उनकी वृद्ध आयु में चाहिये जो उनकी क्रियात्मकता के द्वारा निर्धारित होती है ।
2. **पारिस्थितिकीय या वास्तविक मृत्यु-दर** (Ecological death rate or actual mortality)- सामान्य प्राकृतिक या वातावरणीय परिस्थितियो में घटित समष्टि के जीवों की मृत्यु संख्या को या पारिस्थितिक मृत्यु-दर (actual mortality) कहते हैं । वास्तविक मृत्यु-दर भी समय एवं परिस्थितियों के बदलती रहती है । इसका मान सुनिश्चित नहीं होता । किसी समष्टि में मृत्यु-दर की गणना जन्म दर समान ही की जाती है ।

मृत्यु-दर $= \frac{D}{t}$

जहाँ D मरने वाले सजीवों की संख्या, t=समय ।

किसी भी समष्टि में मृत्यु-दर अनेक कारकों रो प्रभावित होती है । कोई भी कारक एकल रूप से किसी भी जीव की मृत्यु का कारण नहीं हो सकता अर्थात् सामान्य परिस्थितियों में किसी भी एक कारण या परिघटना की वजह से सजीवों की मृत्यु नहीं होती अपितु दो या दो से अधिक कारक एक साथ कार्यशील होकर समष्टि के सजीव सदस्यों की मृत्यु का कारण बनते हैं । समष्टि के सजीवों की मृत्यु के प्रमुख कारण निम्न प्रकार से हो सकते हैं-

1. असामान्य आ विकसित होना या आ अवस्था के बाद शारीरिक या कार्यिकीय अपसामान्यताएं उत्पन्न होने के कारण ।

2. आनुवंशिक रोग (Hereditary diseases) ।

3. पर्यावरण में अचानक आपत्तिजनक बदलाव भी मृत्यु का कारण है ।

4. परजीविता (Parasitism) एवं परभक्षिता इत्यादि ।

5. रोग-ग्रस्त हो जाने के कारण मृत्यु ।

जन्म-दर एवं मृत्यु-दर के अनुपात $\left(100 \times \frac{Birth}{Death}\right)$ को वाइटल इंडेक्स कहा जाता है । जब जन्म-दर एवं मृत्यु-दर बराबर होती है, तो समष्टि की सदस्य संख्या स्थिर रहती है, लेकिन जब मृत्यु-दर की तुलना में जन्म-दर अधिक होती है तो समष्टि की सदस्य संख्या में वृद्धि होती है । इसके विपरीत जब जन्म-दर की तुलना में मृत्यु-दर अधिक होती है, तो समष्टि की सदस्य संख्या में कमी आती है ।

उत्तरजीविता चक्र (survivorship Curve)-क्योंकि मृत्यु अवश्यम्भावी होती है, इसीलिए किसी समष्टि के अध्ययन में मृत्यु-दर से अधिक महत्व सजीव के जीवनकाल या आयुकाल का होता है । सभी सजीव समष्टियों में मृत्यु-दर हमेशा स्थिर रहती है, लेकिन समष्टि की वास्तविक मृत्यु-दर में विभिन्न पारिस्थितिक कारकों एवं इसके घनत्व के आधार पर विविधता पाई जाती है । किसी समष्टि में मृत्यु के संयोग अर्थात् मृत जीवों के बाद बचे हुए जीवों को **उत्तरजीवी** (survivor) कहा जाता है, एवं इस प्रक्रिया को **उत्तरजीविता** (survivorship) कहते हैं । आयुकाल के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में जीवित रहने वाले सजीवों की संख्या को उत्तरजीविता की दर से अभिव्यक्त किया जाता है । उत्तरजीविता को वक्र द्वारा आसानी से दर्शाया जा सकता है, एवं इस वक्र को उत्तरजीविता वक्र (survivorship curve) कहते हैं (चित्र 5.4) । एक प्रारूपिक समष्टि में तीन प्रकार के उत्तरजीविता वक्र पाये जाते हैं-

(1) **तिर्यक या विकर्ण वक्र** (Diagonal Curve)-इस उदाहरण में जब समष्टि के सदस्य जीवधारियों की मृत्यु यदि समान आयु में हो, तो यहाँ उत्तरजीविता वक्र एक सीधी विकर्ण रेखा (Straight diagonal line) में बनता है, इसे **विकर्ण या तिर्यक वक्र** (Diagonal curve) कहते हैं ।

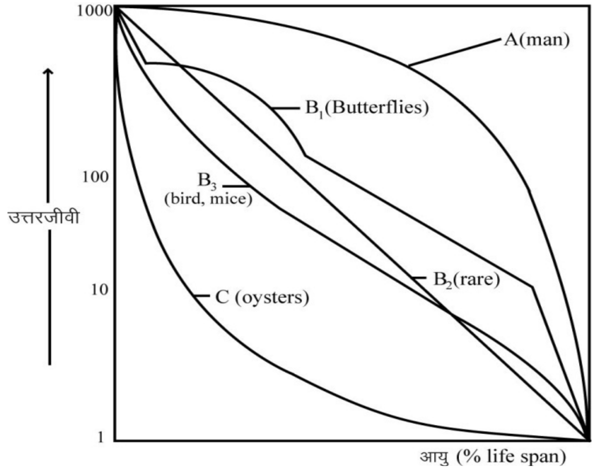

चित्र 5.4 उत्तरजीविता वक्रों के प्रकार (बृजगोपाल 1975)

(2) **अत्यधिक उत्तल वक्र** (Highly convex curve)-इस उदाहरण में सजीव समष्टि के अधिकांश सदस्य अपना सामान्य जीवनकाल या जैविक विभव (biotic potential) पूर्ण करते हैं, एवं उनकी मृत्यु वृद्धावस्था में होती है । इसलिए ऐसी सजीव समष्टि के लिए उत्तरजीविता वक्र अत्यन्त उत्तल (Convex) बनता है, अर्थात् जैविक विभव में वृद्धावस्था के पहुँचने तक यह वक्र क्षैतिज रूप में अग्रसर होता है, और पश्चात् तेजी से नीचे की ओर मुड़ जाता है । अनेक स्तनधारी प्राणियों जैसे मनुष्य, खरगोश, हिरण एवं में इस प्रकार का उत्तरजीविता वक्र पाया जाता है । '

(3) **अत्यधिक अवतल वक्र** (Highly concave curve)- इस प्रकार की उत्तरजीविता में समष्टि के अधिकांश जीव जब अपना जीवनकाल या जैविक विभव प्राप्त करने से पहले ही समाप्त से जाते हैं तो ऐसी अवस्था में उत्तरजीविता वक्र अत्यधिक अवतल बनता है । इस प्रकार का वक्र कवच मछली (shell Fish) एवं **ऑयस्टर** (oyster) में पाया जाता है ।

6. **जैविक विभव** (Biotic potential)

सभी प्रकार की सजीव समष्टियों में वृद्धि करने की जन्मजात क्षमता होती है । जब वातावरण की परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं एवं भोजन तथा रहने के लिए स्थान इत्यादि पर्याप्त होते हैं, तो ऐसी स्थितियों में समष्टि की वृद्धि बहुत ही तेजी से होती है एवं यह समष्टि अपनी अधिकतम क्षमता प्राप्त कर स्थिर हो जाती है । जब तक वातावरणीय कारक अनुकूल एवं स्थिर रहते हैं, तब तक यही स्थिति पाई जाती है । ऐसी अनुकूल परिस्थितियों में समष्टि की वृद्धि करने की सामर्थ्य को या **संभावित क्षमता** (Potential ability) को **जैविक विभव** (biotic potential) कहते हैं । जैविक विभव को **प्रजननीय विभव** (reproductive potential) भी कहा जाता है । सर्वप्रथम **चैंपमेन** (Chapmann, 1928) द्वारा जैविक विभव शब्द का प्रयोग किया गया था । उसके अनुसार, 'सजीवों में प्रजनन की अन्तर्निहित शक्ति को जैविक विभव कहा जाता है ।" चैपमेन ने इस शब्द का उपयोग अधिकतम प्रजनन की शक्ति को परिलक्षित करने के लिए किया । प्रारून्कि समष्टि का जैविक विभव (biotic potential) प्रत्येक स्थिति में या सदैव ही स्थिर रहता है, चाहे इसकी " में वृद्धि हो या कमी हो, या इसकी संख्या स्थिर हो । वृद्धिशील समष्टि में सजीवों की संख्या उनके विभवों के परिणामरचरूप नहीं बढ़ती अपितु यह तो पर्यावरण प्रतिरोध में कमी आने की वजह से बढ़ती है । प्रकृति जैविक विभव तथा पर्यावरण के बीच सन्तुलन समष्टि में वृद्धि का निर्धारण करता है ।

7. **समष्टि दोलन या उच्चावसन** (Population fluctuation)

किसी भी क्षेत्र में सजीव विशेश की समष्टि कभी स्थिर प्रकृति की नहीं होती है, अपितु यह सदैव परिवर्तनशीलता प्रदर्शित करती है । समष्टि की सजीव संख्या सामान्य क्षमता स्तर तक पहुंचने के बाद इस स्तर के ऊपर या नीचे की ओर समष्टि घनत्व के बढ़ने या कम होने की प्रक्रिया को **समष्टि दोलन या उच्चावसन** (Population fluctuation) कहा जाता है । भौतिक वातावरण के कारण अथवा ' की अंतराप्रजातीय या अंतरप्रजातीय पारस्परिक क्रियाओं के परिणामरचरूप ही समष्टि उच्चावसन होता है । उच्चावसन प्रक्रियाएँ निम्न दो प्रकार की पाई जाती हैं-

(a) **ऋतुनिष्ठ उच्चावसन** (Seasonal fluctuation)-अनेक समष्टियों में उच्चावसन प्रक्रिया ऋतुओं के परिवर्तन द्वारा नियन्त्रित होती है, क्योंकि ऋतुओं में बदलाव आने से वातावरणीय कारकों में भी परिवर्तन आता है । इसके परिणामस्वरूप समष्टि सदस्य संख्या या घनत्व में परिवर्तन होता है । जैसे। मच्छरों की संख्या बरसात में सबसे अधिक एवं गर्मी में सबसे कम होती है ।

(b) **वार्षिक उच्चावसन** (Annual fluctuation)- इस प्रकार की समष्टि उच्चावसन की प्रक्रिया वर्ष में एक बार होती है तथा वह भौतिक वातावरण में होने वाले वार्षिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अथवा समष्टि गति की (population dynamics) या कुछ अन्य अन्तरजात (intrinsic) कारकों द्वारा नियन्त्रित होती है ।

8. **समष्टि साम्य** (Population equilibrium)

समष्टि के सजीवों की संख्या में वृद्धि प्रजनन द्वारा होती है । किसी निर्जन या क्षेत्र में जब कोई सजीव समष्टि पहली बार स्थापित होती है, तो इसकी सदस्य संख्या में तेजी से वृद्धि होती है एवं अतिशीघ्र ही वह वृद्धि की चरम (Climax) अवस्था को प्राप्त कर लेती है । यह चरम स्थिति इसके पश्चात् भी बहुत समय तक बनी रहती है । दूसरे शब्दों में अब समष्टि की सदस्य संख्या स्थिर हो जाती है एवं जन्म-दर तग मृत्यु-दर एकसमान हो जाती है । इस प्रकार की स्थिर एवं स्थायी अवस्था को समष्टि साम्य (population equilibrium) कहते हैं । चरम स्थिति में यह समष्टि साम्यावस्था S-आकृति के वृद्धि प्रतिरूप (S-shaped growth form) द्वारा निरूपित होती है ।

5.2.2 समष्टि गतिकी (Population dynamic)

समष्टि वृद्धि के लिये विशिष्ट गुणों के तरीके होते हैं, जो समष्टि वृद्धि रूप (population growth form) कहलाते हैं । इरा प्रकार के वृद्धि रूप, जीवीय सम्भावनाओं और वातावरणीय प्रतिरोध की परस्पर क्रियाओं को दर्शाते हैं ।

समष्टि गतिकी का अध्ययन करने के लिये तरीके हैं-(I) गणितीय मॉडल (mathematical model), (2) प्रयोगशालाओं का अध्ययन, (3) मैदानों का अध्ययन । गणितीय मॉडल दो प्रकार के थ्यूरीटिकल मॉडल (theoretical model) और सिमूलेशन मॉडल (simulation model) हैं । पूर्व व्युत्पन्न समीकरण जनसंख्या में बदलाव को बताती है, और उसके द्वारा ऐसे मॉडलन को वास्तविक समष्टि के साथ तुलना करके जाँचा जा सकता है । बाद वाली समीकरण जो वास्तविक समष्टि से ऑकड़े लेती है, और विशिष्ट वातावरणीय दशाओं के अन्तर्गत इन समष्टियों के भविष्य में व्यवहार को बताने का प्रयास करती है ।

इन मॉडल्स का केवल तब उपयोग है जब ये वास्तविक समष्टि की, समष्टि गतिकी के फलकों (facets of population dynamic) को वर्णित कर सके । इनकी भविष्यवाणियों को प्रायः जनसंख्याओं की प्रायोगिक जाँचों के द्वारा मापा जाता है । गणितीय और प्रयोगशालाओं के अध्ययनों का मूल्य तभी है जब वे प्राकृतिक समष्टियों के व्यवहार को बताने में सहायक हों । इन पर मैदानी अध्ययन भी किया गया है यद्यपि वह बहुत जटिल है ।

5.2.3 समष्टि घनत्व का नियमन (Regulation of population density)

वृद्धिघात मॉडल और इसके भाग ये बताते हैं कि समष्टि का स्तर समाप्त होता है, उसकी रखरखाव क्षमता पर जो वातावरण के द्वारा निर्धारित समष्टि घनत्व की ऊपरी सीमा है और समष्टि इस स्तर पर या इसके चारों ओर नियन्त्रित होती है । पिछले 50 साल से अधिक समय से पारिस्थितिकविदों के बीच समष्टि के नियमन की महत्वता एक प्रतिवाद का विशय है । समष्टि को क्या नियन्त्रित करता है **क्रेब्स** (Krebs) ने 1985 में इस विषय पर एक लेखा प्रस्तुत किया ।

1. समष्टि घनत्व को प्रभावित करने वाले कारकों की प्रकृति (Nature of factors that influence population)-समष्टि घनत्व केवल जन्म दर या देशान्तरवास से बढ सकती है और मृत्यु दर या स्वदेश त्याग से घट सकती है । ये कारक अपने प्रभाव में घनत्व निर्भर या घनत्व अनिर्भर हो सकते हैं ।

घनत्व निर्भर कारक अपने प्रभाव के अनुपात में बढ़ते हैं, जैसे-समष्टि बढ़ती है । घनत्व निर्भर कारकों के साथ संघर्ष एवं भक्षण भी सम्मिलित होते हैं । उदाहरणार्थ समष्टि वृद्धि की दर घनत्व बढने पर निरन्तर अन्तराजातीय संघर्ष से घटती है । विपरीत घनत्व निर्भरता भी होती है यदि कारक तीव्रता घनत्व के बढ़ने के अनुपात में घटती है । घनत्व निर्भरताकारक घनत्व बदलने के साथ अपने प्रभाव में विभिन्नता नहीं दर्शाते । अजीवीय वातावरणीय कारक प्रायः घनत्व निर्भर होते हैं । परन्तु हमेशा नहीं होते इसलिए बाढ़ या आग सभी समष्टियों को उनके घनत्व के आधार के बिना ही नष्ट कर देते हैं । दोनों, घनत्व पर निर्भर एवं घनत्व से स्वतंत्रकारक अनेक समष्टियों की दिखाई देने वाले घनत्व का निर्धारित करने के लिए आपस में क्रिया करते हैं । उदाहरणार्थ-टी टी सू मक्खी (testse files) Glossimia morsiotons में दोनों प्रकार शामिल होते हैं । ये कारक जनसंख्या गतिक (population dynamics) में भी प्रमुख भूमिका निभा देते हैं ।

2. **कुँजी कारक विश्लेषण** (key Factor analysis)- यह मृत्यु दर कारक के विश्लेषण का तरीका है यह जानने के लिये कि कौन नियन्त्रक हो सकता है । प्रत्येक मृत्यु दर कारक के लिए K के मान तथा कुल K (सभी कारकों का योग) के बीच अनेक सफल पीढ़ियों के लिए ग्राफ खींचा गया । K-कारक जो अधिक समीपता से K के तरीके पर आधारित है वह कुँजी कारक (key factor) कहलाता है । कीड़ों की समष्टि में मृत्यु या बाह्यगमन के द्वारा वयस्कों की हानि एक कुँजीकारक है ।

3. **समष्टियों का स्वत: नियमन** (Self - regulation population)- अन्तराजातीय घनत्व निर्भर परस्पर क्रियाएँ प्रयोगशाला में अनेक जनसंख्याओं का नियमन करती हैं । अत: इस प्रकार से वे स्वत: नियमनकारी हैं । उत्सर्जी पदार्थों का एकत्र होना भी जनसंख्या वृद्धि को कम करता है । यह भी स्वत: नियमन (self regulation) है । सामाजिक व्यवहार भी स्वत: नियमक हो सकते हैं । अनेक जातियों के जीव या जीवों के समूह एक क्षेत्र में भोजन या प्रजनन तरीकों के लिए लड़ते हैं । मृत्यु या प्रजनन असफलता घनत्व निर्भर होते हैं और समश्टि घनत्व को नियन्त्रित करते हैं ।

4. **देशान्तरवास स्वदेशत्याग और समष्टि गतिकी** (Immigration, emigration & population dynamic)- जन्मदर और मृत्युदर के अतिरिक्त देशान्तरवास एवं स्वदेशत्याग भी समष्टि घनत्व को प्रभावित करते हैं । ये दोनों प्रकार के गुण समाप्त करने वाले हैं । जहाँ पर जीव एक समष्टि से चले जाते हैं और अनुकूल वातावरण न हो तो मर जाते हैं तथा एक नई समष्टि स्थापित करते हैं या नई जगह पर दूसरी समष्टि जो पहले से होती है उसमें शामिल हो जाते हैं।

5.2.4 पारिस्थितिक आयाम (Ecological amplitude)

भिन्न जातियाँ अपने पर्यावरण से अपनी माँगों (आवश्यकताओं) के संदर्भ में एक अरे से भिन्न होती हैं, और साथ ही इस संदर्भ में भी कि वे अपने पर्यावरणीय दशाओं में कितना उतार-चढ़ाव सहन कर सकती हैं । जातियों की माँगों की श्रेणी और सहायता की श्रेणी इसका पारिस्थितिकी आयाम (low ecological amplitude) कहलाता है ।

किसी भी स्थान पर पायी जाने वाली कुछ प्रजातियों का पारिस्थितिकी आयाम काफी कम या निम्न स्तर (low ecological amplitude) का हो सकता है अर्थात् इनमें वातावरण के बदलाव या प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता नहीं होती, जबकि कुछ प्रजातियों की इस बदलाव के प्रति सहन शक्ति उच्च कोटि की होती है, अर्थात् इनका पारिस्थितिकी आयाम काफी ऊँचा होता है । जिन प्रजातियों में उच्च स्तर का पारिस्थितिकी आयाम (ecological amplitude) पाया जाता है, उनकी बाहय एवं आन्तरिक संरचना में, सफलतापूर्वक जीवन यापन के लिए अनेक **अनुकूलन लक्षण** (characters of ecological adaptation) पाये जाते हैं, जिनकी वजह से ये सजीव प्रजातियाँ अपनी विशिष्ट आवासीय परिस्थितियों में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई वश वृद्धि कर सकती हैं । उदाहरण के तौर पर केपेरिस (Capparis) एवं केस्जूराइना (Casuarina) में पाये जाने वाले मरुद्भिदीय अनुकूलन के लक्षण । प्रकृति में विभिन्न वातावरणीय बदलावों के प्रति अनेक प्रजातियों के अनुकूलन की इस विशेषता का गहन अध्ययन सर्वप्रथम ट्यूरेसन (Turresson 1922) के द्वारा किया गया था । उसने विभिन्न भौगोलिक वितरण क्षेत्रों में एक ही प्रजाति के अनेक प्रतिदर्श या नमूने (speciman) एकत्र करके उनकी पारिस्थितिक आयाम सम्बन्धी विभिन्नताओं की व्याख्या की थी । उसके अनुसार वातावरण के उतार-चढाव को सहन करने की क्षमता (ecological amplitude) न केवल विभिन्न प्रजातियों में अलग-अलग पाई जाती है, अपितु ये एक ही प्रजाति की विभिन्न नस्लों (races) में भी भौगोलिक वितरण के अनुसार विविधता प्रदर्शित करती हैं । विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक ही प्रजाति की विभिन्न किस्मों या नस्लों (races) के सदस्यों मे भौगोलिक वितरण के अनुसार क्रमिक रूप से संरचनात्मक एवं कार्यिकीय लक्षणों में विविधता दृष्टिगोचर होती हैं । उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर ट्यूरेसन द्वारा एक नवीन अवधारणा जीन पारिस्थितिकी (gene ecology) के रूप में प्रस्तुत की गई । इसके अन्तर्गत प्राकृतिक अवस्थाओं में एक ही प्रजाति के भीतर अलग-अलग आकारिकीय प्रारूप

(different morphological forms) मिल सकते हैं, जिनको पारिस्थितिकी प्रारूप या परिप्रारूप (Ecotypes) एवं पारिज (Ecads or Ecophenes) कहा जाता है ।

5.2.4.1 पारिज (Ecads or Ecophenes or habitat forms)

एक ही सजीव विशेषकर पादप प्रजाति के ऐसे समूह जो अलग-अलग वातावरण में उगने के कारण सूक्ष्य या गौण विभिन्नताएँ प्रदर्शित करते हैं, उनको पारिज (Ecads or Ecophenes) कहते हैं । लेकिन यदि इन पौधों को एकसमान वातावरण में उगाया जावे तो इनकी भिन्नताएँ या असमानताएँ विलोपित हो जाती है एवं ये पूरी तरह एक समान लक्षण प्रदर्शित करने लगते हैं । उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि परीज हालाँकि एक प्रजाति के सदस्य होते हैं, लेकिन इनमें लाक्षणिक असमानताएँ दिखाई देती हैं एवं इनकी असमानताएँ स्थायी या आनुवांशिक न होकर पूर्णतया अस्थायी एवं परिस्थितिजन्य होती हैं । यह भी कहा जा सका है कि इन पौधों का यदि एक समान वातावरण एवं परिस्थितियों में उगाया जावे तो कुछ पीढ़ियों के बाद ये फिर से अपनी मूल प्रजाति के लाक्षणिक गुण एवं समानताएँ परिलक्षित करते हैं । इस प्रकार एक ही प्रजाति के विभिन्न पारिज अनेक आकारिकी या कायिक लक्षणों जैसे कायिक भागों की साइज, पत्तियों की संख्या, तने की लम्बाई, पुष्प की छ.. या रग एवं पौधे की आकृति इत्यादि में असमानता प्रदर्शित करते हैं, लेकिन ये एक ही आनुवंशिक शाखा से सम्बन्धित होते हैं, अर्थात् सभी पारिज आनुवंशिक रूप से समान होते हैं । इनकी विभिन्न कायिक एवं आकारिकीय विभिन्नताएँ वातावरण द्वारा प्रभावित होती हैं अर्थात् कायिक एवं उत्क्रमणीय (reversible) होती हैं । प्रारम्भिक अध्ययनों के बाद से विभिन्न पादप प्रजातियों में अनेक प्रकार के पारियों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है । रामाकृष्णन (Ramkrishnan 1960) के अनुसार एक पादप प्रजाति यूफ़ोर्बिया हिरटा (Euphorbia hirta) में दो प्रकार के पारिज पाये जाते हैं, इनमें से एक एवं कठोर मृदा (dry and hard soils) में उगता है तथा इसका पादप शरीर श्यान अथवा विसर्पी (prostrate) होता है एवं दूसरी प्रकार का पारिज सड़कों के किनारे या खेतों में पाया जाता है इसका पादप शरीर सघन एवं सुसंहत (compact) होता है । पांडेय (Pandeya, 1962) के अनुसार दो घास प्रजातियों क्रमशः बोथ्रीयोक्लोआ परट्यूसा (Bothriochloa pertusa) एवं डाकेन्थियम केरीकोसम (Dichanthium Caricosum) के पौधों को यदि विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों में उगाया जावे तो इनकी आकारिकी, पादप शरीर की लम्बाई, संधित स्तम्भों (culms) की संख्या, प्रत्येक सन्धि स्तम्भ में शूकियों (spikes) की संख्या, प्रत्येक शूकी पर शूकिकाओं की संख्या एवं कुल बीज उत्पादन (total seed output) इत्यादि लक्षणों में इनके पारिज भिन्नता प्रदर्षित करते हैं । इन घासों के पारिजों में ये विविधताएँ अनेक जलवायु मृदा एवं जैविक कारकों के द्वारा उत्पन्न होती हैं, जिनमें पशुओं द्वारा चराई की मात्रा एवं मृदाजल या नमी' प्रमुख हैं । उपर्युक्त घासों में से प्रत्येक में दो प्रकार के पारिज (ecad) पाये जाते हैं-(1) वे पारिज (ecad) पादप जो संरक्षित चरागाहों (Protected grassland) में उगते हैं, उनका पादप स्वभाव एवं आकृति टोकरी के समान (basket type of habit) दिखाई देती है; (2) जबकि वे पारिज घास प्रजातियाँ जो

अत्यधिक चराई वाले क्षेत्रों में उगती हैं, उनका पादप स्वभाव एवं आकृति प्लेट के समान (saucer type) हो जाती हैं । पशुओं द्वारा चराई के कारण इन घासों में तने के सीधेपन (erectness of stem) एवं पुष्पक्रम में शूकियों की संख्या (no. of spikes in raceme) इत्यादि में कमी आ जाती है । इसके अतिरिक्त पौधों में कुछ कार्यिक विभिन्नताएँ (physiological variations) इत्यादि भी दृष्टिगोचर होती हैं, जैसे पुष्पन का अपेक्षाकृत जल्दी प्रारम्भ हो जाना (Initiation of early flowering) तथा पत्तियों एवं अन्य पादप भागों में लाल रंग के वर्णक (red pigment) की उत्पत्ति इत्यादि ।

5.2.4.2 पारिस्थितिकी प्रारूप या परिप्रारूप (Ecotypes)

इस प्रकार के रोचक एवं विशिष्ट पौधों को पारिस्थितिकी अथवा कार्यिकी जातियाँ (ecological or physiological) भी कहा जाता है । इस श्रेणी में उन पौधों को सम्मिलित किया जाता है, जो कि एक ही पादप प्रजाति से सम्बन्धित होने के बावजूद भी आपस में न केवल आकारिकी लक्षणों अपितु कुछ कार्यिक लक्षणों में भी असमानता या विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं । तदनुसार एक ही प्रजाति के वे पादप प्रारूप जो कि एक दूसरे से कुछ बाह्य आकारिकी एवं कार्यिकीय लक्षणों (physiological characters) में भिन्नता प्रदर्शित करते हैं, परिप्रारूप (ecotypes) कहलाते हैं । यह लक्षणों की भिन्नता इन पौधों में वातावरण की असमानता के कारण परिलक्षित होती है ।

हालांकि एक पादप प्रजाति में परिप्ररूपों (Ecotypes) का विकास अर्थात् इनके सदस्यों में भिन्नता वातावरण के परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती है, लेकिन यदि इन पौधों को समान वातावरण में रखा जावे तब भी इनके आकारिकी लक्षणों की भिन्नता विलोपित नहीं होती तथा ये पौधे एकसमान नहीं दिखाई देते । इससे स्पष्ट है कि इकोटाइप्स में विकसित आकारिकीय भिन्नताएँ आगे चलकर आनुवंशिक रूप से स्थायी (genetically fixed) हो जाती हैं एवं आगे आने वाली पीढ़ियों में भी दृष्टिगोचर होती हैं ।

ट्यूरेसन (Turresson, 1922) के अनुसार, "परिप्रारूप (Ecotype) किसी पारिस्थितिकी प्रजाति (Ecospecics) की किसी विशेष आवास स्थली के प्रति प्रदर्शित जीन प्रारूपिकी अनुक्रिया (Genotypical response) का परिणाम है । विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी प्रारूप हालाँकि आनुवंशिक रूप से भिन्नता प्रदर्शित करते हैं । लेकिन इनके बीज अन्तर्प्रजनन (Interbreeding) होता है, इसीलिए इनको एक ही प्रजाति. में सम्मिलित किया जाता है । किसी प्रजाति विशेष के विभिन्न पारिस्थितिकी प्रारूप अपनी मृदा एवं वातावरण सम्बन्धी आवश्यकताओं में भिन्नता प्रदर्शित हैं । वातावरण के अनुरूप इसमें जो विशेष अनुकूलन लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे स्थायी प्रकृति के एवं अनुत्क्रमणीय (irreversible) होते हैं, अर्थात् इनकी आनुवंशिकी प्रकृति में स्थायीपन पाया जाता है । ये अनुकूलन लक्षण गुणसूत्रों में उपस्थित जीन्स की संरचना में परिवर्तन के कारण या जीनीय पुनर्सयोजन (gene recombination) के कारण (संकरण के दौरान) अथवा समसूत्री या अर्धसूत्री विभाजन प्रक्रिया में अनियमितता के कारण अथवा केवल संयोगवश उत्पन्न हो सकते है । इस प्रकार एक प्रजाति

में विभिन्न प्रकार के परिप्रारूपों की अनेक समष्टियाँ (population) मिल सकती हैं जो एक-दूसरे से आकारिकी, कार्यिकी एवं आनुवंशिक भिन्नता दर्शाती हैं । उपर्युक्त तथ्य से स्पष्ट है कि यदि किसी प्रजाति के विभिन्न परिप्रारूपों को एकसमान वातावरण में या एक स्थान में उगाया जावे तो भी इनकी आपसी आकारिकीय एवं कार्यिकी विविधताएँ यथावत् बनी रहती हैं, विभिन्न परिप्रारूप एक समान दिखाई नहीं देते, क्योंकि ये भिन्नताएँ आनुवंशिक स्तर पर स्थायित्व ग्रहण कर लेती हैं ।

पारिस्थितिकी प्रारूपों (ecotypes) के बारे में भारत में सर्वप्रथम मिश्रा एवं राय (mishra and Rao, 1948) द्वारा अध्ययन किया गया । उनके द्वारा स्क्रोफुलेरियेसी कुल के सदस्य लिन्डनबरजिया पोलिएन्था (Lindenbergia polyantha) के विभिन्न परिप्रारूपों के बारे में जानकारी दी गई । इसके पश्चात् अनेक पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अध्ययन कर यूफोर्बिया हिरटा (Euphorbia hirta), यूफोर्बिया ड़ाइमीफोलिया (Euphoribia thymirolia), केसिया टोरा (cassia Tora) एवं जैंथियम रद्रमेरियम (Xanthium strumarium) के परिप्रारूपों की विवेचना प्रस्तुत की ।

यूफोर्बिया हिरटा (रामाकृष्णन, 1958,1960, 1961) में प्रकृति में लगभग दो परिप्रारूप थे, जिसके एक के बदले में दो प्रकार के पारिज रखता है । ये निम्नलिखित हैं-

पारिप्रारूप 1 **उर्ध्व प्रकार,** नम स्थानों में वर्धमान ।

पारिप्रारूप 2. **भयान प्रकार,** इसमें दो पारिज रहते हैं-

(i) पारिज 1 श्यान प्रकार, शुश्क कठोर मृदा में वर्धमान ।

(ii) पारिज 2. श्यान संहत प्रकार, पथ पर कुचलने के कारण पारिज 1 से व्युत्पन्न ।

एक जाति में पारिज और पारिप्रारूप का विकास उसकी विस्तृत क्षेत्रों में वितरण की क्षमता दर्शाता है । इस तरह की पृथक समष्टियों के विकास से जाति अपने आप को, नई प्रकार की दशाओं के अनुकूल परिवर्तित कर लेती है । स्पीशीज द्वारा परिवर्ती पर्यावरण की अनुक्रिया विभिन्नताओं के विकास से होती है । ये विभिन्नताएँ अस्थायी हो सकती हैं अर्थात् पर्यावरण आधारित (पारिज) या आनुवंशिक स्थिर (पारिप्रारूप) । यह सुघट्यता की डिग्री पर अत्यधिक निर्भर होता है जो उत्तदायी जाति द्वारा अधिकृत होते हैं ।

5.2.4.3 पारिजाति (Ecospecies)

यह वर्गीकरण की एक इकाई है जिसके अंतर्गत एक या अधिक पारिप्रारूप आते हैं, को यद्यपि अन्तरजननीय होते हैं किन्तु संकरण (cross) नहीं करते या फिर यदि अन्य पारिजाति के पारिप्रारूप से क्रॉसित किए जाते हैं तो जीवनक्षम सन्तान उत्पन्न नहीं करते ।

सह्यता श्रेणी पर्यनुकूलन (Tolerance range, acclimation) आवास पर्यावरण कारकों का किसी भी भौतिक आवास में वह विशिष्ट सेट प्रदर्शित करता है जहाँ कोई भी जाति प्रकृति में रहती है । आवास के भिन्न कारक ढूँढे गए हैं । एक जाति के किसी एक कारक के पूरे श्रेणी क्षेत्र में रहने को निर्धारित करने में सक्षम हो सकते हैं । हम फिर उस कारक के लिए उस जाति की सह्यता की श्रेणी जानेंगे । **स्वर्णमीन** (gold fish), उदाहरण के लिए, उस पानी में

रह सकती है जिसमें तापमन 2^0 से 34^0 सेग्रे. तक होता है किन्तु यदि तापमान इस श्रेणी से अधिक या कम होगा यह मर जाएगी । ऊष्णता से या ठंड से । सहयता श्रेणियाँ एक जाति से अन्य में भिन्न होता हैं । यही तक कि समान जातियों के लिए, किसी कारक के लिए सहयता की श्रेणी मौसम से मौसम तक भिन्न हो सकती हैं । उदाहरण के लिए, मछली या कीट या चीड़ वृक्ष का तापमान सहिष्णुता की श्रेणी मौसम से मौसम पर भिन्न हो सकते हैं, तापमान पर निर्भर होकर जिस पर वे अन्त में जीवित होते हैं । मध्यशीत में, मछली 0^0 से 24^0 से.ग्रे. तक की श्रेणी में रह सकती है किन्तु ग्रीष्म में उसी व्यष्टि की सहिष्णुता श्रेणी 33^0 से.ग्रे. तक बढ जाती है किन्तु निम्न स्तर पर केवल 15^0 सेग्रे तक । परिवर्ती पर्यावरण में पारिस्थितिक अनुक्रिया में इस प्रकार का समायोजन **पर्यनुकूलन** (acclimation) कहलाता है । पर्यनुकूलन परिवर्तनशील पर्यावरण में स्थायी रूप से जन्तु को अतिजीवित रहने के लिए अनुमत करने में अत्यधिक सहायक होता है । इस क्षमता के बिना कई जन्तु मर जायेंगे या प्रतिकूल मौसमों के दौरान अन्य क्षेत्रों पर प्रवासी होंगे ।

5.3 पादप समुदाय के लक्षण (Characteristics of Plant Community)

प्रकृति में प्रायः पेड़-पौधे एवं अन्य जीव एकल अवस्था में न मिलकर समूह के रूप में पाये जाते हैं । इन समूहों में सभी प्रकार के पेड़-पौधे एकत्रित रूप से परिलक्षित होते हैं एवं एक-दूसरे से पारस्परिक क्रिया प्रदर्शित करते हैं और परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार का सन्तुलन स्थापित करते हैं । इस प्रकार का "पादप समुच्चय (interactions) जिसके सदस्य पारस्परिक क्रियाएँ करते हुए आपसी सन्तुलन की अवस्था में पाये जाते हों, **पादप समुदाय (Plant community)** कहलाता हैं । "

समष्टि की तरह से समुदाय के भी अपने गुण होते हैं जो इसकी जाति विशेष के व्यष्टि द्वारा नहीं दर्शाये जाते । इस प्रकार के विशिष्ट गुणों पर आधारित प्रत्येक समुदाय अपनी संरचना, संगठन, उत्पत्ति और विकास रखता है । ऐसे गुण जो केवल प्रकृति में जीवीय सगठन के सामुदायिक स्तर के बारे में बताते हैं, इस प्रकार से हैं-

5.3.1 जातीय विभिन्नता (Species Diversity)

प्रत्येक समुदाय अनेक प्रकार की जातियों के पौधों, जन्तुओं और सूक्ष्म जीवों से बना होता है जो एक दूसरे से वर्गीकरण के आधार पर भिन्न होते हैं । समुदाय में जातियों की संख्या और समष्टि स्तर अत्यधिक भिन्न होते हैं । एक सम्पूर्ण समुदाय या एक खाद्य तत्व (trophic component) में जातियों की कुल संख्या का आपेक्षिक कम प्रतिशत सामान्यत: अधिक होता है (जो जीवों की अधिक संख्या, अधिक जीव भार, उत्पादकता या प्रमुखता के दूसरे मानक) और अधिक प्रतिशत सामान्यत: कम होता है । (जैसे-कम महत्वता) । यद्यपि कुछ सामान्य जातियाँ या प्रबल जातियाँ प्रत्येक खाद्य स्तर के ऊर्जा प्रवाह में महत्व भाग रखते हैं । यह कम संख्या में पाये जाने वाली जातियों की अत्यधिक संख्या है जो प्रमुख रूप से ट्राफिक

समूह और सम्पूर्ण समुदाय की जातीय विभिन्नता को निर्धारित करती है । जीवों की संख्या और उनके प्रमुखता मूल्य (संख्या, जीव भार, उत्पादकता इत्यादि) के बीच का अनुपात जातीय विविधता सूचॉक (Species diversity indices) कहलाता है ।

5.3.2 प्रभाविता (Dominance)

प्रत्येक समुदाय का अपना कोई निश्चित क्षेत्र नहीं होता अपितु ये अनेकों किलोमीटर के क्षेत्र से लेकर एक छोटे से क्षेत्र में भी सीमित हो सकते हैं । ये समुदाय चाहे छोटे हों या बड़े, लेकिन इनमें विभिन्न प्रकार की सजीव प्रजातियों का समावेश रहता है । किसी भी पादप समुदाय में पाये जाने वाले सभी पेड़-पौधे समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होते, लेकिन संगठन के दृष्टिकोण से इनको दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है । पहली श्रेणी में वे पेड़-पौधे आते हैं जिनको यदि काट दिया जावे या नष्ट कर दिया जावे तो भी पादप समुदाय की संरचना पर इसका कोई विशेष असर नहीं होता, जबकि दूसरी श्रेणी के पौधों को यदि नष्ट कर दिया जावे तो पूरे पादप समुदाय की संरचना पर इसका घातक प्रभाव पडता है तथा यह नष्ट हो जाती है । इस श्रेणी के पौधों को **प्रभावशाली या प्रमुख पादप** (domanint plant) कहते हैं । किसी भी पादप समुदाय में प्रायः एक ही प्रजाति के पौधे प्रभावशाली होते हैं, जैसे वनों में ऊँचे एवं विशालकाय वृक्ष ही प्रभावी होते हैं और उनके नीचे या छाया में अनेक प्रकार के पौधे विशेषकर शाकीय पादप पनपते रहते हैं । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के दुर्बल तने वाले आरोही पौधे, अधिपादप व अनेक पक्षी एवं जन्तु भी प्रभावी वृक्ष प्रजातियों के द्वारा संरक्षण प्राप्त करते हैं । यदि समुदाय की प्रभावी वृक्ष प्रजाति नष्ट हो जाती है तो उपरोक्त वर्णित पौधों, पक्षियों व जन्तुओं को भी संरक्षण नहीं मिल पाता, इसका घातक प्रभाव पूरे समुदाय संगठन पर पडता है । प्रायः पादप समुदाय का नामकरण भी इसकी प्रभावी वनस्पति के नाम पर ही किया जाता है । यदि किसी भी पादप समुदाय में एक ही प्रजाति के पौधे। प्रभावी होते हैं तो इसे **ससंघ** (consociation) और यदि इसमें एक से अधिक प्रजातियों के पौधे प्रभावी होने पर इसे सहसंघ (association) कहते हैं ।

5.3.3 वितरण संरचना (Distributional structure)

किसी भी पादप समुदाय में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के पौधे एक निश्चित व्यवस्थाक्रम में उपस्थित रहकर अपने समुदाय का सृजन करते हैं । एक पादप समुदाय की संरचना को समझने के लिए, हमें सर्वप्रथम यहाँ की वनस्पति के व्यवस्थाक्रम की व्याख्या दो स्तरों क्रमशः (1) क्षैतिज (horizontal) एवं लम्बवत् (Vertical) विन्यास के अंतर्गत की जा सकती है । समुदाय में वनस्पति के क्षैतिज वितरण में विभिन्न प्रकार के क्षेत्र पाये जाते हैं । हमारी पृथ्वी पर अक्षांश (latitude) एवं ऊँचाई (altitude) के अनुसार विभिन्न प्रकार के पादप समुदाय पाये जाते हैं । हिमालय पर्वत पर ऊँचाई के साथ वनस्पति के विभिन्न क्षेत्र मिलते हैं । इसी क्रम में धरती पर भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाते समय पादप समुदाय के ठीक वहीं क्षेत्र पाये जाते हैं, जो पर्वतों की ओर अधिकाधिक ऊँचाई पर अग्रसर होने पर पाये जाते हैं । यही नहीं जलीय आवासों (aquatic habits) में गहरे तालाबों या झीलों में भी प्रायः तीन क्षेत्र

पाये जाते हैं- **वेलांचली क्षेत्र** (Littoral zone), **सरोवरी क्षेत्र** (Limnetic zone) एवं **प्रोफण्डल क्षेत्र** (Profundal zone) । पादप समुदाय की संरचनाओं अर्थात् पेड़-पौधों में वनस्पति के लम्बवत् वितरण के अनुरूप स्तरण (stratification) प्रवृत्ति पायी जाती है । किसी भी पादप समुदाय में पाये जाने वाले विभिन्न प्रजातियों के पादप प्रायः एकसमान ऊँचाई के नहीं होते हैं । किसी जंगल में पेड़ पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ अलग-अलग ऊँचाई पर पाई जाती हैं । यही वृक्षों के स्तर (layer) के नीचे वृक्षों का स्तर (layer), इसके नीचे उपक्षुपों (under shrubs) एवं शाकों का स्तर एवं शाकों के नीचे प्रायः मॉस, लाइकेन एवं शैवाल प्रजातियों द्वारा अपना एक पृथक स्तर सुस्थापित रहता है । अत: यह कहा जा सकता है कि एक पादप समुदाय में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियाँ अनेक स्तरों में विस्तारित रहती हैं । इसके परिणामस्वरूप पादप समुदाय में उपस्थित विभिन्न प्रजातियाँ प्रकाश एवं अन्य संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग करने में सक्षम होती हैं । सामान्य पर्णपाती वनों के पादप समुदाय में वनस्पति के पाँच स्तरण तथा उष्ण कटिबंधी सदाहरित वर्षा वनों (tropical evergreen forests) में पौधों के आठ स्तरण तक पाये जाते हैं । पादप समुदाय में जिस प्रकार से वनस्पति का स्तरण जमीन के ऊपर पाया जाता है, ठीक उसी प्रकार से जमीन की सतह के नीचे भूमिगत भागों में कन्दों, जड़ों, प्रकन्दों एवं अन्य रूपान्तरित संरचनाओं का स्तरण पाया जाता है ।

5.3.4 पोषण संरचना (Trophic structure)

पोषण के आधार पर प्रत्येक समुदाय आत्म-निर्भरता तथा पूर्ण सन्तुलित जीवों के समूह के साथ रहता है ।

5.3.4 समुदाय गतिकी (Community dynamics)

प्रत्येक समुदाय का अपना विकास का इतिहास है, जिसमें इसकी उत्पत्ति और विकास के स्वरूप हैं । यह समय के साथ दिशात्मक बदलाव के कारण उत्पन्न होते हैं । यह दिशात्मक बदलाव पारिस्थितिक अनुक्रम (ecological succession) को पारिस्थितिक तन्त्र के विकास (ecosystem development) के रूप में भी जाना जाता है ।

पादप समुदाय की उत्पत्ति एवं विकास (Origen and Development of plant community)-किसी भी पादप समुदाय की उत्पत्ति की प्रक्रिया सर्वप्रथम पौधों के बीज व बीजाणुओं (spores) के प्रकीर्णन द्वारा प्रारम्भ होती है । ये प्रर्वध्य (propagules) संरचनाएँ, पहले किसी निर्जन या खाली क्षेत्र में (bare area) पहुँचती हैं । इस प्रक्रिया को **प्रवर्जन** (migration) कहा जाता है तथा खाली क्षेत्र में पादप प्रजाति के बीजों का अंकुरण नवांकुरों तथा (seedlings) के एक परिपक्व पौधे के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया को **आक्रमण** (invasion) कहते हैं । इस प्रकार के पादप जो अपने मूल निवास स्थान से आकर नये खाली क्षेत्र में सबसे पहले अपने आपको स्थापित कर लेते हैं, उनको **पुरोगामी** कहा जाता है । धीरे-धीरे ये पुरोगामी पौधे, प्रजनन क्रिया द्वारा अपनी वंश वृद्धि करते हैं और अपने आवास क्षेत्र का क्रमिक विस्तार कर **उपनिवेशन** (colonization) द्वारा इस नये क्षेत्र में पूर्णतया स्थापित हो

जाते हैं । इस प्रक्रिया को **सुस्थापन** (ecesis) कहते हैं । यह प्रक्रिया पादप समुदाय के विकास हेतु अत्यावश्यक है । **उपनिवेशन** के बाद किसी प्रजाति विशेष के पौधों की संख्या और अधिक बढ जाती है इसके परिणामस्वरूप इन पौधों का एकत्रीकरण या **समूहन** (aggregation) होने लगता है, जिससे पौधों में प्रकाश, आवास एवम खनिज पोषक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए स्पर्धा (competition) प्रारम्भ होती है । इस प्रतिस्पर्धा में दुर्बल पौधे नष्ट हो जाते हैं एवं केवल सक्षम पौधे ही जीवित रह पति हैं । बचे हुए पौधे आपस में तथा सयुक्त रूप से अपने पर्यावरण से पारस्परिक क्रिया तथा प्रतिक्रिया (reaction) करते है । धीरे-धीरे एक-एक पादप समुदाय अपनी एक सुनिश्चित संरचना विकसित कर लेता है तथा इसे स्थायी पादप समुदाय कहा जा सकता है । इसमें विभिन्न प्रकार के पौधों का विकास वहाँ के जलवायु पर निर्भर करता है । यहाँ की वनस्पति मे भी **पादप अनुक्रमण** (plant succession) की प्रक्रिया संचालित होती है, जिससे अन्ततोगत्वा, वातावरण के अनुसार अपने को ढाल लेने वाली वनस्पति यही अपना स्थायी आवास बना लेती हैं । इसे **चरम वनस्पति** (climax vegatation) कहा जाता है ।

5.3.6. पादप समुदाय के अध्ययन के आधार (Criteria for Study of plant community)

किसी भी पादप समुदाय को संरचना के अध्ययन में इसके अनेक विशेष लक्षण प्रमुख रूप से सहायक होते हैं । एक प्रारूपिक पादप समुदाय के विभिन्न लक्षणों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बांटा जा सकता है । ये निम्न प्रकार से हैं-

(A) विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical characters)

(B) संश्लेषणात्मक लक्षण (Synthetic characters)

5.3.6.1 विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical characters)

अध्ययन की सुविधा हेतु इनको भी दो उपवर्गों में बाटा जा सकता है-

(a) **गुणात्मक लक्षण** (Qualitative characters)-पादप समुदाय में निहित ये ऐसे लक्षण हैं, जिनको किसी पैमाने पर नहीं नापा जा सकता है, या इनको संख्यात्मक रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता । इनका केवल शाब्दिक विवरण देना ही सम्भव है । एक प्रारूपिक पादप समुदाय के प्रमुख गुणात्मक लक्षण निम्न प्रकार से है-

(1) **समुदाय स्वरूप** (Physiognomy or characters)-किसी भी पादप समुदाय का विस्तृत अवलोकन किया जावे तो उसके स्वरूप या सादृश्यता का सहज ही आकलन किया जा सकता है । इस पादप समुदाय में उगने वाली प्रभावी पादप प्रजातियों के **वृद्धि प्रारूप** (growth forms) से ही इसको एक सुनिश्चित स्वरूप या आकृति प्राप्त होती है । उदाहरण के तौर पर किसी क्षेत्र के पादप समुदाय को देखने पर इसमें अनेक वृक्ष बड़ी झाड़ियों के साथ प्रभावी प्रजातियों के रूप में दिखाई देते हैं । ऐसी अवस्था में वृक्षों की प्रमुखता को देखकर कहा जा सकता है कि यह पादप समुदाय का जंगल है । इसी क्रम में अन्य पादप समुदायों में शाकीय

एवं घास प्रजातियों की प्रमुखता को देखकर इसके घास स्थल (grassland) या समुदाय में वनस्पति की छितराई हुई विरल अवस्था को देखकर इसके मरुस्थल (desert) होने के बारे में बताया जा सकता है ।

(2) **आवर्तिता या परिघटन विज्ञान** (Phenology or periodicity or aspect ion)-डोल्स (1918) एवं अलेचिन (1926) के अनुसार किसी भी पादप समुदाय मे पौधों के जीवन चक्र की विभिन्न घटनाओं और उनकी आवृत्ति का विशेष महत्व होता है । क्योंकि समुदाय में उपस्थित प्रत्येक पादप प्रजाति में जीवन चक्र की सभी घटनाएँ या विभिन्न अवस्थाएँ जैसे पुष्पन या पतझड इत्यादि सामान्यतया एक साथ सम्पन्न नहीं होतीं । इसलिए इस सन्दर्भ में विभिन्न प्रजातियों की जीवन चक्र की प्रमुख घटनाओं का लेखा (record) तैयार किया जाता है । जीवन चक्र की इन अवस्थाओं के अध्ययन को ही आवर्तिता या परिघटना विज्ञान कहते हैं ।

(3) **लम्बवत् विन्यास का स्तरण** (Layering or stratification)-पादप समुदाय में सभी पौधे एकसमान ऊँचाई के नहीं होते, अपितु विभिन्न पेड़ पौधों की ऊँचाई के अनुसार देखा जावे तो पादप समुदाय में विभिन्न पौधों का लम्बवत् वितरण अलग-अलग सतहों या स्तरों के रूप में दिखाई देता है । इसे स्तरण (stratification) कहते हैं । किसी सघन वन के उदाहरण का अध्ययन किया जावे तो यहाँ हम देखते हैं कि वृक्षों की विभिन्न प्रजातियाँ अलग-अलग ऊँचाई की पाई जाती हैं, इसके बाद वृक्षों के स्तर के नीचे झाड़ियों का स्तर पाया जाता है एवं सबसे अन्त में भूमि की सतह से थोड़ा ही ऊपर शाकीय पौधों का एक और स्तर पाया जाता है । इस प्रकार का स्तरण पादप समुदाय के विभिन्न पादप सदस्यों के लिये अत्यन्त लाभदायक है, क्योंकि इसकी वजह से सभी पेड़-पौधों को प्रकाश, वायु, स्थान एवं अन्य संसाधनों की आवश्यकतानुसार उपयुक्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है ।

(4) **बाहुल्य** (Abundance)-पादप समुदाय की विभिन्न पादप प्रजातियों की सघनता या विरलता, इनकी समुदाय मे बाहुल्यता को निरूपित करती है । किसी आवास या पादप समुदाय में पाये जाने वाले सभी पौधे समान रूप से वितरित नहीं होते, अपितु ये छोटे या बडे समूहों में पाये जाते हैं अथवा असमान रूप से इधर-उधर छितराये हुए रहते हैं । समुदाय में उपस्थित विभिन्न पौधों के असमान एवं अनियमित फैलाव के कारण, इनके बाहुल्य 'को पाँच सम्भावित वर्गों में बाँटा जा सकता है, ये हैं- 1 बहुत दुर्लभ (very Rare), 2. दुर्लभ (Rare), 3. सामान्य (Common), 4. बहुल (Abundant), एवं 5. अत्यधिक बहुल (Much Abundant)।

(5) **सामाजिकता** (Sociability)-सामाजिकता पौधों के आपसी सम्बन्धों (निकटता) की सूचक होती है । समुदाय में पौधे छोटे-बड़े समूहों में रहते हैं । कुछ जातियों के पादप तो पास-पास उगकर सघन समष्टि (Thick population) का निर्माण करते हैं । लेकिन अन्य पौधों के घने समूह में उगने से उनमें विभिन्न पर्यावरणीय कारकों के लिये स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है जिससे ये या तो दुर्बल या नष्ट हो जाते हैं । समुदाय में सामाजिकता से विभिन्न जातियों के क्षैतिज वितरण का ज्ञान होता है । ब्राऊन ब्लेंकट (Braun Blanquet, 1932) ने सामाजिकता

को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है (जहाँ S= Sociability): S_1 -अकेले पाये जाने वाले पौधे, S_2 -कुछ पौधों का समूह; S_3-छोटे-छोटे चप्पों या क्षेत्रों में वितरित पौधे, S_4-बडे-बडे चप्पों में वितरित पौधे; एवं S_5-बहुत बडे क्षेत्रों में फैले एक ही प्रकार के पौधे ।

सामाजिकता को परिमाणात्मक रूप में निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जाता है-

$$\text{सामाजिकता} = \frac{\text{सघनता}(Density) \times 100}{\text{आवृत्ति}(Frequency)}$$

(6) **जीवनशक्ति** (Vitality)-पौधे की सामान्य वृद्धि एवं जनन क्षमता को जीवनशक्ति कहते हैं जो किसी जाति के सफलतापूर्वक जीवित रहने के लिये महत्वपूर्ण है । जीवनशक्ति के फलस्वरूप ही समुदाय में पादप अपना प्रमुख स्थान बना सकता है । जीवनशक्ति, जाति (Species) के भार पर निर्भर करती है । पौधों में स्तम्भ की लम्बाई, मूल की लम्बाई, पर्णों की संख्या, पुष्प, फलों तथा बीजों की संख्या तथा भार आदि गुण जीवनशक्ति का निर्धारण करते हैं । कुछ पौधे अच्छी जीवनशक्ति के कारण ही पादप समुदाय में प्रभावी होते हैं । मिश्रा एवं पुरी (Mishraa and Puri, 1954) ने जीवनशक्ति के आधार पर पौधों को 3 समूहों तथा ब्राऊन ब्लेंकट (Braun Blanquet, 1932) ने चार समूहों में विभक्त किया । डॉबनमायर (Daubenmire, 1968) ने जीवनशक्ति के आधार पर पौधों के निम्नलिखित समूह बनाये हैं- V_1-अंकुरण के पश्चात् शीघ्र मर जाते हैं; V_2-पौधे अंकुरण के पश्चात कुछ वृद्धि करते हैं लेकिन प्रजनन नहीं कर सकते; V_3-पौधे जे केवल कायिक जनन ही करते हैं; V_4-पौधे जिनमें लैंगिक जनन तो होता है किन्तु बहुत कम; एवं V_5-पौधे जो लैंगिक प्रजनन कर वृद्धि करते हैं । (यहाँ V= जीवनशक्ति (Vitality) है ।)

(7) **जीवन प्रारूप या वृद्धि प्रारूप** (Life forms or Growth forms)- विभिन्न पादप परिस्थिति वैज्ञानिकों ने पादप समुदायों के अध्ययन के अन्तर्गत, समुदाय के पौधों को उनके वृद्धि प्रारूपों में विभेदित करने के प्रयास किये हैं । इस प्रकार के निर्धारण में पौधे के दृष्टव्य लक्षणों विशेषकर आकृति (size and shapes) को प्रमुखता दी गई है । इवरसन (1936) ने **आवासीय प्रारूपों** (habit froms) एवं हेनसन (1980) ने **वृद्धि प्रारूपों** (growth forms) का वर्गीकरण प्रस्तुत किया । लेकिन रॉनकेयर (1905) द्वारा सर्वप्रथम प्रस्तुत **जीवन प्रारूपों** (Life froms) के आधार पर समुदाय के विभिन्न पौधों के वर्गीकरण को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई, क्योंकि इसको पर्यावरण से सम्बद्ध माना गया था । स्वीडन के पादप पारिस्थितिकी वैज्ञानिक रॉनकेयर ने सर्वप्रथम पौधों के उन अनुकूलन लक्षणों का विशेष रूप से उल्लेखन किया, जिनका सम्बन्ध जलवायु से होता है । इसके अतिरिक्त किसी भी पौधे की वंशवृद्धि या उत्तरजीविता बीजों के अतिरिक्त **चिरकालिता संरचनाओं** (perennating organs) पर निर्भर करती है । काष्ठीय पौधों में चिरकालिता संरचनाएँ **कायिक कलिकाओं** (Vegetative) के रूप में होती हैं, जबकि अन्य पौधों में ये भोजन संचयी भूमिगत संरचनाओं जैसे कन्द, प्रकन्द, घनकन्द या प्रकन्द इत्यादि के रूप में पाई जाती हैं । यदि ये चिरकालिता संरचनाएँ जलवायु की विषमताओं को सहन कर सकते हैं और अपने-आप को इस प्रकार सुरक्षित रखते हैं कि अत्यधिक गर्मी या सर्दी होने पर भी जीवन क्षम रहें, तो ये पौधे पादप समुदाय में बने रहते हैं, अन्यथा समाप्त हो

जाते हैं । रॉनकेयर (Raunkiaer 1913,1918) ने इन चिरकालिता संरचनाओं की उपस्थिति, स्थिति और इनके सुरक्षात्मक आवरणों के आधार पर विभिन्न पौधे को **जीवन प्ररूपों** की पाँच श्रेणियों में विभेदित किया है, ये हैं, **फेनेरोफाइट,** (Phanerophyte) **केमीफाइट**, (Chamaephyte) **हेमीक्रिप्टोफाइट,** (Hemicryptophyte), **क्रिप्टोफाइट** (Cryptophyte) और **थीरोफाइट** (Therophyte) (चित्र 5.5) । इसके बाद सन् 1934 में रॉनकेयर ने ही, मांसल या गूदेदार पौधों (Succulents), जलोद्भिद् (Hydrophytes), अधिपादप (Epiphytes) एवं पंकोद्भिद् (Helophytes or marshland plants) को अलग जीवन प्रारूपों (Life forms) के तौर पर निरूपित किया । अपने वर्गीकरण में रॉनकेयर ने असंवहनी पौधों (cryptogams) को सम्मिलित नहीं किया था । रॉनकेयर के पश्चात अनेक पादप परिस्थितिकी वैज्ञानिकों द्वारा जीवन प्ररूप पद्धति में संशोधन करने के प्रयास किये गये । इसके अतिरिक्त ब्रान ब्लैंकेट द्वारा क्रिप्टोगेम्स के लिए भी तीन जीवन प्ररूप शामिल किये गये थे । रॉनकेयर द्वारा प्रस्तुत जीवन प्ररूपों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार रमे है (चित्र 5.5)-

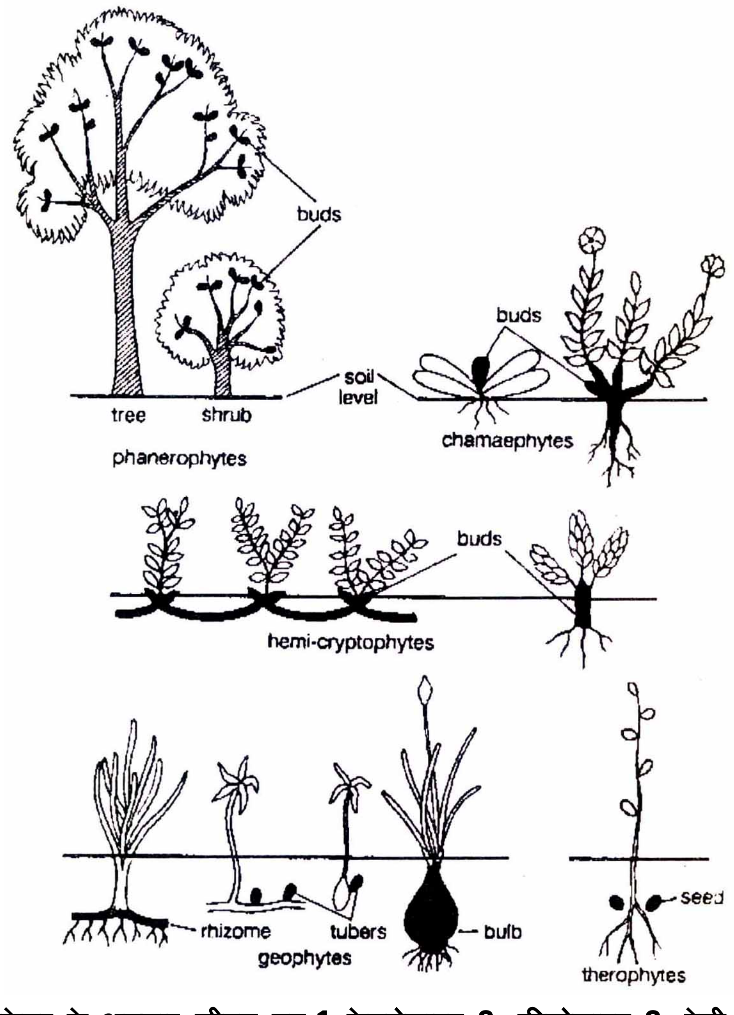

चित्र 5.5. रॉनकेयर के अनुसार जीवन रूप-1 फेनरोफाइट 2. कीमोफाइट 3. हेमी-क्रिप्टोफाइट 4. जियोफाइट एवं 5. थीरोफाइट (वर्मा, 2004)

(a) **फेनेरोफाइट्स** (Phanerophytes)- इस जीवन प्ररूप वर्ग में उन काष्ठीय एवं वायवीय पौधों अर्थात् वृक्ष एवं झाड़ियों को शामिल किया गया है, जिनमें चिरकालिता संरचनाएँ (Perennating buds) जमीन की सतह से 30 सेमी. से भी अधिक की ऊँचाई पर पाई जाती हैं तथा ये कलिकाएँ प्रायः सुरक्षात्मक आवरण द्वारा ढकी हुई नहीं होती । वैसे कभी-कभी इन कलिकाओं पर शल्क के समान आवरण पाये जाते हैं । पौधों की ऊँचाई, पत्तियों की अवधि एवं कलिकाओं की सुरक्षा के आधार पर रॉनकेयर द्वारा फेनेरेफाइट्स को 13 वर्गों में बाँटा गया था, इनमें से निम्न उपवर्ग प्रमुख हैं-

(i) **मेगोफेनेरोफाइट्स** (Megaphanerophytes, Mg)-ये बृहत्काय वृक्ष होते हैं, जिनकी ऊँचाई प्रायः: 30 मीटर या इससे अधिक की होती है ।

(ii) **मीजोफेनेरोफाइट्स** (Mesophanerophytes, Ms)-ये मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं जिनकी ऊँचाई 8 से 30 मीटर तक की होती है ।

(iii) **माइक्रोफेनेरोफाइट्स** (Microphanerophytes, Mi)-ये छोटे वृक्ष या बडी झाड़ियाँ होती हैं, जिनकी ऊँचाई 2 से 8 मीटर तक की होती है ।

(iv) **नेनोफेनेरोफाइट्स** (Nanophanerophytes, N)-ये छोटी झाड़ियाँ अथवा उपक्षुप पादप होते हैं, जिनकी ऊँचाई 2 मीटर से कम होती है ।

इसके अतिरिक्त अधिपादप पौधों को भी फेनेरोफाइट्स को भी सम्मिलित किया जा सकता है अथवा आधुनिक मत के अनुसार इनको पृथक जीवन प्ररूप श्रेणी में रखा गया है ।

(b) **केमीफाइट** (Chamaephytes, Ch)-ये छोटी झाड़ियाँ अथवा भूस्पर्शी पौधे होते हैं, जिनमें चिरकालिता संरचनाएँ या अन्य भाग जमीन की सतह से ऊपर लेकिन 25 सेमी. से कम ऊँचाई पर पाये जाते हैं । इनमें भूमि के समानान्तर फैलने वाले शाकीय अथवा काष्ठीय बहुवर्षी पौधे सम्मिलित किये गये हैं, जैसे ट्राइफोलियम रेपेन्स अधिक ऊँचाई वाले इलाकों में केमीफाइट बहुतायत से पाये जाते हैं ।

(c) **हेमीक्रिप्टोफाइट्स** (Hemicryptophytes, H)-इन पौधों में चिरकालिता संरचनाएँ जमीन की सतह पर या जमीन के ठीक नीचे पाई जाती हैं । ये पौधे प्रायः मृत कार्बनिक अवशेषों अथवा बर्फ से ढके होते है । इनमें समूह में पाये जाने वाले पौधे एवं घासें प्रमुख हैं, जैसे कारेक्स (Carex) एवं कॉनवाल्वुलस (Convolvulus) इत्यादि ।

(d) **क्रिप्टोफाइट्स या जियोफाइट्स (**Cryptophytes, Cr or Geophytes, Ge)-इस समूह के पौधों में चिरकालिता संरचनाएँ जमीन में या किसी अन्य अधोस्तर के नीचे सुरक्षित रहती हैं । रानकेयर ने क्रिप्टोफाइट्स के एक भाग को नये वर्ग जलोद्भिदों (hydrophytes) के रूप में पृथक कर दिया था अत: कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार क्रिप्टोफाइट्स को केवल **जियोफाइट** कहा जाता है । जबकि अन्य वैज्ञानिकों ने क्रिप्टोफाइट्स को जियोफाइट्स एवं हाइड्रोफाइट्स के रूप में पृथक किया है । इस समूह में मूल परजीवी पौधे जैसे, ओरोबेन्की (Orobanchae), रेफलीसिया (Rafflesia) एवं भूमिगत चिरकालिता संरचनाओं क्रमशः राइजोम व ट्यूबर युक्त पौधे जैसे फर्न्स इत्यादि को सम्मिलित किया गया है ।

(e) **थीरोफाइट** (Therophytes,Th)-इन पौधों में चिरकालिता संरचनाएँ नहीं होती, अपितु ये अल्पजीवी, एकवर्षीय शाकीय पौधे होते हैं, जिनकी उत्तरजीविता या वंशवृद्धि केवल बीजों के द्वारा ही होती है । ये पौधे बीजों के द्वारा ही प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हैं (चित्र 5.5) ।

(f) **जलोद्भिद** (Hydrophytes, Hy)-ये विभिन्न प्रकार के जलीय पादप होते हैं, जिनकी चिरकालिता संरचनाएँ (राइजोम व ट्यूबर आदि) जल के नीचे कीचड़ में पड़े रहकर उत्तरजीविता का कार्य करती हैं ।

(g) **मांसल या गूदेदार पौधे** (Succulent)-इस वर्ग में विभिन्न **केक्टसों** (Cactii) एवं यूफ़ोर्बिया (Euphorbia) की कुछ प्रजातियों में प्रायः तना गूदेदार एवं पत्ती के समान संरचना में रूपान्तरित हो जाता है एवं चिरकालिता संरचना के रूप में कार्य करता है । इस तने पर काँटों से ढकी हुई कक्षस्थ कलिकाएँ (axillary buds) उपस्थित होती हैं । इस प्रकार के अनेक पौधों में तने के अतिरिक्त जड़ें एवं पत्तियाँ भी गूदेदार होती हैं ।

(h) **अधिपादप** (Epiphytes)-चिरकालिता के सन्दर्भ में ये पौधे फेनेरोफाइट्स के जैसे ही होते हैं, लेकिन विशेष प्रकार की जलवायु से सम्बन्धित कुछ अनुकूलन लक्षणों के आधार पर ही इनको पृथक वर्ग में रखा गया है । इस वर्ग में अर्धपरजीवी (semiparasites) पौधों को भी सम्मिलित किया गया है ।

जैवीय वर्णक्रम (Biological or Phytoclimate spectrum)-रॉनकेयर की जीवन प्ररूप विधि (life form method) के अनुसार किसी पादप समुदाय के अध्ययन करने में, **जैवीय वर्णक्रम** (Biological spectrum) को निरूपित किया जाता है, **किसी भी पादप समुदाय में उपस्थित विभिन्न प्रकार के जीवन प्ररूपों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व उस समुदाय का जैवीय वर्णक्रम (Biological spectrum) कहलाता है ।** इसमें विभिन्न जीवन प्ररूपों की प्रतिशत मात्रा प्रदर्शित की जाती है ।

किसी भी पादप समुदाय का जैवीय वर्णक्रम प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम इसमें उपस्थित विभिन्न प्रकार के जीवन प्ररूपों की समूहवार गणना की जाती है एवं प्रत्येक प्रकार के जीवन प्ररूप की प्रतिशत मात्रा प्राप्त कर ली जाती है । इस प्रकार के विभिन्न जीवन प्ररूपों की प्रतिशत मात्रा उस समुदाय विशेष के जैवीय वर्णक्रम को निरूपित करती है । रॉनकेयर ने इस विधि के द्वारा समूचे विश्व का जैवीय वर्णक्रम (Raunkiarer’s normal spectrum) प्राप्त किया है । इसके अनुसार विश्व के फ्लोरा में विभिन्न प्रकार के जीवन प्ररूपों की प्रतिशत मात्रा क्रमशः इस प्रकार है- फेनेरोफाइट्स-46, केमीफाइट्स-9, हेमीक्रिप्टोफाइट्स- 26, क्रिप्टोफाइट्स-6 एवं थीरोफाइट्स-13(चित्र 5.6) ।

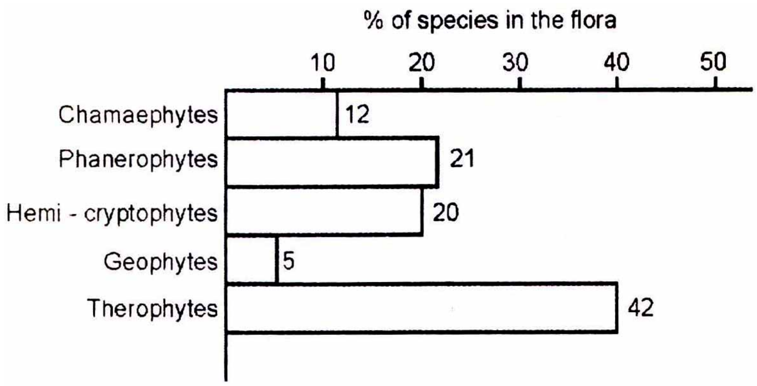

चित्र 5.6 जैवीय वर्णक्रम (Biological spectrum) आरेख (सुब्रहमण्यम व साम्बामूर्ति 2000)

इसे रॉनकेयर का सामान्य जैवीय वर्णक्रम भी कहा जाता है । स्थानीय परिस्थितियों में यदि किसी पादप समुदाय के जैवीय वर्णक्रम (Biological spectrum) तैयार करके, इसकी तुलना रॉनकेयर के सामान्य वर्णक्रम (Normal spectrum) से की जावे तो स्पष्ट होता है कि स्थानीय परिस्थितियों में थीरोफाइट्स की संख्या, सामान्य वर्णक्रम की तुलना में बहुत अधिक है । ये क्षेत्र विशेष की शुष्क या मरुस्थलीय परिस्थितियों (Desert nature of the area) का परिचायक है, क्योंकि मरुस्थलीय वातावरण (Desert Climate) में जहाँ शुष्क परिस्थितियाॅ बहुत अधिक लम्बे समय तक (Long dry seasons) विद्यमान रहती हैं, वहाँ थीरोफाइट्स की बहुलता पाई । लेकिन फिर भी जलवायु संकेतक (Climate indicator) के रूप में, जैवीय वर्णक्रम (Biological spectrum) की उपयोगिता अत्यन्त सीमित है, क्योंकि इसके द्वारा पारिस्थितिकी कारक को जैविक व्यवधानों के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जाती । गंगा के. मैदानी क्षेत्रों की जलवायु क्योंकि वनों के लिए अधिक उपयुक्त है, अत. यदि वही के जैवीय वर्णक्रम का अध्ययन किया जावे तो इसमें फेनेरोफाइट्स का प्रतिशत निश्चित ही अधिक होना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं होता । यहाँ भी थीरोफाइट्स की ही बहुलता पाई जाती है । इसे एकमात्र सम्भावित कारण, मनुष्य एवं पशुओं द्वारा इस क्षेत्र की वनस्पति को प्रभावित करता है (जैविक कारक) । दूसरे शब्दों में कृषि कार्य या पशुओं द्वारा चराई से यहाँ की वनस्पति प्रभावित होती है ।

(8) **प्रकीर्णन या परिक्षेपण अंगों का प्रकार** (Dissemnule type)-विभिन्न पादप समुदायों में पौधों के प्रकीर्णन अंगों के प्रकारों का पारिस्थितिक महत्व सर्वप्रथम डान्सेराऊ एवं लेम्स के द्वारा परिलक्षित किया गया । उनके द्वारा इन अंगों की आकृति, संरचना एवं साधन के आधार पर निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है-

1. प्रकीर्णन का प्रकार	आकृति के अनुसार प्रकीर्णन संरचना	उदाहरण
2. वायु परिक्षेपित (Anemochore)	छोटे व हल्के पंखदार (Winged) रोमिल	फर्न व आरकिडस पाइनस (Pinus) व टीलियाट्राइडेक्टा (Tridax)

	(Plumose) अन्य	वकेलोट्रोपिस (Calotropis) पेपेवर (Papaver)
3. प्राणी परिक्षेपित (Zoochore)	रसदार (Fleshy) चिपकाने वाले (Adhesive) कड़े बीज (nut like)	रूबस (Rubus) ऐडनोकोलोन व रोन्क्रसअमरूद व फाइकस (Ficus)
4. जल परिक्षेपण (hydrochore)	उत्प्लावन (Buoyant) व तैरने वाले (Floating) अस्फालन कप(Splash cup)	जलकुम्भी (Eichhorina) व हाइड्रिला (Hydrilla) मारकेन्शिया (Marchantia)
5. स्वपरिक्षेपण (Autochore)	विस्फोटक (Explosive) स्टोलन द्वारा (By Stolen)	वायोला (viola) एवं रुऐलिया (Ruellia) कोनवोल्वुलस (Convolvulus) व फ्रेगेरिया (Fragaria)

प्रकीर्णन संरचनाओं का सर्वाधिक महत्व प्रायः पादप समुदाय के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में होता है क्योंकि किसी नये क्षेत्र या आवासीय स्थल में पहुँचने वाले पौधों का प्रकार इन संरचनाओं की विशेषता पर ही निर्भर करता है । पादप समुदाय के विभिन्न स्तरों में पाये जाने वाले पौधों में भी प्रायः अलग-अलग प्रकार की प्रकीर्णन संरचनाएँ पाई जाती हैं । यही नहीं, विभिन्न पादप समुदायों में भी पौधों के द्वारा अपनाये जाने वाले प्रकीर्णन के साधन अलग-अलग होते हैं, अत: इस लक्षण विशेष का उपयोग अलग-अलग पादप समुदाय के तुलनात्मक अध्ययन में किया जा सकता है ।

(9) **पत्तियों का आकार** (Size of Leaf)-सामान्यतया किसी भी पादप समुदाय के पौधों में विभिन्न प्रकार की पत्तियाँ उपस्थित होती हैं । पत्तियों की आकृति एवं परिमाप (Safe and Size) पर जलवायु का विशेष प्रभाव पडता है । नम एवं उष्ण (Humid and Size) जलवायु में पत्तियों का आकार बड़ा एवं शुष्क जलवायु (arid climate) में छोटा होता है । बैली एवं सिनोट (Bailey and Sinnot, 1916) के द्वारा पत्तियों की आकृति एवं जलवायु के आपसी सम्बन्धों के बारे में विरतृत विवेचना की गई है । रॉनकेयर (Raunkiaer, 1934) के द्वारा पत्तियों के आकारों को 6 वर्गों में विभेदित किया गया है-

1. लेप्टोफिल (LeptophyII)-पत्ती का आकार 25 वर्ग मिमी. से कम
2. नेनोफिल (NanophyII)-पत्ती का आकार 25 से 225 वर्ग मिमी.
3. माइक्रोफिल (MicrophyII)-पत्ती का आकार 225 से 2025 वर्ग मिमी.
4. मीजोफिल (MesophyII)-पत्ती का आकार 2025 से 18225 वर्ग मिमी.
5. मेक्रोफिल (MacrophyII)-पत्ती का आकार 18225 से 164025 वर्ग मिमी.
6. मेगाफिल (MegaphyII)पत्ती का आकार 164025 वर्ग मिमी. से अधिक ।

इस प्रकार पत्तियों के आकार सम्बन्धी लक्षण का उपयोग भी विभिन्न प्रकार की जलवायु में पाये जाने वाले पादप समुदायों के अध्ययन में किया जा सकता है ।

(ब) परिमाणात्मक लक्षण (Quantitative characters)

पादप समुदाय के वे लक्षण जिनका मापन सम्भव हो तथा जिनको परिमाणात्मक रूप में व्यक्त किया जा सके, **परिमाणात्मक लक्षण** कहलाते हैं । **पादप आवृत्ति** (Frequency), पादप सघनता (Density), बाहुल्य (Abundance) तथा आवरण एवं **आधारीय क्षेत्र** (Cover and basal area) आदि पादप समुदाय के परिमाणात्मक लक्षण कहे जाते हैं ।

पादप समुदाय के अध्ययन की विशेष विधियों जैसे **प्रतिचयन तकनीकों** (Sampling techniques) द्वारा परिमाणात्मक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है, जबकि गुणात्मक लक्षणों के अध्ययन में नमूना इकाई (Sampling unit) की आवश्यकता नहीं होती ।

यूरोप के पारिस्थितिकविज्ञों विशेषकर ब्राउन दनेंकट (Braun Blanquet) के नेतृत्व में पादप समुदाय के वर्णन तथा वर्गीकरण की एक प्रणाली (System) विकसित की गई है । पारिस्थितिक के इस पहलू या प्रणाली को **पादप सामाजिक विज्ञान** (Phytosociology) कहते हैं । पादप समुदायों के पादप समाज विज्ञानीय अध्ययनों के लिये प्रतिचयन या नमूना इकाइयाँ काम में लेते हैं अर्थात् पादप समुदाय के परिमाणात्मक गुणों के अध्ययन के लिये प्रतिचयन या नमूना इकाइयों की आवश्यकता होती है । **पादप सामाजिक विज्ञान विधियों** (Phytosociological methods) में प्रतिचयन इकाइयों के 3 रूपों (Forms) का उपयोग किया जाता है । ये हैं- **क्षेत्र** (Area), **कतार** (Line) तथा **बिन्दु** (Point) । क्षेत्र तथा कतार प्रतिचयन इकाइयों में प्रतिचयन के लिये एक निश्चित क्षेत्र होता है परन्तु सघन वनस्पति वाले भागों में एक निश्चित क्षेत्र होता है परन्तु सघन वनस्पति वाले भागों में एक निश्चित क्षेत्र लेने में कठिनाई आती है अत: ऐसे स्थानों पर बिन्दु (Point) प्रतिचयन इकाई ली जाती है । प्रतिचयन इकाई की प्रकृति के आधार पर पादप समुदाय के अध्ययन की 3 प्रमुख विधियाँ हैं-

(क) **वर्ग जालिका विधि या क्वाड्रेट विधि** (Quadrat method)-इस विधि में नमूना इकाई एक निश्चित क्षेत्र में होता है जो एक वर्ग (Square), आयत (Rectangular) या गोला (Cricle) हो सकता है ।

(ख) **ट्रान्सेक्ट विधि** (Transect method)- इस विधि में प्रतिचयन इकाई एक निश्चित लम्बाई की कतार (Line) होती है ।

(ग) **बिन्दु या क्षेत्र रहित विधि** (Point method or Plotless method)- प्रतिचयन इकाई एक बिन्दु होता है । प्रतिचयन इकाई में आने वाले पौधों के आकड़े प्राप्त कर पादप समुदाय में सघनता, बाहुल्य, प्रधानता आदि ज्ञात की जाती है ।

परिमाणात्मक लक्षणों की विवेचना

(i) **पादप आवृत्ति** (Plant Frequency)- आवृत्ति पादप समुदाय में जाति विशेष के परिक्षेपण या बिखराव (Drspersion) की मात्रा को इंगित करती है । किसी समुदाय में एक जाति के पौधों का समान या असमान वितरण का सूचक आवृत्ति ही होती है । वितरण में भिन्नता पर्यावरणीय भौतिक या जैविक कारकों के कारण हो सकती है । किसी पादप समुदाय के क्षेत्र में

उपयुक्त संख्या में क्वाड्रेट्स डालकर उसमें अमुक जाति की प्रतिशत उपस्थिति ज्ञात की जाती है । किसी समुदाय में एक जाति के प्रतिशत परिक्षेपण को उसकी आवृत्ति कहते हैं । क्वाड्रेट्स की संख्या जिनमें वह जाति उपस्थित है

$$\text{आवृत्ति (प्रतिशत)} = \frac{\text{क्वाड्रेट्स की संख्या जिनमे वह जाती उपस्थित है}}{\text{अध्ययन किये गए कुल क्वाड्रेट्स की संख्या}} \times 100$$

उपरोक्त विधि से प्रत्येक जाति की आवृत्ति ज्ञात की जा सकती है । जब एक जाति समुदाय के पूरे क्षेत्र में बाहुल्यता से बिखरी हुई है तो वह सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थित होंगी । अत: इसकी आवृत्ति 100 प्रतिशत होगी अर्थात् किसी जाति की उच्च आवृत्ति इसके एक समान परिक्षेपण का द्योतक है । राउनकियर (Raunkieaer, 1934) ने पादप समुदाय में विभिन्न जातियों के पादपों को पाँच आवृत्ति श्रेणियों में विभक्त किया

श्रेणी	आवृत्ति
A.	1-20%
B.	21-40%
C.	41-60%
D.	61-80%
E.	81-100%

बाद में **राउनकियर** (Raunkiaer) ने अपने आठ हजार क्वाड्रेट्स के अध्ययनों के आधार पर आवृत्ति के नियम का प्रतिपादन किया । आवृत्ति श्रेणी A में जातियों की संख्या B श्रेणी से अधिक होगी, B श्रेणी में जातियों की संख्या C श्रेणी से अधिक होगी, C,D के बराबर, कम या अधिक हो सकती है तथा D, E से कम होगी ।

इसको इस प्रकार भी लिखा जा सकता है-

$$A > B > C \begin{smallmatrix} > \\ = \\ < \end{smallmatrix} D > E$$

अर्थात् क्षीण बिखराव या आवृत्ति वाली जातियों की संख्या, उच्च आवृत्ति वाली जातियों की संख्या की अपेक्षा अधिक होती है । किसी जाति की आवृत्ति का, दूसरी जातियों की आवृत्ति से तुलना करने पर आपेक्षित आवृति प्राप्त होती है, जिसे निम्नलिखित विधि से ज्ञात कर सकते हैं-

$$\text{एक ही जाति की आवृत्ति} = \frac{\text{एक ही जाति की आवृति}}{\text{समस्त जातियों की कुल आवृति}} \times 100$$

(ii) **सघनता या घनत्व** (Density)-पादप समुदाय के एक इकाई क्षेत्रफल में पाये जाने वाले एक प्रजाति के पौधों की कुल संख्या को उस प्रजाति की सघनता (Density) कहा जाता है । इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते

$$\text{सघनता(Density)} = \frac{\text{अध्ययन किये गये सभी क्वाड्रेट्स में एक प्रजाति के पौधों कुल संख्या}}{\text{अध्ययन किए गये क्वाड्रेट्स की संख्या}}$$

जब किसी पादप प्रजाति की सघनता का तुलनात्मक अध्ययन पादप समुदाय की सभी प्रजातियों की सघनता के साथ किया जाता है तो इसे सापेक्षिक सघनता (relative density) कहते हैं । इसका प्रतिशत मान (percentage value) निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है-

$$\text{साक्षेपिक घनत्व (प्रतिशत)} = \frac{\text{एक ही प्रजाति के पौधों की सघनता}}{\text{समस्त प्रजातियों के पौधों की सघनता}} \times 100$$

(iii) बाहुल्य (Abundance)-किसी समुदाय के प्रत्येक इकाई क्षेत्र में उपस्थित विभिन्न जातियों के सदस्यों की संख्या को बाहुल्य कहते हैं । किसी क्षेत्र में यादृच्छिक (Random) रूप से डाली गई सभी प्रतिचयन ईकाइयों या क्वाड्रेट्स में विभिन्न जातियों के सदस्यों की संख्या ज्ञात करके निम्नलिखित सूत्र से बाहुल्य निकालते है-

$$\text{बाहुल्य} = \frac{\text{अध्ययन किए गए समस्त क्वाड्रेट्स में अमुक जाति के पौधों की कुल संख्या}}{\text{कुल क्वाड्रेट्स की संख्या जिसमें यह पायी जाति है}}$$

बाहुल्य किसी भी जाति की **संख्यात्मक सामर्थ्य** (Numerical strength) का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं करती है क्योंकि इसके आकलन में केवल उन्हें क्वाड्रेट्स को सम्मिलित किया जाता है जिनमें वह जाति उपस्थित है। अध्ययन किये गये सभी क्वाड्रेट्स को सम्मिलित नहीं किया जाता है ।

(iv) प्रधानता (Dominance)-यह लक्षण किसी पादप समुदाय में एक प्रजाति के सापेक्ष महत्व (relative importance) को प्रदर्शित करता है । हेन्सन एवं चर्चिल (Hanson & Churchill, 1961) के अनुसार प्रधानता को संश्लेषणात्मक (synthetics) लक्षण माना गया है, लेकिन डॉबनमायर (Daubernmire, 1968) ने इसे एक विश्लेषणात्मक गुण (analytical character) बताया है, जिसका परिमापन किया जा सकता है । पारिस्थितिक दृष्टिकोण के आधार पर यदि देखा जावे तो पादप समुदाय में उपस्थित सभी प्रजातियाँ समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होती, जैसे सघन वन में एक शाकीय पौधे का कोई विशेष महत्व नहीं होता एवं शाकीय पादप समुदाय में एक वृक्ष या झाड़ी का स्थान गौण होता है । इस लक्षण के अध्ययन के लिए पादप आवरण (plant cover) को विशेष महत्व दिया जाता है ।

शिखर आवरण एवं आधारीय आवरण या क्षेत्र (Canopy cover and Basal cover or Area)-अन्य विश्लेषणात्मक लक्षणों जैसे, पादप आवृत्ति, सघनता या बाहुल्यता का अध्ययन ही किसी पादप समुदाय में किसी पौधे के विस्तार की जानकारी के लिए काफी नहीं है । अत: पादप विस्तारण की सही जानकारी हासिल करने के लिए उरारोक्त लक्षणों के साथ पादप के शिखर एवं आधारीय आवरण (canopy and basal cover) का भी परिमापन किया जाता है । पौधे के जो भी वायवीय भाग (aerial parts) जैसे पत्तियाँ, शाखाएँ व तना जो भी भूमि की सतह के ऊपर छाये हुए रहते हैं, इनको शिखर आवरण के अन्तर्गत सम्मिलित, किया जाता है । इसी प्रकार आधारीय क्षेत्र के आवरण के अध्ययन हेतु पौधों के तने या शाखा के आधारीय भाग पर जड़ के पास से नापा जाता है । सामान्यतया शाकीय पौधों में तो तने के आधारीय

भाग में जमीन से 25 सेमी. ऊपर, एवं वृक्षों में जमीन से 1.3 मीटर ऊपर व्यास से आधारीय आवरण या क्षेत्र का अध्ययन किया जाता है ।

5.3.6.2 संश्लेषणात्मक लक्षण (Synthetic Characters)

किसी समुदाय के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक लक्षणों का संगठन (Computing) कर उनके निष्कर्षों के आधार पर जो लक्षण आते हैं या जो लक्षण बनते हैं, उन्हें **संश्लेषणात्मक लक्षण** कहते हैं । मुख्य संश्लेषणात्मक लक्षण निम्नलिखित हैं-

(a) **उपस्थिति एवं स्थिरता** (Presence and Constance) - यह लक्षण प्रायः पादप आवृत्ति से सम्बन्धित है । यदि किसी पादप प्रजाति की आवृत्ति अधिक हो तो इसे समुदाय में अधिक उपस्थित एवं स्थायी माना जाता है । ब्रॉन ब्लैंकेट (Braun Blankets 1932) के अनुसार उपस्थिति एवं स्थिरता को 5 वर्गों में बाँटा गया है-

(i) **दुर्लभ** (Rare)-जब कोई प्रजाति अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में 1 से 20 प्रतिशत की उपस्थिति दर्शाती है ।

(ii) **विरल** (Seldom present) - कोई प्रजाति अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में 21' से 40 प्रतिशत उपस्थित हो ।

(iii) **प्रायः उपस्थित** (Often present)-जब कोई प्रजाति अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में 41 से 60 प्रतिशत तक उपस्थित हो ।

(iv) **अधिकतर उपस्थित** (Mostly present)-अध्ययन किये गये 61 से 80 प्रतिशत क्वाड्रेट्स में जब कोई प्रजाति उपस्थित हो ।

सदैव उपस्थित जब कोई प्रजाति अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में 81 से 100 प्रतिशत उपस्थित हो ।

सामान्यतया इस लक्षण की जानकारी का उपयोग दो पादप समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये किया जाता है।

(b) वासनिष्ठा (Fidelity)-अनेक पादप समुदायों के विस्तृत अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ पादप प्रजातियाँ विशेष समुदाय में ही पाई जाती हैं, जबकि अनेक प्रजातियाँ किसी समुदाय में मिल जाती हैं । इस प्रकार के सम्बन्ध को वासनिष्ठा (fidelity) द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है । ब्रॉन ब्लैंकेट (Braun Blanket, 1932) के अनुसार वासनिष्ठा को भी 5 वर्गों में बाँटा गया है, जो कि निम्न प्रकार है-

(i) **संयोगी प्रजातियाँ**

F_1-अजनबी (Stranger)-ये पादप प्रजातियाँ किसी भी पादप समुदाय में दुर्लभ होती है तथा केवल संयोगवश ही उस समुदाय में पाई जाती हैं अथवा ये अनुक्रमण की पूर्वावस्थाओं में बची हुई होती हैं ।

(ii) **सहयोगी प्रजातियाँ-**

F_2-उदासीन (Indifferent)-ये प्रजातियाँ भी समुदाय मे पाई जा सकती हैं और इनका सम्बन्ध किसी पादप समुदाय से विशिष्टतापूर्वक स्थापित नहीं किया जा सकता ।

(iii) **अभिलाक्षणिक प्रजातियाँ-**

F_3-वरीयता वाली प्रजातियाँ (Selective)-ऐसी पादप प्रजातियाँ जो विशेष तो अनेक पादप समुदायों में उपस्थित रहती हैं, लेकिन कुछ पादप समुदायों में बहुलता से पाई जाती हैं ।

F_4-वरणात्मक प्रजातियाँ (Exclusive) - वे पादप प्रजातियाँ जो केवल कुछ विशेष प्रकार के पादप समुदायों में ही पाई जाती हैं, लेकिन कभी-कभार अन्य पादप समुदायों में भी मिल सकती हैं ।

F_5-विशिष्ट या सत्य प्रजातियाँ (Exclusive)-ये पादप प्रजातियाँ किसी एक विशेष समुदाय में ही पाई जाती हैं । वासनिष्ठा (fidelity) के लक्षण का उपयोग पादप समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन में तो कर ही सकते हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त, वासनिष्ठा को प्रदर्शित करने वाली अभिलाक्षणिक पादप प्रजातियों का उपयोग समुदाय की सूचक (indicator) प्रजातियों के रूप में भी किया जा सकता है ।

(c) **प्रमुखता या महत्ता** (Dominance or Importance)-वैसे तो परिमाणात्मक लक्षणों के अन्तर्गत प्रमुखता या प्रधानता की जानकारी हम प्राप्त कर चुके हैं । लेकिन यही महत्ता या प्रमुखता के गणितीय पक्ष को संश्लेषित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इसके अन्तर्गत कर्टिस एवं मेकेइन्टोश (Curtis and McIntosh, 1957) द्वारा आवृत्ति, सघनता एवं प्रधानता इन तीनों लक्षणों के सापेक्ष मानों (relative values) को जोड़कर **महत्व सूचकांक** (Importance Value Index - IVI) को प्रस्तुत किया । इस सूचकांक के द्वारा एक पादप समुदाय संगठन को सही प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है । इसके अनुसार किसी भी पादप समुदाय में समस्त प्रजातियों के **महत्व सूचकांक** (IVI) का कुल योग 300 से अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि यह आपेक्षिक आवृत्ति आपेक्षिक सघनता और आपेक्षिक प्रधानता के योग के बराबर होता है (IVI = आपेक्षिक आवृत्ति + आपेक्षिक सघनता + आपेक्षिक प्रधानता)।

5.3.7 पादप समुदायों का वर्गीकरण (Classification of plant community)

क्लीमेंटस (Clements, 1916) ने निम्न प्रकार से पादप समुदाय जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है-

(1) **पादप समासंघ या फॉरमेशन** (Plant formation)-यह पादप समासंघ को वनस्पति की एक प्रमुख पारिस्थितिक इकाई माना जाता है । किसी एक प्रकार के जलवायु वाले क्षेत्र में पूरी तरह से विकसित पादप समुदाय को **पादप समासंघ** या **फारमेशन** कहा जाता है । जैसे, सदाहरित वर्षा वन, घास स्थली, कँटीले वन (scrub forests) तथा घास स्थल (grasslands) आदि । यह विभिन्न जलवायु कारक पौधों को पूर्णतया प्रभावित करते हैं, तथा समासंघ में चरम (climax) एवं स्थायी पादप समुदाय मौजूद होता है । समासंघ में उपस्थित सभी प्रभावी पादप प्रजातियों की जलवायु सम्बन्धी अवस्था (climatic condition) एकसमान होती है तथा इनके जैव प्ररूप या वृद्धि प्ररूप (life forms or growth forms) भी एक प्रकार के ही होते हैं । जैसे- पर्णपाती वनों (deciduous forests) की सभी प्रभावी पादप प्रजातियों

में चौड़ी पत्तियाँ मौजूद होती हैं, जबकि मरुस्थलीय समासंघ में झाड़ियाँ (shrubs) प्रायः प्रभावी पादप प्रजातियों के रूप में पाई जाती हैं । प्रमुखतया जलवायु कारकों से प्रभावित होकर समासंघ चरम अवस्था तक पहुँच जाते हैं । इस तरह समासंघ प्रायः जलवायु के सूचक का कार्य भी करते हैं । समान प्रकार की जलवायु वाले स्थानों में एक ही प्रकार के समासंघ पाये जाते हैं । इनकी सामूहिक प्रारूप संरचना (physiognomy) एक प्रकार की ही होती है, लेकिन इनके वनस्पतिजात संगठन (floristic composition) में विभिन्न स्तरों पर भिन्नता हो सकती है । जैसे पूर्वी एवं पश्चिम हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं में वनों या समासंघों की संरचना एकसमान दिखाई देती है, क्योंकि इनकी वनस्पति में वृक्षों की प्रधानता होती है । लेकिन पश्चिमी एवं पूर्वी हिमालय में पायी जाने वाली वृक्ष प्रजातियों में भिन्नता देखी जा सकती है, जैसे पूर्वी हिमालय में क्यूरकस लीनियेटा (Quercus lineata) नामक वृक्ष पाया जाता है, तो पश्चिम हिमालय में क्यूरकस डाइलेटाटा (Quercus dilatata) नामक वृक्ष प्रजाति पाई जाती है ।

(2) **पादप सहसंघ** (Plant associations)-पादप सहसंघ में कई प्रभावी जातियाँ होती हैं । दो या अधिक प्रभावी जातियों युक्त पादप समासंघ के छोटे समुदाय को पादप सहसंघ (Plant association) कहते हैं । एक समासंघ में बहुत से सहसंघ होते हैं । किसी समासंघ में सहसंघों की संख्या, समासंघ के सामान्य जलवायु में उपस्थित उप जलवायुकारक (subclumates) के प्रकारों द्वारा निर्धारित होती है । विभिन्न सहसंघ समान स्वरूप वाले होते हैं । सहसंघ में पाये जाने वाले क्रमिक समुदाय (Seral community) को सहसंघक (Associate) कहते हैं ।

(3) **ससंघ या कनसोसियेशन** (Consociation)-एक सहसंघ (association) में स्थानीय मृदा कारक, तापक्रम एवं वर्षा में बदलाव के कारण अनेक समुदाय बन जाते हैं । ऐसे सहसंघ या एसोसियेशन के प्रत्येक समुदाय में केवल एक ही प्रभावी पादप प्रजाति पाई जाती है । इस प्रकार के समुदाय जिनमें केवल एक ही प्रभावी प्रजाति हो उसे ससंघ या कनसोसियेशन कहा जाता है । इस प्रकार एक सहसंघ में अनेक समुदाय होते हैं एवं प्रत्येक समुदाय में केवल एक ही प्रभावी पादप प्रजाति पाई जाती है । जैसे शंकुधारी वन में अनेक समुदाय पाये जाते हैं तथा उनमें से प्रत्येक समुदाय की अपनी अलग प्रभावी प्रजाति होती है, एक समुदाय में पाइसिया तो किसी में एबीस के वृक्ष प्रभावी हो सकते हैं ।

(4) **समाज या सोसायटी** (Society)-इस प्रकार के पादप समुदाय जिनमें एक या एक से अधिक उपप्रभावी (sub dominate) पादप प्रजातियाँ उपस्थित होती हैं, उसे **समाज** (society) कहा जाता है । यह प्रभावी प्रकार के ससंघ के साथ कुछ उपप्रभावी प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं । ऐसी उपप्रभावी प्रजातियाँ के जैव प्ररूप (life forms) प्रभावी प्रजातियों से अलग होते हैं । जैसे घास स्थलों (glasslands) में उपक्षुप (under shrubs) या शाक (herbs) एवं जंगलों में क्रिप्टोगेम्स (cryptogams), शाक एवं क्षुप इत्यादि उपप्रभावी होते हैं ।

5.3.8 बोध प्रश्न

नोट : (i) प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें ।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से मिलाए ।

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो:

I रिक्त स्थान भरो:

1. समष्टि में विभिन्न जीवों के आयु समूहों को ....के रूप में प्रदर्शित करते है ।
2. किसी विशेष क्षेत्र की एक इकाई में पाये जाने वाले जीवों की संख्या को.................. ....कहते है ।
3. अनुकूल परिस्थितियों में समष्टि के वृद्धि करने की संभावित क्षमता को ....कहते हैं ।
4. समष्टि का मूल भूत लक्षण .... होता है ।
5. समुदाय में अधिक संख्या में पाई जाने वाली प्रजाति .... कहलाती है।
6. पूर्ण विकसित पादप समुदाय. .... कहलाता है ।

प्रश्न 2. बहुविकल्पी प्रश्न :

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें

1. समुदाय होता है :

   (अ) परपोषी (ब) आत्मनिर्भर

   (स) परनिर्भर (द) मृतोपजीवी

2. जिन लक्षणों का परीमाणात्मक मापन नहीं हो सकता, वे है

   (अ) विश्लेशणात्मक लक्षण (ब) अमूर्त लक्षण

   (स) संश्लेशणात्मक लक्षण (द) गुणात्मक लक्षण

3. समष्टि का मूलभूत लक्षण होता है

   (अ) आयु (ब) जन्म दर

   (स) घनत्व (द) वितरण

4. एक ही प्रजाति के सदस्य पाये जाते है.

   (अ) बहु प्रजातीय समष्टि में (ब) एकल प्रजातीय समष्टि में

   (स) एकल समष्टि में (द) भिन्न प्रजाति समष्टियों में

प्रश्न 3. निम्न में से कौन सा कथन सत्य / असत्य है :

1. समष्टि की अपनी पहचान एवं संरचना नहीं होती है ।
2. अपरिष्कृत घनत्व को सम्पूर्ण क्षेत्र के सम्बन्ध मे प्रदर्शित किया जाता है ।
3. विशेष क्षेत्र की एक इकाई में सजीवों की संख्या घनत्व कहलाती है ।

4. पादप आवृत्ति एक गुणात्मक लक्षण है ।

प्रश्न 4 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दो

1. समष्टि की परिभाषा दीजिए ।

....

....

2. पादप समुदाय की परिभाषा दीजिए ।

....

....

3. आवृत्ति ज्ञात करने का सूत्र लिखिये ।

....

....

5.4 सारांश (Summary)

समष्टि (Population) के अन्तर्गत एक ही प्रजाति के समूह का अध्ययन किया जाता है । एक से अधिक प्रजातियों के समूह को पादप समुदाय (Plant community) कहते हैं । प्रकृति में अनेक प्रजातियों के पौधे व प्राणी एक साथ पाये जाते हैं तथा एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं । अत: यहां अनेक प्रजातियों के समूह या समुदाय को अध्ययन की एक इकाई माना गया है, क्योंकि प्रकृति में किसी भी प्रजाति के जीव अकेले न रहकर इनके बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप एक साथ मिलते हैं । समष्टि को ऐसे गुणों के आधार पर, जैसे-वितरण (dispersion) घनत्व का उतार-चढाव (fluctuations in density), लैंगिक अनुपात (sex ratio), जन्मदर (birth rate) और मृत्यु दर (death rate) द्वारा स्पष्ट किया जाता है । अनुकूल स्थिति के अन्तर्गत एक जाति के जीवों का समूह संख्या में बढता है यद्यपि वातावरण कभी एक जैसा नहीं रहता बल्कि लगातार समय-समय पर बदलता रहता है अर्थात् गतिक (dynamic) होता है । इस प्रकार पर्यावरण समष्टि पर एक प्राकृतिक जाँच के रूप में कार्य करता है । एक जाति के जीवों की समष्टि में वृद्धि उस जाति के स्वत: प्रभावों से तथा उस क्षेत्र में रहने वाली दूसरी जातियों से प्रभावित होती है । इस प्रकार की वृद्धि जातियों पर हानिकारक व लाभदायक प्रभाव डालती है । इसमें से पहले वाला प्रभाव मुख्य रूप से संघर्ष के कारण होता है, जो विशेष रूप से भोजन तथा स्थान के लिये अन्तरजातीय संघर्ष लाभ वाले प्रभाव के अन्तर्गत सुरक्षा, प्रजनन पर प्रभाव और श्रम के विभाजन (dispersion of labour) आते हैं । प्रकृति में प्रायः पेड़-पौधे एवं अन्य जीव एकल अवस्था में न मिलकर समूह के रूप में पाये जाते हैं । इन समूहों में सभी प्रकार के पेड़-पौधे एकत्रित रूप से परिलक्षित होते हैं एवं एक-दूसरे से पारस्परिक क्रिया प्रदर्शित करते हैं और परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार का सन्तुलन स्थापित करते हैं । इस प्रकार का **"पादप समुच्चय (Plant aggregation) जिसके सदस्य पारस्परिक क्रियाएँ (interactions) करते हुए आपसी सन्तुलन की अवस्था में पाये**

जाते हों, पादप समुदाय (Plant community) कहलाता हैं ।" समष्टि की तरह से समुदाय के भी अपने गुण होते हैं जो इसकी जाति विशेष के व्यष्टि द्वारा नहीं दर्शाये जाते । इस प्रकार के विशिष्ट गुणों पर आधारित प्रत्येक समुदाय अपनी संरचना, संगठन, उत्पत्ति और विकास रखता है ।

5.5 शब्दावली (Glossary)

1. **समष्टि** (Population) : एक ही प्रजाति का समूह ।

2. **समुदाय** (Community) : पादप समुच्चय (Plant aggregation) जिसके सदस्य पारस्परिक क्रियाएँ (interactions) करते हुए आपसी सन्तुलन की अवस्था में पाये जाते हैं।

3. **अपक्व घनत्व** (Crude density) वह घनत्व जो कुल क्षेत्र प्रति इकाई के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

4. **आयु संरचना** (Age structure) : प्रत्येक समूह में अलग-अलग आयु के जीवों का अनुपात।

5. **जन्म-दर** (Natality) : एक निश्चित अवधि में किसी भी समष्टि द्वारा उत्पन्न नये सजीवों या इनकी संतति की औसत संख्या को उस समष्टि की जन्म-दर कहा जाता है ।

6. **मृत्यु दर** (Mortality) : एक निश्चित समय में समष्टि में मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीवों की संख्या को मृत्यु-दर कहते हैं ।

7. **उत्तरजीवी** (Survivor) : किसी समष्टि में मृत्यु के संयोग अर्थात् मृत जीवों के बाद बचे हुए जीवों को उत्तरजीवी कहा जाता है ।

8. **पारिस्थितिक आयाम** (Ecological amplitude) भिन्न जातियाँ अपने पर्यावरण से अपनी आवश्यकताओं के संदर्भ में एक दूसरे से भिन्न होती हैं, और साथ ही इस संदर्भ में भी कि वे अपने पर्यावरणीय दशाओं में कितना उतार-चढाव सहन कर सकती हैं ।

9. **पारिज** (Ecada) एक ही सजीव विशेषकर पादप प्रजाति के ऐसे समूह जो अलग-अलग वातावरण में उगने के कारण सूक्ष्य या गौण विभिन्नताएँ प्रदर्शित करते हैं, उनको पारिज कहते हैं ।

10. **परिप्रारूप** (Ecotypes) : यह वर्गीकरण की एक इकाई है जिसके अंतर्गत एक या अधिक पारिप्ररूप आते हैं, जो यद्यपि अन्तरजननीय होते हैं किन्तु संकरण (cross) नहीं करते या फिर यदि अन्य पारिजाति के पारिप्रारूप से क्रॉसित किए जाते हैं तो जीवनक्षम सन्तान उत्पन्न नहीं करते ।

11. जीवनशक्ति (Vitality) : पौधे की सामान्य वृद्धि एवं जनन क्षमता ।

12. जैवीय वर्णक्रम (Biological spectrum) किसी भी पादप समुदाय में उपस्थित विभिन्न प्रकार के जीवन प्ररूपों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व ।

13. पादप आवृत्ति (Plant frequency) : पादप समुदाय में जाति विशेष के परिक्षेपण या बिखराव की मात्रा ।

14. सघनता या घनत्व (Density) : पादप समुदाय के एक इकाई क्षेत्रफल में पाये जाने वाले एक प्रजाति के पौधों की कुल संख्या ।

15. समाज (Social) : पादप समुदाय जिनमें एक या एक से अधिक उपप्रभावी पादप प्रजातियाँ उपस्थित होती हैं ।

5.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल के मूल तत्व- डी. बृज गोपाल (1975), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।
2. पर्यावरण तथा प्रदूषण - अरूण रघुवंशी, चन्द्रलेखा रघुवंशी (1995) मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी डी. शर्मा (2004), रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
4. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल - एम.एल.वर्मा, जे.पी.गुप्ता, बी.एल.यादव (2001) अलका पब्लिशर्स, अजमेर ।
5. Concept of Indian Ecology- D.N Sen (1978), S. Nagin & C., Jalandhur.
6. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता निरंजन शर्मा, पी.सी.त्रिवेदी, आर.एस.धनकड़ (2005) रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
7. Ecology- N.S. Subrahmanyam, A.V.S.S. Sambamurty (2000), Narosa Publishing House, New Delhi
8. A Text Book of Plant Ecology- R.S. Ambasht, N.K Ambasht (1999), C.B.S Publishers & Distributors, New Delhi.
9. Ecology, Environment & Resource Conservation - J.S. Singh, S.P. Singh, S.R. Gupta (2008), Anamaya Publishers, New Delhi.
10. A Text Book of Plant Ecology- V. Verma (1996), Emkay Publication, Delhi.
11. Plant Ecology and Soil Science - R.S. Shukla, P.S. Chandel (1984), S. Chand & Co. Ltd., New Delhi.

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. I

1. पिरामिड
2. समष्टि घनत्व
3. जैविक विभव
4. अपरिष्कृत घनत्व
5. प्रभावी प्रजाति

6. पादप समासंघ

प्रश्न 2.II

(1) ब (2) द (3) स (4) ब

प्रश्न 3

(1) असत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य

प्रश्न 4.

1. एक ही प्रजाति का समूह ।
2. पादप समुच्चय (Plant aggregation) जिसके सदस्य पारस्परिक क्रियाएँ (interaction) करते हुए आपसी सन्तुलन की अवस्था में पाये जाते हैं ।
3. आवृत्ति (प्रतिशत) = $\frac{\text{क्वाड्रेट्स की संख्या जिनमें वह जाती उपस्थित है}}{\text{अध्ययन किए गए कुल क्वाड्रेट्स की संख्या}} \times 100$

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

1. समष्टि को प्रभावित करने वाले कारकों के नाम लिखिए तथा जन्म-दर व मृत्यु-दर का वर्णन कीजिए ।
2. पारिज एवं परिप्रारूप की विवेचना कीजिए ।
3. वृद्धि चक्र का वर्णन कीजिए ।
4. पादप समुदाय की संरचना को समझाइए ।
5. अन्तर स्पष्ट कीजिए

i. समष्टि व समुदाय

ii. बाहुल्य व संघनता

iii. आवृत्ति व आपेक्षित आवृत्ति

iv. आवरण तथा आधार क्षेत्र

6. निम्न पर टिप्पणियां लिखिये

i. समष्टि

ii. विश्लेषणात्मक

iii. संश्लेशणात्मक लक्षण ।

इकाई 6

पादप अनुक्रमण
(PLANT SUCCESSION)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पादप अनुक्रमण

6.2.1 पादप अनुक्रमण के कारण

6.2.2 पादप अनुक्रमण के प्रकार

6.2.2.1 प्राथमिक पादप अनुक्रमण

6.2.2.2 द्वितियक पादप अनुक्रमण

6.2.2.3 स्वजात अनुक्रमण

6.2.2.4 परजात अनुक्रमण

6.2.2.5 स्वपोषी अनुक्रमण

6.2.2.6 परपोषी अनुक्रमण

6.2.3 अनुक्रमण की सामान्य प्रक्रिया

6.2.4 पादप अनुक्रमण की अवस्थाऐं

6.2.4.1 जल क्रमक

6.2.4.2 मरू क्रमक

6.2.5 चरम परिकल्पना का सिद्धान्त

6.2.6 बोध प्रश्न

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 संदर्भ ग्रन्थ

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objectives)

किसी एक ही स्थान पर पादपों में होने वाले दीर्घकालीन एक दिशीय समुदाय परिवर्तन को पादप अनुक्रमण कहते है । इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है :-

1. पादप अनुक्रमण के कारण
2. पादप अनुक्रमण के प्रकार

3. अनुक्रमण की सामान्य प्रक्रिया

4. पादप अनुक्रमण की अवस्थाऐं

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

समुदायों में होने वाले परिवर्तनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दीर्घकालीन संचयी परिवर्तन अनुक्रमण है, जिसका इस इकाई में विस्तृत विवरण किया गया है । अनुक्रमण की परिभाषा किसी एक ही स्थान पर होने वाले दीर्घकालीन एकदिशीय (unidirectional) समुदाय परिवर्तन के रूप में दी जा सकती है जिसमें उसी स्थान पर भिन्न-भिन्न समुदाय कालांतर में निश्चित क्रम से पाए जावें और इस प्रकार होने वाले परिवर्तनों की दिशा निर्धारित की जा सके । यद्यपि एक विशिष्ट समुदाय प्रचलित पर्यावरणीय दशाओं के अन्तर्गत स्वयं को कम और अधिक संतुलित करता है यह प्रकृति में कठिन सत्य है । समुदाय कभी स्थायी नहीं होते वे हमेशा गतिशील, समय और स्थान के साथ

निरन्तर कम और अधिक बदलते हुए होते हैं । वे कभी भी अपने जाति घटकों या भौतिक पर्यावरण के साथ स्थायी सन्तुलन में नहीं पाये जाते । पर्यावरण हमेशा समय के साथ निरन्तर निम्न कारणों से बदलता रहता है-

(i) जलवायु और भूस्थिति नियमित कारकों (physiographic factors) में विभिन्नता । (ii) स्वयं समुदायों की जातियों के क्रियाकलाप । इस प्रकार के प्रभाव प्रबल उपस्थित समुदायों में निश्चित बदलाव लाते हैं जिससे वे जल्दी या बाद में उसी स्थान पर दूसरे समुदायों के द्वारा परिवर्तित हो जाते हैं । यह प्रक्रिया लगातार होती है और सफल समुदाय एक बार दूसरे उसी स्थान पर विकसित होते रहते हैं, जब तक कि एक अन्तिम समुदाय अधिक या कम समय के लिये स्थायी नहीं हो जाता । इस प्रकार समुदायों के आपेक्षिक निश्चित श्रेणी (relative definite sequence of community) जो एक निश्चित समय और समान भाग में उपस्थित होता है उसे पारिस्थितिकीय **अनुक्रम** (ecological succession) कहते हैं ।

हुल्ट (1885) ने सर्वप्रथम, दक्षिणी स्वीडन के समुदायों के अध्ययन में नियमबद्ध परिवर्तनों के लिए अनुक्रमण (succession) शब्द का उपयोग किया था । इससे पूर्व भी अनुक्रमण से मिलते-जुलते विचार प्रस्तुत किए गए थे, परन्तु अमरीका में काउल्स (1899, 1900) ने अनुक्रमण के अध्ययनों की वास्तविक नींव रखी और क्लीमेंट्स (1907, 1916) ने अथक परिश्रम द्वारा अनुक्रमण के सिद्धांतों का विशुद्ध निरूपण किया ।

क्लीमेन्टस (Clement,1916) जब पौधों के समुदाय का अध्ययन कर रहे थे, तब उन्होनें अनुक्रम को इस प्रकार परिभाषित किया कि "यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक समूहों या पौधों के समुदाय के द्वारा क्रमिक रूप से एक ही क्षेत्र का उपनिवेशन होता है । आज अनुक्रमण का विचार पारिस्थितिकी का सर्वप्रमुख अंग है ।

ऑडम (Odam, 1971) ने प्रायः पारिस्थितिकी अनुक्रम के बजाय इस प्रक्रिया को इकोतन्त्र विकास (ecosystem development) के रूप में पुकारने पर जोर दिया । उसने इस प्रक्रिया को परिभाषित करने के लिए एक विस्तृत तथ्य बनाया, उसके अपने शब्दों में-

"इकोतन्त्र विकास या पारिस्थितिकी अनुक्रम को निम्नलिखित तीन मानकों के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है"- (i) यह समुदाय विकास की एक नियमित प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत जातियों की आकृति और समुदाय प्रक्रिया में समय के साथ बदलाव आते हैं, यह उचित दिशा निर्देशित होता है और इसीलिये इसके बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है ।
(ii) समुदाय के द्वारा यह भौतिक वातावरण के रूप में बदलाव लाता है अर्थात् अनुक्रम समुदाय से नियमित होता है, यद्यपि भौतिक वातावरण भी कुछ तरीके निर्धारित करता है, जैसे, बदलाव की दर और प्रायः निश्चित सीमायें जैसे विकास कहाँ तक जा सकता है । (iii) यह एक दृढ़ पारिस्थितिकी तन्त्र में परम स्थान को प्राप्त करता है जिसमें अत्यधिक जीव भार और सहजीवी प्रक्रिया जीवों के बीच प्रति इकाई उपस्थित ऊर्जा प्रवाह को नियमित करता है ।

6.2 पादप अनुक्रमण (Plant Succession)

अनुक्रमण वह प्राकृतिक प्रक्रम है जिसके द्वारा पादप समुदायों के विभिन्न समुहों द्वारा क्रमिक रूप से एक ही क्षेत्र का उपनिवेशन (Colonizaion) होता है, या किसी क्षेत्र विशेष में समयानुसार विभिन्न पादप समुदायों का एक सुव्यवस्थित क्रमिक प्रक्रम पादप अनुक्रमण कहलाता है ।

6.2.1 अनुक्रमण के कारण (Causes of succession)

वस्तुतः अनुक्रमण जटिल प्रक्रमों का एक क्रमबद्ध प्रक्रम है । यह प्राकृतिक तथ्य है कि अनुक्रमण का कोई एक कारण नहीं हो सकता है । अनुक्रमण से संबंधित विभिन्न प्रकार के कारणों को निम्न तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है- 1. जलवायवी कारण (Climatic causes), 2. भूआकृतिक कारण (Topographic causes) एवं 3. जैविक कारण (Biotic causes)

1. **जलवायवी कारक** (Climatic causes) -जब किसी स्थान विशेष की जलवायु में अत्यधिक परिवर्तन आ जाता है तो पादप इस जलवायु की लम्बी परिसीमा (Limits) के परिवर्तनों को सहन नहीं कर पाते हैं । उदाहरण के लिये विनाशकारी सूखा या अकाल (Drought), अतिवृष्टि, आँधी, अग्नि, हिमपात (Snowfall) व पाला पड़ने के कारण वनस्पति के नष्ट हो जाने से वह स्थान आंशिक या पूर्णत: अनाच्छादित (Barren area) बन जाते हैं । नष्ट हुई वनस्पति का स्थान लेने के लिए ऐसे पादप समुदाय विकसित हो जाते हैं जो परिवर्तित जलवायु के अनुकूल हो । कभी-कभी नदी व तालाबों से भी अनावृत मैदान बन जाते हैं ।
2. **भू-आकृतिक कारण** (Topographic causes)-भू-आकृतिक कारण के अन्तर्गत भू-आकृति या मृदा में परिवर्तन होने के कारण से हुए अनुक्रमण सम्मिलित किये जाते हैं । निम्नांकित दो प्रमुख मृदीय कारक (Edaphic causes) आवास में परिवर्तन ला सकते हैं-

(अ) **मृदा अपरदन** (Erosion of the soil)- जल बहाव, वायु, नदी, समुद्र व वर्षा के द्वारा भूमि की ऊपरी परतों को बहाकर हटा दिया जाता है अर्थात् इसका अपरदन (Erosion) हो जाता है, इस प्रक्रम को मृदा अपरदन (Soil erosion) कहते हैं । यह परत जिसे ऊपरिमृदा

(Top soil) कहते हैं, पादप वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण होती है, अत: ऊपरी परत के अपरदन से नष्ट हो जाने से वहाँ की वनस्पति भी नष्ट होकर वह स्थान अनाच्छादित क्षेत्र (Bare area) में बदल जाता है । इस वनस्पतिविहीन स्थल पर अनुक्रमण द्वारा नये प्रकार के पादप समुदाय विकसित होने लगते हैं ।

(ब) **मृदा का जमाव** (Soil deposition)-यह अनुक्रमण का एक अति महत्वपूर्ण कारण है । नदी या समुद्र की लहरों द्वारा किनारे व तटों पर जमा हुई रेत, पहाडों से गिरते हुए बर्फ के विशाल खण्ड, भूस्खलन, ज्वालामुखी के फटने तथा समुद्र में कोरल शैलों के जमने से नये अनाच्छादित क्षेत्रों की उत्पत्ति हो जाती है । इन समस्त क्रियाओं से जब मृदा का जमाव ऐसे क्षेत्रों पर होता है, जहाँ पहले से ही पादप समुदाय उपस्थित थे तो ये पादप इस मिट्टी के जमाव के कारण दबकर क्षतिग्रस्त व नष्ट हो जाते हैं तथा यह स्थान पादपविहीन हो जाता है । अत: ऐसे स्थानों पर अनुक्रमण होकर नये समुदाय विकसित होने लगते हैं ।

3. **जैविक कारण** (Biotic causes)-मानव स्वयं के उपयोग के लिए अनेक स्थानों की वनस्पति को नष्ट कर पादपविहीन क्षेत्र का निर्माण करता है, जैसे- कृषि, सड़कों, भवनों व कारखानों का निर्माण आदि । अनेक क्षेत्रों में बाँध निर्माण कर वनों के क्षेत्रों को जलमग्न कर वनस्पति को नष्ट कर दिया जाता है । यही नहीं वनों की कटाई, प्राकृतिक वनस्पति के जंगलों को काटकर अनुक्रमण को प्रोत्साहन देते हैं । अनेक परजीवी पादप, कवक, जीवाणु व वायरस रोग फैलाकर तथा पशु वनस्पति को चर कर भी इसे नष्ट कर देते हैं । इन समस्त व अन्य क्रियाओं के फलस्वरूप अनाच्छादित क्षेत्रों के निर्माण से अनुक्रमण किया द्वारा नई वनस्पति विकसित होने लगती है ।

6.2.2 अनुक्रमण प्रकार (Kinds of succession)

अनुक्रमण की प्रक्रिया का कई आधार पर वर्गीकरण किया गया है ।

6.2.2.1 प्राथमिक अनुक्रमण (Primary succession)-कभी-कभी पृथ्वी पर भूस्खलन, ज्वालामुखी के फटने अथवा कोरल शैलों के द्वारा ऐसे स्थानों का निर्माण होता है जहाँ उस समय से पूर्व कोई वनस्पतियाँ नहीं थीं । मनुष्य के क्रियाकलापों द्वारा भी ऐसे नए स्थलों का जन्म होता रहता है । इन स्थलों को प्राथमिक अनाच्छादित क्षेत्र कहते हैं और इन स्थलों पर होने वाले अनुक्रमण को प्राथमिक अनुक्रमण कहते हैं ।

6.2.2.2 द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary succession)-जब किसी स्थान पर पाई जाने वाली वनस्पतियाँ आग, कृषि या अन्य कारणों से नष्ट हो जाती हैं तो इस प्रकार के क्षेत्रों को गौण अनाच्छादित क्षेत्र तथा वहाँ पर होने वाले अनुक्रमण को द्वितीयक अनुक्रमण कहते हैं ।

6.2.2.3 स्वजात अनुक्रमण (Autogenic)-अनुक्रमण के लिए जीवों और पर्यावरण की परस्पर अंतर क्रियाएँ ही उत्तरदायी होती हैं । यदि ये अंतर्क्रियाएँ समुदाय के जीवों में अंतर्निहित गुणों के कारण होती हैं जिनसे पर्यावरण तथा समुदाय बदलते रहते है तो ऐसे अनुक्रमण को स्वजात अनुक्रमण कहते है।

6.2.2.4 परजात अनुक्रमण (Allogenic)- कभी-कभी अनुक्रमण बाह्य व्यवधानों तथा बाह्य कारकों द्वारा संचालित होता है जैसे किसी जलीय आवास में कार्बनिक और पोषक खनिज तत्वों के मिलने से अनुक्रमण शीघ्रता से होता है । ऐसे अनुक्रमण को परजात अनुक्रमण कहते है।

6.2.2.5 स्वपोषी अनुक्रमण (Autotrophic succession)-यह पूर्व और निरन्तर स्वजीवी जीवों जैसे हरित पौधे की प्रबलता के अनुसार जाना जाता है । यह पूर्व प्रबल अकार्बनिक पर्यावरण में शुरू होता है और ऊर्जा प्रवाह बिना किसी सीमा के होता है इसमें निरन्तर कार्बनिक तत्वों में वृद्धि होती है जो कि ऊर्जा प्रवाह के द्वारा सहायता प्राप्त किए होता है ।

6.2.2.6 परपोषी अनुक्रमण (Heterotrophic succession)-यह परोपजीवी जो पूर्व से ही प्रबल होते हैं, उसके द्वारा नियमित होता है । जैसे-बैक्टीरिया (bacteria) एक्टीनोमाइट्स (actinomytes), फन्जाई (fungi) एवं जन्तुओं (animals) । यह पूर्व प्रबल कार्बनिक पर्यावरण से शुरू होता है, और इसमें निरन्तर ऊर्जा तथ्यों की कमी होती जाती है ।

अनुक्रमण का यह प्रविभाजन टैन्सले (1916,1930,1935) ने किया था । यद्यपि सिद्धान्ततः स्वजात अनुक्रमण में बाह्य कारकों का योगदान नहीं माना जाता, परन्तु इनके प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता । उदाहरणार्थ, किसी भी समुदाय में जातियों का प्रवेश होता रहता है और ये जातियाँ स्पर्धा तथा अन्य अंतर्क्रियाओं द्वारा अनुक्रमण को प्रभावित करती ही हैं ।

इसके अतिरिक्त अनुक्रमण को, आवास में जल की उपलब्धि के आधार पर शुष्क आवासी अनुक्रमण या जलीय अनुक्रमण में प्रविभाजित किया जाता है । इसी प्रकार समुदाय उपापचय के आधार पर स्वयंपोषी और परपोषी अनुक्रमण माने गए हैं (ओडम, 1971) ।

6.2.3 अनुक्रमण की सामान्य प्रक्रिया (General process of succession)-किसी भी स्थल प्रायः अनाच्छादित (Barren) पर अनुक्रमण कई अवस्थाओं (Steps) में सम्पन्न होता है, जो एक दूसरे का अनुसरण करते हुए अनुक्रमण प्रक्रिया को सम्पन्न करते हैं । ये अवस्थाऐं निम्नांकित हैं- 1. अनाच्छादन (Nudation), 2. संक्रामण (Invasion), 3. प्रतिस्पर्धा एवं प्रतिक्रिया (Competition and reaction), एवं 4. स्थायीकरण या चरम अवस्था (Stabilisations or climax) ।

1. **अनाच्छादन** (Nudation)-प्राकृतिक या मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप किसी भी स्थल का वनस्पतिविहीन या नग्न होना अनाच्छादन कहलाता है । ये अनाच्छादित क्षेत्र पूर्व में वर्णन किये गये विभिन्न अनुक्रमण कारणों (जैसे-जलवायवी, भू आकृतिक व जैविक आदि) द्वारा बनते हैं । उदाहरण के लिए अपरदन, भूस्खलन, भूकम्प, मिट्टी का जमाव तथा कुछ प्रलयकारी घटनायें आदि अनाच्छादन के पश्चात् ही वास्तविक अनुक्रमण की क्रियायें प्रारम्भ होती हैं ।

2. **संक्रामण या आक्रमण** (Invasion)-अनाच्छादित क्षेत्र में या किसी समुदाय में जीवों के, अन्य स्थानों से आकर, सफलतापूर्वक बस जाने की क्रिया को आक्रमण कहा गया है । यह कई अवस्थाओं में पूर्ण होती है-

(i) **प्रवास** (Migration)-जीवों के बीज, बीजाणु या अन्य प्रकीर्णक या प्रवर्धक अंगों के, अपने पितृ स्थान से चलकर नए समुदाय में पहुंचने तक की क्रिया को प्रवास माना गया है ।

इस क्रिया में वायु, कीट, जल तथा विभिन्न जीव सहायक होते हैं । प्रकीर्णन प्रवर्धक अंगों के आकारीय गुणों पर तथा सहायक कारकों की उपलब्धि पर निर्भर होता है । यदि किसी जाति के बीज वायु प्रकीर्णन के लिए उपयुक्त हैं और वायु स्थिर है तो प्रकीर्णन सम्भव नहीं होगा । इसके साथ ही उस क्षेत्र की भू-आकृति, दिशा तथा प्रवर्धक अंगों के प्राप्ति स्थान से दूरी भी प्रवास में बाध्य या सहायक हो सकते हैं । जल द्वारा प्रकीर्ण-होने वाले बीज समुद्र या बड़ी खारी झील मार्ग में आ जाने पर लवणों की उपस्थिति के कारण मर जाते हैं और नए क्षेत्रों तक नहीं पहु च पाते । वायु की दिशा तथा प्रव्रर्जक प्राणियों की दिशा जातियों के प्रवास की दिशा भी निर्धारित करती है ।

(ii) **आस्थापन** (Ecesis)-किसी क्षेत्र या समुदाय में पहुंचने के बाद, जाति द्वारा वहां की परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने और सफलतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सकने की किया आस्थापन (Ecesis या establishment) कहलाती है । नए क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है वहाँ पहुंचने वाली जातियों के प्रवर्धक अंग, अंकुरित होकर वृद्धि कर सके और प्रजनन द्वारा संख्या में बढ़कर अपना स्थान बना लें । किसी भी जाति की विभिन्न जीवन अवस्थाओं पर उसकी पर्यावरणीय आवश्यकताएँ तथा सहन सीमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । इसलिए नये क्षेत्र या समुदाय में पहुंचने वाले जीवों के लिए अंकुरण से लेकर प्रजनन तक की सभी अवस्थाओं के लिए वर्ष प्रतिवर्ष उपयुक्त पर्यावरण का मिल पाना, उसके आस्थापन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है । यदि अंकुरण के लिए ही उपयुक्त परिस्थितियाँ न मिलीं, या अंकुरण के उपरान्त वृद्धि अथवा प्रजनन सम्भव न हो सका, तो प्रवर्धक अंगों का उस क्षेत्र या समुदाय में पहुंचना निरर्थक ही सिद्ध होगा ।

(iii) **समुच्चयन** (Aggregation)- आस्थापन के बाद पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रजनन द्वारा जाति अपनी समष्टि की (जीव संख्या की) वृद्धि करती है और छोटे-बड़े समूहों में समुच्चयित हो जाती है । समुच्चय का आकार जितना बड़ा होगा, जाति उस क्षेत्र के समुदाय में उतना ही अधिक प्रभावी हो सकेगी । समुच्चय एक ही जाति या अनेक जातियों के मिश्रण से बन सकता है ।

3. **स्पर्धा और सहक्रिया** (Competitionand Coaction)

जातियों के जीवों की बढ़ी संख्या के एक स्थान पर एकत्रीकरण के बाद संघर्ष (अन्तर और अन्तराजातीय) उत्पन्न होता है जो मुख्य रूप से स्थान और पोषण के लिये होता है । जातियों के जीव दूसरे के जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं जो सहक्रिया कहलाता है । यदि एक जाति दूसरे के साथ संघर्ष में सफल नहीं होती तो वह विलुप्त हो जाती है । संघर्ष की विरोधिता, प्रजनन की क्षमता, विस्तृत पारिस्थितिकीय आयाम (wide ecological amplitudes) इत्यादि जातियों के लिये अत्यधिक सहायक होते हैं ।

4. **प्रतिक्रिया** (Reaction)

यह अनुक्रम की अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थिति है । जीवित जीवों के प्रभाव के द्वारा पर्यावरण में बदलाव की प्रक्रिया, प्रतिक्रिया (reaction) कहलाती है । प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पर्यावरण की मिट्टी, जल, प्रकाशीय दशाओं, तापमान इत्यादि में बदलाव आते हैं । इन सभी पर्यावरण के बदलावों से पूर्व उपस्थित समुदाय के लिये प्रतिकूलित दशायें बनती हैं तथा उस समुदाय का

स्थान, दूसरा समुदाय ले लेता है । एक स्थान से दूसरे समुदाय को हटाने की समुदायों के सम्पूर्ण चक्र को संचक्र कहते हैं, और अनेक समुदाय संचक्र बनाते हैं जैसे क्रमबद्धित समुदाय (seral community), क्रमबद्धित स्तर (seral stages) और विकासशील स्तर (development stages)। अग्रम जातियों को कम पोषण की आवश्यकता होती है वे अत्यधिक गतिक और अपेक्षाकृत रूप से जटिल रूप में लवण लेने के योग्य होती हैं । वे छोटी आकृति वाली होती हैं और पर्यावरण से कम माँग रखती हैं ।

5. **स्थायीकरण** (Stabilization)

अनुक्रमण की प्रक्रिया में एक स्थिति आती है जबकि जलवायु का नियन्त्रण प्रमुख हो जाता है और यह प्रक्रिया शिथिल हो जाती है । क्लीमेंट्स ने पर्यावरण के अनेक कारकों में, समुदाय पर जलवायु के प्रभावों को सर्वोपरि माना है । जलवायु जातियों के जीवन रूप को निर्धारित करती है । यदि तापमान तथा अवक्षेपण उपयुक्त मात्रा में न हों तो काष्ठीय पौधों की वृद्धि सम्भव नहीं होती । प्रत्येक जाति के लिए विशेष अनुपात में जलवायवीय तथा अन्य कारकों की आवश्यकता होती है ।

इस प्रकार एक अवस्था आने पर समुदायों तथा जलवायु के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाता है । समुदायों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता और समुदायों के जाति संगठन में विशेष परिवर्तन नहीं हो पाता क्योंकि जातियों में भी परस्पर सामंजस्य हो पाता है । इस अवस्था को चरम अवस्था (climax) कहा जाता है ।

कुछ असामान्य प्रकार के अनुक्रमण

(i) **प्रतिगामी अनुक्रमण** (Retrogressive succession)-कभी-कभी कुछ स्थलों पर निरन्तर विनाशकारी जैविक क्रियाओं के परिणामस्वरूप वहाँ स्थित समुदायों में विक्षुब्ध होने से इनका ठीक प्रकार से विकास नहीं हो पाता । इस प्रकार के विक्षुब्ध समुदायों में अनुक्रमण प्रगामी (progressive) न होकर प्रतिगामी होने लगता है जैसे, वनों के वृक्ष परिवर्तित होकर झाड़ियों में तथा झाड़ियाँ भी कुछ समय पश्चात् शाकीय समुदायों में परिवर्तित हो जाती है, इसे प्रतिगामी अनुक्रमण (Retrogressive succession) कहते हैं ।

(ii) **विक्षेपित अनुक्रमण** (Deflected succession)-अनेक बार यह भी ज्ञात हुआ है कि स्थानिक परिस्थितियाँ (Local conditions) भी अनुक्रमण को प्रभावित करती हैं । उदाहरणार्थ- मृदा तथा सूक्ष्म जलवायु के कारण अनुक्रमण सही दिशा में अग्रसर न होकर भिन्न प्रकार के चरम समुदाय में परिणित हो जाता है, इसे विक्षेपित अनुक्रमण (Defelected succession) कहते हैं ।

(iii) **जनकृत क्रमक** (plagiosere)-मानव के क्रिया कलापों जैसे- आग लगाने आदि से उत्पन्न ऊसर क्षेत्रों में होने वाले वनस्पति के शनैः शनैः अनुक्रमण को जनकृत क्रमक कहते हैं। भारत में मानसून जलवायु के दौरान अस्थायी जलाशयों के अध्ययन से यह संकेत मिला है कि हर वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के समुदाय विकसित होते हैं । ऐसे समुदायों को डयूजअन (Dudgeon) ने 1921 में ऋतुनिष्ठ अनुक्रमण (Seasonal succession) के अन्तर्गत वर्णित किया है ।

6.2.4 पादप अनुक्रमण की अवस्थाएं (Examples of plant succession)

अनुक्रमण के अन्य विशेष अध्ययनों के विवरण को विभिन्न आवासों में इस प्रक्रिया की सामान्य रूपरेखा के साथ ही देना उचित होगा । प्रमुख आवासों में अनुक्रमण की अवस्थाएं नीचे दी जा रही हैं ।

6.2.4.1 जलक्रमक (Hydrosere)

जलक्रमक की विभिन्न अवस्थाओं को समझने के लिये कोई बहुवर्षी झील या तालाब (Pond or lakh) एक आदर्श स्थान हो सकता है । इस प्रकार के जलाशय मध्य में गहरे तथा क्रमशः किनारों की ओर कम गहरे या छिछले होते हैं । जलक्रमक का आरम्भ निमग्न व प्लवमान पादपों (Submerged and floating plants) से होता है जो कि जलक्रमक के पुरोगामी (Pioneer) पादप होते हैं । यह अनुक्रमण निमग्न व प्लवमान से प्रारम्भ होकर विभिन्न क्रमक अवस्थाओं द्वारा गुजरता हुआ अन्त में वनों की चरम वनस्पति (Climax vegetation) में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 61) । एक जलक्रमक की विभिन्न विकासीय अवस्थायें निम्नलिखित हैं-

I. **पादपप्लवक स्तर** (Phytoplankton stage)-ये अग्रज समुदाय बनाते हैं । कुछ नीले हरे शैवाल (blue algae), हरे शैवाल (green algae), डायटम्स (diatoms) तथा बैक्टीरिया (bacteria) वे प्रथम जीव हैं जो तालाब के प्राथमिक माध्यम (Pioneer stage) को बसाते हैं । मिट्टी की pH-5 से भी कम हो जाती है । ये कुछ समय के लिए गुणित होते हैं और विकसित होते हैं ।

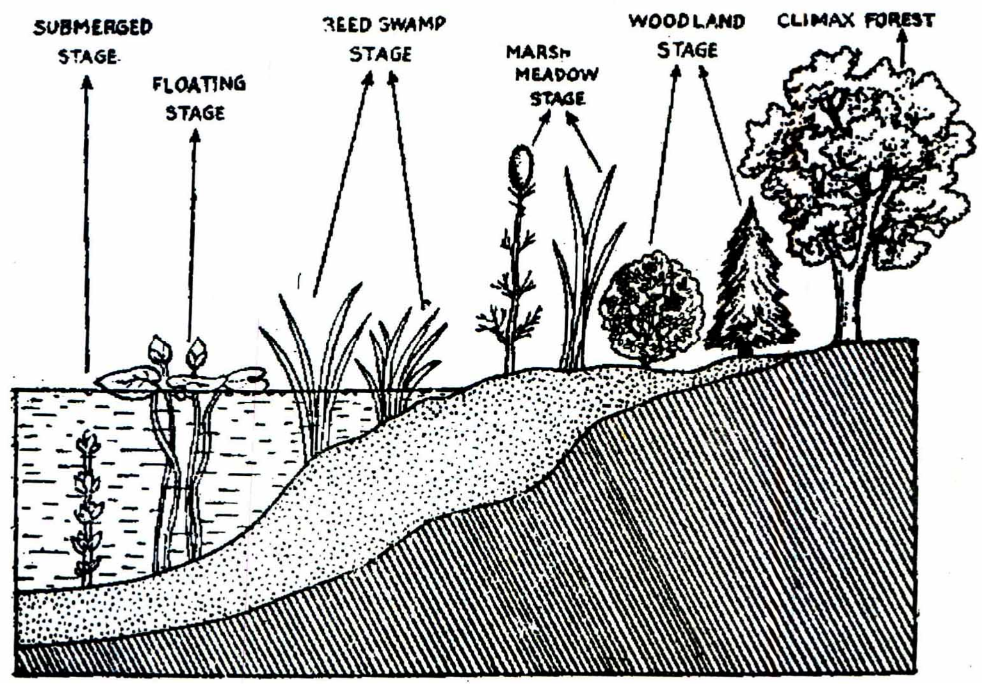

चित्र 6.1 जल क्रमक की विभिन्न अवस्थाएं (वर्मा, 1996)

II. **निमग्न अवस्था** (Rooted Submerged stage)- (i) कुछ शैवालों के बीजाणु विभिन्न माध्यम से उड़कर जलीय आवास में गहराई में पहुंचकर शीघ्रता से अंकुरित होकर वृद्धि करने लगते हैं और कुछ ही समय में तालाब में शैवालों का एक जाल सा बिछ जाता है ।

(ii) इन शैवालों के आने से पूर्व इस गहराई के जल में पोषक तत्वों के अभाव व प्रकाश तीव्रता के कारण अन्य निमग्न पादप नहीं उग पाते है।

(iii) निमग्न अवस्था के अन्तर्गत आने वाली शैवालों में मुख्य रूप से साइनोफाइसी के सदस्य जैसे- एनाबीनोप्सिस (Anabaenopsis), एनाबीना (Anabaena), माइक्रोसिस्टिस (Microcystis) तथा हरी शैवालों में मुख्यतः वाल्वोकेलीज समूह के डाऐटम्स (Diatoms) और डेरिमड्स (Desmids) होते है।

(iv) नीली हरी शैवाल नाइट्रोजन के यौगिकीकरण (Nitrogen fixation) द्वारा जल में पोषक तत्वों तथा कार्बनिक पदार्थो की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाते जाते हैं जिससे अनेक प्रकार की हरित शैवाल जैसे- हाइड्रोडिक्टयोन (Hydrodictyon) स्पाइरोगाइरा (Spirogyra) क्लेडोफोरा (Cladophora) आदि तन्तुमय शैवालों का जल सा बन जाता है ।

(v) उपरोक्त समस्त प्रकार के शैवाल समुदाय प्रतिक्रिया कर जल में रासायनिक पदार्थों तथा पोषक तत्वों (Nutrient elements) की वृद्धि करते रहते हैं तथा इसके साथ-साथ मृत होने पर इनके अवशेष तालाब के पैंदे पर संगृहीत होते रहते हैं जिससे जल की गहराई भी कम होती जाती है ।

(vi) शैवालों के साथ-साथ कुछ अन्य आवृतबीजी पादप जैसे-ईलोडिया (Elodea), पोटामोगिटोन (Potamogeton), सिरेटोफिलम (Ceratophyllum), हाइड्रिला (Hydrilla), यूट्रीकुलेरिया (Utricularia), मिरियोफिलम (Myriophyllum), नाजास (Najas), वैलिसनेरिया (Vallisneria) तथा कारा (Chara), नाइटेला (Nitella) नामक क्लोरोफाइसी आदि पाये जाते हैं ।

(vii) इनमें से कुछ पादप जल की सतह के नीचे तैरते रहते हैं, कुछ तल के कीचड़ (Bottom mud) से सम्पर्क बनाये रखते हैं । कारा व नाइटैला तल के कीचड़ में स्थिर रहते हैं ।

(viii) प्रारम्भिक अवस्था में समस्त निमग्न पादप दूर-दूर उगे रहते हैं, परन्तु कुछ समयोपरान्त वृद्धि होने से पास-पास उगकर सारे जल में सघनता से फैल जाते हैं ।

(ix) इन पादपों द्वारा मिट्टी के उड़ते हुये कणों तथा किनारों से अपरदित मिट्टी के कणों को बांध लिया जाता है।

(x) इनमें से कुछ पादपों के मरने पर उनके अवशेष ह्यूमस (Humas) में परिवर्तित होकर वह तालाब के तल में कीचड़ में जमा हो जाता है ।

(xi) उपरोक्त क्रियाओं के परिणामस्वरूप जल की गहराई कम होती जाती है । इस क्रिया को **सुपोषण** (Eutrophication) कहते हैं ।

(xii) जल की कम गहराई तथा पोषक तत्वों के संग्रहण से यह वातावरण निमग्न पादपों के लिये अनुपयुक्त परन्तु नये आक्रमणकारी पादपों के लिये उपयुक्त होता है ।

अब इन निमग्न पादपों का शनै: शनै: नये पादपों द्वारा प्रतिस्थापन कर दिया जाता है (चित्र 6.1)।

III. **प्लावी या प्लवमान अवस्था** (rooted floating stage)

उपरोक्त वर्णित कारकों से जलाशय में जल की गहराई कम रह जाती है जिससे निमग्न पादप और अधिक गहरे जल की ओर- प्रस्थान कर जाते हैं । अब इस कम गहरे जल में प्लावी जातियाँ उगने लगती हैं । ये पौधे भी दो प्रकार के होते हैं- (अ) जल की सतह पर स्वतंत्र रूप से तैरते रहने वाले पादप जैसे-स्पाइरोडिला (Spirodela), लेम्ना (Lemna), पिस्टिया (Pistia), आइकोर्निया (Eichhornia, जलकुम्भी), वुल्फिया (Wolffia), एजौला (Azolla), साल्विनिया (Salvinia), आदि तथा (ब) वे पादप जिनकी पत्तियाँ, जल की सतह पर स्वतंत्र रूप से तैरती रहती हैं, लेकिन इनका पर्णवृन्त (Petiole) जल में डूबा हुआ तथा स्तम्भ या प्रकन्द तालाब के पैंदे में कीचड़ में जड़ों द्वारा स्थिर रहता है । इन्हें स्थिर प्लवमान (Roots Floating) जलोद्भिद कहते हैं, जैसे- निलम्बो (Nelumbo, कमल), निम्फिया (Nymphea), सैजीटेरिया (Sagittaria), एवं रेननकुलस एक्वाटिलिस (Ranunculus aquatilis), आदि । जनन द्वारा इन पादपों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है तथा इनकी पत्तियों के जल की सतह पर तैरने से निमग्न पादप पर्याप्त मात्रा में प्रकाश प्राप्त नहीं कर पाते हैं, यही तक कि आईकोर्निया (जलकुम्भी), साल्विनिया तो तीव्र वृद्धि कर जल की सम्पूर्ण सतह पर फैल जाते हैं । इन प्लवमान पादपों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के कारण जल का वाष्पन हो जाता है । अपर्याप्त प्रकाश व जल की कम गहराई, मृदा अपरदन के कारण आई मिट्टी तथा प्लवमान पादपों के मृत अवशेषों के जमाव के कारण इन निमग्न पादपों को (प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण) अधिक गहरे जल में प्रवास करना पडता है अर्थात् ये गहराई की ओर स्थानान्तरित हो जाते हैं । जल के कम गहरे होने से धीरे-धीरे प्लावी विलुप्त होना प्रारम्भ कर देते हैं तथा इनके स्थान पर नये मूलयुक्त पादप समूह आ जाते हैं ।

IV. **नरकुल स्तर** (Reed awamp stage)-यह स्तर जल स्थलीय (amphibious) कहलाता है जैसे कि पौधों के समुदाय में जड़ें होती हैं परन्तु उनके तने के आकार भाग वायु में स्थित होते हैं जातियाँ, जैसे-सिरपस (Sirpus), टाइफा (Typha), सैजीटेरिया (Sagittaria) और फ्रैगमाइट्स (Phragmites), इत्यादि इस स्तर के मुख्य पौधे हैं । ये अच्छे विकसित राइजोम रखते हैं और एक। घनी वनस्पति बनाते हैं अब जल स्तर अत्यधिक घट जाता हे और अन्ततः जल स्थलीय जातियों की वृद्धि के लिये प्रतिकूल हो जाता है ।

V. **सैज मीडो स्तर** (Sedge medow stage)-जल स्तर के सफलतापूर्वक घटने और आधार में बदलाव आने से कुछ सिप्रैसीएसी (Cyperaceae), तथा ग्रैमिनी (Gramineae) की जातियों के जैसे सैरेक्स (Carex), जंकस (Juncus), साइप्रस (Cyperus) और इलोकैरिस (Eleocharis) के जीव उस भाग को बसाते हैं । ये तालाब के बीच में अपने शाखीय प्रकन्दमय तन्त्र की सहायता से एक जाल की तरह की वनस्पति बनाते हैं । अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन की दर के द्वारा निरन्तर तेजी से जल की हानि होती है और जल्दी या बाद में

दलदल सीधे रूप से वायु के सम्पर्क में आती है जिससे पोषक तत्व जैसे अमोनिया, सल्फाइड, इत्यादि ऑक्सीकृत होकर नाइट्रेट्स और स्लफेट्स बनाते हैं । इस प्रकार उस स्थान की स्थिति में बदलाव आता है और दल-दल वाली वनस्पति धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है ।

VI. **वनस्थली या काष्ठीय वनस्पति अवस्था** (Woodland stage)

(i) आर्द्र जलवायु में जलक्रमक का अगला चरण स्थलीय पादपों का होता है तथा इसके पष्चात् काष्ठीय पष्चात् वाली ऐसी झाड़ियां तथा वृक्ष उत्पन्न होने लगते हैं जो जलाक्रांत (Waterlogged) स्थिति को सहन करने की शक्ति रखते हैं तथा इसके प्रति अनुकूलित होते हैं ।

(ii) झाड़ियों में मुख्यत सेलिक्स सिफेलेन्थस (Salix cephalanthus) व कोरनस (Cornus) प्रकार के होते हैं ।

(iii) इन झाड़ियों की जड़ें भूमि में सीधी गहरी न जाकर क्षैतिज वृद्धि करती हैं क्योंकि यहाँ पर भूमि में जल का स्तर ऊपर की ओर ही होता है ।

(iv) झाड़ियों के बीच-बीच में काष्ठिल वृक्ष जैसे एल्नस (Alnus), पोपुलस (Populus), केशिया (Cassia) आदि उगने लगते हैं ।

(v) इनके द्वारा आवास स्थल पर छाया तथा अधिक वाष्पोत्सर्जन की क्रिया से वातावरण में आर्द्रता उत्पन्न हो जाती है ।

(vi) वाष्पोत्सर्जन की क्रिया से भूमि में शुष्कता बढ़ती है लेकिन इनकी (वृक्षों) छाया में अनेक प्रकार की छोटी-छोटी वनस्पतियों के समूह मी उगने लगते हैं । इसके साथ ही भूमि में और अधिक ह्यूमस एकत्रित होकर विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु मृदा के निर्माण के साथ-साथ खनिजीकरण (Mineralisation) में सहयोग देते हैं ।

(vii) अब यह आवास धीरे-धीरे स्थल की प्रकृति में परिवर्तन के कारण वृक्षों की वृद्धि के लिये अनुकूल हो जाता है ।

VII. **चरम वन अवस्था** (Climax forest stage)

(i) जैसे-जैसे भूमि में ह्यूमस का संचय होता है, जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव इस भूमि में बढ़ने लगते हैं और भूमि अधिक उर्वर (इन सूक्ष्म जीवों की क्रियाओं के कारण) होती चली जाती है ।

(ii) इन उर्वर भूमि में समोद्भिद पादप (Mesophytes) जैसे - पॉपुलस (Populus), अल्मस (Ulmus) क्वेर्कस (Quercus) के मिश्रित वन निर्मित होते जाते हैं ।

(iii) इन वृक्षों की वितान (Tree canopy) की छाया के नीचे अनेक छाया सह (Shade tolerant, Sciophytes) झाड़ियाँ व शाकीय पादप पनपते रहते हैं । यही वन, अनुक्रमण की चरम अवस्था या चरम समुदाय है ।

(iv) अनुक्रमण प्रक्रिया में चरम समुदाय के निर्धारण में जलवायु का महत्वपूर्ण योगदान होता है साथ ही मृदा, भू-आकृति, वर्षा, जीव, अग्नि आदि कारक भी अनुकूल होने चाहिये । उदाहरणार्थ, अधिक वर्षा वाले उष्ण कटिबन्धीय जलवायु में चरम समुदाय के रूप में ऐसर

(Acer) आदि के ऊष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन (Tropical rain forest) तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में क्वेर्कस (Quercus), अल्मस (Ulmus), ऐसर (Acer) आदि के मिश्रित वन, लेकिन औसत वर्षा वाले क्षेत्रो में मानसून वन या उष्ण कटिबन्ह पर्णपाती वन (Tropical deciduous forest) का विकास होता है ।

इस प्रकार जो क्षेत्र किसी समय गहरे पानी से ढका था अन्त में चरम वन में परिवर्तित हो जाता है जहाँ प्रत्येक अवस्था का निश्चित अनुक्षेत्र के रूप में विकास देखा जा सकता है (चित्र 6.1) । यह प्रक्रम कई हजार वर्षो में पूरा होता है ।

जलक्रमक मे क्रियात्मक परिवर्तन (Functional changes in hydrosere)

उपरोक्त को ध्यान में रख हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि तालाब में अनुक्रमण के दौरान बड़े बदलाव एक आकृतीय निश्चित संकेत (Structural standpoint) बनाते हैं । अर्थात् संघठन में बदलाव (i) जातियों के संघठन में बदलाव, (ii) विभिन्नता में बदलाव । इसके अतिरिक्त यहाँ पर संकेतात्मक संख्या और दोनों प्रकारों में अर्थात् स्वजीवी और परोपजीवी में बदलाव आते हैं अर्थात् क्रियात्मक बदलाव ।

दो बड़े क्रियात्मक बदलाव इसके अन्तर्गत आते हैं- (i) निरन्तर जीवित और मष्त अकार्बनिक तत्व मे वृद्धि, (ii) एक नवीन तालाब के समुदाय के उपापचय में बदलाव, जहाँ पर स्वजीवी (P/R>1 जहाँ P- उत्पादन की दर, R-श्वसन की दर) उनमें बदलते हैं जो स्थापित हैं । (P/R=1) और अन्ततः परपोषी (P/R<1) दशाओं में बदलते हैं । निरन्तर बढ़ती हुई परपोषिता जलीय संघटन के उस अनुक्रम की दशा को दर्शाती है जिससे वे स्थलीय दशाओं में बदलते हैं । पारिस्थितिकीय अनुक्रम के ये चार आकृतिकीय और क्रियात्मक गुण (जातीय विभिन्नता में वृद्धि, आकृतीय जटिलता में वृद्धि, कार्बनिक तत्वों में वृद्धि और उपापचय स्थिरता प्राप्त करने का स्वभाव) इस संदर्भ में हैं, दोनों कारण और अधिक प्रक्रिया के बदलाव के प्रभाव और अन्तिम स्थिरता जोकि पारिस्थितिक तन्त्र के सामान्य गुण हैं ।

6.2.4.2 मरूक्रमक (Xerosere)

"शुष्क या अतिरूक्ष (Dry or extreme xeric) आवासों में होने वाले अनुक्रमण को **मरूक्रमक या भुश्कतारम्भी** (Xerarch) **अनुक्रमक** कहते हैं ।"

अधोस्तर (Substratum) की प्रकृति के आधार पर मरूक्रमक दो प्रकार का होता है-

(i) किसी भी पर्वतीय स्थल पर या विशाल चट्टानों या शैल खण्डों पर घटित होने वाला अनुक्रमण **भौलक्रमक** (Lithosere) कहलाता है ।

(ii) बालू या बालू मिट्टी के टीले (मरूस्थल) पर होने वाले अनुक्रमण को बालुकीयक्रमक (Psammosere) कहते हैं ।

उपरोक्त दोनों ही क्रमक मरूक्रमक के उदाहरण हैं ।

(A) **भौलक्रमक** (Lithosere)-इस प्रकार का शुष्क संचक्र नग्न चट्टान की सतह से सुरू होता है । वास्तविक आधार जल में अपूर्ण होता है और उसमें कार्बनिक तत्वों की कमी होती है । केवल उसमें खनिज पृथक अवस्था में उपस्थित होते हैं । इस भाग को प्रथम रूप से बसाने वाले

अग्रज एक प्रकार के लाइकेन (lichen) होते हैं और अनुक्रम एक निरन्तर सफलतापूर्वक स्तरों से होता हुआ अन्ततः वन में बदलता है जो एक परम समुदाय बनाता है । जैसा कि आर्द्रता संचक्र में संकेत किया गया है उसी प्रकार से शुष्क संचक्र में पौधों तथा उसी प्रकार जन्तुओं में सफल बदलाव होते हैं परन्तु यहाँ पर भी जैसा कि अधिकतर प्राथमिक स्वजीवी अनुक्रम में पौधों के जीवन में बदलाव जन्तुओं के जीवन के मुकाबले अधिक स्पष्ट होते हैं, पौधों के जीवन में बदलाव स्पष्ट होते हैं जो पौधों के अनुक्रम को न केवल दर्शाते हैं बल्कि अनेक स्तरों को विशिष्ट पौधों की जातियों को विशिष्ट प्रबलता स्तर के आधार पर नाम दिया गया है ।

अनेक पौधों की जातियों और उनके अनेक स्तर चट्टान के शुष्क संचक्र को चित्र 6.2 में दर्शाया गया है जो इस प्रकार से है-

I. **क्रस्टोज भौक अवस्था** (Crutose lichen stage)

जैसा कि पहले बताया गया है कि अंग्रेजों के द्वारा बसने वाला आधार आर्द्रता और कार्बनिक पदार्थों में अत्यधिक कमी वाला होता है और इसमें ताप की अधिकता होती है । इस स्तर पर पायी जाने वाली लाइकेन्स की जातियाँ राइजोकारपोन (Rizocarpon) रिनोडिना (Rinodina) और लिकेनोरा (Lecanora) हैं । ये कुछ अम्ल उत्पन्न करते हैं जो चट्टान में बदलाव लाते हैं । मृत लाइकेन्स के कार्बनिक पदार्थ चट्टानों के छोटे-छोटे भागों के साथ मिल जाता है, यद्यपि यह प्रक्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है । इसके पश्चात् ये लाइकेन्स फोलिओस (Folios) प्रकार के लाइकेन्स के द्वारा बदल दिये जाते हैं ।

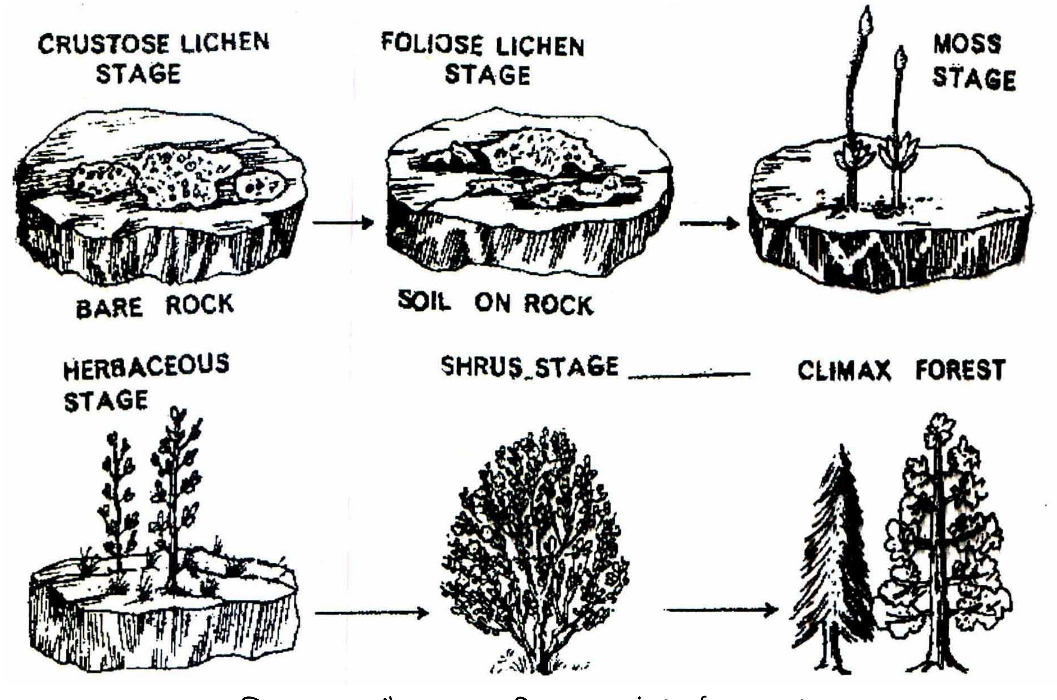

चित्र 6.2 : शैल क्रमक की अवस्थाएं (वर्मा, 1996)

II. **पर्णिल भौक अवस्था** (Foliose lichen stage)

(i) पर्पटी लाइकेनों द्वारा शैल में लाए गये परिवर्तनों के कारण इस पर कुछ मरूस्थली पर्णिल लाइकेनों का उगना प्रारम्भ हो जाता है ।

(ii) ये लाइकेन शैल के गर्तों या अपक्षीन भागों पर उगते हैं । इनके मुख्य उदाहरण हैं- डरमेटोकार्पोन (Dermatocarpon), अम्बीलीकेरिया (Umbilicaria), पारमिलिया (Parmelia), पारसेलिया (Parcelia), आदि ।

(iii) पर्णिल लाइकेनों के सूकाय (Thallus) पत्तीनुमा होने के कारण पर्पटी लाइकेनों पर छाया हो जाती है जिससे वे नष्ट हो जाती हैं ।

(iv) पर्णिल लाइकेनों के चौड़े थैलस जल का अवशोषण कर लम्बी अवधि तक नमी को रोके रख लेते हैं ।

(v) पर्पटी लाइकेनों के क्षय से कुछ कार्बनिक पदार्थ बन जाते हैं तथा पर्णिल लाइकेनों के आस-पास जल व ह्यूमस एकत्रित हो जाता है ।

पर्णिल लाइकेनों से स्रावित अम्ल, शैल का शनैः-शनैः क्षरण करते जाते हैं । धीरे-धीरे शैल कणिकाओं, लाइकेनों तथा धूल कणिकाओं से चट्टान की सतह पर मृदा की एक पतली परत का निर्माण होता है ।

(vi) इस मृदा में जल धारण क्षमता के बढ जाने तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता होने से यह आवारा मरूस्थली पर्णिल लाइकेनों के लिए अनुपयुक्त हो जाता है ।

III. **मॉस अवस्था** (Moss Stage)

(i) शैल की तरेड़ों या दरारों (Cracks) में पतली मृदा परत व ह्यूमस उत्पन्न होने से कुछ मॉस पादप उगने लगते हैं जैसे-पॉलिट्राईकम (Polytrichum), टोरट्रूला (Tortula), फ्यूनेरिया (Funaria), हिपनस (Hypnus), बारबुला (Barbula), इत्यादि (चित्र 6.2) ।

(ii) मॉस के मूलाभास (Rhizoids) लाइकेनों से स्पर्धा करते हैं तथा लाइकेनों पर छाया डालते हैं । इनके साथ-साथ कुछ क्षुपिल लाइकेनें (Fruticose lichens) जैसे अस्निया (Usnia) एवं, क्लैडोनिया (Cladonia) भी उत्पन्न होते हैं।

(iii) मॉस के मूलाभास जल तथा पोषक तत्वों का अवशोषण करते हैं परन्तु कुछ मॉस अम्लीय स्थिति उत्पन्न कर खनिजीकरण (Mineralization) में सहयोग देती है तथा समुच्चयन (Aggregation) में उगकर चट्टान पर एक गलीचे जैसी पादप वृद्धि का निर्माण करती है ।

(iv) इन पौधों की उत्पादकता (Productivity) पूर्व की अवस्थाओं वाले पादपों से अधिक होने के कारण मृदा की जलधारण क्षमता और कार्बनिक पदार्थ तथा खनिज पोषक तत्वों की मात्रा में भी वृद्धि होती है ।

(v) मॉस तथा लाइकेनों के मध्य प्रतिस्पर्धा में मॉस अधिक प्रभावी होती है जिससे इस जीवन संघर्ष में लाइकेन विलुप्त हो जाती है ।

(vi) मॉस समुदायों के द्वारा मृदा के निर्माण के फलस्वरूप ये स्थान भी भविष्य में मॉस के लिए उपयुक्त नहीं रहते तथा विभिन्न प्रकार की फर्नों, घासों तथा शाकीय पौधों के प्रवास हेतु उपयुक्त बनते जाते हैं ।

IV. **शाकीय स्तर** (Herbs stage)

माँस के अत्यधिक वृद्धि के कारण अधिक मिट्टी एकत्रित होती है और उसमें अधिक लवणों की मात्रा जुड़ती है और उपरोक्त वनस्पति से पदार्थ रिसकर पहुँचते हैं । इस प्रकार आवारा में बदलाव कुछ शाकीय खरपतवारों की वृद्धि के पक्ष में होते हैं जो मुख्य रूप से एकवर्षीय होते हैं और इसी प्रकार कुछ द्विवर्षीय और बहुवर्षीय भी होते हैं । इनकी वृद्धि और मृत्यु के कारण अधिक मात्रा में मिट्टी में ह्यूमस (humas) एकत्रित होती है और चट्टान में पुन: बदलाव हो जाते हैं इस प्रकार पहली दशाओं मे बदलाव होता है और आवासों में बदलाव आ जाता है । यह स्तर कुछ उथली जड़ों वाली घास जैसे. एरिसटिडा (Aristida), फेस्ट्यूका (Festuca), पोआ (Poa), सोलिडैगो (Solidago), इत्यादि से बनता है जो बाद में झाड़ियों के द्वारा बदल दिये जाते हैं ।

V. **क्षुप अवस्था** (Shrub stage)

(i) मृदा की मोटी परत बन जाने पर मरूद्भिदी क्षुप प्रकट होने लगते हैं, जैसे- रस (Rhus), जिजिफस (Ziziphus), कैपेरिस (Capparia), जाइगोफिलम (Zygophllum), यूफोर्बिया (Euphorbia), फाइटोकार्पस (Phytocarpus), आदि ।

(ii) इन क्षुपों की जड़ें चट्टानों का तीव्र विघटन करती है तथा इनसे गिरी हुई पत्तियों व टहनियों से ह्यूमस का निर्माण होकर मृदा की उर्वरता बढ़ती जाती है ।

(iii) क्षुपों की उपस्थिति से भूमि पर छाया के पड़ने से वाष्पन कम हो जाता है । वायु (wind) की गति मंद तथा इसकी आर्द्रता में वृद्धि हो जाती है । ये सब परिस्थितियाँ वृक्षों के लिए अनुकूल तथा पूर्व विकसित पौध के लिए प्रतिकूल होती जाती हैं जो अन्त में विलुप्त होना प्रारम्भ कर देती हैं (चित्र 6.2) ।

VI. **चरम अवस्था** (Climax stage)

(i) वृक्षों की सर्वप्रथम प्रकट होने वाली जातियाँ मरूद्भिदी (Xerophytic) होती है, जैसे- अकेशिया (Acacia),साल्वेडोरा(Salvadora), केजुएराइना (Casuarina), टेमेरिक्स (Tamarix), आदि।

(ii) इन वृक्षों की वृद्धि मंद होती है तथा ये एक-दूसरे से दूर-दूर उगते हैं। इनके नवोद्भिद (Seedlings) छाया असह (shade intolerant) होते हैं।

(iii) शैल अपघटन (weathering) तथा ह्यूमस निर्माण के कारण अधिक मृदा बनती है। धीरे-धीरे भूमि में नमी तथा वायु की आर्द्रता बढ़ती जाती है।

(iv) अब ये वृक्ष अपेक्षाकृत ऊँचे तथा सघन होने लगते हैं। इनकी छाया में छाया-असह क्षुप तथा पूर्ववर्ती वृक्षों के स्थान पर अधिक छायासह (shade tolerant) तथा समोद्भिद (mesophytes) वृक्ष जातियाँ उग जाती हैं।

(v) इन वृक्षों की छाया में अनेक प्रकार की छायाप्रिय वनस्पति प्रचुर संख्या में जाकर चरम-समुदाय या चरम वनस्पति का निर्माण कर देती हैं।

उपरोक्त अनुक्रमण में जो स्थान पूर्व में वनस्पति रहित व चट्टान के रूप में था वह कालान्तर में मृदा में परिवर्तित होकर वृक्षों के समुदाय की वनस्पति से आच्छादित हो जाता है (चित्र 6.2)।

(B) बालुकानुक्रमक (Psammosere)

समुद्रों, झीलों और नदियों के तट पर प्रायः बड़े-बडे बालू के टीले देखे जा सकते हैं । यह बालू जलोढ़ (alluvial) होती है । इसी प्रकार मरुस्थलों में शैलों के अपरदन से एकत्र बालू के टीले पाए जाते हैं । यह बालू अधिकतर वातोढ़ (eolian) या अनूढ़ (eluvial) होती है। यदि बालू एक स्थान ' से दूसरे स्थान पर वायु द्वारा ले जाई जावे तो वातोढ़ कहलाती है। शैलों के अपरदन से बनी बालू के उसी स्थान पर बने रहने पर, उसे अनूढ़ कहते हैं।

इन सभी प्रकार की बालू के आवासों में कुछ समान गुण होते हैं। प्रथम, आवास शुष्क होता है क्योंकि जल और बालू के बीच बड़े रन्ध्रों में होकर शीघ्रता से नीचे चला जाता है और यदि कोशिकाकर्षण द्वारा ऊपर चढ़े भी, तो शीघ्र वाष्पित होता है । प्रायः यह भी देखा गया है इन बालू के टीलों 'की ऊपरी सतह पर मिट्टी के महीन कण जमा हो जाने से एक कड़ी पर्त सी बन जाती है जिस पर से वर्षा का जल बह जाता है और रन्द्रों में होकर गुजरता ही नहीं । दूसरे, बालू अपरिपक्व मृदा ही होती है और इसमें खनिज पोषक तत्त्वों का अभाव होता है । समुद्रों, कुछ झीलों और मरुस्थलों की बालू में लवणों की काफी मात्रा भी पाई जाती है, जिसके कारण मृदा भौतिक रूप से ही शुष्क न होकर कार्यिकी रूप से भी शुष्क होती है। तीसरी प्रमुख समानता इनकी अस्थिरता की है । जल के किनारे, जल द्वारा बालू स्थान बदलती रहती है तो शुष्क प्रदेशों में वायु द्वारा । मरुस्थलों में वायु प्रायः कई किलोमीटर प्रति घण्टे के वेग से बहती है और निर्जन, वनस्पतिहीन प्रदेशों में, बालू के टीले स्थानांतरित होते रहते हैं । इसीलिए इनको चर-बालुका-टिब्बा (Shifting stand dune) कहा जाता है। इन तीन कारणों से ही इन बालुका-आवासों पर अनुक्रमण अत्यन्त कठिन होता है। काउल्स (1899) ने अपने अनुक्रमण सम्बन्धी चिरसम्मत अध्ययन मिशीगन झील के तट पर बालू के टीलों पर ही किए थे। इन अध्ययनों को डाबेनमायर (1968) तथा अन्य वैज्ञानिकों की पुस्तकों में सहज ही देखा जा सकता है । बाद में ओलसन (1958) ने इन्हीं बालू के टीलों पर अनुक्रमण का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया । सेलिसबरी (1952) ने 'डाउन्स और ड्यून्स' नामक अपनी प्रख्यात पुस्तक में विभिन्न बालुका आवासों पर अनुक्रमण का रोचक वर्णन किया है।

यहाँ भारत के बालुका आवासों पर अनुक्रमण के उदाहरणों से विषय को स्पष्ट किया जा रहा है (चित्र 6.3)। शुष्क प्रदेशों में, प्रतिदिन, वायु द्वारा स्थानांतरित होते बालू के टीलों पर अनुक्रमण के लिए सर्वप्रथम उनके स्थिर होने की आवश्यकता होती है । जब खिसकता हुआ रेत किसी पेड़, बड़े शैलखंड या ऐसे ही अन्य अवरोध तक पहुँच जाता है तो, इस अवरोध के चारों ओर एकत्र होने लगता है धीरे-धीरे इस ढेर का आकार बढ़ता रहता है। ऐसे टीले को भ्रूण टीला (embryonic dune) कहते हैं। इस पर घास (जैसे एमोफिला. सेन्क्रस) तथा अन्य शाकीय पौधे (जैसे लेप्टाडीनिया टेफ्रोसिया, क्रोटेलेरिया बुरहिया सिट्रूलस कोलोसिन्थस) उगने लगते हैं।

प्रारम्भिक अवस्थाओं में ये बालू के टीले पूर्ण रूप से स्थायी नहीं होते । पौधों के उगने पर तो रेत एकत्र रहती है परन्तु पौधों के मरने पर रेत पुन: वायु के साथ खिसकने लगती है । कालांतर में इन अग्रणी पौधों की संख्या और उनके आकार में वृद्धि होने पर रेत में, इनकी जड़ों और प्रकन्दों का जाल सा बिछ जाता है जिससे बालू के कण आपस में बंध जाते हैं । इसके अतिरिक्त ह्यूमस, लवणों, आदि के भी एकत्र हो जाने पर बालू के टीले स्थिर हो जाते हैं, और उनकी कुछ ऊपरी पर्तों को छोड़कर शेष भाग वायु से प्रभावित नहीं होता। ऐसी स्थिति में, यदि आवास में वर्षण द्वारा जल की काफी मात्रा उपलब्ध होती रहती है तो, इन टीलों पर शैवाल (प्रायः नील हरित) और लाइकेन (जैसे हेप्पिया, डरमेटोकार्पोन, प्सोरा; इंगलैण्ड, आस्ट्रेलिया व रूस में क्लेडोनिया और पारमेलिया की अनेक जातियां आस्थापित हो जाते हैं। इनकी प्रतिक्रिया द्वारा, पौधों के लिए पोषक तत्व प्राप्त होते हैं और आवास में कार्बनिक पदार्थों तथा नाइट्रोजन मात्रा बढती है।

एक बलुई टीले पर अनुक्रमण प्रक्रम को निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं :-

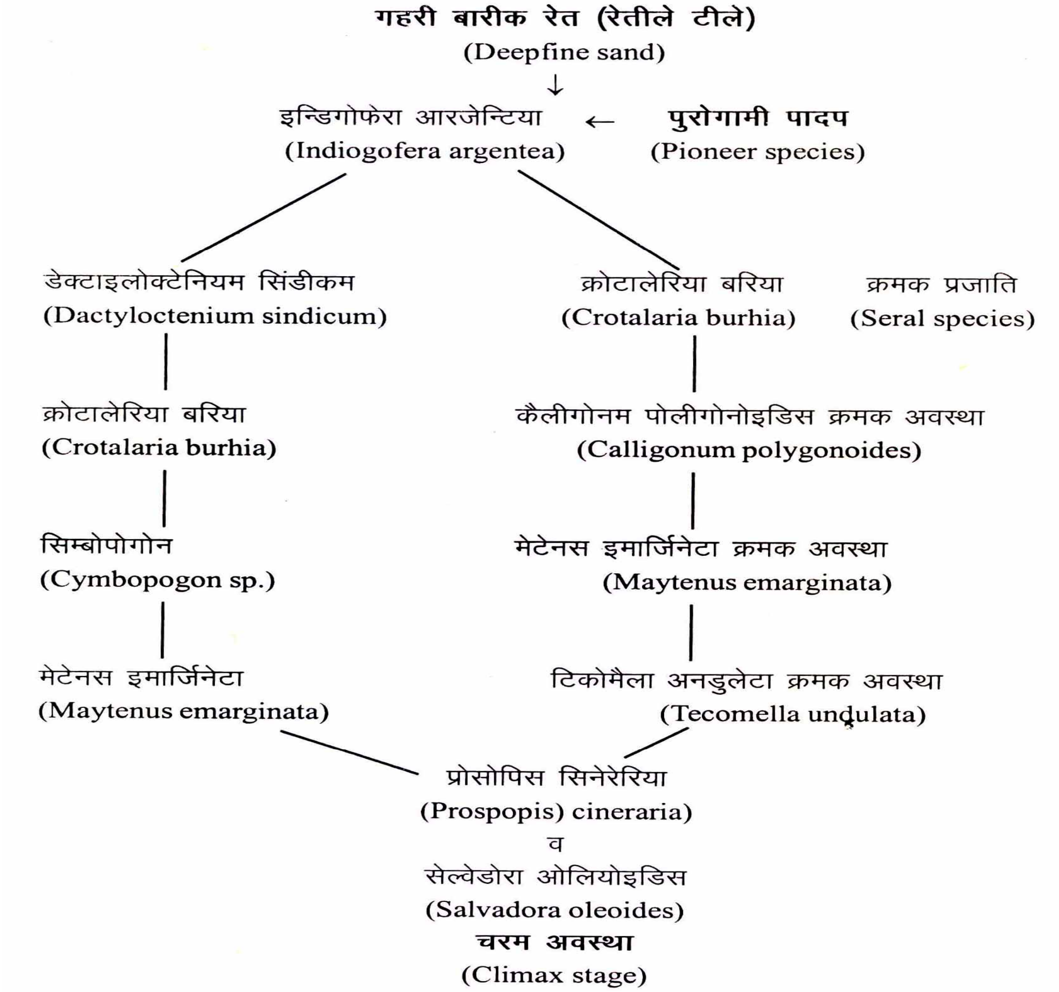

चित्र 6.3 एक बालू मैदान या बलुई टीले पर अनुक्रमण प्रक्रम की विभिन्न क्रमक अवस्थाएँ (शर्मा व अन्य, 2005)

स्थायीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओं में रेत के टीलों पर, अन्य बहु वर्षीय तथा वार्षिक शाकीय और काष्ठीय पौधे अवस्थापन करते हैं। इनमें सैकेरम, सायनोडान पेनिकम केलोट्रोपिस केलीगोनम सेरिकोस्टोमा इल्यूसाइने, स्पोरोबोलस, प्रमुख हैं। कुछ बाद में आस्थापित होने वाली काष्ठीय झाड़ियों में एकेशिया की जातियाँ, कैपेरिस साल्वाडोरा, मेटेनस, बेलेनाइटेस, प्रोसोपिस, जिजीफस की जातियाँ सामान्य रूप से मिलती हैं (चित्र 6.3)। जलवायु विशेषकर वर्षा की मात्रा, के अनुसार चरम समुदाय एकेशिया, प्रोसोपिस, एनोगाइसस, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, केजुराइना, एल्बीजिया, कैशिया, टर्मीनालिया, बोस्वेलिया, डायोस्पाइरोस मित्रागाइना, मधूका, आदि की जातियों द्वारा बनता है । वस्तुतः मरुस्थलों में अनुक्रमण वर्षा की मात्रा और वायु के वेग पर अधिक निर्भर होता है । यदि किसी क्षेत्र में काफी वर्षा होती है और शुष्क ऋतु में वायु का वेग अधिक नहीं होता, तो बालू के टीले शीघ्र स्थिर हो जाते हैं और उन पर काष्ठीय वनस्पतियों का समुदाय कुछ वर्षों में ही विकसित हो जाता है । इस प्रक्रिया का उपयोग नियन्त्रित परिस्थितियाँ उत्पन्न करके बालुका आवासों के पुनराद्धार में होता है।

6.2.5 चरम परिकल्पना का सिद्धान्त (Climax concept in succession)

अन्ततः अनुक्रम कम और अधिक स्थिर समुदाय जो किसी स्थान के वातावरणीय दशाओं के साथ किसी हद तक सन्तुलन बनाने में सक्षम होता है उसे क्लीमेन्टस (Clements,) में परमशब्दावली के नाम से बताया है । परमता का विषय अत्यधिक विवादित है और समय-समय पर अनेक पारिस्थितिकविदों के द्वारा इसको देखा गया है। क्लीमेन्टस (Clememts, 1916,1935) के अनुसार परम को निम्नलिखित तीन सिद्धांतों में बांटा जा सकता है-

(a) **एकता** (Unity)- परम एक इकाई है और किसी भाग की जलवायु की सूचक है। पौधों के वृद्धि रूप और जीवन जलवायु के प्रकार को दर्शाते हैं । जब तक कि सारी जातियों को एक व्यवस्थित इकाई न माना जाये परमता जलवायु को प्रकट नहीं कर सकती है।

(b) **स्थिरता** (Stability)- परमसमुदाय का रूप जलवायु के साथ अधिक और कम स्थायी होता है । यह परमसमुदाय किसी दूसरे समूह की जातियों से संघर्ष के द्वारा नहीं बदला जा सकता है। दूसरे शब्दों में **क्लीमेन्ट्स** (Clements) के अनुसार एक विशिष्ट जलवायवीय भाग में परम समुदाय विकसित हो सकते है जो केवल प्रबल जातियों के कुछ गुण रखते हैं।

(c) **उत्पत्ति और जातिवृत्त सम्बन्ध** (Origin and phylogenetic relation)- परम समुदाय को एक जीव के समान माना जा सकता है जिसका जन्म होता है, विकास, वृद्धि होती है और अन्ततः परिपक्व होता है। इस परम समुदाय के जीवीय सिद्धान्त (organismic concept) में क्लीमेन्टस (Clements) ने इस स्तर तक इसको जाना कि इसे परमजीव का नाम दिया। किसी भी जलवायवीय भाग में परम समुदाय के विकासशील स्तर अपने स्वत: गुण रखते हैं जो जलवायु को प्रभावित करते हैं । जीव के विकास के समान आयु के बदलाव के साथ परम समुदाय धीरे-धीरे बदलती जलवायु के साथ बदलाव लाती हैं । इस प्रकार जातिवृत्त सम्बन्ध संसार के अनेक परमजीवी समुदायों के बीच स्थापित किया जा सकता है । पारिस्थितिकी में परम सिद्धान्त के लिये तीन प्रमुख प्रचलित सिद्धान्त दिये गये हैं:-

1. **एक चरम समुदाय सिद्धान्त** (The monoclimax theory)-इस सिद्धान्त के प्रस्तुतकर्ता अमेरिका के पारिस्थितिक वेत्ता फ्रेड्रिक क्लीमेन्ट्स (Frederick Clements,1916) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार 'किसी भी जलवायवी या भौगोलिक क्षेत्र में सिर्फ एक चरम समुदाय होता है ।

इस विचारधारा को कुछ पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने सराहा है लेकिन क्लीमेन्ट्स के ही सहयोगी काउल्स (Cowles) ने अनुक्रमण में स्थिरता की धारणा को स्वीकार नहीं किया तथा बताया कि अनुक्रमण में वास्तविक तौर पर संतुलन की स्थिति कभी भी नहीं आती, यह तो एक परिवर्तित स्थिति की ओर अग्रसर होती हुई परिवर्तनशील प्रक्रिया है।

कूपर (Cooper) के अनुसार प्रगामी (progressive) और प्रतिगामी (Retrogressive) सभी प्रकार के समुदाय परिवर्तन को अनुक्रमण मानना चाहिये । क्लीमेन्ट्स की विचारधारा का मुख्य विरोध जलवायु के विशय में है । किसी क्षेत्र की समान जलवायु होने पर भी विभिन्न प्रकार के चरम समुदाय मृदा, स्थलाकृति या अन्य कारकों के आधार पर विकसित हो जाते हैं । अत: ऐसी अवस्था में सिर्फ जलवायु को ही चरम समुदाय के निर्धारण हेतु मुख्य कारक नहीं माना जा सकता।

टेन्सले (Tansley,1935) के अनुसार चरम समुदाय वास्तविक रूप से एक से अधिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है न कि मात्र जलवायु द्वारा।

2. **बहु चरम सिद्धान्त** (Polyclimax theory)-टेन्सले (Tanstey, 1935) के अतिरिक्त कई यूरोपियन पारिस्थितिकीवेत्ता जैसे- निकोलोस (Nicholos), चेम्पियन (Champion), बोर (Bore) व विटेकर (Whittaker, 1953) आदि ने बहु चरम धारणा को प्रतिपादित किया है, लेकिन टेन्सले की धारणा ही सर्वप्रथम बहु चरम धारणा के नाम से प्रसिद्ध हुई । इनकी धारणा के अनुसार "चरम समुदाय" को नियन्त्रित करने वाले अनेक कारक होते हैं न कि सिर्फ जलवायु ही।

इस विचारधारा को देखकर क्लीमेन्ट्स ने जलवायु के अतिरिक्त अन्य कारकों को भी चरम समुदाय के निर्धारण हेतु स्वीकार किया, किन्तु उन्होंने स्पष्ट किया कि समय आने पर विभिन्न चरम समुदाय जलवायु के अनुसार ही विकसित होंगे।

क्लीमेन्टस ने अन्य कारकों को अपनी धारणा में समायोजित करने के लिए कुछ सबआर्डिनेट (उपकुलीय) समुदायों का उपयोग किया है जो इस प्रकार हैं-

(i) **उपचरम या पूर्वचरम** (Subclimax or Preclimax)-मृदा या भू-आकृतिक कारकों के प्रभाव से स्थिर होने वाले समुदाय को उपचरम कहते हैं।

(ii) **विक्षुब्ध चरम** (Disclimax)-मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुए चरम समुदाय को विक्षुब्ध चरम समुदाय कहते हैं। उदाहरणार्थ वन में घास स्थल, जो वनों को काटने, चारण या अग्नि जैसी क्रियाओं द्वारा नष्ट किये जाते रहे हैं ।

(iii) **क्रमक चरम** (Sereclimax)-ऐसे समुदाय जो अनुक्रमण की किसी क्रमक अवस्था पर सूक्ष्म जलवायु या अग्नि, मृदा आदि कारकों के कारण स्थायी हो जाते हैं, क्रमक चरम कहलाते हैं ।

(iv) **विक्षेपित चरम** (Plagio climax)-स्थानीय परिस्थितियों के कारण जिस जलवायु क्षेत्र में जैसा चरम समुदाय बनना चाहिये, उससे कुछ भिन्न बनता है । यह भिन्नता मुख्य रूप से उसमें मिलने वाली प्रधान या उप प्रधान जातियों के कारण होती है । इसलिये ऐसा समुदाय विक्षेपित समुदाय कहा जाता है।

आगे चलकर कई वैज्ञानिकों ने कई अन्य चरम समुदाय जैसे- सहचरम (Co- climax), महाचरम (Super climax), अर्ध चरम (Quasi- climax), प्रतिचरम (Anticlimax) आदि का प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरूप अधिक जटिलता बढ़ी है।

टेन्सले ने अपने सिद्धान्त में सिर्फ बहुचरम शब्द का ही प्रयोग किया है । उनके अनुसार पर्यावरण का कोई भी कारक चरम अवस्था को प्रभावित कर सकता है । प्रभावित करने वाले कारक के आधार पर ही उस चरम अवस्था का नामांकन किया जाता है । इस प्रकार जलवायवी चरम (Climatic climax) के अलावा निम्नांकित चार समुदाय और होते हैं-

(i) **मृदीय चरम** (Edaphic climax)-मृदा से प्रभावित होकर विकसित होने वाले चरम समुदाय मृदीय चरम कहे जाते हैं।

(ii) **जैविक चरम** (Biotic climax)-जीवों की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप विक्षुब्ध चरम समुदाय को जैविक चरम कहते हैं।

(iii) **भू-आकृतिक चरम** (Topographic climax)-ऐसे चरम भू-आकृतिक के अन्तर से प्रभावित होकर बनने वाले चरम हैं, जैसे-पर्वतों, पहाड़ियों या टीलों पर।

(iv) **अग्नि चरम** (Fire climax)-किसी स्थल में उत्तरोत्तर अग्नि के प्रभाव से विकसित होने वाले समुदाय को अग्नि चरम कहते हैं।

बहुचरम धारणा में विश्वास करने वाले वैज्ञानिकों ने समुदाय संतुलन स्थिति को चरम अवस्था स्वीकार किया है और पर्यावरण के जिस कारक द्वारा प्रभावित होने से चरम समुदाय का निर्माण होता है उसे उसी कारक का चरम समुदाय कहते हैं। उदाहरणार्थ, भारत के मध्य प्रदेश में घास स्थल, श्रीलंका में वनों के स्थान पर घास स्थल, अफ्रीका के सवाना व केलिफोर्निया के चपराल आदि अग्नि, चारण व जैविक कारकों के प्रभाव से विकसित हुए चरम समुदाय है।

3. **चरम प्रतिमा परिकल्पना** (Climax pattern hypothesis)

इस परिकल्पना को **विटेकर** (Whittaker, 1963) ने प्रतिपादित किया । इस सिद्धान्त के अनुसार चरम समुदाय का संगठन (composition) व अन्य लक्षणों का निर्धारण पारिस्थितिकी तंत्र के समस्त पर्यावरणीय कारणों द्वारा होता है न कि एक एकल कारक द्वारा, अर्थात् किसी भी स्थान का पादप समुदाय वहाँ के समस्त पर्यावरणीय कारकों के अनुकूल होता है।

इस क्षेत्र में पादप समुदाय को छोटी-छोटी इकाईयों में नही बांटा जा सकता है । जैसे-जैसे पर्यावरण में परिवर्तन आते जाते हैं उसी क्रम में चरम समुदाय की वनस्पति में भी परिवर्तन आने लगते हैं।

6.2.6 बोध प्रश्न

नोट: (i) प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने के लिए करें ।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से मिलाए।

प्रश्न1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :

I रिक्त स्थान भरों:

1. शैल क्रमक .... अनुक्रमण का उदाहरण है ।
2. अनाच्छादन अनुक्रमण प्रक्रम की .... अवस्था है ।
3. पर्पटी लाईकेन्स शैल क्रमक के ....पादप है ।
4. बालुई क्रमक में इंडिगोफेरा आर्जेन्टिया...................................... पादप के तौर पर निरूपित होता है।
5. प्राथमिक अनुक्रमण .... क्षेत्र में होता है।

प्रश्न 2. बहुविकल्पी प्रश्न:

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें:

1. जैविक व्यवधानों के द्वारा होता है:

   (अ) द्वितियक अनुक्रमण (ब) परजात अनुक्रमण

   (स) प्राथमिक अनुक्रमण (द) स्वगत अनुक्रमण

2. जीवाणुओं एवं सूक्ष्म जीवों के अनुक्रमण को कहते है:

   (अ) परजात क्रमक (ब) सूक्ष्म क्रमक

   (स) जीव क्रमक (द) परपोषी क्रमक

3. पुरोगामी समुदाय विकसित होते है:

   (अ) अन्त से थोड़ा पहले (ब) अन्त में

   (स) अनुक्रमण के मध्य में (द) प्रारम्भ में

प्रश्न 3. निम्न में से कौन सा कथन सत्य/असत्य है:

1. प्लावी अवस्था जल क्रमक का पुरोगामी समुदाय है ।
2. नड़ अनूप अवस्था जल क्रमक में पाई जाती है ।
3. माँस अवस्था शैल क्रमक का पुरोगामी समुदाय है ।
4. बालुकीय क्रमक जलारम्भी अनुक्रमण का उदाहरण है।

प्रश्न 4. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दो:

1. प्राथमिक अनुक्रमण की परिभाषा लिखिए?

……………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………

2. जल अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं के नाम बताइए।

………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

3. जल अनुक्रमण के पुरोगामी समुदाय के तीन उदाहरण बताइए।

…………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………

6.3 सारांश (Summary)

अनुक्रमण एक सतत्, दीर्घकालिक, कभी-कभी अल्पकालिक (जैसे सूक्ष्मक्रमक) एकदिशीय विकासीय प्रक्रम है। अनुक्रमण सदैव अभिसारी (convergent) होता है। अनुक्रमण पुरोगामी समुदाय से प्रारम्भ होकर चरम अवस्था में परिवर्तित होता है । अनुक्रमण के लिये यदि अन्य पर्यावरणीय कारक समान हो तो यह अनुभव किया गया है कि चरम समुदाय के निर्धारण में जलवायु का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अनुक्रमण की प्रक्रिया में निरन्तर वनस्पति समुदायों तथा पर्यावरण में परस्पर प्रतिक्रियायें, प्रतिस्पर्धा आदि चलती रहती है । अनुक्रमण में संरचनात्मक व क्रियात्मक परिवर्तनों (पारिस्थितिकी तंत्र की तरह) को स्पष्ट रूप में उल्लेखित किया जा सकता है।

6.4 शब्दावली (Glossary)

1. **पादप अनुक्रमण** (Plant succession): किसी एक स्थान पर होने वाले दीर्घकालीन एक दिशीय समुदाय परिवर्तन।

2. **प्राथमिक अनुक्रमण** (Primary succession): पूर्व में पूर्णत: वनस्पति रहित रहे आवास पर होने वाला अनुक्रमण।

3. **द्वितीयक अनुक्रमण** (Secondary succession) ऐसे स्थल जहां पूर्व में वनस्पति उपस्थित थी लेकिन किन्ही कारणों से वहां की वनस्पति नष्ट हो गई तथा पुन: वनस्पति स्थापित होने की प्रक्रिया।

4. **पुरोगामी समुदाय** (Pioneer community)-अनुक्रमण के दौरान बाहर से आकर नये ऊसर आवारा में प्रथम बार स्थापित होने वाली पादप जातियों को पुरोगामी समुदाय (Pioneer community) कहते हैं।

5. **चरम समुदाय** (Climax community)-अनुक्रमण धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ चरम समुदाय में परिणित हो जाता है । चरम समुदाय में अब और नवीन समुदायों के स्थापित होने की गुंजाइश नहीं होती है।

6. **क्रमकी समुदाय** (Serial communities)-समुदाय अनुक्रमण के प्रारम्भ से लेकर अंतिम चरम समुदाय के मध्य में आने वाली अवस्थाओं को **क्रमिक समुदाय** (Serial

communities) या क्रमकी अवस्था (Serial stage) कहते हैं। अनुक्रमण की समस्त क्रमिक अवस्थाओं को मिलाकर क्रमक (Sere) कहा जाता है।

7. **जलारम्भी** (Hydrach)-जलीय आवासों में होने वाले अनुक्रमण को जलारम्भी (Hydrach) तथा इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं को **जलक्रमक** (Hydrosere) कहते हैं।

8. **भुश्कतारम्भी** (Xerach)-शुष्क आवासों में पाये जाने वाले अनुक्रमण को **भुश्कतारम्भी** (Xerarch) अनुक्रमण कहते हैं।

9. **मरुक्रमक** (Xerosere)-शुष्कतारम्भी अनुक्रमण के अंतर्गत सम्पन्न होने वाले विभिन्न चरणों को संयुक्त रूप से मरुक्रमक (Xerosere) कहा जाता है । इसके दो प्रकार हैं-

10. **भौलक्रमक** (Lithosere)-जब मरुक्रमक नग्न चट्टानों (Bare rocks) पर आरम्भ होता है तो इसे भौलक्रमक (Lithosere) कहते हैं।

11. **बालुकीय क्रमक** (Psammosere)-रेत अथवा रेतीले टीलों पर होने वाला अनुक्रमण बालुकीयक्रमक (Psammosere) कहलाता है।

12. **सूक्ष्मक्रमक** (Serula)-सूक्ष्म जीवों का अनुक्रमण जो प्रायः अपघटित पदार्थों पर होता है सूक्ष्मक्रमक कहा जाता है।

3.5 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल के मूल तत्व- डॉ. बृज गोपाल (1975), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।

2. पर्यावरण तथा प्रदूषण - अरूण रघुवंशी, चन्द्रलेखा रघुवंशी (1995), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी.डी.शर्मा (2004), रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।

4. पादप पारिस्थितिकी एवं पादप भूगोल - एम.एल.वर्मा, जे.पी. गुप्ता, बी.एल.यादव (2001) अलका पब्लिशर्स अजमेर।

5. Concepts of Indian Ecology - D.N. Sen (1978), S. Nagin & Co., Jalandhur.

6. पारिस्थितिकी एवं पादपों की उपयोगिता निरंजन शर्मा, पी.सी.त्रिवेदी, आर.एस.धनकड़ (2005), रमेश बुक डिपो जयपुर।

7. Ecology- N.S. Subrahmanyan, A.V.S.S. Sambamurty (2000), Narosa Publishing House, New Delhi.

8. A Text Book of Plant Ecology- R.S. Ambasht, N.K. Ambasht (1999),C.B.S. Publisher & Distributors, New Delhi.

9. Ecology, Environment & Resource Conservation- J.S. Singh. S.R. Gupta (2008), Anamaya Publishers, New Delhi.

10. A Text Book of Plant Ecology- V. Verma (1996) Emkay Publications, Delhi.

11. Plant Ecology and Soil Science- R.S. Shuklla, P.S. Chandel (1984), S. Chand & Co. Ltd., New Delhi.

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1.I

1. शुष्कतारम्भी
2. प्रथम
3. पुरोगामी
4. पुरोगामी
5. पूर्णत: पादप रहित

प्रश्न 2.II

(1) अ (2) ब (3) द

प्रश्न 3.

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) असत्य

प्रश्न 4.

1. पूर्व में पूर्णत: वनस्पति रहित रहे आवास पर हाने वाला अनुक्रमण।

2. I. पादपप्लवक स्तर, II. निमग्न अवस्था, III. प्लावी या प्लवमान अवस्था, IV. नरकुल स्तर, V. सैज मीडो स्तर, VI. वनस्थली या काष्ठीय वनस्पति अवस्था, VII. चरम वन अवस्था ।

3. हरे शैवाल, डायएटम्स एवं बैक्टीरिया।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

1. पादप अनुक्रमण से क्या अभिप्राय है?
2. पुरोगामी एवं क्रमकी अवस्थाएँ क्या हैं?
3. संक्षेप में टिप्पणियां लिखिए-

   (i) संक्रामण (ii) प्रतिगामी अनुक्रमण (iii) चरम अवस्था (iv) बहु चरम सिद्धान्त

4. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिए-

   (i) प्राथमिक एवं द्‌वितीयक अनुक्रमण (ii) पुरोगामी व क्रमकी अवस्थाएँ

   (iii) शैल क्रमक एवं बालुकीय क्रमक (iv) स्वगत व अन्यत्र जनिक अनुकमण

इकाई -7

पारिस्थिकीय तन्त्र - संरचना एवं कार्य
(ECOSYSTEM - STRUCTURE AND FUNCTION)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पारिस्थितिकी तन्त्र

7.2.1 संरचना (जैविक एवं अजैविक घटक)

7.2.2 कार्य प्रणाली

7.2.2.1 खाद्य स्तर एवं खाद्य श्रृंखला

7.2.2.2 खाद्य जाल

7.2.2.3 पारिस्थितिकी स्तूप

7.2.2.4 ऊर्जा प्रवाह

7.2.2.5 पारिस्थितिकी समस्थिरता

7.2.3 बोध प्रश्न

7.3 सारांश

7.4 शब्दावली

7.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.7 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objectives)

पारिस्थितिकी तन्त्र, पारिस्थितिकी की मूलभूत इकाई होती है। इस तंत्र में जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य अन्तःक्रियाएं होती हैं एवं दोनों परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस इकाई में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है-

1. पारिस्थितिकी तन्त्र
2. संरचना (जैविक एवं अजैविक घटक)
3. कार्य प्रणाली
4. खाद्य स्तर एवं खाद्य श्रृंखला
5. खाद्य जाल
6. पारिस्थितिकी स्तूप
7. ऊर्जा प्रवाह

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.जी.टेन्सले (A.G. Tensley- 1953) ने किया था । लेकिन पारिस्थितिकी तंत्र को विभिन्न जटिलताओं के कारण अलग-अलग वैज्ञानिकों ने इस हेतु अलग-अलग शब्द प्रस्तावित किये। जैसे बायोसीनोसिस (Biocoenosis), माइक्रोकोस्म (Microcosm), जियोबायोसीनोसिस (Geo- bio coenosis), होलोसीन (Holocoen), बायोसिस्टम (Biosystem), बायोइनर्ट बोडी (Bioinert body) आदि शब्दों का प्रयोग किया । लेकिन टेन्सले द्वारा प्रतिपादित इकोसिस्टम शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है। इकोसिस्टम, पारिस्थितिकी विज्ञान की -मूलभूत इकाई है जो जैविक एवं अजैविक घटकों की बनी होती है। इस प्रकार जैविक समुदाय एवं इसके अजैविक वातावरण का संयुक्त रूप पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) के द्वारा निरूपित होता है । इस तरह स्पष्ट है कि एक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण जैविक एवं अजैविक घटकों के द्वारा होता है, ये घटक एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं तथा इनके मध्य पारस्परिक क्रिया भी होती है ।

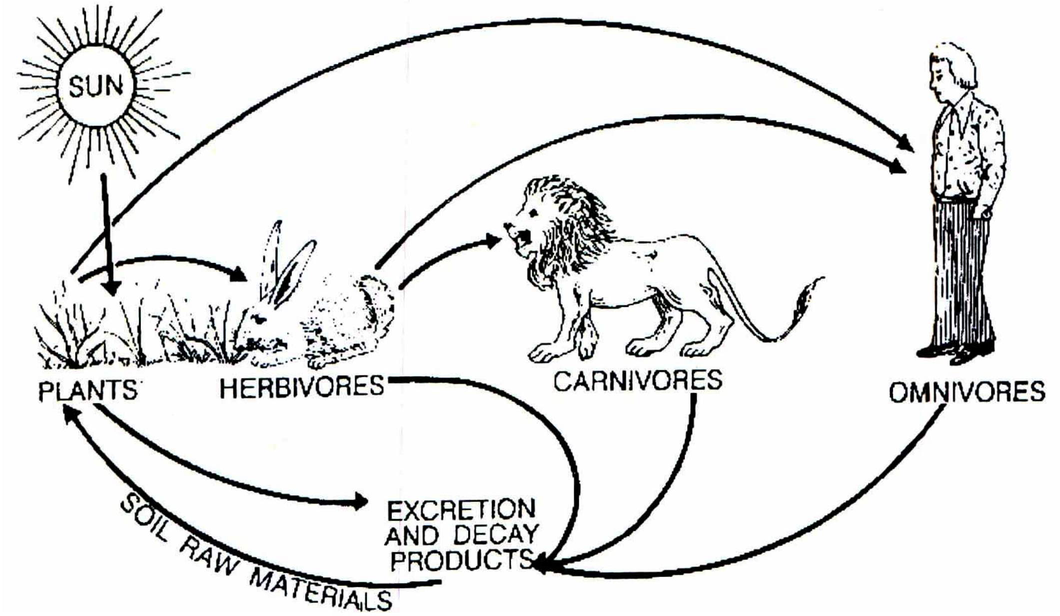

चित्र 7.1 पारिस्थितिकी तंत्र का निरूपण

एक जैव समुदाय के सभी सदस्यों में निरंतर अनुक्रिया होती रहती है । इन अनुक्रियाओं के माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह एक पोषक स्तर से दूसरे पोषक स्तर में, दूसरे से तीसरे पोषक स्तर में होता रहता है। ऊर्जा के इस सतत प्रवाह के कारण पारितंत्र के सभी घटकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है । ऊर्जा का यह प्रवाह केवल जैविक घटकों तक ही सीमित नहीं होता है बल्कि अजैविक घटकों में ऊर्जा का निरंतर प्रवाह होता रहती है । अर्थात किसी भी समुदाय में जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य ऊर्जा एवं खनिज के निरंतर प्रवाह के कारण अनेक रचनात्मक एवं क्रियात्मक अनुक्रियाएँ होती हैं । इन्हीं अनुक्रियाओं का सामूहिक परिणाम, पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) कहलाता है।

ओडम (Odum) के अनुसार पारितंत्र, पारिस्थितिकी की मूलभूत इकाई है जिसमें उपस्थित जैविक एवं अजैविक घटक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा दोनों ही घटक जीवन के रख रखाव के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

यदि व्यापक तौर पर देखें तो पृथ्वी जिस पर हम निवास कर रहे हैं स्वयं में एक वृहद पारिस्थितिकी तंत्र (Giant Ecosystem) है, जिसमें विभिन्न जैविक एवं अजैविक घटक आपस में पारस्परिक क्रिया करते रहते हैं । इस कारण पारिस्थितिकी तंत्र में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तन होते हैं । यद्यपि सम्पूर्ण जैवमण्डल (Biosphere) को नियंत्रित करना असंभव सा है लेकिन अध्ययन की दृष्टि से जैवमण्डल को स्थलीय, मरूस्थलीय, ग्रास लैण्ड, क्रोप लैण्ड, शुद्ध जलीय एवं समुद्रीज़लीय पारिस्थितिकी तंत्र में विभक्त कर सकते हैं। इस प्रकार एक पारिस्थितिक तंत्र सूक्ष्मतम तालाब से लेकर, एक विशाल सह के समान हो सकता है। यही इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि ये विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र समय एवं अवकाश (Space) में एक दूसरे से पृथक हैं लेकिन क्रियात्मक दृष्टि से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं । इनके मध्य प्रायोगिक तौर पर कोई कार्यात्मक सीमा संभव नहीं है ।

आधुनिक पारिस्थितिकी के संदर्भ में यदि देखें तो पारिस्थितिक तंत्र एक खुला तंत्र है जिसमें सतत लेकिन भिन्नित प्रकार से पदार्थो एवं ऊर्जा का निरंतर आदान प्रदान होता रहता है । यह एक मूलभूत एवं क्रियात्मक इकाई है जिसकी कोई क्रियात्मक सीमा नहीं होती है । इसमें जैविक एवं अजैविक घटक निरंतर पारस्परिक क्रिया करते रहते हैं, जो जीवन की उपस्थिति के लिये अत्यंत आवश्यक हैं । इस प्रकार एक उच्च स्तरीय पारिस्थितिकीय समन्वयन का निरूपण है जो ऊर्जा आधारित होता है एवं ऊर्जा के रूपांतरण, संग्रहण एवं परिसंचरण में सक्षम होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ (Characteristics of ecosystem)

स्मिथ (Smith- 1966) के अनुसार एक पारितंत्र में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं ।

(i) यह पारिस्थितिकी की वृहद संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है ।

(ii) पारिस्थितिकी तंत्र की रचना इसमें पाई जाने वाली जातीय विविधताओं पर निर्भर करती है अर्थात एक जटिल पारितंत्र में जातीय विविधता अधिक होगी।

(iii) पारिस्थितिकी तंत्र की कार्य प्रणाली, इसमें होने वाले ऊर्जा प्रवाह एवं पदार्थो के पुनर्चक्रण पर निर्भर करती है।

(iv) पारिस्थितिकी तंत्र को स्वस्थ बनाये रखने के लिये आवश्यक ऊर्जा की मात्रा पारिस्थितिक तंत्र की संरचना पर निर्भर करती है। पारिस्थितिकी तंत्र जितना जटिल होगा, इसकी स्वस्थता के लिये उतनी ही कम ऊर्जा की आवश्यकता होगी।

(v) प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में पर्यावरण एवं ऊर्जा का स्थिरीकरण एक सीमित स्तर तक होता है । इससे अधिक मात्रा में स्थिरीकरण अंवाछित परिवर्तनों के द्वारा ही संभव हो सकता है।

(vi) पर्यावरण में परिवर्तन के कारण जैवसमष्टि पर चयनात्मक दाब (Selective pressure) क्रियाशील हो जाता है एवं सजीव इस चयनात्मक दाब के प्रति अपने आपको

समायोजित कर लेते हैं । जो सजीव परिवर्तित वातावरण के कारण अपने आपको समायोजित नहीं कर पाते हैं उनका विनाश हो जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार (Kinds of Ecosystem) पारिस्थितिकी तंत्र को मुख्य रूप से दो प्रकारों में वर्गीकरत किया गया है।

(1) **प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र (Natural ecosystem)**

(2) **कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र (Artificial ecosystem)**

(1) **प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र** (Natural ecosystem) - इस प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र मनुष्यों की बिना किसी दखल के स्वतंत्र रूप से नियंत्रित होते हैं । आवास एवं वास के आधार पर यह पारिस्थितिक तंत्र भी दो प्रकार का होता है।

(A) **स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र** (Terrestrial ecosystem) इसके मुख्य प्रकार वन (Forest) घास के मैदान, रेगिस्तान (Desert) आदि हैं ।

(B) **जलीय पारिस्थितिकी तंत्र** (Aquatic ecosystem) इसके मुख्य प्रकार शुद्ध जलीय (Fresh water) एवं समुद्री जलीय (Marine water) हैं।

(2) **कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र** (Artificial ecosystem) ये पारितंत्र पूर्ण रूप से मानव द्वारा नियंत्रित होते हैं जिसमें ऊर्जा के प्रवाह एवं रूपांतरण द्वारा साम्य नियमित अंतराल से विचलित होता रहता है । उदाहरणार्थ क्रोपलेण्ड पारितंत्र (Cropland ecosystem) इनके अलावा वायुयान एवं सूक्ष्म पारितंत्र (Microecosystem) भी एक प्रकार के कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र हैं।

7.2 पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)

7.2.1 पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना (Structure of ecosystem) -

पारिस्थितिकी तंत्र के दो मुख्य पहलू इसकी संरचना एवं कार्य प्रणाली है।

संरचना की दृष्टि से (i) जैविक समुदाय का संगठन (ii) उपलब्ध कारकों की प्रवणता एवं परास अधिक महत्वपूर्ण है। कार्य की दृष्टि से (i) जैविक ऊर्जा प्रवाह की दर (ii) खनिज एवं पोषक चक्रण की दर तथा (iii) जैविक एवं पारिस्थितिकीय नियंत्रण जिसमें सजीवों का पर्यावरण द्वारा नियंत्रण एवं पर्यावरण का सजीवों द्वारा नियंत्रण अधिक महत्वपूर्ण है। इसी कारण किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन एक साथ किया जाता है । किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की रचना में अजैविक एवं जैविक घटक मुख्य भूमिका निभाते हैं।

(1) अजैविक घटक (abiotic component) संरचनात्मक दृष्टि से अजैविक घटक में निम्न प्रारूपों को शामिल किया जाता है।

(a) वातावरणीय घटक (climatic components) जैसे अवसादन, तापक्रम, प्रकाश एवं अन्य भौतिक कारक

(b) अकार्बनिक घटक (Inorganic components) जैसे C, H, O, N, P, S आदि महत्वपूर्ण हैं ।

(c) कार्बनिक घटक (Organic components) जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा एवं मृदा पदार्थ आदि महत्वपूर्ण हैं।

खनिज एवं पर्यावरणीय गैसें निरंतर चक्रण करती हैं । ये जैविक तंत्र में प्रवेश करके इनकी मृत्यु एवं क्षय के पश्चात मिट्टी तथा वायुमण्डल में वापस आ जाती हैं । यह घटना जैव भू-रासायनिक चक्रण (Biogeochemical cycle) कहलाती हैं । इस चक्रण में स्वयंपोषी (Autorophic) पादपों के द्वारा प्रकाशीय ऊर्जा को शोषित किया जाता है । यह ऊर्जा खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक पोषक, स्तर पर कुछ मात्रा में नष्ट हो जाती है । पारिस्थितिकी तंत्र में उपस्थित अजैविक पदार्थो की मात्रा स्टेण्डिग अवस्था (Standing Stage) कहलाती है।

(2) **जैविक घटक** (Biotic component) जैविक घटक में सभी सजीवों को शामिल किया जाता है । पोषक स्तर (Trophic level) के आधार पर जैविक घटकों को दो श्रेणियों में रखा गया है ।

(A) स्वयंपोषी घटक (पारिस्थितिकी तंत्र)

(B) विषमपोषी घटक (Heterotrophic components)

(A) **स्वयंपोषी घटक** (पारिस्थितिकी तंत्र)- स्वयंपोषी घटक, हरे पादप एवं प्रकाशसंश्लेषी या रसायनसंश्लेषी जीवाणु होते हैं जो प्रकाशीय उर्जा को कार्बनिक योगिकों की स्थितिज रासायनिक उर्जा में रूपांतरित कर देते हैं। इस उर्जा का उपयोग पादप स्वयं की वृद्धि एवं परिवर्द्धन हेतु करता है । प्रकाशसंश्लेषण में निर्मुक्त ऑक्सीजन का उपयोग अन्य प्राणी श्वसन एवं खाद्य पदार्थो के दहन में करते हैं । इन हरे पादपों को उत्पादक (Producer) भी कहते हैं क्योंकि ये सभी सजीवों के लिये भोजन का उत्पादन करते हैं।

(B) **विषमपोषी घटक** (Heterotrophic components)- ये घटक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वयंपोषी पादपों पर निर्भर रहते हैं । चूंकि ये सजीव स्वयंपोषी द्वारा बनाये गये भोजन का उपयोग करते हैं अत: इनको उपभोक्ता (Consumer) भी कहते हैं। उपभोक्ताओं को दो श्रेणियों में रखा गया है ।

(i) वृहद् उपभोक्ता (Macro consumer)

(ii) लघु उपभोक्ता (Micro consumer)

(i) **वृहद् उपभोक्ता** (Macro consumer)- ये उपभोक्ता भोजन का अंत:क्षेपण (Ingestion) करके अपने शरीर में इसका पाचन करते हैं । ये उपभोक्ता शाकाहारी (Herbivorous), मांसाहारी (Carnivorous) एवं सर्वाहारी (Omnivorous) होते हैं । शाकाहारी, प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) हैं । जैसे ग्रासहोफर, गाय, बकरी, खरहा, हिरण आदि । वे प्राणी जो शाकाहारियों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं वे प्राथमिक मांसाहारी (Primary carnivorous) या द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumer) कहलाते हैं । जो प्राणी द्वितीयक उपभोक्ता को भोजन के रूप में उपयोग में लेते हैं वे तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumer) कहलाते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र में कुछ उपभोक्ता दूसरे प्राणियों द्वारा नहीं खाये जाते है इन्हें शीर्ष उपभोक्ता (Top Consumer) कहते हैं।

(ii) **लघु उपभोक्ता** (Micro consumer)- ये उपभोक्ता पाचक एंजाइमों का शरीर के बाहर स्त्राव करते हैं । इन एंजाइमों के कारण जटिल खाद्य पदार्थो का रूपांतरण सरल खाद्य पदार्थो में हो जाता है, एवं पचे हुये भोजन का अवशोषण हो जाता है । ये उपभोक्ता मुख्य रूप से परजीवी जीवाणु, मृतपजीवी जीवाणु, कवक इत्यादि होते हैं । इनको विघटक (decomposer) भी कहते हैं क्योंकि इनके द्वारा मृत कार्बनिक पदार्थो का क्षय होता है । यद्यपि सभी परजीवी विघटक नहीं होते हैं एवं कुछ उपभोक्ता (जैसे कीट एवं छोटे प्राणी) विघटक का कार्य करते हैं । इसी अवधारणा को ध्यान में रखते हुये बीगर्ट एवं ओवन (Wiegert and Owens-1970) ने विषम पोषियों को दो श्रेणियों में रखा है।

(a) **जैवभोजी** (Biophages) - जो सजीवों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं ।

(b) **मृतभोजी** (Saprophage) - जो मृत कार्बनिक पदार्थो को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।

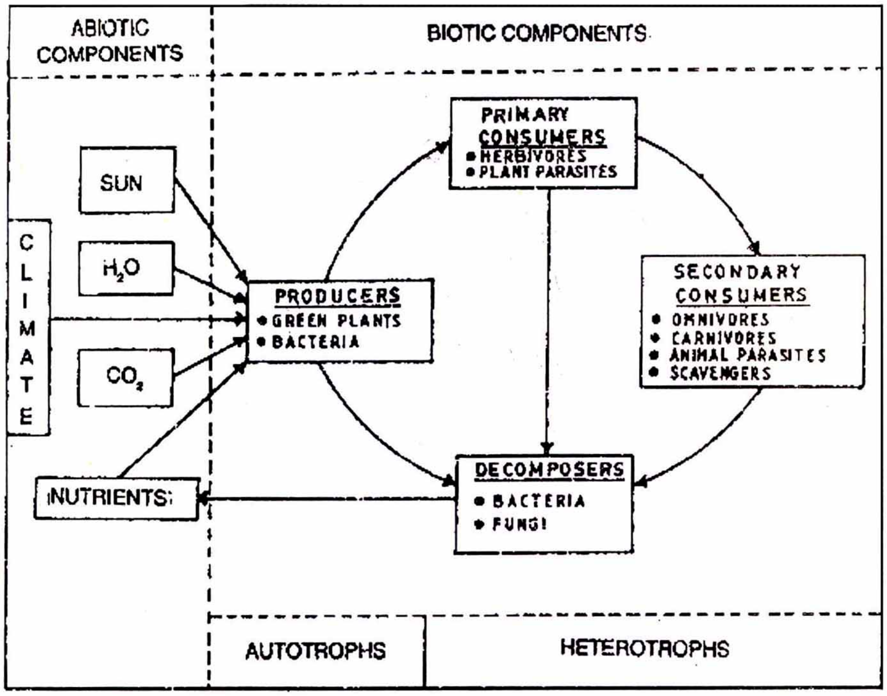

चित्र 7.2 पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना का निरूपण

7.2.2 कार्य प्रणाली (Ecosystem functioning)

पारिस्थितिकी तंत्र की प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इसकी कार्य प्रणाली का अन्वेषण आवश्यक है । इसकी कार्य प्रणाली में उर्जा का प्रवाह एवं पदार्थो का पुनर्चक्रण, जीवन की सततता एवं पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायित्व के लिये अत्यंत आवश्यक है । इन दो पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं (अजैविक घटकों एवं जैव समुदाय की पारस्परिक क्रिया) को पारिस्थितिकी तंत्र की कार्य प्रणाली का हृदय माना जाता है। फिर भी पारिस्थितिकी तंत्र कार्यप्रणाली का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

(1) खाद्य श्रृंखला (Food chain)

(2) खाद्‌य जाल (Food Web)

(3) पारिस्थितिक स्तूप (Ecological Pyramid)

(4) ऊर्जा प्रवाह (Energy flow)

(5) पोषक चक्र (Nutrient cycles)

(6) पारितंत्र का साम्य एवं स्थायित्व (Homeostasis and stability of ecosystem)

(1) **खाद्‌य श्रृंखला** (Food chain) - पौधों द्‌वारा संग्रहित ऊर्जा समुदाय द्‌वारा एक क्रम में खाने व खाये जाने की श्रृंखला से गुजरती है, जिसे खाद्‌य श्रृंखला कहते हैं । हरे पौधे, खाद्‌य श्रृंखला में प्रथम पोषक स्तर (Trophic level) अर्थात उत्पादक स्तर को निरूपित करते हैं । शाकाहारी जो कि पादपों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं द्‌वितीयक पोषक स्तर या प्राथमिक उपभोक्ता को निरूपित करते हैं । मांसाहारी प्राणी जो कि शाकाहारियों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं तृतीयक पोषक स्तर या द्‌वितीयक उपभोक्ता को निरूपित करते हैं । कुछ प्राणी सर्वाहारी होते हैं जो पादपों एवं प्राणियों दोनों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं अत: ये प्राणी एक ही समय में खाद्‌य श्रृंखला में अलग-अलग पोषक स्तर को निरूपित करते हैं । इस प्रकार एक खाद्‌य श्रृंखला में ऊर्जा का प्रवाह उत्पादक (Producers) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) द्‌वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumer) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumer) की तरफ होता है । प्रत्येक पद में उर्जा स्थानांतरण के दौरान स्थितिज ऊर्जा (Potential energy) का 80%-90% भाग नष्ट हो जाता है इसी कारण एक खाद्‌य श्रृंखला में पांच से अधिक पोषक स्तर बहुत ही कम संख्या में देखने को मिलते हैं । ऊर्जा स्थानांतरण की दक्षता एक पोषक स्तर से दूसरे पोषक स्तर पर निर्भर करती है । एक पारिस्थितिक तंत्र में तीन प्रकार की खाद्‌य श्रृंखला पाई जा सकती हैं।

(A) चारण खाद्‌य श्रृंखला (Grazing food chain)

(B) अपरद खाद्‌य श्रृंखला (Detritus food chain)

(C) परजीवी खाद्‌य श्रृंखला (Parasitic food chain)

(A) **चारण खाद्‌य श्रृंखला** (Grazing food chain) - इस प्रकार की खाद्‌य श्रृंखला हरे पौधों से प्रारम्भ होती है एवं प्रत्येक पोषक स्तर पर प्राणी का आकार बढ़ता जाता है । इस प्रकार खाद्‌य श्रृंखला, जलीय एवं स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र में मुख्य रूप से पाई जाती है।

Producer → Pri consumer → Sec. consumer → Tertiary consumer → Quaternary consumer

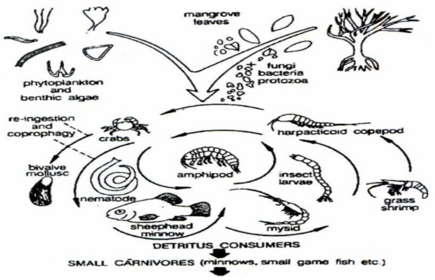

चित्र 7.3 खाद्‌य श्रृंखला का निरूपण

(B) **अपरद खाद्‌य श्रृंखला** (Detritus food chain) - इस प्रकार की खाद्‌य श्रृंखला मृत कार्बनिक पदार्थो से प्रारम्भ होती है एवं सूक्ष्मजीवों के माध्यम से अपरद जीवों को भक्षित करने वाले की तरफ बढ़ती है । मृत पदार्थो एवं उसमें उपस्थित जीवाणुओं का भक्षण करने वाले प्राणी डेट्रीवोर्ज (Detrivores) कहलाते हैं । मिट्टी में पाये जाने वाले सजीव इस प्रकार प्रकाशीय उर्जा पर प्रत्यक्ष रूप से कम निर्भर रहते हैं। इस खाद्‌य श्रृंखला का एक उपयुक्त उदाहरण हैल्ड (Heald-1969) तथा ओडम (Odum-1970) ने दिया था। यह खाद्‌य श्रृंखला मैंग्रोव प्रादपों की पत्तियों पर आधारित है।

(C) **परजीवी खाद्‌य श्रृंखला** (Parasitic food chain) - इस खाद्‌य श्रृंखला का प्रारंभ भी हरे पौधों से होता है लेकिन उर्जा का स्थानांतरण बड़े सजीव से छोटे सजीव अर्थात परपोषी से परजीवी की तरफ होता है।

Producers	Pr. consumers	Sec. consumers
Plants	Herbivorous host	Parasites, Helminthes,
	Vegetarian fishes.	Bacteria

(ख) **खाद्‌य जाल** (Food Web) - एक खाद्‌य श्रृंखला विलगित (Isolated) अवस्था में कभी भी क्रियाशील नहीं होती है बल्कि अनेक खाद्‌य श्रृंखलाएँ आपस में एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं एवं खाद्‌य जाल का निर्माण करती हैं । पारितंत्र में एक सजीव एक से अधिक पोषक स्तरों पर क्रियाशील होता है अर्थात यह एक ही समय में एक से अधिक स्त्रोतों से भोजन को प्राप्त करता है एवं स्वयं भी एक से अधिक प्राणियों के लिये भोजन का कार्य करता है । इस कारण एक ही समय में एक प्राणी विभिन्न खाद्‌य श्रृंखलाओं के द्‌वारा जुडा रहता है एवं खाद्‌य जाल का निर्माण होता है । खाद्‌य जाल के निर्माण का दूसरा कारण यह भी है कि उच्च पोषक स्तरों पर उर्जा का हास अत्यधिक होता है एवं दूसरी खाद्‌य श्रृंखलाओं के संयोजन में विकास के प्रारंभ मे'विभिन्न सजीव भोजन की प्राप्ति हेतु रेखीय रूप से सम्बन्धित होते हैं लेकिन विकास एवं परिपक्वन के साथ-साथ खाद्‌य श्रृंखला जटिल होती जाती है एवं जटिल खाद्‌य जाल का निर्माण होता है तथा उर्जा की अत्यधिक मात्रा अपरद खाद्‌य श्रृंखला के माध्यम से परिवहित होती है। किसी भी पारितंत्र में चारण खाद्‌य श्रृंखला एवं अपरद खाद्‌य श्रृंखला अपनी भूमिका अदा करती है एवं यदि कोई अंतर होता है तो यह केवल इनके पारस्परिक योगदान में होता है।

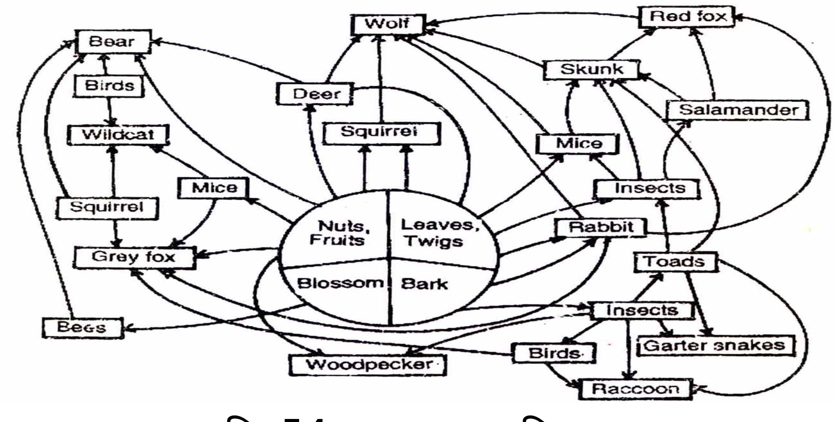

चित्र 7.4 खाद्‌य जाल का निरूपण

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायित्व के लिये खाद्य जाल होना अत्यंत आवश्यक है । साथ ही विभिन्न सजीवों की उत्तरजीविता के लिये संतुलित पारिस्थितिक तंत्र का होना अत्यंत आवश्यक है । खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक पोषक स्तर पर सजीवों की जीव समष्टि का नियंत्रण अपने आप प्राकृतिक कारकों के द्वारा होता है, इसी कारण पारिस्थितिकी तंत्र स्थाई बना रहता है । एक खाद्य जाल में उर्जा का प्रवाह विभिन्न एकांतरित पथों के द्वारा होता है । यदि किसी कारणवश एक पोषक स्तर की जीवसमष्टि अचानक कम हो जाती है तो पारितंत्र की कार्य प्रणाली पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि उसी पोषक स्तर पर दूसरे उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ जाती है । इसी कारण वह पारिस्थितिकी तंत्र अधिक स्थाई होता है जिसमें एकांतरित पथों की संख्या सर्वाधिक होती है।

(3) **पारिस्थितिकीय स्तूप** (Ecological Pyramid) - पारिस्थितिकीय पिरामिड की अवधारण सर्वप्रथम चार्ल्स एल्टन (Charles Elton-1927) ने विकसित की थी । इन्होंने पाया कि उत्पादकों प्रथम उपभोक्ता, द्वितीय उपभोक्ता आदि की संख्या, जैवभार एवं उर्जा की मात्रा में निश्चित सम्बंध होता है । इस सम्बंध को पिरामिड के ग्राफिय प्रतिरूप में निरूपित किया जा सकता है। इस पिरामिड का आधारीय भाग उत्पादकों के द्वारा एवं क्रमिक स्तर को पोषक स्तरों के द्वारा निरूपित किया जाता है । पारिस्थितिकीय पिरामिड सामान्यतया तीन प्रकार के होते हैं।

(A) **संख्या का पिरामिड** (Pyramid of Number) - संख्या का पिरामिड प्रत्येक पोषक स्तर पर सजीवों की संख्या को निरूपित करता है । संख्या के पिरामिड का प्रतिरूप, अलग-अलग समुदायों के साथ भिन्नित प्रकार का होता है क्योंकि यह इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादक का आकार छोटा है अथवा बडा । कई बार सजीवों की संख्या इस प्रकार भिन्नित होती है कि सम्पूर्ण पारितंत्र को एक ही आंकिक पैमाने (Numerical scale) पर निरूपित करना कठिन होता है । इस प्रकार के आंकडों को सारणी में प्रदर्शित करना अधिक सुगम होता है । जैसे घास के पारितंत्र (Grassland ecosystem) में उत्पादक मुख्य रूप से घास होते हैं, इनकी संख्या सर्वाधिक होती है । यह संख्या पिरामिड के शीर्ष की तरफ निरंतर कम होती जाती है । क्योंकि प्राथमिक उपभोक्ता जैसे खरहा, चूहे आदि की संख्या घास की तुलना में कम होती है । अंत में तृतीयक उपभोक्ता जैसे हॉक (Hawk) एवं पक्षियों की संख्या सबसे कम होती है । इस कारण घासीय पारितंत्र में संख्या का पिरामिड सीधे प्रकार का होता है।

इसी प्रकार तालाब के पारितंत्र में भी संख्या का पिरामिड सीधा होता है। यहां पर उत्पादक मुख्य रूप से फाइटोप्लेंक्टोन सर्वाधिक संख्या में होते हैं । शाकाहारी मछलियों एवं रोटिफर्स की संख्या उत्पादकों से कम होती है । द्वितीयक उपभोक्ता जैसे छोटी मछलियाँ एवं जलीय बीटल की संख्या, शाकाहारियों से होती है । इसी प्रकार तृतीयक उपभोक्ता जैसे बड़ी मछलियाँ एवं पक्षियों की संख्या सर्वाधिक कम होती है।

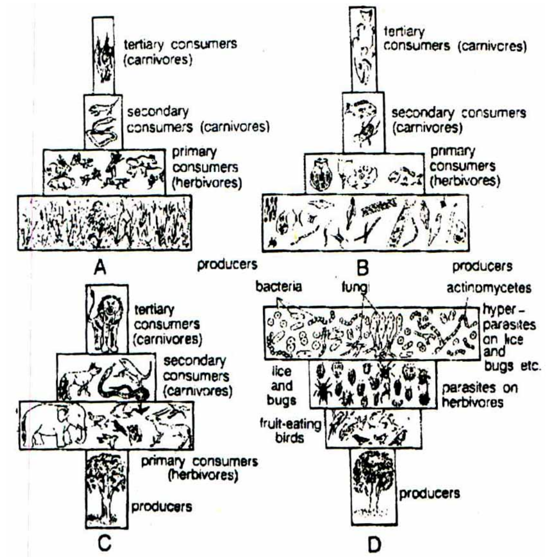

चित्र 7. 5 जैव संख्या का स्तूप

वनीय पारितंत्र (Forest Ecosystem)- वनीय पारितंत्र में संख्या का पिरामिड यद्यपि थोड़ा भिन्न आकृति वाला होता है । यहां पर उत्पादक बड़े आकार के पौधे हैं जिनकी संख्या कम होती है । शाकाहारी प्राणी जैसे पक्षी, भालू आदि की संख्या अधिक होती है । इसके पश्चात द्वितीयक उपभोक्ता की संख्या कम हो जाती है । यद्यपि परजीवी खाद्य श्रृंखला में संख्या का पिरामिड हमेशा उल्टा होता है । क्योंकि एक बड़े विशाल पौधे पर सैकड़ों शाकाहारी पक्षी पाये जाते हैं एवं प्रत्येक पक्षी पर परोपजीवी काफी संख्या में पाये जाते है । इस कारण उत्पादक से शीर्ष उपभोक्ता की तरफ सजीवों की संख्या बढती जाती है।

(B) **जैवभार का पिरामिड** (Pyramid of Biomass)- इस पिरामिड में प्रत्येक पोषक स्तर पर उपस्थित सजीव के जैव भार को प्रदर्शित किया जाता है । घासीय एवं वनीय पारितंत्र में उत्पादक से प्रत्येक पोषक स्तर पर सजीव के जैवभार में कमी आती जाती है इसी कारण पिरामिड सीधा होता है । जलीय पारितंत्र में उत्पादकों का जैवभार यद्यपि कम होता है, लेकिन बाद में प्रत्येक पोषक स्तर पर जैव भार बढता जाता है । इस कारण पिरामिड उल्टे प्रकार का होता है । झीलों तथा समुद्रों में ब्लूमिंग के समय उत्पादकों का जैव भार उपभोक्ता से अधिक होता है लेकिन सर्दियों में उत्पादकों का जैव भार, उपभोक्ताओं की तुलना में कम होता है।

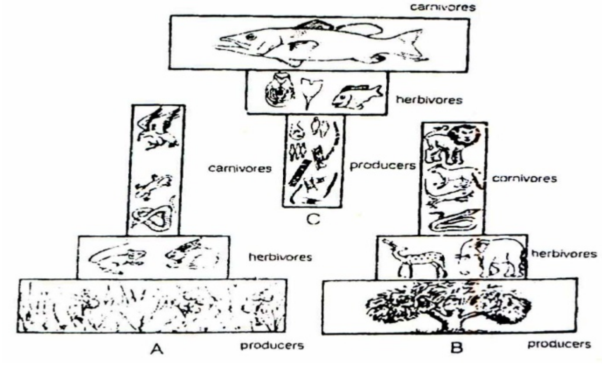

चित्र 7.6 जैव भार का स्तूप

(C) **ऊर्जा का पिरामिड** (Pyramid of Energy)- ऊर्जा के पिरामिड में एक पारितंत्र में प्रतिवर्ष, प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में अलग-अलग पोषक स्तरों पर सजीवों द्वारा उपभोग में ली गई उर्जा की कुल मात्रा को निरूपित किया जाता है । प्राथमिक उत्पादकों के द्वारा प्रकाशीय उर्जा को ग्रहण किया जाता है एवं इस उर्जा को स्थितिज रासायनिक उर्जा में रूपांतरित कर लिया जाता है । यह संग्रहित उर्जा, उत्पादकों से शीर्ष उपभोक्ता की तरफ प्रवाहित होती है । उर्जा का पिरामिड प्रत्येक पारितंत्र में हमेशा सीधे प्रकार का होता है क्योंकि इस पिरामिड में समय कारक को भी शामिल किया जाता है।

उपरोक्त वर्णित तीनों पिरामिडों के अध्ययन के बाद में यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊर्जा का पिरामिड एक पारितंत्र के समुदायों की कार्य प्रणाली का पूर्ण स्पष्टीकरण करता है क्योंकि उर्जा के पिरामिड में प्रत्येक पोषक स्तर पर खाद्य के प्रवाह का निरूपण होता है जबकि जैवभार एवं संख्या के पिरामिड में किसी भी क्षण उपस्थित सजीवों की स्थिति का निरूपण होता है । उर्जा का पिरामिड सामान्यतया सीधे प्रकार का होता है तथा यह सजीवों की उपापचयी अवस्था एवं आकारीय भिन्नता के कारण प्रभावित नहीं होता है । दूसरी तरफ जैवभार एवं संख्या का पिरामिड सीधा या उल्टा हो जाता है क्योंकि यह उत्पादकों के जैवभार एवं संख्या पर निर्भर करता है।

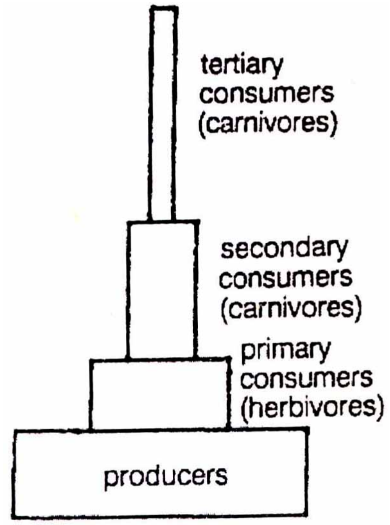

चित्र 7.7 ऊर्जा का स्तूप

(4) **ऊर्जा प्रवाह** (Energy flow) - कार्य करने की क्षमता ऊर्जा कहलाती है । उर्जा के मापन की इकाई अर्ग होती है। उर्जा के सार्वत्रिक निरूपण के लिये कैलोरी इकाई का उपयोग किया जाता है । सभी जैविक क्रियाओं के लिये आवश्यक उर्जा की प्राप्ति प्रकाशीय विकिरणों से होती है । इस निर्मुक्त उर्जा की केवल कुछ मात्रा पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करती है। ये प्रकाशीय किरणें अंतरिक्ष में तरंगों के रूप में संचरित होती हैं । इन तरंगों की अधिकांश मात्रा अंतरिक्ष में नष्ट हो जाती है । सूक्ष्म पराबैंगनी विकिरणें ओजोन स्तर के द्वारा अवशोषित हो जाती है । पृथ्वी पर पहुँचने वाली अधिकांश विकिरणें दृश्य स्पेक्ट्रम की होती है। इस उर्जा का केवल 1 से 5% भाग, हरे पादपों के द्वारा प्रकाशसंश्लेषण में प्रयुक्त होता है।

ऊर्जा का पारितंत्र में व्यवहार उर्जा प्रवाह के रूप में वर्णित किया जा सकता है क्योंकि उर्जा का स्थानांतरण एक ही दिशा में होता है । उर्जा प्रवाह में उन घटकों का अध्ययन किया जाता है जो पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों से होकर प्रवाहित होता है । पारिस्थितिक तंत्र में उर्जा का प्रवेश, संग्रहण एवं अवकाश में निर्मुक्ति उष्मागति के दो नियमों द्वारा नियंत्रित होता है।

उष्मागति का प्रथम नियम (First law of thermodynamics) - इस नियम के अनुसार एक बंद या खुले तंत्र में उर्जा को न तो नष्ट किया जा सकता है, न ही उत्पन्न किया जा सकता है केवल इसके रूप को रूपांतरित किया जा सकता है । जैसे प्रकाशीय उर्जा को कार्य में, ऊष्मा में, स्थितिज उर्जा में रूपांतरित किया जा सकता है।

उष्मागति का द्वितीय नियम (Second law of thermodynamics) - इस नियम के अनुसार एक पारितंत्र में उर्जा के रूपांतरण की कोई भी प्रक्रिया तात्क्षणिक रूप से नहीं होती है चाहे इसमें उर्जा के सान्द्रित प्रतिरूप से विसरित रूप में विघटन ही क्यों न हो । इस प्रकार उर्जा स्थानांतरण की क्रिया शत प्रतिशत दक्षता वाली नहीं होती है।

पृथ्वी के पर्यावरण में प्रवेश करने वाली उर्जा की कुछ मात्रा प्रकाशसंश्लेषण के उपयोग में आती है । शेष मात्रा पानी को वाष्प में, मिट्टी के तापन में प्रयुक्त होती है । परिणाम स्वरूप परावर्तित उर्जा उष्मा के रूप में निर्मुक्त होती है । प्रकाशीय उर्जा जो हरे पादपों द्वारा प्रकाशसंश्लेषण में प्रयुक्त होती है, उसे निम्न क्रिया द्वारा निरूपित किया जा सकता है ।

$$6CO_2+18ATP+12NADPH_2\ C_6H_{12}O_6+18ADP+18Pi+12NADP+6H_2O$$

हरे पौधों द्वारा ऊर्जा का कुछ भाग पुन: श्वसन क्रिया में निर्मुक्त हो जाता है । भोजन के रूप में संचित उर्जा का स्थानांतरण शाकाहारी से मांसाहारी में हो जाता है । प्रत्येक स्तर पर उर्जा के स्थानांतरण में कुछ स्थितज उर्जा नष्ट ही जाती है । अत: स्थानांतरण की दृष्टि में निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है।

(i) उत्पादकों द्वारा प्रकाशीय उर्जा के अवशोषण एवं स्थिरीकरण में दक्षता ।

(ii) स्थिरीकृत ऊर्जा का उपभोक्ताओं के द्वारा उपयोग ।

(iii) सम्पूर्ण ऊर्जा की भोजन के रूप में प्रविष्टी एवं इसका स्वांगीकरण

(iv) श्वसन के द्वारा ऊर्जा की क्षति

(v) उत्सर्जन के द्वारा ऊर्जा की क्षति

(vi) सकल एवं कुल उत्पादन

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर सर्वप्रथम लिण्डमेन (Lindeman-1942) ने विभिन्न पोषक स्तरों के द्वारा उर्जा प्रवाह के मॉडल का प्रतिपादन किया । इन्होंने एक पारितंत्र में उर्जा की प्रविष्टि, प्रवाह एवं क्षति को विभिन्न प्रतीकों के द्वारा निरूपित किया । इन्होंने प्रदर्शित किया कि एक पारितंत्र की कार्य प्रणाली को उर्जा के संदर्भ में वर्णित किया जा सकता है । लिन्डमेन के अनुसार पृथ्वी पर आने वाली संपूर्ण प्रकाशीय विकिरण (110,872g.cal/cm2/year) का 111g.cal/cm2/year भाग पूर्ण दक्षता के साथ ग्रहण कर लिया जाता है । इस उर्जा का 21% भाग उपापचयी क्रियाओं में उपभोक्ता द्वारा उपयोग में

लिया जाता है । स्वयंपोषियों द्वारा उत्पादित आहार का 17% भाग शाकाहारियों के द्वारा उपयोग में लिया जाता है । स्वयंपोषियों के कुल उत्पादन का 3.4% भाग विघटकों के द्वारा उपयोग में लिया जाता है । स्वयंपोषियों के कुल उत्पादन का 79.5% भाग उपयोग में नहीं लिया जाता है जो अवसादन (sediment) का एक भाग बन जाता है।

इस प्रकार लिन्डमेन के उर्जा प्रवाह मॉडल से तीन बातें पूर्णतया स्पष्ट हो जाती हैं-

(a) ऊर्जा का एक दिशा में प्रवाह ।

(b) प्रत्येक पोषक स्तर पर उर्जा स्थानांतरण की दक्षता मे वृद्धि ।

(c) प्रत्येक पोषक स्तर पर संचित उर्जा की मात्रा में कमी ।

लिडंमेन की मृत्यु 26 वर्ष की अल्पायु में ही हो गई थी । इनके पश्चात वैज्ञानिकों ने ऊर्जा प्रवाह पर काफी शोध कार्य किया । यहां पर सभी वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तावित मॉडल का वर्णन करना संभव नहीं है । सुविधा की दृष्टि से केवल ओडम द्वारा प्रस्तावित मॉडल ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

(A) **उत्पादक** (Producer) -

(i) **सकल प्राथमिक उत्पादन** (Gross primary production) - प्रकाशीय उर्जा को जलीय पादपों के द्वारा आहार उत्पादन हेतु प्रकाशसंश्लेषण मे उपयोग में लिया जाता है । यह उर्जा, आहार में स्थितिज उर्जा के रूप में संग्रहित रहती है । इसे सकल प्राथमिक उत्पादन (Pg) कहते हैं।

(ii) **कुल प्राथमिक उत्पादन** (Net Primary production) - प्राथमिक उत्पादकों द्वारा श्वसन क्रिया के पश्चात शेष बचा हुआ संचित कार्बनिक पदार्थ, कुल प्राथमिक उत्पादन (Pn) कहलाता है ।

(B) **प्राथमिक उपभोक्ता** (Primary consumer) - प्राथमिक उपभोक्ता, उत्पादकों द्वारा संश्लेषित कार्बनिक पदार्थो का उपभोग करते हैं । इसकी कुछ उर्जा प्राथमिक उपभोक्ताओं के द्वारा स्वांगीकृत नहीं होती है।
स्वांगीकृत उर्जा का सम्पूर्ण भाग भी इन उपभोक्ताओं के द्वारा काम में नहीं लिया जाता है । कुल काम में ली गई उर्जा का कुछ भाग श्वसन क्रिया में नष्ट हो जाता है । श्वसन क्रिया के पश्चात रही शेष उर्जा प्राथमिक उपभोक्ता के जीवद्रव्य में संग्रहित होती है ।

(C) **द्वितीयक उपभोक्ता** (Secondary consumer) - ये सजीव अपने आहार की प्राप्ति, प्राथमिक उपभोक्ताओं के द्वारा करते हैं । इसके पश्चात पुन: यही प्रक्रिया दोहराई जाती है। उर्जा की कुछ मात्रा उष्मा के रूप मे नष्ट हो जाती है । कुछ श्वसन क्रिया में नष्ट हो जाती है। शेष उर्जा इन द्वितीयक उपभोक्ताओं के जीवद्रव्य में संग्रहित रहती है।

(D) **तृतीयक उपभोक्ता** (Tertiary consumer) - तृतीयक उपभोक्ता, द्वितीयक उपभोक्ता (प्राथमिक मांसाहारी) को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं । इस कारण उर्जा द्वितीयक उपभोक्ता से तृतीयक उपभोक्ता में स्थानांतरित हो जाती है । इस स्थानांतरण में कुछ उर्जा उपयोग में नहीं आती है, कुछ उर्जा ऊष्मा एवं श्वसन के रूप में निर्मुक्त हो जाती है । शेष उर्जा इनके जीवद्रव्य में संचित हो जाती है।

(E) **चतुष्क उपभोक्ता** (Quaternary consumer) - जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में बड़े आकार की मछलियाँ एवं मगरमच्छ, छोटी मछलियों को आहार बनाते हैं । इस कारण उर्जा तृतीयक उपभोक्ता से चतुष्क उपभोक्ता में स्थानांतरित हो जाती हैं । इस स्थानांतरण में उर्जा की क्षति उष्मा एवं श्वसन के रूप में होती है।

(F) **विघटक** (Decomposer) -उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की मृत्यु के पश्चात इनका सूक्ष्मजीवों के द्वारा विघटन होता है । इस प्रकार उर्जा अंत में मृत सजीवों से विघटकों में स्थानांतरित हो जाती है।

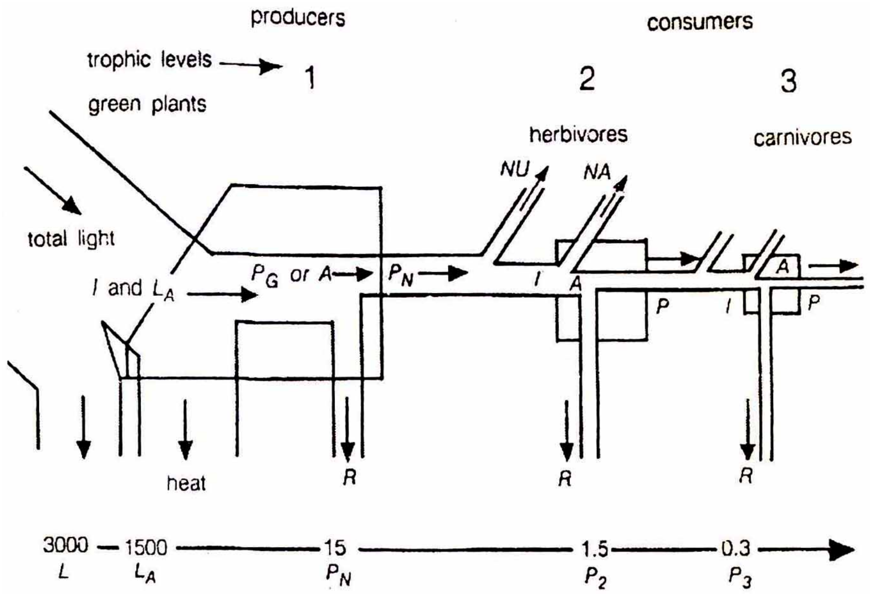

चित्र 7.8 ऊर्जा प्रवाह हेतु ओडम का पाइप बॉक्स मॉडल

5. **पारिस्थितिक तंत्र समस्थिरता** (Ecosystem- Homeostasis) - प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में अजैविक एवं जैविक घटकों के मध्य संतुलन बनाये रखने की क्षमता पाई जाती है । इन घटकों में होने वाले उतार-चढाव के किसी भी परिवर्तन को पारिस्थितिकी तंत्र के द्वारा स्वत: ही सामान्य बना दिया जाता है । प्राकृतिक रूप से तंत्र संतुलन की यह प्रवृति समस्थिरता कहलाती है । यद्यपि पारिस्थितिकी तंत्र में प्रविष्टि एवं प्रस्थान में साम्य पाया जाता है लेकिन यह साम्य पारितंत्र की समस्थिरता के लिये उपयुक्त नहीं होता है । "अत: जैविक तंत्रों की वह प्रवृति जो परिवर्तन का प्रतिरोध करती है तथा संतुलन की स्थिति में रहती है, उसे समस्थिरता कहते है। पारिस्थितिकी तंत्र में समस्थिरता मुख्य रूप से दो स्तर पर सम्पादित होती है -

1. सजीव स्तर पर (At organism level)
2. पारितंत्र स्तर पर (At ecosystem level)

1. **सजीव स्तर पर** (At organism Level) - समतापीय प्राणियों में तापीय नियमन की परिघटना, सजीव स्तर पर समस्थिरता का एक उपयुक्त उदाहरण है। स्मिथ (Smith-1977) ने इस नियंत्रण का अध्ययन किया था। मनुष्यों में सामान्य तापमान 98.5^0F होता है। यदि वातावरण का तापमान बढता है तो प्राणी के संवेदी तंत्र से सूचनाएँ मस्तिष्क को भेजी जाती हैं।

मस्तिष्क से सूचनाएँ प्रभावी अंगों को भेजी जाती है । इस कारण त्वचा में रक्त का प्रवाह बढ जाता है एवं पसीने का स्त्राव बढ़ जाता है, पसीने के वाष्पीकरण से शरीर का तापमान कम हो जाता है।

यदि वातावरण का तापमान कम हो जाता है तो त्वचा में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है । शरीर में अनैच्छिक पेशियाँ स्वत: ही संकुचित होती है जिससे उष्मा का उत्पादन होता है एवं शरीर का तापमान बढ़ जाता है।

2. **पारितंत्र स्तर पर** (At ecosystem) - पारितंत्र स्तर पर समस्थिरता की क्रियाविधि, निम्नांकित तीन तथ्यों के क्रियान्वयन के कारण होती है।

A. प्रजनन दर में वृद्धि या कमी करके जीवसमष्टि घनत्व का नियंत्रण ।

B. पोषकों के संग्रहण एवं निर्मुक्ति के प्रेरण द्वारा पोषकों का नियंत्रण ।

C. पोषक चक्रों का नियमन ।

उपर्युक्त तीनों घटनाओं का नियंत्रण एवं नियमन सामान्यतया फीड बेक क्रियाविधियों (Feedback mechanism) के द्वारा होता है। यह क्रियाविधि धनात्मक एवं ऋणात्मक प्रकार की होती है।

A प्रजनन दर में वृद्धि या कमी करके जीवसमष्टि घनत्व का नियंत्रण -

1. **धनात्मक पुनर्भरण क्रियाविधि** (+Ve Feed back mechanism) - धनात्मक पुनर्भरण में प्रजनन दर में वृद्धि होती है जिससे संततियों की संख्या में वृद्धि होती है एवं जीवसमष्टि का आकार बड़ा हो जाता है । ये नवनिर्मित संततिया लैंगिक रूप से परिपक्व होने के पश्चात् प्रजननशील हो जाती है एवं और अधिक संततियों को उत्पन्न करती हैं । इस कारण स्वयं नियंत्रित जीवसमष्टि विकसित हो जाती है जिसमें वृद्ध सदस्यों की मृत्यु हो जाती है, प्रजननशील सदस्य, वृद्धों का स्थान ले लेते हैं एवं नवजात सदस्य, प्रजननशील सदस्यों का स्थान लेते है ।

2. **ऋणात्मक पुनर्भरण क्रियाविधि** (-Ve feed back mechanism) - यदि पारितंत्र में ऋणात्मक पुनर्भरण क्रियान्वित होता है तो विभिन्न बाह्य कारक जैसे भोजन आपूर्ति कम हो जाती है । जीवसमष्टि में वृद्धि के कारण अधिक भोजन की आवश्यकता होती है लेकिन भोजन के सीमित मात्रा में होने के कारण समष्टि के अधिकांश सदस्य भूख के कारण मर जाते हैं। इस प्रकार जीवसमष्टि में कमी होने के कारण, खाद्य आपूर्ति पुन: सामान्य हो जाती है जिससे जीवसमष्टि में वृद्धि पुन: प्रारंभ हो जाती है।

7.2.3 बोध प्रश्न

नोट: 1. प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिये करें।

2. अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाएं।

प्रश्न नं. 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो -

I रिक्त स्थान भरो -

1. पारिस्थितिक तन्त्र का नाम

.... ने दिया ।

2. ऊर्जा का प्रवाह..होता है ।

3. स्वयं भोजन निर्माण कर वाले...कहलाते हैं ।

प्रश्न नं. 2 बहुविकल्पी प्रश्न -

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें -

1. ऊर्जा का स्तूप सदैव होता है

(अ) उल्टा (ब) सीधा

(स) उल्टा एवं सीधा (द) सभी

2. खाद्य श्रृंखला का प्रत्येक सार कहलाता है -

(अ) पोषक स्तर (ब) पोषक श्रृंखला

(स) खाद्य जाल (द) ऊर्जा प्रवाह

3. तालाब पारितंत्र से संख्या का स्तूप होता है

(अ) सीधा (ब) उल्टा

(स) वक्रित (द) सीधा एवं उल्टा

प्रश्न नं. 3 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दो -

1. ऊर्जा का पिरामिड सदैव सीधा होता है क्यों?

....

2. पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा लिखिए।

....

3. जैव भोजी किसे कहते हैं।

....

7.3 सारांश (Summary)

पारिस्थितिकी की मूलभूत इकाई पारिस्थितिक तंत्र होती है । इसकी संरचना जैविक एवं अजैविक घटकों द्वारा होती है। जैविक घटक, स्वयंपोषी एवं विषमपोषी तथा अजैविक घटक, कार्बनिक, अकार्बनिक एवं वातावरणी प्रकार के होते हैं ।

पारिस्थितिकी तंत्र की कार्य प्रणाली निम्न प्रकार की होती हैं -

1. खाद्य श्रृंखला
2. खाद्य जाल
3. पारिस्थितिकी स्तूप
4. ऊर्जा प्रवाह

खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा प्रवाह सदैव एक दिशीय होता है पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायित्व हेतु खाद्य जाल का अधिक जटिल होना आवश्यक होता है ।

7.4 शब्दावली (Glossary)

1. पारिस्थितिकी (Ecology) - जीवों का उसके वातावरण के साथ सम्बन्धों का अध्ययन ।
2. पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) - जैविक एवं अजैविक घटकों को परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन ।
3. पर्पटी (Crust) - पृथ्वी की ऊपरी सतह।
4. खाद्य श्रृंखला (Food Chain) - विभिन्न पोषक स्तरों का रेखीय क्रम।
5. भक्षण (Predation) - एक जीव को दूसरे जीव द्वारा खाया जाना ।

7.5 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Ecology and Environment	पी. डी. शर्मा
2. Ecology	डी. एन. सेन
3. पारिस्थितिकी	पी. के. गुप्ता

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1.I

1. ए. जी. टेन्सले
2. एक दिशीय
3. स्वयंपोषी

प्रश्न 2.II

(1) ब (2) अ (3) अ

प्रश्न 3.

1. क्योंकि प्रत्येक पोषक स्तर पर ऊर्जा का अधिकांश भाग ऊष्मा के रूप में वातावरण में चला जाता है।

2. पारिस्थितिकी तन्त्र, पारिस्थितिकी की मूलभूत इकाई होती है। इस तंत्र में जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य अन्तःक्रियाए होती हैं एवं दोनों परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

3. जो सजीवों को भोजन के रूप में ग्रहण करते है।

7.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न नं 1.परिस्थितिकी तन्त्र की संरचना का वर्णन कीजिए।

प्रश्न नं. 2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणीयां लिखिए-

1. खाद्य स्तर एवं खाद्य श्रृंखला
2. खाद्य जाल
3. पारिस्थितिकी स्तूप
4. ऊर्जा प्रवाह

इकाई 8

जैव भू-रासायनिक चक्र
(BIOGEOCHEMICAL CYCLE)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जैव भू-रासायनिक चक्र

- 8.2.1 कार्बन चक्र
- 8.2.2 नाइट्रोजन चक्र
- 8.2.3 फास्फोरस चक्र
- 8.2.4 भारत के वनस्पति प्रकार
- 8.2.5 बोध प्रश्न

8.3 सारांश

6.4 शब्दावली

8.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.6 बोध प्रश्नों के उतर

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objectives)

विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों का वातावरण से जीवों में तथा जीवों से पुन: वातावरण में पहुँचना जैव भू-रासायनिक चक्र कहलाता है । इस इकाई में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है -

1. कार्बन चक्र
2. फास्फोरस चक्र
3. नाइट्रोजन चक्र
4. भारत के वनस्पति प्रकार

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

सजीवों का जीवन ऊर्जा के प्रवाह एवं पोषकों के चक्रण पर निर्भर करता हैं । सजीवों की बहुलता उनकी उपापचय दर, पारितंत्र की रचना एवं जटिलता का नियमन एवं नियंत्रण इन दोनों प्रवाहों के द्वारा होता है। पारितंत्र में ऊर्जा एवं पोषक दोनों का प्रवाह कार्बनिक पदार्थो के रूप में होता है । इन कार्बनिक पदार्थो में दोनों रूपों को पृथक करना असंभव है क्योंकि जहाँ पदार्थ है वहाँ ऊर्जा है । केवल ऊर्जा के रूप को परिवर्तित किया जा सकता है । ऊर्जा के प्रवाह एवं स्थिरिकरण के लिये कुछ तत्वों की आवश्यकता होती है एवं खनिजों का चक्रण ऊर्जा की

प्रविष्टी के बिना संभव नहीं हो पाता है । एक सजीव दूसरे सजीव का भक्षण धनात्मक पुनर्भरण लूप के रूप में करता है क्योंकि जब ज्यादा ऊर्जा का प्रवाह होगा ऊर्जा के अधिक प्रवाह के कारण पोषकों का अधिक चक्रण होता है । यद्यपि ऋणात्मक पुनर्भरण भी क्रियाशील होता है क्योंकि कम पोषक पदार्थ होने पर कम ऊर्जा का प्रवाह होता है। कम ऊर्जा के कारण कम पोषकों का चक्रण होता है इस प्रकार दो प्रकार के बल क्रियाशील होते हैं जिसमें एक बल के द्वारा जटिल पदार्थो का नये ऊतकों के रूप में संग्रह एवं द्वितीय बल के द्वारा कार्बनिक पदार्थो का अकार्बनिक पदार्थो के रूप मैं रूपातंरण है।

8.2 जैव भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemical Cycles)

पारिस्थितिकी तंत्र में पोषकों का प्रवाह जैव भू- रासायनिक चक्र के रूप में होता है । ये चक्र सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं।

(A) **गैसीय चक्र** (Gaseous cycle)

(B) **अवसादी चक्र** (Sedimentary cycle)

(A) **गैसीय चक्र** (Gaseous cycle) - गैसीय चक्रों में जीवन के लिये आवश्यक तत्वों ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन एवं हाइड्रोजन का चक्रण होता है । सल्फर में गैसीय चक्र के अलावा अवसादी चक्र भी पाया जाता है।

8.2.1 कार्बन चक्र (Carbon cycle) - वायुमण्डल में कार्बन, कार्बन डाईऑक्साइड के रूप में पाया जाता है अत: इसका चक्रण गैसीय रूप में होता है । यद्यपि वायुमण्डल में इसकी मात्रा, ऑक्सीजन (21%v/v) एवं नाइट्रोजन (79%v/v) की तुलना में बहुत कम (0.032%v/v) होती हैं फिर भी कार्बन डाईऑक्साइड के बिना जीवन की क्रियाएँ संभव नहीं है। क्योंकि यह सभी कार्बनिक पदार्थो का मुख्य घटक है एवं प्रकाश संश्लेषण के द्वारा उर्जा के स्थिरीकरण का मुख्य भाग है । सभी जीवों एवं फोसिल्स में संचित कार्बन का मुख्य स्त्रोत वायुमण्डल एवं जल में उपस्थित कार्बन डाईआक्साइड होती है । इसके चक्रण से पहले प्रकाश संश्लेषण एवं ऊर्जा प्रवाह को दोहराना आवश्यक है।

कार्बन डाइआक्साइड का हरे पादपों द्वारा स्वांगीकरण होकर ग्लुकोज का निर्माण होता है । इस ग्लुकोज का बाद में प्रोटीन, पोलिसेकेराइड एवं वसा में रूपांतरण हो जाता है । जब शाकाहारी प्राणी, पौधों द्वारा बनाये गये भोजन को ग्रहण करते हैं तो पाचन के पश्चात् इनका रूपांतरण अन्य कार्बनिक यौगिकों में हो जाता है । मांसाहारी प्राणी, शाकाहारियों को खाते हैं एवं इन मांसाहारियों में भी अन्य कार्बनिक पदार्थो का निर्माण होता है । कार्बन डाइआक्साइड की कुछ मात्रा पौधों एवं प्राणियों की श्वसन क्रिया के दौरान पुन: मुक्त हो जाती है।

प्राणियों के अपशिष्ट एवं सजीवों के जीवद्रव्य में उपस्थित कार्बन का रूपांतरण अंत में विघटकों के द्वारा होता है । विघटन क्रिया मृदा की नमी, तापमान एवं अवक्षेपण पर निर्भर करती है । उष्णकटिबंधीय वनों में उपस्थित अपरद (Detritus) के कार्बन का पुनर्चक्रण बहुत तेजी से होता है । शुष्क क्षेत्रों में कार्बन की कुछ मात्रा ह्यूमस में उपस्थित होती है । दलदली क्षेत्रों में उपस्थित कार्बन का पूर्ण रूप से खनिजीकरण नहीं हो पाता है अत: इसका पुनर्चक्रण बहुत धीरे होता है । इस प्रकार का चक्रण अलवणीय एवं लवणीय जलीय माध्यमों में होता है।

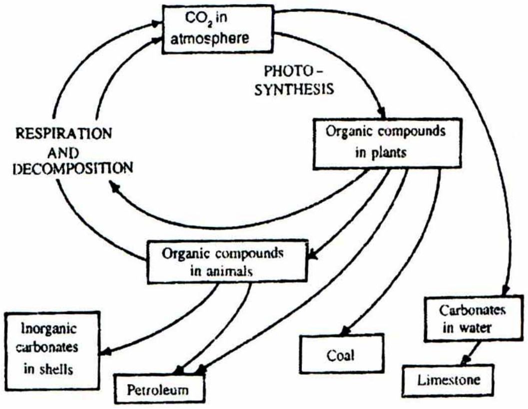

चित्र 8.1 कार्बन चक्र का निरूपण

वायुमण्डल में कार्बन की मात्रा, समुद्र एवं जीवाश्मीय ईंधन की तुलना में काफी कम है। औद्योगिक क्रांति से पहले वायुमण्डलीय, महाद्वीपीय एवं समुद्री चक्रण में इसका संतुलन नियत था लेकिन औद्योगिक क्रांति एवं शहरीकरण के कारण यह सतुलन गड़बड़ा गया । जीवाश्मीय ईंधनों के जलने, वनों में आग, वनों के विनाश एवं कृषि के नवीन तरीकों के कारण कार्बन की प्रविष्टि नये तरीकों से हुई । साथ ही वनीय क्षेत्र कार्बन के अवशोषण के मुख्य स्त्रोत थे। अजैविक जगत में कार्बन के दो स्त्रोत है।

1. कार्बोनेट युक्त चट्टानें जैसे चूना पत्थर
2. वायु में उपस्थित कार्बन डाईआक्साइड एवं जल में घुलित कार्बन डाईआक्साइड।

इनके अलावा कार्बन की अधिकांश मात्रा जीवाश्मीय ईंधनों के रूप में उपस्थित है। लेकिन यह पौधों को तक उपलब्ध नहीं हो पाती जब तक इनका दहन नहीं हो।

कार्बोनेट चट्टानों से कार्बन डाईआक्साइड की निर्मुक्ति अम्लीय क्रियाओं के कारण होती है। अम्लों का निर्माण जीवाणुओं द्वारा किण्वन क्रिया के द्वारा होता है। कार्बन डाईआक्साइड की कुछ मात्रा कार्बोक्सीडिसमोनास जीवाणु द्वारा कार्बन मोनोक्साइड के कार्बन डाईआक्साइड में रूपांतरण के कारण होती है। कार्बन डाईआक्साइड की कुछ मात्रा जल में घुलने के पश्चात कार्बोनिक अम्ल में रूपांतरित हो जाती है जो कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनेट आयन में वियोजित हो जाती है।

वर्तमान में कार्बन का वृहद स्त्रोत समुद्र है जहाँ पर ये आयनों के रूप में विद्यमान है। समुद्रों के मध्य कार्बन डाईआक्साइड का निरंतर आदान प्रदान होता रहता है । यद्यपि समुद्रों में उपस्थित कार्बन डाईआक्साइड, थर्मोक्लीन क्षेत्र (Thermocline Zone) के नीचे उपस्थित होती है इस कारण वायुमण्डल के साथ इसका तीव्रता से विनिमय नहीं हो पाता है । समुद्री जल में केल्सीयम की मात्रा अधिक होती है एवं क्षारीय होने के कारण कार्बोनेट के विघटन की दर त्वरित होती है ।

कार्बन डाईआक्साइड में अवरक्त किरणों को अवशोषित करने की क्षमता पाई जाती है । कार्बन डाईआक्साइड की कुछ मात्रा पृथ्वी को गर्म रखने के लिये भी आवश्यक है लेकिन कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ पृथ्वी का तापमान ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण बढ़ रहा है, क्योंकि कार्बन डाईआक्साइड के आवरण से प्रकाशीय किरणें तो पृथ्वी पर आ जाती

है लेकिन पृथ्वी से परावर्तित उष्मीय विकिरणें कार्बन डाईआक्साइड के स्तर के दूसरी ओर नहीं जा पाती है फलस्वरूप पृथ्वी का तापमान निरंतर बढ़ रहा है ।

8.2.2 नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen cycle) -

नाइट्रोजन, प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण घटक है । वायुमण्डल में इसकी 79 प्रतिशत मात्रा पाई जाती है । अपनी गैसीय प्रावस्था में नाइट्रोजन, अधिकांश सजीवों को उपलब्ध नहीं हो पाती है । इसका सर्वप्रथम अस्थाई रासायनिक पदार्थो में रूपांतरण होता है ।

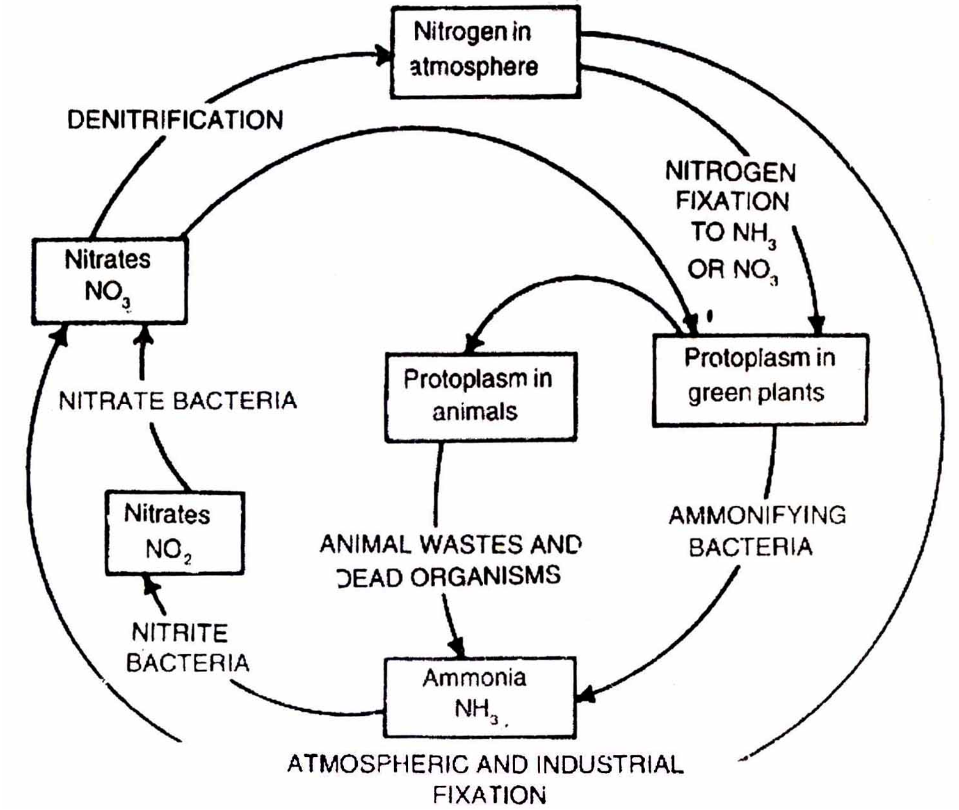

चित्र 8.2 नाइट्रोजन चक्र का निरूपण

जलीय एवं स्थलीय पारितंत्र में इसका चक्रण जटिल होता है । वायुमण्डलीय नाइट्रोजन न तो निष्क्रिय है व न ही किसी रासायनिक क्रियाओं में तुरंत भाग लेती है । नाइट्रोजन चक्र में मुख्यतया चार प्रावस्थाएँ पाई जाती हैं ।

1. **स्थिरीकरण** (Fixation) -इस पद में सर्वप्रथम गैसीय नाइट्रोजन को अमोनिया तथा नाइट्रेट में रूपांतरित किया जाता है । अमोनिया का जैविक स्थिरीकरण होता है, जबकि नाइट्रेट, विद्युत तड़ित के कारण स्थिरीकृत होती है । कई बार कॉस्मीक विकिरणें तथा ऑक्सीजन वायुमण्डल में नाईट्रेट के साथ बंधित हो जाते हैं जो पृथ्वी पर वर्षा के साथ HNO_3, H_2N0_3 के रूप में आते हैं जैविक स्थिरीकरण में आण्विक नाइट्रोजन, परमाण्विक नाइट्रोजन में रूपांतरित हो जाती है ।

$$N_2\text{-}2N$$

इस रूपांतरण में नाइट्रोजन के प्रत्येक मोल के लिये 160 किलो कैलोरी ऊर्जा का उपयोग किया जाता है । स्वतंत्र नाइट्रोजन के परमाणु हाइड्रोजन के साथ बंधिक होकर अमोनिया में रूपांतरित हो जाते हैं ।

$$2N+3H_2-2NH_3$$

यह स्थिरीकरण सहजीवी जीवाणु एवं नीलहरित शैवाल के द्वारा होता है । लेग्यूम पादपों की जड़ों में राइजोबियम नामक जीवाणु उपस्थित होते हैं । ये जीवाणु वायवीय प्रकार के होते हैं जो राइजोस्फेयर में पाये जाते हैं । लेग्यूम द्वारा उत्पादित एंजाइम एवं स्त्राव के कारण, राइजोबिया मूलरोम कोशिकाओं में प्रवेश करते हैं जहाँ ये विभाजित होकर आकार में बड़े हो जाते हैं । इस भेदन एवं वृद्धि के कारण मूल रोम, ग्रंथील एवं फूले हुये दिखाई देते हैं । इन गांठों में जीवाणु की आकृति छड़ाकार से परिवर्तित हो जाती है ।

कुछ अलेग्युमी पादप जैसे एल्नस (alnus), सीनोथस (Ceanothus) एवं एलिग्नस (Elaeagnus) भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं । कुछ स्वतंत्रजीवी मृदा जीवाणु जैसे वायवीय एजेटोबेक्टर (Azotobacter) एवं अवायवीय क्लोस्ट्रीडियम (Clostridium) भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं । कुछ नीलहरित शैवाल जैसे नॉस्टोक एवं केलोथ्रिक्स नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं । इनमें नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये Mo की आवश्यकता होती है । कुछ अधिपादपों जैसे लाइकेन में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता पाई जाती है ।

(ii) **अमोनीकरण** (Amonification) - कार्बनिक नाइट्रोजन का अमोनीकरण नाइट्रोजन चक्र का एक महत्वपूर्ण पद है । इस क्रिया में मृत पादपों एवं प्राणियों में उपस्थित प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्लों को जीवाणु एवं कवकों के द्वारा अमिनों अम्लों में रूपांतरित कर दिया जाता है । अमिनों अम्ल के ऑक्सीकरण से कार्बन डाईआक्साइड, जल, अमोनिया तथा ऊर्जा निर्मुक्त होती है ।

$$CH_2\text{-}NH_2\text{-}COOH+1/2\ O2 \rightarrow 2CO_2 + H_2 + NH_3 + 178K.cal.$$

अमोनिया आयन का पादपों की जड़ों के द्वारा प्रत्यक्षतः अवशोषण हो जाता है एवं अमिनों अम्लों के साथ समावेशित (Incorporate) होकर खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करती है । अमोनिया का कुछ भाग जल में घुल जाता है, कुछ भाग मृदा में एवं कुछ क्ले खनिज के साथ स्थिरीकरण हो जाता है ।

(iii) **नाइट्रीकरण** (Nitrification) - यह एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें अमोनिया, नाइट्रेट एवं नाइट्राइट में ऑक्सीकृत हो जाती है । यह किया नाइट्रोसोमोनास एवं नाइट्रोबेक्टर के द्वारा सम्पन्न होती है । नाइट्रोसोमोनास मृदा में उपस्थित अमोनिया का आक्सीकरण करके नाइट्रस अम्ल एवं अंत में नाइट्राइट में रूपांतरित कर देते हैं । नाइट्रोबेक्टर के द्वारा, नाइट्राइट आयन का ऑक्सीकरण नाइट्रेट में हो जाता है ।

(iv) **विनाइट्रीकरण** (Denitrification) - इस किया में कुछ सजीवों के द्वारा ऑक्सीजन की प्राप्ति हेतु नाइट्रेट का अपचयन गैसीय नाइट्रोजन में हो जाता है । विनाइट्रीकरण की क्रिया

कवक एवं स्यूडोमोनास जीवाणु के द्वारा होती है । आक्सीजन की अनुपस्थिति में ये NO_2 का उपयोग करके N_2 को गैसीय रूप में निर्मुक्त करते हैं ।

मनुष्य का प्रभाव (Human impact) - मानव के प्रभाव के कारण नाइट्रोजन चक्र का समय गड़बड़ा गया है ।

वनों एवं घासीय वनों के क्रौपलैण्ड में रूपांतरण के कारण मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा कम हो गई है । मिट्टी के मिश्रणीकरण (Mixing) एवं विखण्डीकरण (Degradation) के कारण कार्बनिक पदार्थों का उद्भासन होता है । नाइट्रोजन की कुछ मात्रा फसलों को काटने एवं पशुओं की चराई के कारण नष्ट हो जाती है ।

दूसरी तरफ पारितंत्र में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होने के कारण भी विपरीत प्रभाव देखने को मिले हैं । औद्योगिक उर्वरकों के अधिक उपयोग के कारण नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं विनाइट्रीकरण के मध्य साम्य विचलित हो गया है । कुछ नाइट्रोजन की मात्रा मृदा जल में नाइट्रेट के रूप में निक्षलित हो जाती है । मृदा जल में प्राणियों के अपशिष्ट के द्वारा भी नाइट्रेट की कुछ मात्रा निक्षालित हो जाती है । मृदा में नाइट्रेट की अधिक मात्रा के कारण यह स्वास्थ्य के लिये प्रदूषक बन गई है । मनुष्यों के अपशिष्ट जल के नदियों एवं झीलों में मिलने कारण भी नाइट्रेट प्रदूषण की मात्रा बढ़ी है ।

वायुमण्डल में होने वाला नाइट्रोजन प्रदूषण औद्योगिक इकाइयों के कारण होता है । वातावरण में पराबैंगनी किरणों के कारण NO में रूपांतरित हो जाती है । यह परमाण्वीय आक्सीजन, आण्विक आक्सीजन के साथ मिलकर ओजोन का निर्माण करती है । ओजोन NO के साथ क्रिया करके, NO_2 तथा O_2 का निर्माण करती है ।

$$NO + O_3 \rightarrow NO_2 + O_2$$

वायुमण्डल में नाइट्रोजनी प्रदूषण के कारण उस पारितंत्र में पौधों को लाभ होगा जहां पर नाइट्रोजन का अभाव था । विशेषकर उतरी गोलार्द्ध के वनों में नाइट्रोजन की प्राप्ति अमोनिया एवं नाइट्रेट के रूप में होती है । प्रचुर नाइट्रोन के कारण केनोपी एवं स्टेम (Canopy and stem) दोनों में वृद्धि होती है । यद्यपि यह भी माना जा रहा है कि नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ने के कारण शंकुधारी वृक्षों की संख्या कम हो जायेगी । यदि फोलिएज की मात्रा निरंतर बढ़ती रहेगी तो आने वाली सर्दियों में फ्रोस्ट के कारण वृद्धि नहीं हो पायेगी । नाइट्रोजन की वृद्धि के साथ-साथ मृदा में फोस्फोरस का भी अभाव हो जायेगा, साथ ही पौधों में मूलतंत्र कम विकसित होगा जिससे नाइट्रोजन के अलावा अन्य पोषक पदार्थ पादपों को उपलब्ध नहीं हो पायेंगे । नाइट्रोजन निक्षेपण में वृद्धि होती है । जब नाइट्रेट का मृदा से अधिक निक्षालन होता है तो एनायनों (Anions) की गति बढ़ जाती है । इन एनायनों के कारण जलीय पारितंत्र में अम्लीयता बढ़ जाती है । नाइट्रीकरण एवं विनाइट्रीकरण की दर में वृद्धि होने के कारण वायुमण्डल में नाइट्रस ऑक्साइड की निर्मुक्ति बढ़ जाती है एवं ग्रीनहाउस प्रभाव में बढ़ोतरी होती है ।

(B) **अवसादी चक्र** (Sedimentary cycle) - सजीवों के लिये आवश्यक खनिजी तत्व प्रारंभिक तौर पर अकार्बनिक स्त्रोतों से प्राप्त होते हैं । अन्य तत्वों की तरह अवसाद चक्र जीवों एवं इनके अजैविक पर्यावरण के मध्य होता है । प्रत्येक तत्व का अवसाद चक्र थोड़ा भिन्नित

होता है लेकिन प्रत्येक चक्र में दो अजैविक प्रावस्थाएँ पाई जाती हैं । 1. लवण विलयन प्रावस्था (Salt solution phase) 2. चट्टानी प्रावस्था (Rock phase) । खनिज तत्व सर्वप्रथम, चट्टानों पर मौसमीय प्रभाव के कारण निर्मुक्त होते हैं, इसके पश्चात् ये विलय लवणों के रूप में जल चक्र में प्रवेश करते हैं । इनकी कुछ मात्रा पादपों के द्वारा अवशोषित हो जाती है एवं कुछ मात्रा नदियों, झीलों से होते हुये समुद्रों में पहुँच जाती है । कुछ लवण अवसादन के कारण भूपर्पटी (Earth crust) में आ जाते हैं । भूपर्पटी में आने के पश्चात् मौसमीय प्रभाव के कारण इनका पुन: चक्रण प्रारंभ हो जाता है । यहां केवल फास्फोरस के चक्रण का वर्णन किया जा रहा है ।

8.2.3 फास्फोरस चक्र (Phoshorus cycle) -

प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में विशेषकर स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में फास्फोरस की उपलब्धता, जलीय पारिस्थितिक तंत्र की तुलना में कम होती है । फास्फोरस चक्र में वायुमण्डल प्रावस्था (Atmospheric phase) नहीं होती है । यह पर्यावरण में प्राकृतिक रूप से फास्फेट (PO_4) आयन जैसे घुलनशील अकार्बनिक फास्फेट आयन घुलनशील कार्बनिक फास्फेट आयन, कणीय फारफेट अथवा खनिजीय फास्फेट के रूप में पाया जाता है । पारितंत्र में फास्फेट का मुख्य स्त्रोत क्रिस्टलीय चट्टाने होती हैं । इन चट्टनों पर मौसमीय प्रभाव के कारण फास्फेट सजीवों को आयनिक फास्फेट के रूप में उपलब्ध हो जाती है ।

यह आयनिक फास्फेट स्वयंपोषी पादपों में मूलरोम के द्वारा प्रवेश करता रहता है तथा जीवीत ऊतकों में समावेशित हो जाता है । स्वयंपोषी पादपों के द्वारा यह चरण खाद्य श्रृंखला के द्वारा परिवहित होता है । इसकी कुछ मात्रा प्राणियों की विष्ठा के साथ उत्सर्जित हो जाती हैं फास्फोरस की कुछ मात्रा कणिय प्रतिरूप में वनों की अग्नि के कारण निर्मुक्त होती है ।

अरपद खाद्य श्रृंखला में, फारफेट युक्त वृहद कार्बनिक अणुओं का विघटन होता है जिसमें फास्फेट अकार्बनिक फास्फेट आयन के रूप निर्मुक्त होता है । आयनिक प्रतिरूप में यह स्वयंपोषी के द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है अथवा स्थलीय एवं जलीय पारितंत्र में अवसादी कणों के रूप में निक्षेपित हो जाता है । फास्फोरस चक्र की अवसादन प्रावस्था इसकी कार्बनिक प्रावस्था की तुलना में मद होती है ।

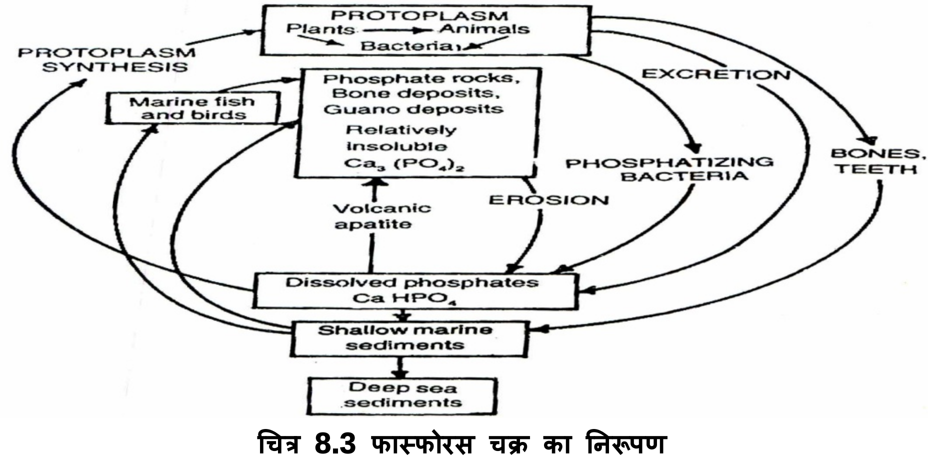

चित्र 8.3 फास्फोरस चक्र का निरूपण

पारितंत्र में अकार्बनिक फोस्फोरस की उपलब्धता मात्रा कम होती है, लेकिन चक्रीय पथ की गति तेज होने के कारण इसका संभरण उचित मात्रा में हो जाता है । समुद्रों में चट्टानों के अपरदन के कारण प्रतिवर्ष लगभग 60000 टन फोस्फोरस प्राप्त होता है । इस फोस्फोरस की कुछ मात्रा समुद्री मछलीयों में प्रवेश करती है । समुद्रों में उर्ध्व मंथन के कारण तलहटी में उपस्थित फोस्फोरस ऊपरी प्रकाशीय स्तरों में आता रहता है ।

8.2.4 भारत की वनस्पति (Vegetation of India) -

किसी भी देश के प्राकृतिक संसाधनों का एक भाग उसकी प्राकृतिक वनस्पति है जो नित्यदिन मनुष्य के कार्य कलापों से प्रभावित हाती रहती है । पौधों, जन्तुओं, मृदा जलवायु व मनुष्य सभी का प्रभाव इस वनस्पति पर पडता है । वनस्पति के अध्ययन हेतु, इसका वर्गीकरण किया गया है जो वर्षा, तापक्रम, उपस्थित जीव आदि पर आधारित है । मुख्य रूप से भारत की वनस्पति को दो वर्गो में विभाजित किया गया है 1. वन तथा 2. घासस्थल ।

1. **वन वनस्पति** (Forest vegetation) -

तापक्रम के आधार पर भारत में चार प्रकार के वन पाए जाते हैं -

I. **उष्णकटिबन्धीय वन** (Tropical forests) देश के उष्ण मैदानी क्षेत्रों में पाए जाते हैं उन क्षेत्रो मे जहाँ अधिक वर्षा होती है, यह वन घने होते हैं, परन्तु सूखे क्षेत्रों में यह वन प्राय: झाड़ियों के रूप में पाए जाते है ।

II. **पर्वतीय उपोष्ण वन** (Montane subtropical forests) प्राय: दक्षिणी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जैसे नीलगिरी, महाबलेश्वर व पचमढ़ी, जिनकी ऊँचाई 3000 से 5600 फीट तक है । उतरी भारत के पूर्वी हिमालय में अधिक आद्रता के कारण बाँस जैसे लम्बे वृक्ष व आरकिड जैसे एपिफाइट भी पाये जाते हैं । इनमें से अधिकतर वृक्ष सदाबहार होते हैं ।

III. **शीतोष्ण वन** (Temperate forests) 5300 फिट से अधिक ऊँचाई पर मुख्यत: हिमालय व नीलगिरी पर्वतों पर पाए जाते हैं दक्षिण में नीलगिरी पर्वत पर ओक व कोनिफर का बाहुल्य मिलता है । दक्षिण में निलगिरी पर्वत पर शोला नामक वृक्ष पाए जाते हैं । यह पर्वत अधिक सघन होते है । और यहाँ वृक्षों की शाखाओं पर मॉस, अनेक आरोही लताएँ तथा एपिफाइट भी पाए जाते हैं

IV. **एलपाइन वन** (Alpine forests) प्राय: 11000 फिट से अधिक ऊँचाई पर मिलते है, जहाँ वृक्षों की लम्बाई पर्वतों की ऊँचाई के साथ घटती जाती हैं । कम लम्बाई के पौधे ही यहाँ अधिक संख्या में मिलते हैं ।

2. **घासस्थल वनस्पति** (Grassland vegetation) -

भारत में प्राकृतिक घासस्थल बहुत कम संख्या में मिलते हैं । इनका विकास प्राय: वनों के विनाश के फलस्वरूप हुआ है और इनके विकास पर जैविक व मृदीय कारकों का प्रभाव भी पड़ा है ।

8.2.5 बोध प्रश्न

नोट :1. प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिये करें ।

2. अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाएं ।

प्रश्न नं. 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो

I रिक्त स्थान भरो -

1. पोषक चक्र ....प्रकार के होते हैं ।
2. कार्बन एवं हाइड्रोजन चक्र.................................. की श्रेणी में आते हैं ।
3. वातावरण से सबसे अधिक मात्रा में .... गैस उपस्थित होती है ।
4. जैविक-धटक फास्फोरस को .... से प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न नं. 2 बहुविकल्पी प्रश्न -

II निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें -

1. वातावरण में जैव भू-रासायनिक चक्र कितने प्रकार के होते हैं ।

   अ. गैसीय चक्र ब. अवसादी चक्र

   स. उपरोक्त दोनों द. कोई नहीं

2. पादप मृदा रो नाइट्रोजन किस रूप में प्राप्त करते है?

   अ. नाइट्रेट ब. अमोनियम आयन्स

   स. नाइट्रस द. अ एवं ब

3. मृदा में ट्रेस तत्व पाये जाते हैं

   अ. Cu Zn Mn Fe ब. N P K

   स. C N O द. Ca Mg K S

प्रश्न नं. 3 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दो

1. जैव भू-रासायनिक चक्र किसे कहते हैं

   ....

2. जीवों में कौन - कौन से कार्बनिक पदार्थ पाये जाते है ।

   ....

3. जीवों में नाइट्रोजन कौन-कौन से योगिकों में पाई जाती है ।

   ....

8.3 सारांश (Summary) -

रासायनिक तत्वों का पृथ्वी से जीवों में तथा जीवों से पुन: पृथ्वी पर आना जैव भू-रासायनिक चक्र कहलाता है जिसमें एक चक्रीय विधि द्वारा इन तत्वों का वातावरण से जीवों में

तथा पुन: वातावरण में आदान-प्रदान चलता रहता है । वातावरण में विभिन्न प्रकार के तत्वों जैसे C N O S P आदि का चक्रण चलता रहता है । तत्वों के आधार पर जैव भू-रासायनिक चक्र दो प्रकार के होते है 1. गैसीय चक्र तथा 2. अवसादी चक्र । कार्बन, फास्फोरस तथा सल्फर का वातावरण में चक्रीय रूप से आदान-प्रदान होता रहता है जिससे जीवों को इनकी पूर्ति होती रहती है ।

8.5 शब्दावली (Glossary)

1. **वातावरण** (Atmosphere) - पृथ्वी के चारों ओर गैसीय आवरण
2. **अनवीनीकरण स्त्रोत** (Now-renewable source) - वह प्राकृतिक स्त्रोत जो उपयोग के पश्चात पुन: काम से न आ सके ।
3. **विनाइट्रीकरण जीवाणु** (Denitrifying Bacteria) - वे जीवाणु जो नाइट्रोजन युक्त यौगिकों पर क्रिया कर नाइट्रोजन को पुन: वायुमण्डल में स्वतन्त्र करते हैं ।
4. **अपघटन** (Decomposition) - जटिल पदार्थो का सरल पदार्थो में टूटना अपघटन कहलाता है ।

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Ecology and Environment	पी. डी. शर्मा
2. Ecology	डी. एन. सेन
3. पारिस्थितिकी	पी. के. गुप्ता

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1.I

1. दो
2. गैसीय चक्र
3. नाइट्रोजन
4. वायुमण्डल एवं मिट्टी

प्रश्न 2.II

1. स	2. द	3. अ

प्रश्न 3.

1. विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों का वातावरण से जीवों में तथा जीवों से पुन: वातावरण में पहुँचना भू-रासायनिक चक्र कहलाता है ।
2. एमिनों अम्ल, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लिपिड आदि ।
3. प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल एवं जीवद्रव्य

8.8 अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

प्रश्न 1 जैव भू-रासायनिक चक्र किसे कहते है । यह कितने प्रकार का होता है ।

प्रश्न 2 निम्न पर टिप्पणीयां लिखें

1. कार्बन चक्र
2. फास्फोरस चक्र
3. नाइट्रोजन चक्र

प्रश्न नं. 3. भारत की वनस्पति का वर्णन करो ।

इकाई - 9

कृषि पादपों की उत्पति एवं धान्य फसलें
(Origin of Cultivated Plants & Cereal Corps)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कृषि पादपों की उत्पत्ति के केन्द्र

 9.2.1 डी केण्डोले का कार्य

 9.2.2 वैविलोव का कार्य

9.3 धान्य फसलें

 9.3.1 गेहूँ

 9.3.2 चावल

 9.3.3 मक्का

 9.3.4 बोध प्रश्न

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

मानव ने अपनी आवश्यकतानुसार जंगली पादपों को कृषि पादपों के रूप में विकसित किया । कृषि पादप विभिन्न केन्द्रों से उत्पन्न हुए हैं तथा पोएसी कुल के सभी कृषित पादप धान्य या अनाज कहलाते हैं । इस पाठ में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गयी हैं

1. कृषि पादपों की उत्पत्ति केन्द्र
2. डी केण्डोले का कार्य
3. वैविलोव का कार्य
4. धान्य फसलें - गेहूँ चावल, मक्का

9.1 प्रस्तावना (Introduction) -

भोजन मनुष्य की प्रथम आवश्यकता होती हैं । आदि मानव जंगली फल-फूल आदि पौधों से अपना पोषण प्राप्त करता था । विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अनेक प्रकार के पेड-पौधों को अपने पोषण के लिए उगाना आरम्भ कर दिया । लगभग बीस हजार पुष्पी पादपों की जातियों को मानव ने अपनी आवश्यकतानुसार कृषि पादपों के रूप में विकसित कर लिया हैं ।

कृषि पादपों का विकास जंगली पादपों से हुआ हैं । लाभदायक कृषि पादपों को उगाने का कार्य आदि मानव करता रहा था परन्तु इसे वैज्ञानिक आधार देने का श्रेय थिओफेस्टस (Theophrasrus), डायरकॉरायडिस (Dioscorides), आदि वनस्पति शास्त्रिओं को जाता हैं ।

9.2 कृषि पादपों की उत्पत्ति के केन्द्र (Centre Of Origin Of Cultivated Plants) -

9.2.1 डी केण्डोले का कार्य (De Candolle?s Contribution) -

फ्रांसीसी वनस्पतिज्ञ डी कण्डोले ने 1883 में प्रकाशित अपनी पुस्तक

3 **"ऑरिजन ऑफ कल्डिवटेड प्लान्टस"** में उपयोगी पादपों की उत्पत्ति तथा वितरण के सम्बन्ध में मत प्रस्तुत किया । डी कण्डोले ने विभिन्न अध्ययनो से प्राप्त तथ्यों के आधार पर उन्होंने कृषि पादपों को निम्न छ: वर्गो में विभक्त किया ।

1. प्राचीन विश्व की पादप जातियाँ जो चार हजार वर्ष पूर्व से कृषित की जा रही हैं (Old World Species Cultivated Over 4,000 Years) - एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीपों के विभिन्न देशों को प्राचीन विश्व के अन्तर्गत रखा गया । चावल (Rice), जौ (Barley), ज्वार (Sorgham), बाजरा (Millet), गेहूँ (Whest), सेव (Apple), केला (Banana), आम (Mango), चाय (Tea), अंगूर (Grape), बादाम (Almond) आदि इस क्षेत्र के प्रमुख पादप थे ।

2. प्राचीन विश्व की पादप जातियाँ जो दो हजार वर्ष पूर्व या अधिक वर्षो से कृषित की जा रही हैं (Old World Species Cultivated Over 2,000 Years or Longer) - राई (Rye), जई (Oat), सरसों (Mustrad), कपास (Cotton), नींबू (Lemon), गन्ना (Sugarcane), अफीम (Poppy), मूली (Radish), गाजर (Carrot) आदि ।

3. प्राचीन विश्व की पादप जातियाँ जो दो हजार वर्ष से कम वर्षो से कृषित की जा रही हैं- (Old World Species Cultivated For Less Then Two Thousand Years). कॉफी (Coffee), खरबूजा (Muskmelon), भिण्डी (Okra), स्ट्रॉबेरी (Strawberry) आदि ।

4. नवीन विश्व की जातियाँ जो दो हजार वर्षा से अधिक समय रो कृषित की जा रही हैं (New World Species Cultivated Over 2,000 Years) - तम्बाकू (Tobacco), मक्का (Maize), शकरकन्द (Sweet Potato), कोको (Cocoa) आदि ।

5. नवीन विश्व की जातियाँ जो कोलम्बस के समय से पूर्व से कृषित की जा रही हैं (New World Species Cultivated Before The Of Columbus) - आलु (Potato), अमरूद (Guava), मुँगफली (Peanut), लाल-मिर्च (Red Pepper), कद्दु (Pumpkin) आदि ।

6. नवीन विश्व की जातियाँ जो कोलम्बस के समय से कृषित की जा रही हैं (New World Species Cultivated Since The Of Columbus) - रबर (Rubber), स्ट्रॉबेरी (Strawberry), ब्लेकबेरी (Blackberry), बेर (Plum) आदि । उपरोक्त से स्पष्ट होता हैं कि

अधिक महत्वपूर्ण पादप जैसे खाद्यान्न (Cereals), सब्जियाँ, फल, चाय, कपास आदि हजारों वर्ष पूर्व से उगाई (Cultivated) तथा प्रयुक्त की जा रही हैं ।

9.2.2 वैविलोव का कार्य (Vavilov's Contribution):-

रूसी वैज्ञानिक इवेनोविच वैविलोव ने विभिन्न कृषित पादपों की उत्पत्ति तथा उत्पत्ति स्थल सम्बन्धित अध्ययन किया । इन्होंने अपने कार्य के निष्कर्ष को 1926 में प्रकाशित किया तथा 8 उत्पत्ति केन्द्रों की पहचान की गई । वैविलोव के अनुसार ये उत्पत्ति केन्द्र निम्न प्रकार हैं -

1. **चीन उत्पत्ति केन्द्र** (Chinese Centre Of Origin):- यह कृषि पादपों की उत्पत्ति का सबसे प्राचीन व सबसे बड़ा केन्द्र माना जाता हैं । इस केन्द्र में चीन के मध्य व पश्चिमी भाग में स्थित पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित हैं । इसमें कुल 136 पादप जातियाँ सूचीबद्व की गई हैं जिसमें बाजरा, सोयाबीन, बाँस, गन्ना, चाय, प्याज, बैंगन आदि प्रमुख हैं।

2. **भारत उत्पत्ति केन्द्र** (Indian Centre Of Origin) इस केन्द्र को दो भागों में विभक्त किया गया हैं :- मुख्य केन्द्र - इसके मुख्य केन्द्र आसाम तथा बर्मा हैं । इसमें कुल 117 जातियाँ सूचीबद्व की गई हैं । इसमें चावल, आम, जूट, नारियल, काली मिर्च, कपास, संतरा आदि प्रमुख हैं । इण्डो - मलाया केन्द्र :- इसमें इण्डों - चीन व मलाया द्वीप समुह सम्मिलित हैं । इस केन्द्र में 55 स्थानिंक जातियाँ सम्मिलित की गई हैं । उदाहरण केला, नारियल, गन्ना, लौंग, काली मिर्च तथा मनीला हेम्प आदि ।

3. **मध्य एशिया उत्पत्ति केन्द्र** (Central Asia Centre Of Origin):- इस क्षेत्र में उत्तर-पश्चिम भारत, अफगानिस्तान, तेजाकिस्तान उच्बेकिस्तान तथा पश्चिमी चीन सम्मिलीत हैं । इसमें 43 पादप जातियों को सूदीबद्व किया गया हैं जिसमें गेहूँ मटर, भॉग, कपास, लहसून, सेव, अखरोट, पिस्ताए नाषपाती प्रमुख हैं ।

4. **भूमध्यसागरीय उत्पत्ति केन्द** (Central Asia Centre Of Origin):- इसमें भूमध्यसागर के तटीय क्षेत्र राम्मिलित हैं इस क्षेत्र से 84 जातियों को सूचिबद्व किया गया हैं जिनमें जैतनए चुकन्दर, शलजम, ड्यूरम तथा एमर गेहूँ आदि ।

5. **निकट-पूर्वी उत्पत्ति केन्द्र** (Near East Centre Of Origin):- इस क्षेत्र में एशिया माइनर, ईरान, तुर्कमेनिस्तान तथा ट्रांसकुकेषिया सम्मिलित हैं । इस क्षेत्र से 83 जातियाँ सूचीबद्व की गई हैं । जिनमें गेहूँ तथा राई की 9 जातियाँ बादाम, अंजीर, अखरोट तथा रिजका आदि प्रमुख हैं ।

6. **एबिसीनियन उत्पत्ति केन्द्र** (Central America & South Mexico Centre Of Origin):- इसमें इथोपिया, एरीट्रिया व सोमालिया क्षेत्र सम्मिलित हैं । इस क्षेत्र रवे 38 जातियाँ सूचीबद्व की गयी हैं । उदाहरण - गेहूँ की कुछ जातियाँ जौए तिल, अरण्ड कॉफीए भिण्डी तथा तम्बाकू आदि ।

7. **मध्य अमेरिका तथा दक्षिणी मैक्सिकों उत्पत्ति केन्द्र** (Central America & South Mexico कैंटरे Of Origin):- इस क्षेत्र में मैक्सिकों के दक्षिण भाग, कोस्टारिक्का ग्वाटेमाला व होंडूरास क्षेत्र सम्मिलित हैं । उदाहरण - मक्का, शक्करकन्द लाल मिर्च, अमरूद, पपीता, कोको आदि ।

8. **दक्षिण अमेरिकन उत्पत्ति केन्द्र** (South American Cenhtre Of Origin):- इसे तीन प्रमुख केन्द्रों में विभक्त किया गया हैं

(I) पेरू-यूकेडोर-बोलीविया केन्द्र:- इस क्षेत्र में इन्का (Inca) सभ्यता से पूर्व के ऊपरी पहाडी क्षेत्र सम्मिलित हैं । यह आलू टमाटर, लालमिर्च, तम्बाकू सिनकोना आदि पादपों का उत्पत्ति केन्द्र माना गया हैं ।

(II) चिल्ली उत्पत्ति केन्द्र: - इसमें दक्षिणी चिल्ली का तटीय क्षेत्र सम्मिलित हैं तथा इसे आलू का उत्पत्ति केन्द्र माना जाता हैं ।

(III) ब्राजील - प्राग्वे उत्पत्ति केन्द्र - इसे कृषित पादपों का महत्वपूर्ण केन्द्र माना गया हैं जिसमें मूँगफलीए रबर, काजू कसावा आदि प्रमुख हैं । वैविलोव के अनुसार 85 प्रतिशत पादप जातियों की उत्पत्ति प्राचीन विश्व में तथा शेष 15 प्रतिशत की उत्पत्ति नवीन विश्व में हुई हैं । इनके अनुसार प्राथमिक धान्य पादपों की उत्पत्ति एकल ना होकर बहुकेन्द्री हैं जैसे - जौ के तीन तथा गेहूँ के दो उत्पत्ति केन्द्र हैं । वैविलोव के पश्चात् जूबोवस्की 1968 में तथा हारलान 1971 में ने भी उत्पत्ति केन्द्र की परिकल्पना प्रस्तुत की।

9.3 धान्य फसलें (Cereal Crops)-

धान्य शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द Cere से हुई हैं जो रोमन लोगों की " अनाज की देवी" हैं । रोमन लोग फसल की कटाई व बुवाई के समय इस देवी को जौ और गेहूँ का चढावा चढ़ाते हैं इसलिए गेहूँ व जौ तथा अन्य सम्बन्धित पादप धान्य या अनाज कहलाते हैं । सभी धान्य फसलें पोएसी कुल की सदस्य हैं । इनमें कैरियोप्सिस नामक फल पाया जाता हैं । धान्य फसलों को दो प्रमुख वर्गो में विभाजित किया जाता हैं ।

प्रमुख धान्य फसले :- गेहूँ चावल व मक्का सम्मिलित हैं ।
गौण धान्य फसले :- इसमें जौ, जई, राई, ज्वार, बाजरा आदि सम्मिलित हैं ।

9.3.1 गेहूँ (Wheat)

वानस्पतिक नाम ट्रिटिकम जाति
(Botanical Name) (Triticum spp.)
कुल - पोएसी
(Family) (Poaceae)

1. **उत्पत्ति** (Origin) -

गेहूँ विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों की प्रमुख धान्य फसल हैं । विश्व की लगभग आधी आबादी का यह मुख्य भोजन हैं । इसके उद्भव का केन्द्र सभवत: दक्षिणी - पश्चिमी एशिया हैं । यहां 6000 बी.सी में गेहूँ की दो जंगली जातियाँ उगाई जाती थी जो एमर गेहूँ के नाम से जानी जाती थी । लगभग 300 बी.सी तक गेहूँ की ये जातियाँ ही विश्वभर में उगाई जाती थीं । परन्तु उसके पश्चात् मैर्कोनी गेहूँ उगाया जाने लगा । आज ट्रिटिकम वग्लेर इसकी सबसे प्रचलित जाति हैं । वैविलोव गेहूँ की उत्पत्ति को बहुस्थली मानते हैं ।

इनके अनुसार ऐन्कॉर्न गेहूँ की उत्पत्ति एशिया माइनर व ऐमर गेहूँ की उत्पत्ति एबिसीनिया तथा सामान्य गेहूँ की उत्पत्ति मध्य एशिया में हुई हैं । रूसए अमेरिका, भारत, फ्रांस, कनाडा,, इटली व अर्जेण्टाइना गेहूँ उत्पादन के मुख्य क्षेत्र हैं । उत्पादन क्षेत्र व पैदावार की दृष्टि से भारत का विश्व में चौथा स्थान हैं । हमारे देश में गेहूँ मुख्य रूप से तीन जातियाँ उगाई जाती हैं । कुल उत्पादन क्षेत्र के लगभग 88 प्रतिशत भाग में ट्रिटिकम एस्टिवम तथा 11 प्रतिशत भाग में ट्रिटिकम ड्यूरम गेहूँ उगाया जाता हैं ।

2. **गेहूँ के प्रकार** (Kinds of Wheat) - गेहूँ के लम्बे समय से कृषित किये जाने के फलस्वरूप असख्य जातियों तथा किस्मों का विकास हुआ हैं । गेहूँ में यह विभिन्नता विभिन्न जातियों के मध्य प्राकृतिक संकरण तथा मानव द्वारा वाछित लक्षणों हेतु चयन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई । वैविलोव तथा सहयोगियों ने विश्व के सभी क्षेत्रों से गेहूँ के 31,000 नमूने एकत्र कर अध्ययन किया तथा 14 जातियों की पहचान की । परन्तु हिकल ने इन्हें 8 मुख्य प्रकारों में विभक्त किया ।

I. **ऐन्नकॉर्न** (ट्रिटिकम मोनोकोकम): - इसे एक दाने वाली गेहूँ भी कहते हैं क्योंकि इसकी प्रत्येक स्पाइकिका में एक दाना होता हैं । यह सबसे पुराना गेहूँ हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में उगाया जा सकता हैं ।

II. **ऐमर** (ट्रिटिकम डायकोकम) :- इसे "मण्डु गेहूँ" भी कहते हैं । ऐमर गेहूँ के दाने भी तुष में बन्द रहते हैं इस गेहूँ की खेती पहले बेबीलोनियाए मेडीटेरेनिया तथा यूरोप में की जाती थी ।

III. **ड्यूरम** (ट्रिटिकम ड्यूर):- यह सामान्य प्रकार की चतुर्गुणित जाति हैं जिसे कम वर्षा तथा उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता हैं । इसके दाने बड़े कठोर तथा सुनहरे लाल रंग के होते हैं जिनमें ग्लूटिन की बहुलता होती हैं

IV. **पोलिश गेहूँ** (ट्रिटिकम पोइनिकम):- इसे "महाकाय राई" भी कहते हैं । पादप आकार में ठोस तथा बड़े तने युक्त होते हैं । जिनमें बाली लम्बी तथा नीले हरे रंग की होती हैं । प्रत्येक स्पाइकिका लम्बी तथा सहपत्र द्वारा घिरी रहती हैं ।

V. **पोलार्ड गेहूँ** (ट्रिटिकम टर्जिड्म):- इसे अंग्रेजी गेहूँ भी कहते हैं । इस गेहूँ की उत्पत्ति शायद पूर्वी व दक्षिणी भूमध्यसागरीय शुष्क क्षेत्रों में हुई हैं । इसकी बाली लम्बी परन्तु उपज कम होती हैं ।

VI. **स्पेल्ट गेहूँ** (ट्रिटिकम स्पेल्टा):- यह भी आदिम प्रकार की प्राचीन गेहूँ हैं । जिसे कम उपजाऊ मृदा में भी उगाया जा सकता हैं । पूर्व में इसे भूमध्यसागरीय क्षेत्र में अनेक वर्षो तक उगाया जाता रहा हैं ।

VII. **क्लब गेहूँ** (ट्रिटिकम कम्पेक्टम):- इसे बौना गेहूँ भी कहते हैं । इसकी बालियाँ छोटी सघन तथा दानें छोटे होते हैं । पादप छोटे तथा तना कठोर होता हैं । दाने अल्प प्रोटीनयुक्त होते हैं ।

VIII. **सामान्य गेहूँ** (ट्रिटिकम एरिटवम):- इसकी खेती पूरे विश्व में व्यापक रूप से होती हैं तथा इसकी असंख्य किस्में हैं । इसकी विभिन्न किस्मों को दानों की प्रकृति के आधार पर कठोर गेहूँ नरम गेहूँ लाल गेहूँ सफेद गेहूँ बसन्त गेहूँ शरद गेहूँ तुशयुक्त - तुषरहित गेहूँ आदि श्रेणियो में रखा जाता हैं ।

3. **वानस्पतिक लक्षण** (Botanical Characteristices):- गेहूँ एक वार्षिक शाकीय पौधा है । इसका स्तम्भ जिसे कल्म् कहते हैं, 0.6-15 मीटर तक ऊँचा तथा पर्वो व पर्व सन्धियों में विभेदित होता हैं । अन्य सभी धान्य फसलों के समान इसके आधारीय भाग से अनेक शाखाएँ निकलती हैं । नवोदभिद अवरला में निकलने वाली जडें जल्दी ही समाप्त हो जाती हैं तथा उनके स्थान पर अक्ष की भूमिगत सन्धियों से अनेक अपस्थानिक झकड़ा जड़े निकलती हैं । वर्धी अवस्था की समाप्ति पर प्रत्येक वायवीय अक्ष के शीर्ष से एक स्पाइक पुष्पक्रम विकसित होता हैं जो एकान्तर कम में त्यरिहात 15-20 स्पाइकिकाओं से निर्मित होता हैं । प्रत्येक स्पाइकिका में 1 से 5 पुष्प होते हैं जो एक तुष युग्य से परिबद्व होता हैं । परिपक्व अण्डाशय में एक अन्न कण विकसित होता हैं जिसे **कैरियोप्सिस** कहते हैं । इसमें बीजावरण व फल भिति पूर्णत: संयुक्त होती हैं । बीज का लगभग 82 प्रतिशत भाग भूणपोश में बना होता हैं जो एक ऐल्यूरोन परत से ढका होता हैं । इस परत में विटामिन्स के अतिरिक्त अनेक खनिज व प्रोटीन पाये जाते हैं ।

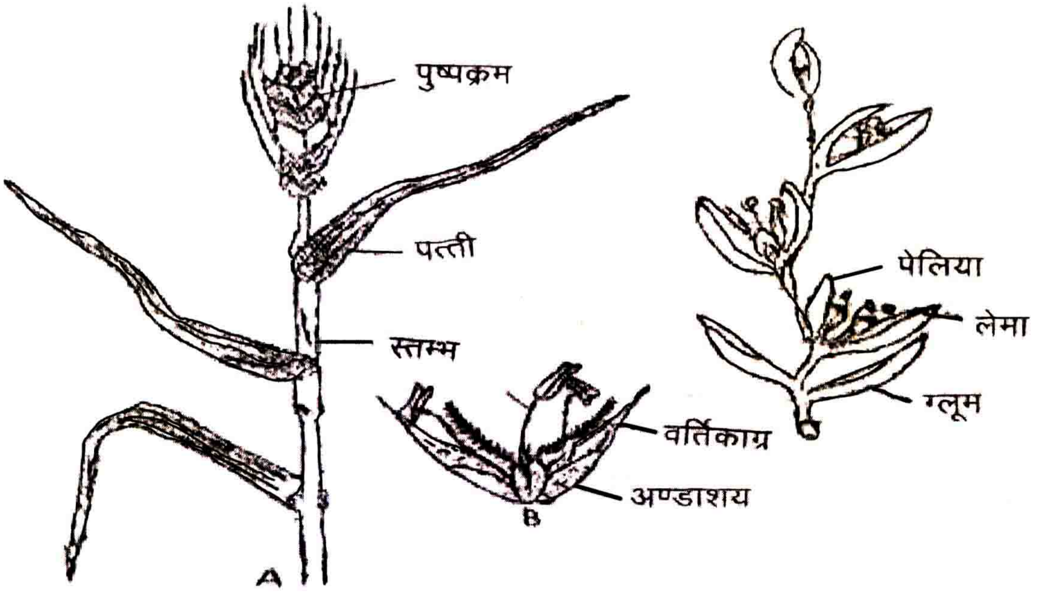

चित्र : 9.1 (A) गेहूँ पादप (B) स्पाइकिका (C) पुश्प

4. **गेहूँ की खेती** (Wheat Cultivation):-

भारतवर्ष में गेहूँ रबी की फसल हैं । विभिन्न क्षेत्रों में इसे अक्टुबर के आरम्भ से नवम्बर के अन्तिम सप्ताह तक बोया जाता हैं । बोने से पूर्व खेत को भली-भाँति तैयार कर लेने से अकुंरण एक समान होता हें । बीज का अग्रोसन (G N (Agrosan GN) अथवा सिरासन दवा से विवेचन कर लेने से बीजोड़ रोगों (Seed Borne Diseases) की सम्भवाना कम हो जाती हैं । इसकी बुवाई छिडकाव अथवा चोभ कर की जाती हैं । बुवाई के लिए प्रति हैक्टेअर 125 - 190 किग्रा बीज की आवश्यकता होती हैं । उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा में गेहूँ पंक्तियों में उगाई जाती हैं व दो पंक्तियों के बीच की दूरी लगभग 23 सेमी रखी जाती हैं । अच्छी पैदावार के लिए समय-समय पर निराई आवश्यक हैं । खरपतवार को 2,4 -D के छिड़काव द्वारा भी नियन्त्रित किया जा सकता हैं । गेहूँ की वामन किस्मों को समय-समय पर सिंचाई की आवश्यकता होती हैं जबकि लम्बी किस्मों में केवल 3-4 बार पानी की आवश्यकता होती हैं । अच्छी पैदावार के लिए प्रति हैक्टेअर लगभग 120 किग्रा - नाइट्रोजन, 40-60 किग्रा - फॉस्फोरस व 60 - 65 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती हैं । विभिन्न क्षेत्रों में गेहूँ की कटाई जनवरी के अन्तिम सप्ताह से मई के मध्य तक की जाती हैं । अधिकांश छोटे किसान कटाई हाथ से 11 ही करते हैं परन्तु बड़े फार्मो में इसकी कटाई मषीनों द्वारा की जाती हैं । कटाई के पश्चात् थेशर द्वारा अन्न कण व भूसा अलग कर लिये जाते हैं । अन्न कणों को बोरों में भार कर भण्डार गृह में रखा जाता हैं ।

5. **गेहूँ की उन्नत किस्में** (Improved Varieties of Wheat):- भारत में सर्वप्रथम गेहूँ की उन्नत किस्में विकसित करने का श्रेय डॉ. बीण्पी. पाल को जाता हैं जिन्होनें NP 700 तथा NP 800 श्रृंखला की अनेक किट्ट प्रतिरोधी उच्च उत्पादन क्षमता की किस्में विकसित की । इसके पश्चात् . डॉ एम. एस. स्वामीनाथन ने गेहूँ की अधिक उपज देने वाली बोनी किस्में विकसित करने पर बल दिया । उन्होंने उत्परिवर्तन प्रजनन (Mutation Breeding) द्वारा **"शरबती सोनारा"** किस्म का विकास किया । इसके पश्चात् 1967 में कल्याण सोना, सफेद लरमा, छोटी लरमा तथा सोनालिका आदि अन्य किस्में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR) द्वारा विकसित की गई जिनका भारत में "हरित कांति" (Green Revolution) में विशेष योगदान रहा । अन्य महत्वपूर्ण किस्में निम्न हैं - शेरा (HD-1925), प्रताप (HD-1981), हीरा (HD- 1941), माती (HD-1949), अर्जुन माल्विका (HD-1502), लोक - 1, राज - 911, HD - 2204 शैलेजा, WH -147, WH- 285, HD - 2329, HD - 2204, 'मेघदूत, सुजाता, HUW- 206, HUW -1209, नीलगिरी आदि प्रमुख हैं । राजस्थान में मुख्यत: निम्न किस्में उगाई जाती हैं - लोक -1, कल्याण सोना, सोनालिका, राज - 3077, राज - 911, WH- 147, राज - 1972, अर्जुन, HD - 2329 तथा HD - 2236 आदि हैं ।

6. **उपयोग** (Uses):-

1. विश्व के अधिकांश माग में गेहूँ प्रमुख भोजन के रूप में प्रयुक्त होता हैं । इसका आटा ग्लूटिनीन की उपस्थिति के कारण चपाती व ब्रेड या डबल रोटी निर्माण में सबसे उपयुक्त 'रहता हैं ।

2. गेहूँ के आटे के मोटे कणों को राजी कहते हैं तथा अधपिसे दानों को दलिया कहते है । सूजी व दलिया हल्के व सुपाच्चय खाद्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

3. इसके आटे से बिस्कुट, रोल, नूडल्स, केक, पेस्ट्रीज तथा कुकीज तथा सेवइयॉ तथा अन्य व्यंजन बनाये जाते हैं ।

4. इसके शुष्क तनों से टोपीयाँ, चटाइयाँ, टोकरियाँ आदि बनाई जाती हैं । इसके अतिरिक्त इसे पैकिंग सामग्री के रूप में भी प्रयुक्त करते हैं ।

5. ब्रान पशु आहार के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता हैं तथा भूसा चारे के रूप 'में पशुओं को खिलाया जाता हैं ।

6. ब्रान व शुष्क तने कागज उद्योग में कच्ची सामग्री के रूप में काम आते हैं ।

7. गेहूँ के विभिन्न भागों से पेस्ट, स्टार्च तथा फरफ्यूराइल ऐल्कोहॉल इत्यादि क़ी निर्माण होता हैं।

8. गेहूँ से बीयर तथा अन्य ऐल्कोहॉलिक पेय तैयार किये जाते हैं ।

9.3.2 चावल (धान) (Rice or Paddy)

वानस्पतिक नाम - ओराइजा सैटाइवा

(Botanical Name) (Oryza sativa)

कुल - पोएसी

(Family) (Poaceae)

1. **उद्भव** (Origin):- चावल भारतवर्ष एवं दक्षिण - पूर्वी एशिया के अन्य देशों का एक प्रमुख भोजन हैं । यह एशियाई देशों में पूर्व ऐतिहासिक काल से ही उगाया जा रहा हैं । इराक सबसे पहला संदर्भ प्राचीन चीनी साहित्य में मिलता हैं जिसकी रचना लगभग 2800 B.C. में की गयी थी । भारतवर्ष में कार्बनीकृत धान के अन्न कण हस्तिनापुर (मेरठ, उत्तरप्रदेश) की खुदाई में प्राप्त हुये जो लगभग 1000-750 B.C पुराने हैं । 300B.C. में सिकन्दर द्वारा भारतवर्ष पर आक्रमण करने के पश्चात् यह फसल ग्रीस में पुन: स्थापित हुई । ग्रीक साहित्य में इसे भारतवर्ष की देशज फसल बताया गया हैं । डीकण्डोले के अनुसार भारत में चावल अनेक जंगली पूर्वज बहुतायत से उपस्थित हैं ।

2. **वानस्पतिक लक्षण** (Botanical Characteristics) :- 'धान एक अर्धजलीय वार्षिक पौधा हैं । इसके संधित स्तम्भ की ऊचाई 50-150 सेमी होती हैं । आधारीय भाग में पर्व छोटे हो हैं, परन्तु ऊपर की ओर वे बड़े व खोखले होते हैं । आधारीय पर्व सन्धियों से नीचे की ओर झकडा जड़ें व ऊपरकी ओर तलशाखाएं विकसित होती हैं । प्रत्येक पर्व सन्धि पर एक पत्ती पायी जातीहैं ।

पत्ती का पर्णाच्छद पर्व को घेरे रहता हैं । पर्णफलक व पर्णाच्छद के मिलन स्थल पर एक झिल्लीवत् रगंहीन लिग्यूल (ligule) उपस्थित होता है । पुष्प अंतस्थयौगिक असीमाक्ष पुष्पक्रम में विन्यासित होते हैं । प्रत्येक स्पाइकिका (spikelet) अलग - अलग व्यवस्थित होती हैं । इसके पुष्पों में छ: पुंकेसर पाये जाते हैं तथा इस आधार पर इसे अन्य धान्य फसलों से

विभेदित जा सकता हैं । इसके अन्न कण कैरियोप्सिस (caryopsis) कहलाते हैं जो सुनहरे अथवा भूरे रंग के छिलके (husk) से ढके रहते हैं । छिलका युक्त चावल धान (paddy) कहलाता हैं व छिलका उतारने के बाद प्राप्त अन्नकण सफेद अथवा हल्के पीले रंग के होते हैं तथा इसे चावल (rice) हैं । धान मे छिलका अथवा भूसी (husk) की मात्रा लगभग 2 प्रतिशत तक होती हैं ।

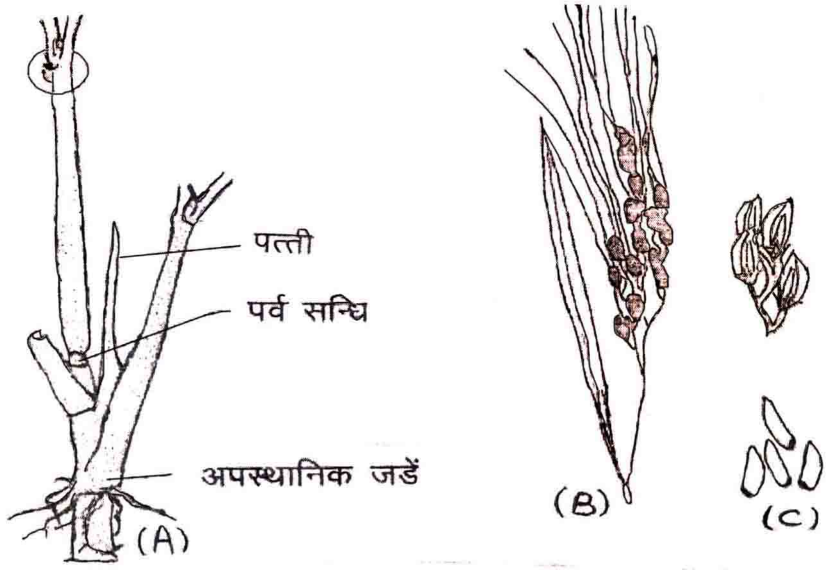

चित्र : 9.2 (A) चावल पादप (B) पुश्पक्रम (C) फल

3. **धान की खेती** (Paddy Cultivation): - भारतवर्ष में विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु में विविधता होने के कारण इसकी खेती अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न समय पर की जाती हैं । भारत में धान की फसल काउसकी कटाई के समय (harvest time) के आधार पर तीन समूहों में बाँटा जा सकता हैं:-

1. **शीतकालीनचावल** (Winter rice):- यह सबसे महत्वपूर्ण फसल हैं । इसकी खेती दक्षिण - पश्चिमी मानसून के समय की जाती हैं । नवम्बर - दिसम्बर में फसल पक कर तैयार हो जाती हैं । इस फसल का जीवन चक्र 140-160 दिन में पूरा हो जाता हैं । इसकी खेती मुख्यत: निम्न क्षेत्रों (low lands) में की जाती है।

2. शरदकालीन चावल (Autumn rice) रु. इसकी बुआई मई - जून में की जाती हैं व सितम्बर - अक्टूबर में यह पक कर तैयार हो जाती हैं । इस प्रकार इसका जीवन चक्र 90-110 दिन में पूरा हो जाता हैं । इसकी खेती मुख्यत: ऊपरी भूमिक क्षेत्रों में की जाती हैं ।

3. **बसन्तकालीन चावल** (Spring rice) रू. यह चावल दिसम्बर - जनवरी में बोया जाता हैं तथा मार्च - अप्रैल में तैयार हो जाता हैं । धान की खेती के लिए दो विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं।

(a) धान की शुष्क खेती (Dry paddy cultivation):- इसमें धान अन्य फसलों के समान शुष्क भूमि पर उगाया जाता हैं ।

(b) धान की आर्द्र खेती (Wet paddy Cultivation):- यह विधि ऐसे क्षेत्रों में प्रयोग की जाती हैं जहाँ पानी की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होती हैं । भारतवर्ष में धान की लगभग 90 प्रतिशत खेती इसी विधि से की जाती हैं । धान की आर्द्र खेती के लिए खेत को बुआई से लगभग एक माह पूर्व पानी से भली-भाँति संचित कर उसमें कई बार हल चलाया जाता है और उसके बाद मिट्टी समतल कर ली जाती हैं । छोटी - छोटी क्यारियों में धान की पौध उगायी जाती हैं और जब नवोद्भिद् 18 -30 सेमी के हो जाते हैं तब उन्हें जड़ सहित उखाड़ कर तैयार खेत में पंक्तियों में रोप दिया जाता हैं । एक स्थान पर 3 - 4 नवोद्भिद् रोपे जाते है । दो नवोद्भिद् समूहों की दूरी 20-30 सेमी व दो पंक्तियों की 7- 15 सेमी होती हैं । धान की खेती की यह विधि जापानी विधि भी कहलाती हैं । अन्य विधियों की तुलना में इस विधि से 3 से 4 गुना अधिक पैदावार ली जा सकती हैं । धान की उच्च पैदावार किस्मों के लिए पर्याप्त उर्वरक की आवश्यकता होती हैं । लगभग 100 से 110 किग्रा प्रति हैक्टेयर हरी खाद (green manure) खेत में बुवाई से लगभग 1 से 2 माह पूर्व मिलायी जाती हैं । बुवाई के पश्चात् 100 से 110 किग्रा प्रति हैक्टेयर सुपरफाफॉस्फेट व लगभग 200 किग्रा प्रति हैक्टेयर अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता होती हैं । कल्म् (culm) के भूरा अथवा पीला हो जाने पर धान कटाई के लिए तैयार समझा जाता हैं । देर से कटाई करने पर अन्न कण खेत में ही गिर जाते हैं जिससे पैदावार में हानि होती हैं । भारतवर्ष में कटाई मुख्यत: हाथ से ही की जाती हैं । कटे हुए धान को 2-3 दिन खेत में सुखाने के बाद इसको. थैसिंग (threshing) के लिए खलियान में लाया जाता हैं । थैसिंग प्राय: पशुओं द्वारा अथवा मशीनों द्वारा किया जाता हैं । पृथक भूसे को ब्रान कहते हैं जिसे बरसाकर दानों को पृथक कर लिया जाता हैं ।

4. **चावल की उन्नत किस्में** (Improved varieties of rice):- भारत में केन्द्रीय चावल अनुसंधान संरथानए कटक (Central Rice Research Institute, Cuttack) चावल की उन्नत किस्में विकसित करने में संलग्न है । भारत में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मे निम्न प्रकार हैं:- IR-8, IR-20, पंकज, जया, कावेरी, बाला, रतना, कृष्णा, जगनाथ कांची, साबरमती, जमुना, सोना तथा जयन्ती आदि ।

राजस्थान में उगाई जाने वाली किस्में :- जया, रतना, साबरमती, चम्बल, बाला, खुशबू कस्तूरी, बी.के.190, बी. के 79 एमाही सुगन्धा तथा पूसा 221 प्रमुख हैं ।

5. उपयोग (Uses):-

1. चावल कई देशों जैसे चीन, भारत, जापान तथा कोरिया आदि में मुख्य भोजन के रूप में उपयोग किया जाता हैं । 90 प्रतिशत चावल में ग्लूटेनिन का अभाव होता हैं । इसलिये इसकी चपाती नही बनायी जा सकती हैं । इसे सीधे ही उबालकर खाया जाता हैं ।
2. ग्लूटेनिन युक्त चावल के आटे को बिस्किट, आइसक्रीम, पेस्ट्री आदि में प्रयुक्त किया जाता हैं
3. चावल से अन्य प्रमुख व्यंजन जैसे इडली, डोसा, उपमा, पुलावा तथा खीर आढ़ि तैयार किये जाते हैं ।

4. चावल का स्टार्च लॉउण्ड्री में सौन्दर्य प्रसाधनों तथा वस्त्र उद्योग में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

5. चावल से डेक्सट्रिनए ग्लुकोज तथा ऐडहैसिव (adhesive) तैयार किया जाता हैं ।

6. ब्रान (bran) पशु आहार के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं तथा बान से तेल प्राप्त किया जाता हैं जिसे ब्रान तेल कहते हैं । बान तेल साबुन उद्योग तथा अन्य सौंर्न्दय प्रसाधनों (cosmetics) में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

7. चावल के किण्वन द्वारा ऐल्कोहॉलिक पेय जैसे जापान में "सेक" (sake) तथा चीन मे "वाग-सिन" (Wang-tsin) बनाया जाता हैं ।

8. चावल के सुखे तनों को चटाई, टोप, थैले आदि के निर्माण में प्रयुक्त किये जाते हैं ।,

9.3.3 मक्का (Maize, Corn)

वानरयतिक नाम - जीआ मेज

(Botanical Name) (Zea mays)

कुल - पोएसी

(Family) (Poaceae)

1. **उद्भव** (Origin):- मक्का विश्व की महत्वपूर्ण धान्य फसलों में से एक हैं । पैदावार व उत्पादन क्षेत्र की दृष्टि से इसका स्थान गेहूँ व चावल के बाद आता हैं । मक्का के प्राकृत स्थान के विषय में मतभेद हैं । पुरातात्विक व भूगर्भीय प्रमाणों से यह ज्ञात होता हैं कि इसकी उत्पत्ति लगभग 5000 वर्ष पूर्व मैक्सिको मध्य अथवा दक्षिण - पश्चिम अमेरिका में एक जंगली पौधे के रूप में हुई थी । बाद में उत्परिवर्तन एवं प्राकृतिक वरण से इसमें एक महत्वपूर्ण धान्य फसल का रूप में ले लिया ।

2. **मक्का के प्रकार (Kinds of Maize)** - मक्का की मुख्य 7 प्रकार की किस्में हैं जिन्हें भ्रूणपोष की प्रकृति दाने के आकारिकी तथा दाने पर भूसे की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर विभक्त किया गया हैं :-

1. **शिम्ब मक्का**:- इसे आदिम किस्म की मक्का माना गया हैं । इसका वाणिज्यक महत्व नही हैं।

2. **फुल्ली मक्का** :- इसके दानों में फुलने की अद्भूत क्षमता होती हैं । इसलिए पॉपकॉर्न भी कहते हैं । इनमें कठोर स्टार्च की मात्रा अधिक होती हैं ।

3. **मृदु मक्का**:- इसके दाने नरम व गोल होते हैं तथा आसानी से पिसकर बनाया जा सकता हैं।

4. **पिलन्ट मक्का** :- इसके दाने कठोर स्टार्च द्वारा पूर्णत: परिबद्व रहत हैं ।दाने गोल तथा अत्याधिक कठोर होते हैं ।

5. **मोच मक्का** :- यह सर्वाधिक उगाई जाने वाली मक्का हैं । जिसके दाने के शीर्ष पर गर्त या मोच उपस्थित होता है।

6. मीठी मक्का:- दानों की सतह खुरदरी होती हैं तथा इनमें रटार्च की तुलना मे शर्करा की मात्रा अधिक होती हैं ।

7. **मोमीया मक्का**:- इसका भ्रूणपोश मोमिया प्रकषीत का होता हैं जिसका उपयोग एडहेसिव (कीमेपअम) निर्माण अधिक हिता हैं।

2. **वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characterisrics):-**

मक्का पोएसी कुल का एक वार्षिक पौधा हैं जिसका स्तम्भ अशाखित 1 से 5 मीटर तक लम्बा होता हैं । इसमें तल शाखाएँ बहुत कम पायी जाती हैं । स्तम्भ की आधारीय पर्व सन्धियों से अनेक अपस्थानिक झकडा जडें निकलती हैं । इसके आधारीय पर्व मोटे व छोटे होते हैं, परन्तु ऊपर की ओर धीरे -धीरे पतले व लम्बे होते जाते हैं । यह अंततः नर पुष्पक्रम धारण करता हैं । मक्का के पौधे उभयलिंगाश्रयी व पृथकलिंगी होते हैं । इसका नर पुष्पक्रम (tassel) मुख्य अक्ष के शीर्ष पर तथा स्त्री पुष्पक्रम (cob or ear) पत्ती के कक्ष में उपस्थित रूपान्तरित पार्श्व शाखाओं पर विकसित होते हैं । नर पुष्पक्रम शाखित यौगिक असीमाक्ष (panicle) होता हैं । इसमें स्पाइकिकाओं के युग्म (Pairs of Spikelets) मुख्य रेकिस की पाशर्व शाखाओं पर दो पक्तियों में व्यवस्थित होते हैं । प्रत्येक स्पाइकिका में तुष (glume) का एक युग्म होता हैं जिससे दो पुष्पक (florets) घिरे होते हैं । मादा पुष्पक्रम धारण करने वाली पार्श्व शाखाओं के पर्व बहुत छोटे होते हैं । इस शाखा के शीर्ष की ओर एक मादा स्पाइक पुष्पक्रम विकसित होता हैं । इस पुष्पक्रम में स्पाइकिकाओं की अनके पक्तियां उर्ध्वाधर कम में विन्यासित होती हैं । सकंर किस्मों में इन पक्तियों की सख्या 16-20 तक होती हैं । प्रत्येक स्पाइकिका से एक लम्बा सूत्रवत् वर्तिका (style) विकसित होता हैं जिसे सिल्क (silk) कहते हैं । इसका शीर्ष दो भागों में विभाजित होता हैं तथा वर्तिकाग्र (stigma) के रूप में कार्य करता हैं । सम्पूर्ण मादा पुष्पक्रम सुविकसित अतिव्यापित पर्णाच्छदों से ढका होता हैं जो पार्श्व शाखाओं की पर्व सन्धियों से विकसित होते हैं । इसके अन्न कण (grain) कैरियोप्सिस (caryopsis) कहलाते हैं जिनमें दो प्रकार के भ्रूणपोष होते हैं । इनमें से एक पीला व कठोर (अधिक प्रोटीन युक्त) व दूसरा कोमल व सफेद (अधिक स्टार्च युक्त) प्रकार का होता हैं । विभिन्न जातियों में भ्रूणपोषों के रगों में भिन्नता पायी जा सकती हैं ।

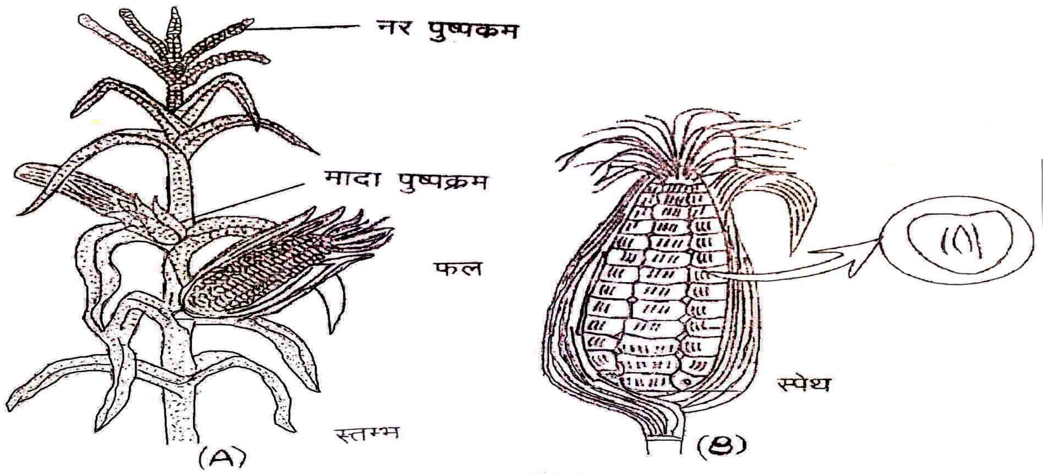

चित्र: 9.3 (A) मक्का के नर व मादा पुष्पक्रम (B) फल

4. **मक्का की खेती (Maize cultivation):-**

मक्का उपोष्ण क्षेत्र की फसल हैं । 21-27^{0}C तापमान व 60-120 सेमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं । जलोढ (alluvial) व दुमट (loam) मिट्टी में इसकी पैदावार अच्छी होती हैं । यह फसल लगभग 140 दिनों में तैयार हो जाती हैं परन्तु उष्ण क्षेत्रों में फसल अपेक्षाकृत जल्दी पक जाती हैं । हमारे देश में मक्का एक खरीफ की फसल हैं । इसकी बुवाई से पूर्व खेत को हल चलाकर तैयार कर लिया जाता हैं ओर प्रति हैक्टेयर 25-28 बैलगाड़ी भर (cart load) कम्पोस्ट खाद मिलायी जाती हैं । इसकी बुआई छिटकाकर हल के पीछे बीज डालकर अथवा चोंभकर की जाती हैं । खेत को 10-15 दिन के अन्तराल पर सिचाई की आवश्यकता होती हैं परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता हैं कि खेत जलाक्रात (water - logged) न हों । पुष्पीय अवस्था में पौधें को सबसे अधिक सिचाई की आवश्यकता होती हैं । जब भूट्टे (cobs) के पर्णाच्छद भूरे पड़ने लगे तथा बीज सख्त हो जाए उस समय फसल की कटाई कर ली जाती हैं तथा प्लटो को पृथक कर सूखने के लिए डाल दिया जाता हैं । पूर्ण शुष्क भूट्टों को पीटकर अथवा मशीनों द्वारा दानों को पृथक कर लिया जाता हैं ।

6. **प्रमुख उन्नत किस्में (Important improved Varieties):-** भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा अखिल भारतीय मक्का सुधार परियोजना (All India Co- ordinate Maize Improvement Project) के अर्न्तगत 1957 से मक्का की उन्नत किरणें तैयार की जा रही हैं । प्रमुख उन्नत किस्में निम्न प्रकार है :-

(ब) खरीफ फसल हेतु उन्नत किस्में - IX. संकर (hybrid):- गंगा सफेद -2, गंगा -5, गंगा -9, रंजीत, दकन 103, सरताज, हिम-123, हिम-128, HI - स्टार्च आदि । X. मिश्रित या सश्लिष्ट (composites) :- विजय, किसान, नवजोत, किरण, D-765, अगेती-76, अम्बर, सोना, जवाहर, पियरा-3 आदि ।

(क) रबी फसल हेतु उन्नत किस्में - गंगा -5, दकन 103, गंगा -9, दियरा-3, HI- स्टार्चए हेमन्त तथा लक्ष्मी आदि । **राजस्थान मे मक्का की निम्न प्रमुख किस्में उगायी जाती हैं** - गंगा -5, दकन 103, गंगा -2, अगेती-76, नवजोत, किरण, बस्ती सलेक्टेड़, तरूण, माही व विजय आदि ।

7. **उपयोग (Uses)** :-

मक्का मुख्य रूप से खाद्यान्न व पशुआहार (staple & cattle feed) के रूप में प्रयुक्त होता हैं । उसके अतिरिक्त यह औद्योगिक उत्पादों में कच्ची सामग्री के रूप में प्रयुक्त होता हैं । इसके प्रमुख उपयोग निम्न हैं :-

1. मक्का के आटे की चपाती बनायी जाती हैं ।
2. मक्का के दानों को भूनकर (roasted) खाया जाता हैं ।
3. मक्का के दानों से पॉपकार्न तथा कॉर्न प्लेक्स तैयार किये जाते हैं ।
4. इससे प्राप्त कॉर्न तेल खाना पकाने में तथा कॉर्न सिरप व कॉर्न शर्करा का प्रयोग जैम तथा मिष्ठान निर्माण में किया जाता हैं ।

5. मक्का के दानों को सिधे ही दुधारू तथा माँस देने वाले पशुओं को खिलाया जाता हैं ।

6. सम्पूर्ण पादप को पशुओं के चारे के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

7. मक्का रवे स्टार्चएग्लुकोज, डेक्सट्रीन तथा ऐल्कोहॉल का औद्योगिक उत्पादन किया जाता हैं ।

8. कॉर्न तेल (जो मक्का के भ्रूण से प्राप्त किया जाता हैं) लुब्रीकेन्ट के रूप में तथा. साबुन उद्योग में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

9. पादप का तना कागज निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

10. मक्का में जीन (Zein) नामक प्रोटीन पाया जाता हैं जिससे कृत्रिम रेश (synthetic fibres) का निर्माण होता हैं ।

11. मक्का के दानों के किण्वन से पैरू तथा बोलिविया में चिचा (Chicha) एंल्कोहॉलिक पेय तैयार किया जाता हैं ।

9.3.4 बोध प्रश्न

नोट– 1. प्रत्येक प्रश्न में छोड़ी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिए करें ।

2. अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाये ।

प्रश्न -1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो:

रिक्त स्थान भरो :

I. वैविलोव के अनुसार 65 प्रतिशत जातियों की उत्पत्ति....................में हुई हैं ।

II. गेहूँ .... विश्व की उत्पत्ति का पादप हैं ।

III. डी. एम.एस. स्वामीनाथन ने गेहूँ की .... किस्म का विकास किया ।

IV. बाला रत्ना व पदमा..................................की किस्में हैं ।

प्रश्न -2. बहुविकल्पी प्रश्न :- निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए -

I. विश्व का सबसे बड़ा चावल उत्पादक देश हैं -

(a) भारत (b) पाकिस्तान (c) रूस (d) चीन

II. निम्न खाद्यान्नों में किसे नवीन विश्व का प्राचीन विश्व को उपहार माना जाता हैं -

(a) चावल (b) बाजरा (c) गेहूँ (d) मक्का

प्रश्न -3. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दो :-

1. भारत उत्पत्ति केन्द्र को किन दो क्षेत्रों में विभक्त किया गया हैं?

उत्तर ....

2. भारत में हरित क्रांन्ति के लिए उत्तरदायी तीन गेहूँ की किस्मों के नाम बताइये।

उत्तर ....

3. कैरियोप्सिस क्या हैं?

उत्तर ....

9.4 सारांश (Summary)

मानव ने अपनी आवश्यकतानुसार जंगली पादपों को कृषि पादपों के रूप में विकसित किया । इन कृषि पादपों के उत्पत्ति केन्द्र भिन्न रहे हैं । डी कण्डोले के अनुसार 1883 में कृषि पादपों के छः केन्द्र बताये तथा रूसी वैज्ञानिक वेविलोव ने 1926 में 8 उत्पत्ति केन्द्रो की पहचान की । वैविलोव के अनुसार 85 प्रतिशत पादप जातियों की उत्पत्ति प्राचीन विश्व में हुई। पोएसी कुल के सभी कृषित पादप धान्य कहलाते हैं । गेहूँ, चावल व मक्का आदि को धान्य फसल में सम्मिलित किया । सभी धान्य फसलों में कैरियोप्सिस नामक फल होता हैं । जिसमें फलभिति तथा बीजचोल परस्पर संयुक्त रहती हैं ।

9.5 शब्दावली (Glossary)

1. **धान्य (Cereals).** पोएसी कुल के सभी कृषित पादप धान्य अथवा अनाज कहलाते हैं ।
2. **कैरियोप्सिस (Caryopsis)** . एकबीजीय शुष्क तथा अस्फुटनशील फल जिसकी फलभित्ति तथा बीजचोल परस्पर संयुक्त रहती हैं ।
3. **कल्म (Culm) -** फूले हुए ठोस पर्व संधियों तथा खोखले पर्व से निर्मित तने को "**कल्म**" कहते हैं ।
4. **स्पाइक (Spike)** पुष्पक्रम के मुख्य अक्ष निरन्तर वृद्धि करता हैं तथा पुष्प अग्राभिसारी कम में लगे रहते हैं, उसे स्पाइक पुष्पक्रम कहते हैं ।
5. **भ्रूणपोष (Endosperm)** - भ्रूण को पोषण देने हेतु बीज में संचित भोज्य पदार्थ **"भ्रूणपोष"** कहलाता हैं ।

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books):-

1. Economic Botany- B.B. Simpson & M.C. Ogorzaly
2. Economic Botany in The Tropics- S.L. Kochhar
3. पौंधों की उपयोगिता - पी. डी. शर्मा

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्रश्न - I.

1. प्राचीन विश्व
2. प्राचीन
3. शरबती सोनारा
4. चावल

प्रश्न - II.

1. (क) चीन

2. (क) मक्का

प्रश्न - III.

1. मुख्य केन्द्र तथा इण्डो - मलाया केन्द्र में विभक्त किया ।

2. कल्याण सोना, सफेद लरमा, सोनालिका ।

3. धान्य पादपों में पाये जाने वाले फल को कैरियोप्सिस कहते हैं जो एकबीजीय शुष्क तथा अस्फुटन शील होता है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्नः-

प्रश्न - 1. धान्य किसे कहते हैं, इनका वर्गीकरण किजिए ।

प्रश्न - 2. चावल की आर्द्र खेती पर टिप्पणी लिखिए ।

प्रश्न - 3. वैविलोव द्वारा प्रस्तुत पादपों की उत्पत्ति की संकल्पना का वर्णन करो ।

प्रश्न - 4. गेहूँ की उत्पत्ति, वानस्पतिक लक्षण, उन्नत किस्में तथा उपयोगों का वर्णन करो।

प्रश्न - 5. टिप्पणी लिखिए

1. मक्का के प्रकार
2. मक्का के वानस्पतिक लक्षण

लेमा पेलिया पुष्पक्रम स्तम्भ वर्तिकाग्र

ग्लूम अण्डाशय मादा पुष्पक्रम वर्तिका कल्म पर्वों व पर्व सन्धियों फल स्पेथ

नरपुष्पक्रम पत्ती अपस्थानिक जड़ें

चित्र 9.3 (A) मक्का के नर व मादा पुष्पक्रम (B) फल

चित्र 9.1 (A) गेहूँ पादप (B) स्पाइकिका (C) पुष्प

चित्र 9.2 (A) चावल पादप (B) पुष्पक्रम (C) फल लेमा

पेलिया पुष्पक्रम स्तम्भ वर्तिकाग्र

ग्लूम अण्डाशय मादा पुष्पक्रम वर्तिका कल्प पर्वों व पर्व सन्धियों फल स्पेथ नर पुष्पक्रम पत्ती अपस्थानिक जड़ें

चित्र 9.3 (A) मक्का के नर व मादा पुष्पक्रम (B) फल

चित्र 9.1 (A) गेहूँ पादप (B) स्पाइकिका (C) पुष्प

चित्र 9.2 (A) चावल पादप (B) पुष्पक्रम (C) फल

इकाई -10

शर्करा पादप : गन्ना एवं आलू की उत्पत्ति , वानस्पतिक लक्षण, खेती, उन्नत किस्में तथा उपयोग

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
102 शर्करा पादप
10.2.1 गन्ना की उत्पत्ति
10.2.1.1 गन्ने के वानस्पतिक लक्षण
10.2.1.2 गन्ने की खेती
10.2.1.3 गन्ने की उन्नत किस्में
10.2.1.4 गन्ने के उपयोग
10.2.2 आलू की उत्पत्ति
10.2.2.1 आलू के वानस्पतिक लक्षण
10.2.2.2 आलू की खेती
10.2.2.3 आलू की उन्नत किस्में
10.2.2.4 आलू के उपयोग
10.3 सारांश
10.4 बोध प्रश्न
10.5 शब्दावली
10.6 संदर्भ ग्रन्थ
10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objectives) :

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप शर्करा पादपों की परिभाषा को समझ सकेंगे, साथ ही इस इकाई के अन्त में आप गन्ना व आलू पादपों की उत्पत्ति उनके वानस्पतिक लक्षणों, उन्नत किस्मों व उनके सामान्य उपयोगों की जानकारी को प्राप्त कर सकेगें एवं प्राप्त ज्ञान का उपयोग आप अपने दैनिक जीवन में कर सकेंगे साथ ही प्राप्त शान का अवबोध का शर्करा पादपों का ज्ञान प्राप्त कर, उनमें अन्तर करने का कौशल प्राप्त करेंगे ।

10.1 प्रस्तावना (Introduction) :

शर्करा मानव भोजन का प्रमुख हिस्सा है । शर्करा वास्तव में **सुक्रोज** होते हैं जिनकी उपस्थिति मीठा स्वाद प्रदान करती है । पादप के स्तम्भ या जड़ से शर्करा प्राप्त की जाती है । प्रायः औद्योगिक स्तर पर शर्करा निष्कर्षण हेतु उन पादपों का उपयोग किया जाता है जिनका मुख्य घटक शर्करा होती है ।

1. गन्ना (Sugarcane)- सैकेरम ओफिसीनेरम (Saccharum officianrum)
2. चुकन्दर (Sugar beet) - बीटा वल्गेरिस (Beta vulgaris)
3. खजूर (Palm) - फिनिक्स स्पी. (Phenoix spp.)
4. शुगर मेपल (Sugar maple) - एसर सैकेरम (Accer sachharum)

हरे पादपों अनाज, सब्जियों एवं आलू में **एमाइलेज (Amylases) एवं एमाइलोपेक्टिन (Amylopectin)** पाया जाता है उनमें अघुलनशील बहु शर्करा स्टार्च के रूप में होती है जिनसे शर्करा का निष्कर्षण किण्वन द्वारा किया जाता है । प्रस्तुत इकाई में हम शर्करा व 'स्टार्च उत्पादक पादपों के स्त्रोत गन्ना व आलू का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

10.2 शर्करा पादप :

प्राचीन साहित्य के अनुसार "शहद" का उपयोग सर्वप्रथम मीठा स्वाद प्राप्त करने हेतु किया गया । प्रारम्भ में शर्करा का उपयोग दवाई के रूप में किया जाता था । लगभग सभी हरे पादप सूर्य उर्जा के माध्यम से शर्करा की' निर्माण करते हैं, । किन्तु गन्ना प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से सर्वाधिक का निर्माण करता है जो की मानव के लिये अत्यधिक उपयोगी है अत: गन्ना शर्करा प्राप्ति का प्रमुख स्त्रोत है। स्टार्च हरे पादपों में संरक्षित भोजन के रूप में उपस्थित होती है । आलू स्टार्च का अच्छा स्त्रोत है, इसमें शर्करा अघुलनशील रूप में उपस्थित होती है ।

10.2.1 गन्ना की उत्पत्ति (Origin of Sugarcane)

आइये अब हम शर्करा के प्रमुख स्त्रोत गन्ने की उत्पत्ति के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करते हैं- ब्रेन्डिस (Brandis) के अनुसार न्यूगिनी (New-Guinea) में गन्ने की उत्पत्ति हुई है, उपलब्ध साहित्य के अनुसार गन्ने का पूर्वज ज्ञात नहीं है । भारत में गन्ने की खेती ऐतिहासिक काल (लगभग, 327 ई. पूर्वद्ध से की जा रही है । भारत से गन्ना चीन, अरब देशों व यूरोप में पहुँचा। दक्षिण अमेरिका में 1520 ई. एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में 1741 ई. में गन्ने की खेती प्रारम्भ हुई । वर्तमान में लगभग सम्पूर्ण विश्व में गन्ने का व्यावसायिक उत्पादन कर शर्करा निष्कर्षण किया जा रहा है ।

10.2.1.1 गन्ना के वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters)

वानस्पतिक नाम	**सैकेरम ऑफिसीनेरम**
(Botanical Name)	**Saccharum officinarum**
कुल (Family)	**ग्रेमीनी (Gramineae)**

सामान्य नाम **गन्ना,**

(Common Name) **(Sugarcane)**

गन्ना बॉस के समान लम्बी एवं कठोर **प्रकन्दीय घास** है, जो की बहु वर्षीय होती है, पादप की लम्बाई व चौड़ाई क्रमशः 2-6 मीटर एवं 3.8.6.0 सेमी. होती है, सीधे स्तम्भ में तलशाखन **(tillering)** के माध्यम से अनेक तनों के समूह विकसित हो सकते हैं जो की स्तम्भ गुच्छों के रूप में निकलते है, स्तम्भ पर्व एवं पर्वसन्धियों में विभाजित रहता है । पौधे को सीधा रखने का कार्य अवस्तम्भ मूलें करती है, जो भी आधारीय पर्वसन्धियों से निकलती है । प्रत्येक पर्वसन्धि पर पर्ण आच्छद (Leaf sheath) से घिरी कलिका उपस्थित होती है । साथ ही मूल प्रारम्भिकाओं (Root initials) का सफेद वलय भी होता है । पर्व सन्धि के इस भाग को "सैटस" या स्टाक (Stalk) कहते है । पर्व सन्धि पर एकल एवं एकान्तर क्रम में व्यवस्थित पर्ण होते हैं पर्व सन्धि को पर्ण आच्छद घेरे रहता है । जो रोमिल होता है । गन्ने के पादप में पुष्प **पेनिकल पुष्पक्रम (Panicle Inflorscence)** में व्यवस्थित रहते हैं । जो सफेद चमकीले होते हैं । स्पाइकलेट्स से निर्मित पेनिकल पुष्पक्रम में प्रत्येक पाइकलेट में दो पुष्प होते है, वृन्तीय पुष्प ऊपर व अवृत्तीय पुष्प नीचे व्यवस्थित होते हैं, सिल्की रोमों दोनों को आधार से घेरे रहते है । पर्ण आच्छद पर्ण फलक से लम्बी होती है तथा पुष्पक्रम को घेरे रहती है । द्विलिंगी पुष्प उपस्थित होते हैं, किन्तु बीजों का निर्माण नहीं होता है पादप का प्रर्वधन कायिक विधि (vegetative method) द्वारा होता है ।

10.2.1.2 गन्ने की खेती (Cultivation of Sugarcane)

गन्ने की खेती मुख्यतः ऊष्ण कटिकन्धीय (Tropical) एवं उपउष्ण कटिबन्धीय (Subtropical) क्षेत्रों में की जाती है । 20-35^0 तापमान एवं चमकीली धूप युक्त जलवायु गन्ना पादप की वृद्धि हेतु उपयुक्त है । प्रकाश की मात्रा तलशाखन (tillering) को प्रभावित करती है । गन्ने की वृद्धि हेतु भारी दोमट या चिकनी मृदा (Heavy loon clay) मृदा उपयुक्त है ।

आइये अब गन्ने की खेती के विभिन्न चरणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं -

(अ) **खेत की जुताई** खेत की जुताई दो बार की जाती है ताकि गन्ने की फसल प्राप्त की जा सके, तत्पश्चात् खेत को समतल कर एक बार सिंचाई आवश्यक है । उर्वरक व खाद भी डाली जाती है।

(ब) **बुआई (Sowing)** : बुआई का समय जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है । बुआई (Sowing) से पहले बीज या सेट्ल (sets) तैयार किये जाते हैं । हाथ से गन्ने के स्तम्भ की पत्तियों को हटाया जाता है, यह कार्य सावधानी पूर्वक किया जाता है, ताकि संधिपर्व पर उपस्थित कलिकाएं (Buds) नष्ट न हो तत्पश्चात् गन्ने के स्तम्भ को 2-3 पर्व सन्धि युक्त खण्डों में काट कर सैट (Sets) तैयार किये जाते हैं, इस कार्य हेतु स्वस्थ पादपों का चयन किया जाता है । बीजों की बुआई से पहले उनका बीजोपचार आवश्यक है । बीजोपचार

(seed treatment) के बाद हल द्वारा निर्मित खाँचों में 50-70 सेमी. की दूरी पर इन बीजों को क्षैतिज स्थिति में रोपा जाता है, रोपण कार्य के पश्चात् खेत को समतल करते हैं ताकि नमी बनी रहे । लगभग 15 दिनों में अंकुरण प्रक्रिया सम्पन्न होती है, फसल का परिपक्वन काल 12-14 महीने है । खरपतवार निष्कासन समय-समय पर किया जाता है । अच्छी फसल हेतु निश्चित समयान्तराल पर सिंचाई आवश्यक है । 75 दिन बाद प्रथम सिंचाई तत्पश्चात् 30 दिन के अन्तराल पर सिंचाई आवश्यक है । फसल को गिरने से रोकने के लिये पादप की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाई जाती है । पौधे की परिपक्व अवस्था के प्रथम चरण में नीचे की पर्ण सर्वप्रथम सूखती है, शीर्ष भाग पर कुछ पर्ण हरी रहती है । **शर्करा रिफ्रेक्टोमीटर (sugar refrectometer)** से पौधे की परिपक्वता को जॉचा जा सकता है । परिपक्व पादपों को तेज धार वाले चाकुओं (Cane Knives) के द्वारा तने के आधार भाग से काटा जाता है शीर्ष पर्णों को छोड़कर सभी पणों को हटा देते हैं और उनके गट्ठर बना लेते हैं जिन्हें रस निष्कर्षण एवं चीनी निर्माण हेतु फैक्ट्री में भेजा जाता है । कटाई के दौरान एक या दो पर्व लम्बी आधार स्तम्भ को खेत में छोड़ा जाता है जिन्हें **पेडिया** (Ratton) कहते है जो की 3-4 सप्ताह में अंकुरित हो गये पादप का निर्माण करते है अत: एक बार लगाये गये "सेट्स" से 3-4 फसलें उगाई जा सकती हैं अब तक आपको स्पष्ट हो गया होगा की गन्ने की खेती किस प्रकार की जाती है ।

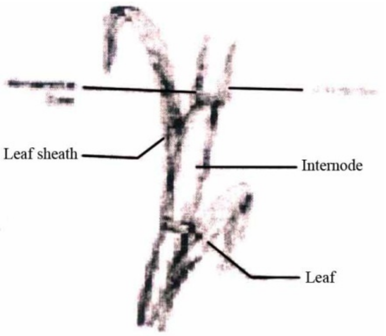

चित्र 10.1 गन्ना स्तम्भ का भाग

10.2.1.3 गन्ने की उन्नत किस्में (Improved Varieties of Sugarcane)

4. इकाई के इस चरण में हम गन्ने की उन्नत किस्मों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे । लखनऊ में स्थित **"गन्ना अनुसंधान संस्थान" (Indian Institute of Sugarcane research)** एवं कोयम्बटूर स्थित **गन्ना प्रजनन संस्थान (Sugarcane Breeding Institute)** द्वारा कई उन्नत किस्मों का विकास किया गया है जैसे, CO-312, CO-470, CO-997, CO-100), CO-8337, CO-8340) आदि ।

10.2.1.4 गन्ने के उपयोग (Uses of Sugarcene)

आइये, अब गन्ने के प्रमुख उपयोगों को जानने का प्रयास करते हैं :-

गन्ने के मुख्य उपयोग -

1. सम्पूर्ण विश्व में मिठाई, पेय पदार्थ आइसक्रीम, बिस्कुट, केक, खाद्य पदार्थो में गन्ने से निर्मित चीनी का उपयोग सर्वविदित है ।
2. गन्ने के उत्पाद चीनी को आहार के रूप में उपयोग लाते हैं ।
3. खोई (molases) से कागज, फाइबर बोर्ड आदि का निर्माण होता है ।
4. गन्ने के तनों व पर्णों को चारे के रूप में काम में लेते हैं ।
5. गन्ने से चीनी निर्माण प्रक्रिया में वसा अम्ल व मोम अवक्षेप के रूप में प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता है ।
6. विश्व में गन्ने द्वारा कई ऐल्कोहालिक पेय निर्मित किये जाते हैं ।
7. भारतीय समाज में "गुड़" का उपयोग बहुतायत रूप से किया जाता है । जो कि गन्ने से बनता है ।
8. गन्ने से "सिरका" बनाया जाता है जिसका उपयोग खाद्य परिरक्षण (food preservation) में करते 'हैं ।
9. गर्मी में गन्ने के रस का प्रयोग शीतलता प्राप्त करने हेतु किया जाता है ।

10.2.2 आलू की उत्पत्ति (Origin of Potato)

इकाई के इस भाग मे हम स्टार्च के प्रमुख स्त्रोत आलू (Potato) के बारे में सामान्य विवरण प्राप्त करेंगे । विश्व के महत्वपूर्ण खाद्य 'पदार्थो में आलू का स्थान प्रमुख है, यह स्टार्च का प्रमुख स्त्रोत है । सम्पूर्ण विश्व में सब्जी व चिप्स के रूप में आलू का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है । आलू का उत्पत्ति स्थल पेरू एवं चिली (दक्षिणी अमेरिका) की एन्डिस पर्वतमाला (Andes mountains) को माना गया है । दक्षिण अमेरिका की घुमक्कड़ जातियों को आलू (Potato) की खोज का श्रेय दिया जाता है । आलू की खोज लगभग 2500 वर्ष पूर्व की मानी जाती है । यूरोप में आलू 16 वीं शताब्दी एवं भारत में 17 वीं शताब्दी में पहुँचा । व्यावसायिक रूप से आलू का उत्पादन 18 वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ । सिमोन्ड (Simmond) के अनुसार एल्केलाइड विहीन द्विगुणित आलू की उत्पत्ति 2000 से 5000 ई. पू. हुई । एक अन्य मतानुसार जंगली जाति सोलेनम स्टेनोटोमस (Soanums stenotomus) द्वारा क्रोमोसोम द्विगुणन द्वारा आलू की उत्पत्ति मानी जाती है ।

10.2.2.1 आलू के वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters)

वानस्पतिक नाम	:	सोलेनम ट्यूबरोसम
(Botanical Name)	:	Solanum tubarosum
कुल (Family)	:	सोलेनेसी (Solanaceae)
सामान्य नाम	:	आलू, सफेद आलू
(Common Name)	:	(Potato, White Potato)

आलू का पादप एक कमजोर पादप है जो कि शाखित होता है इसकी लम्बाई प्रायः 2-3 फीट होती है । पौधा एकवर्षीय शाक है । पौधे का स्तम्भ उर्ध्व, कोमल, शाखित व अत्यधिक फैला होता है । सम्पूर्ण तना पर्व संधियों को छोड कर खोखला होता है । स्तम्भ के आधारीय अथवा भूमिगत ठोस भाग से कक्षीय शाखाएं (stolons) निकलती हैं जिनकी वृद्धि क्षैतिज दिशा में होती है, अपस्थानिक जड़ें समूह में विकसित होती हैं जो कि स्तम्भ से निकलती हैं । संयुक्त पिच्छाकार पर्ण अनियमित विन्यासित होती है । 20-40 सेमी. लम्बी अनुपर्णी पर्ण होती है जो कि एक शीर्षस्थ पंक्ति एवं 2-4 जोडी प्राथमिक पर्णक एवं द्‌वितीयक पर्णक युक्त होती है ।

चित्र 10.2. आलू का पादप

भूमिगत शाखाओं के फूले या मांसल शीर्ष आलू का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है कि **कन्द (Tuber)** का निर्माण करते हैं । यह शाखायें भूस्तारी कहलाती हैं । कन्द वास्तव में तने का है चिकनी भूरी अधिचर्म कन्द को घेरे रहती है । जिस पर कक्षीय कलिका (arial bud) या **आँखें (eyes)** उपस्थित होती हैं । ये "ऑखें शल्की पत्रों (scaly leaves) की कक्ष से निकलती हैं आशुपाती शल्की पर्ण गिर जाते हे और अवशेष के रूप में निशान उपस्थित रहता है । ऑख में एक केन्द्रीय कलिका होती है जो कि छोटी पार्श्व कलिकाओं से घिरी रहती है । स्तम्भ के शीर्ष भाग पर "ऑख" सघन होती है । इन्हीं ऑखयुक्त खण्डों के माध्यम से आलू का प्रवर्धन (propogation) होता है । आलू मे पुष्प असीमाक्षी, असीमाक्ष (racemose raceme) में व्यवस्थित होते हैं जो कि पीले या बैंगनी रंग दमे शीर्षस्थ समूह के रूप में होते है । आलू का फल बेरी (Berry) होता है ।

कन्द की रचना :- इसकी संरचना सामान्य द्‌विबीजपत्री तने के समान होती है बाहरी अधिचर्म का निर्माण वल्कुट की बाहरी सतह कार्क कैम्बियम से होता है जिसे पैरीडर्म (Periderm) भी कहते हैं । जो वातरंध्र (lenticles) युक्त होती है संवहन एधा (vascular cambium) में वृद्धि द्‌वारा केन्द्र (tuber) की मोटाई बढती है ।

10.2.2.2 आलू की खेती (Cultivation of Potato)

शीतोष्ण (temperare) जलवायु आलू की खेती हेतू उत्तम है । 15-20^0 से. तापमान आलू वृद्धि हेतु उपयुक्त है । हल्की दोमट व भारी मृदा जिसकी जल निकास क्षमता अच्छी हो पादप वृद्धि हेतु अच्छी है ।

चलिये, अब हम आलू की खेती के विभिन्न चरणों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें समझने का प्रयास करते हैं -

(अ) **खेत की जुताई** :- सर्वप्रथम मृदा को भुरभुरा बनाना आवश्यक है यह कार्य **'सुहागें'(plankar)** की मदद से किया जाता है तत्पश्चात् खेत को समतल कर अन्तिम जुताई के दौरान मृदा को हेप्टाक्लोर, एल्ड्रिन व फोरेट से उपचारित करते हैं ।

(ब) **बुआई (Sowing)** :- आलू की बुआई का समय जलवायु भिन्नता के कारण अलग-अलग होता है । आलू की बुआई भारत के उत्तरी मैदानी भागों में सितम्बर से जनवरी, पहाडी क्षेत्रों में मार्च से अप्रैल व दक्षिणी क्षेत्रों में अप्रैल, अगस्त व जनवरी माह में की जाती है । कन्द (tuber) के द्वारा आलू का प्रवर्धन किया जाता है । आँख (eye) युक्त लम्बवत अक्ष मे कटा हु आ कन्द (tuber) इस काम में लेते हैं । जो कि बीज (seed orset) कहलाता है । अब इन्हें खेतों में पंक्ति में 20-30 सेमी. की दूरी पर लगाया जाता है जिनकी गहराई 6-10 से.मी. होती है । एक पंक्ति की दूरी दूसरी पंक्ति से लगभग 40-50 से.मी. होती है । बुआई से पूर्व बीजों को बोरिक अम्ल (Boric acid) से उपचारित किया जाता है । मृदा में खाद व उर्वरक आवश्यकतानुसार डाली जाती है ।

(स) **सिंचाई (Irrigation)** :- खेत की लगभग आठ सिंचाई आलू पादप की उत्तम वृद्धि हेतु आवश्यक है । प्रथम सिंचाई बीजों के अंकुरित होते ही की जानी चाहिये । 10-15 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार मृदा की सिंचाई की जानी चाहिये । आलू पादपों के परिपक्वन के लगभग 15 दिन पहले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिये क्योंकि कन्द (tuber) पर उपस्थित वातरंध्र नमीयुक्त मृदा के कारण सड़ सकते हैं । आलू के खेत से निरन्तर खरपतवार निष्कासन आवश्यक है । पादप पर मिट्टी नियमित रूप से चढ़ाई जानी चाहिये ।

(द) **आलू की खुदाई (Harvesting)** - आलू की फसल का परिपक्वन काल प्रायः 3-3$^{1/2}$ महीने का माना जाता है । पर्णों का पीला पड़ना आलू के कन्दों के परिपक्वन का लक्षण है, इस अवस्था में पादपों को उखाड़ लेते हैं । अब "कन्द" को पादप के वायवीय भाग से पृथक कर छायादार स्थान पर सुखाते हैं ताकि 'पेरीडर्म' बन सके । अब इन्हें "शीत संग्रहण" (cold storage) में संग्रहित करते हैं ।

10.2.2.3 आलू की उन्नत किस्में (Improved Varieties of Potato)

इकाई के इस भाग में हम आलू की उन्नत किस्मों का ज्ञान प्राप्त करेंगे :-

केन्द्रीय आलू अनुसंधान केन्द्र. कुफरी. शिमला में निरन्तर अनुसंधान कर आलू की अनेक उन्नत किस्मों का विकास किया है जैसे - कुफरी चमत्कार, कुफरी बहार, कुफरी सिन्दुरी, कुफरी बादशाह, कुफरी ज्योति, कुफरी शेरपा, कुफरी अलंकार, चन्द्रमुखी आदि ।

10.2.2.4 आलू के उपयोग (Uses of Potato)

आइये, अब आलू के प्रमुख उपयोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं :-

1. आलू का सर्वाधिक उपयोग सब्जी निर्माण में किया जाता है ।
2. विश्व के कई भागों में आलू का आटा, गेहूँ के आटे के साथ मिलाकर खाया जाता है ।
3. समोसा, वेफर्स, बर्गर, कटलेट, चिप्स निर्माण में काम आता है ।
4. बिस्कुट, केक, पेस्ट्री बनाने में आलू के आटे का उपयोग होता है ।
5. पेरू एवं बोलिविया में आलू के निर्जलीकरण द्वारा "चूनों" (chuno) बनाया जाता है । जिसका उपयोग खाद्य पदार्थो में होता है ।
6. पशुचारे के रूप में उपयोगी है ।
7. आलू द्वारा निर्मित स्टार्च का उपयोग कागज व वस्त्र उद्योग में करते है ।
8. आसवन व किण्वन के माध्यम से आलू से एल्कोहल बनाया जाता है ।
9. रूस में आलू से **वोदका (Vodka)** नामक ऐल्कोहालिक पेय पदार्थ बनाया जाता है ।
10. लैक्टिक अम्ल व एडहेसिव निर्माण में भी आलू का उपयोग किया जाता है।

10.3 बोध प्रश्न

नोट : (i) प्रत्येक प्रश्न में छोडी जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने हेतु कीजिये।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलायें ।

प्रश्न I. निम्न स्थान भरो :-

1. शर्करा वास्तव में .... होते हैं ।
2. आलू .... अच्छा स्त्रोत है ।
3. गन्ना बॉस के समान लम्बी व कठोर .... है ।
4. गन्ने के पादप की परिपक्वता को .... द्वारा जाँच जाता है ।
5. रूस में आलू से .... नामक एल्कोहॉलिक पेय बनाया जाता है ।
6. केन्द्रीय आलू अनुसंधान केन्द्र .... में स्थित है ।

प्रश्न II. निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें

प्रश्न 1. गन्ना अनुसंधान संस्थान स्थित है

(अ) लखनऊ (ब) दिल्ली (स) जयपुर (द) मुम्बई

प्रश्न 2. गन्ने के पादप का पुष्प क्रम है

(अ) कोरिम्ब (ब) पेनिकल (स) छत्रक (द) कोई भी नहीं

प्रश्न 3. आलू का प्रर्वधन किया जाता है

(अ) आँख युक्त कन्द द्वारा (ब) आँख विहीन कन्द द्वारा (स) जड़ों द्वारा (द) उपयुक्त में से कोई नहीं

प्रश्न 4. आलू की उन्नत किस्म का उदाहरण है

(अ) कुफरी चमत्कार (ब) चन्द्रमुखी (स) अ व ब दोनों (द) उपयुक्त में से कोई नहीं

प्रश्न III निम्न में से कौनसा कथन सत्य / असत्य है ।

1. बेन्दिस के अनुसार गन्ना का उत्पत्ति स्थल न्यूमिनी है सत्य /असत्य
2. गन्ने के पादप में तलशाखन नहीं पाया जाता है । सत्य /असत्य
3. आलू के पादप का फल बेरी कहलाता है । सत्य /असत्य
4. बोरिक ऐसिड द्वारा आलू के बीजों का उपचार किया जाता है सत्य /असत्य

10.4 सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने गन्ने व आलू की उत्पत्ति, उनके वानस्पतिक लक्षणों, खेती, उन्नत किस्मों व उपयोग के ज्ञान का अवछोब किया । गन्ना शर्करा उत्पादक पादप के रूप में तथा आलू स्टार्च उत्पादक पादप के रूप में सम्पूर्ण विश्व में लगाया जाता है । आलू व गन्ना की खेती हेतु उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, गन्ने व आलू की मानव उपयोगिता को देखते हुए विश्व स्तर पर अनुसंधान जारी है और रोग प्रतिरोधक क्षमता युक्त किस्मों को विकसित किया जा रहा है ।

10.5 शब्दावली (Glossary)

सैट्स या स्टाक (Stalk) - गन्ने के स्तम्भ पर पर्व सन्धि का वह भाग जहाँ मूल प्रारम्भिका का सफेद वलय स्थित होता है ।

सैट (Seers) - गन्ने के तने के पर्व संधि युक्त खण्ड सैट्स कहलाते हैं ।

पेडिया (Ratoon) - गन्ने के पादप के एक या दो पर्व लम्बी स्तम्भ के आधार भाग पेडिया कहलाते हैं ।

कन्द (Tuber) - आलू के पादप की भूमिगत शाखाओं के फूले या मॉसल शीर्ष जो तने का रूपान्तरण होते है।

10.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Economic Botany in the tropics -S.L. Kochhar
2. Economic Botany - V. Verma

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1

1. सूक्रोज
2. स्टार्च
3. प्रकन्दीय घास
4. शर्करा रिफ्रक्टोमीटर
5. वोदका
6. शिमला

प्रश्न II

1. अ
2. ब
3. अ
4. स

प्रश्न III

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

प्रश्न 1. गन्ने के वानस्पतिक लक्षणों का वर्णन कीजिये ।

प्रश्न 2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये

(I) शर्करा पादप

(II) गन्ने की बुआई

(III) गन्ने की उन्नत किस्में

(IV) गन्ने के उपयोग

प्रश्न 3. आलू व गन्ने की उत्पत्ति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

प्रश्न 4. आलू के वानस्पतिक लक्षणों का वर्णन कीजिये ।

प्रश्न 5. आलू की उन्नत किस्मों के नाम लिखिये ।

प्रश्न 6. आलू के मुख्य उपयोग लिखिये ।

इकाई - 11

सब्जियाँ -:सामान्य विवरण मूली, प्याज, लहसुन, प्याज, पत्ता. गोभी, पालक. फूलगोभी. खीरा. टमाटर. भिण्डी. मटर आदि पर टिप्पणियाँ

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 सामान्य विवरण

11.2.0 मूली

11.2.1 प्याज

11.2.2 लहसुन

11.2.3 पत्ता गोभी

11.2.4 पालक

11.2.5 फूल गोभी

11.2.6 खीरा

11.2.7 टमाटर

11.2.8 भिण्डी

11.2.9 मटर

11.3 सारांश

11.4 बोध प्रश्न

11.5 शब्दावली

11.6 संदर्भ ग्रन्थ

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अन्त में आप सब्जियाँ किसे कहते हैं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । आप विभिन्न प्रकार की सब्जियों का अवबोध कर सकेंगे । आप विभिन्न प्रकार की सब्जियों की तुलना कर सकेंगे । साथ ही उनके सामान्य लक्षण वर्गीकरण को समझ सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव के सामान्य खान-पान में सब्जियों का महत्वपूर्ण है, सब्जियाँ प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लवण, विटामिन का महत्वपूर्ण स्त्रोत है । मानव का आहार सब्जियों के बिना

अधूरा है । सब्जियाँ विभिन्न प्रकार के पादपों से प्राप्त की जाती हैं, जिन्हें कच्चा या पका कर खाया जाता है । पत्तीदार सब्जियों में जल की मात्रा अधिक होती है । जड़ सब्जियों (Root vegetables) में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक एवं प्रोटीन कम होता है, गाजर, पालक आदि में विटामिन "A" प्रचुर मात्रा में होता है । लगभग सभी सब्जियों में रेशे की मात्रा अधिक होती है, जो कि मानव के पाचन संस्थान की कार्यप्रणाली को ठीक रखते है । प्रस्तुत इकाई में हम विभिन्न प्रकार की सब्जियों के सामान्य विवरण का अध्ययन करेंगे ।

11.2 सामान्य विवरण

11.2.0. : मूली (Radish)

वानस्पति नाम	:	Raphanus Sativaus
(Botanical Name)	:	"रेफेनस सैटाइवस"
कुल	:	ब्रेसीकेसी
(Family)	:	Brassicaceae
सामान्य नाम	:	मूली,
(Common Name)	:	Radish

सामान्य विवरण :- मूली का वानस्पतिक विवरण निम्न है :-

1. यह एकवर्षीय अथवा द्विवर्षीय शाकीय पादप है ।
2. पादप की लम्बाई 20-100 सेमी. तक होती है ।
3. लघुस्तम्भ से लायररूपी दीर्घपिच्छाकार रोजेट पत्ती का (rosette of lyrate pinnatified leaves) समूह निकलता है ।
4. पादप का फल **फ्लेशी सिलिकुआ** (fleshy siliqua) होता है जिससे नुकीली चोंच (Beak) निकली रहती है ।

चित्र 11.1: मूली

रासायनिक संगठन (Chemical Constituents)

मूली में विटामिन ए, थाईमिन राम्बोफ्लेविन, निकोटिनिक अम्ल व विटामिन "सी" होता है । वाष्पशील **"ओइसोथाओसाइनेट्स"** के कारण मूली की विशिष्ट गंध होती है ।

11.2.1. : प्याज (Onion)

वानस्पति नाम	:	**एलियम सीपा**

(Botanical Name)	:	**Allium cepa**
कुल	:	**लीलिएसी**
(Family)	:	**Liliaceae**
सामान्य नाम	:	**प्याज, Onion**
(Common Name)		

वानस्पतिक (Botanical) विवरण :- मूली का वानस्पतिक विवरण निम्न है :-

1. यह द्विवर्षीय पादप है, जो वार्षिक फसल के रूप में लगाया जाता है ।
2. लम्बी, पतली बेलनाकार पत्तियाँ खोखली होती हैं, जिनके आधार पर पर्णाधार होता है ।
3. इसका स्तम्भ समानीत भूमिगत (reduced underground) होता है ।
4. पुष्पक्रम स्केपिफेरस (Scapiferous), असीमाक्षी, असीमाक्ष (Racemose raceme) है ।
5. पुष्प छोटे हरे होते हैं जबकि फल ग्लोबुलर कैप्सूल (globular capsule) होता है ।
6. खाद्य पदार्थ का संग्रहण बल्व (Bulb) में होता है ।

चित्र 11.2: लहसुन के पादप बल्ब

रासायनिक संगठन :- परिपक्व प्याज में लगभग 86 प्रतिशत नमी, 14 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2% वसा, 11.0%' कार्बोहाइड्रेट और 0.8% रेशे होते हैं । इसकी तीक्ष्ण गंध का कारण **एलाइल प्रोपाइल डाईसल्फाईड (allyl propyl disulfide)** नामक वाष्पशील तेल होता है ।

उपयोग (Use) :-

1. कच्चा हु ए दोनों रूपों में प्याज को खाया जाता है!
2. इसकी हरी पत्तियों को सलाद के रूप में काम में लेते हैं ।
3. प्याज को तलकर, उबाल कर तथा भूनकर भी खाया जाता है ।
4. प्याज का उपयोग सूप केचप, डिब्बा बन्द माँस उत्पादनों में खुशबू देने हेतु (flavoring) किया जाता है ।

11.2.2. लहसुन (Garlic)

वानस्पति नाम	:	**एलियम सेटाइवम**
(Botanical Name)	:	**Aillium sativun**
कुल	:	**लिलिएसी**
(Family)	:	**Liliaceae**
सामान्य नाम	:	**लहसुन. Garlic**
(Common Name)		

वनस्पति (Botanical) विवरण - लहसुन का वानस्पतिक विवरण निम्न है :-

1. लहसुन का उत्पत्ति स्थल पूर्वी मेडिटेरियन (Eastern Mediterranean) भाग को माना जाता है ।
2. वर्तमान में चीन लहसुन का सबसे बड़ा उत्पादक देश है ।
3. लहसुन कंदीय (Bulbous), स्केपधर (Scapigenous) व समोद्भित (Mesophytic) शाकीय प्रकृति का पादप है ।
4. इसकी जड़े अपस्थानिक रेशमय होती है ।
5. इसका स्तम्भ भूमिगत कंचुकीत शल्ककंद (underground unicated bulb) होता है । वास्तविक स्तम्भ ठ्टसित है ।
6. इसकी पूर्ण मूलज (redical) होती है ।
7. शल्की पूर्ण मांसल संचित भोजन व जल युक्त है ।

रासायनिक संगठन :- लहसुन में अल्प मात्रा में थाइमिन राइबोफ्लेविन, निकोटिनिक अम्ल होते हैं । लहसुन में लगभग 100 प्रकार के उपयोगी द्वितीयक मेटाबोलाइट्स (secondary metabolites) उपस्थित होते हैं । इसमें उपस्थित गंधक यौगिक लहसुन को तीक्ष्ण गंध व स्वाद देते हैं ।

उपयोग (use)-

1. लहसुन का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है ।
2. विभिन्न सब्जियों, सूप, करी आदि में विशिष्ट सुगन्ध देने हेतु इसका उपयोग करते हैं ।
3. विभिन्न हृदय रोगों में लहसुन का उपयोग किया जाता है ।
4. लहसुन का उपयोग जीवाणुनाशक के रूप में भी किया जाता है ।

11.2.3. पत्ता गोभी (Cabbage)

वानस्पति नाम	:	**ब्रेसिका ओलिरेसिया**
(Botanical Name)	:	**Borassica olieracea**
कुल	:	**ब्रेसिकेसी**
(Family)	:	**Brasicaceae**
सामान्य नाम	:	**पत्ता गोभी**
(Common name)		

वनस्पतिक (Botanical) विवरण -

1. यह एक बडी कली (Bud) है ।
2. पत्ता गोभी का उत्पत्ति स्थल मेडिटेरियन क्षेत्र के साथ-साथ इंग्लैण्ड, वेल्स व उत्तरी फ्रांस को माना जाता है
3. पत्ता गोभी एक द्विवर्षीय पादप है लेकिन वार्षिक फसल के रूप में इसकी खेती की जाती है ।

4. इसका स्तम्भ बहुत छोटा है । जिसपर आपस में बंधी हुई मोटी, मॉसल पत्तियों का गुथा हुआ समूह होता है पुरानी पत्तियॉ -नई पत्तियों को घेरे रहती हैं ।
5. परिपक्व होने पर लम्बा पुष्पक्रम बाहर निकलता है।

रासायनिक संगठन :- इसमें एल्केलाइड, प्रोटीन, शर्करा पायी जाती है, हरी पत्तियों मे थायमीन विटामीन "ए" भि उपस्थित होता है ।

उपयोग (use) -

1. पत्ता गोभी का उपयोग सलाद के रूप मे किया जाता है ।
2. इसकी पत्तियों से **सोरकर्ट (Sauer Kraut)** नामक पेय पदार्थ बनाया जाता है जिसका उपयोग जर्मनी मे बहुतायत रूप से होता है ।
3. केक व सूप निर्माण मे इसका उपयोग होता है ।
4. इसको पकाकर, उबाल कर सब्जी के रूप मे खाया जाता हे । चित्र 11.3 : पत्ता गोभी

11.2.4. पालक (spinach)

वानस्पति नाम	:	**स्पाइनेसिया ओलिरेसिया**
(Botanical Name)	:	**Spinacia olieracea**
कुल	:	**चिनोपोयडेसी**
(Family)	:	**Chenopodiacea**
सामान्य नाम	:	**पालक, palak, Spinach**
(Common Name)		

वनस्पति (Botanical) विवरण -

1. यह एक छोटा उर्ध्व एक वर्षीय शाकीय पादप है ।
2. पालक विश्व में उगाई जाने वाली प्रमुख हरी पत्तीदार सब्जियों में शामिल है ।
3. इसके पूर्वजों के बारे में ज्ञात नहीं है किन्तु इसकी खेती दक्षिण-पश्चिम एशिया में प्रारम्भ हुई ।
4. वर्तमान में यह सम्पूर्ण विश्व में उगाई जा रही है ।
5. इसकी पत्तियाँ अल्प माँसल, हरी, त्रिकोणाकार एवं लम्बे पुष्प वृन्त वाली होती है ।
6. इसके पुष्प छोटे-छोटे हरित वर्णी होते हैं ।
7. इसका स्वाद कटु-मधुर होता है ।

रासायनिक संगठन :- इसकी पत्तियाँ विटामिन ए तथा लौह युक्त होती हैं । इसमें विटामिन-बी समूह, एस्कॉर्बिक अम्ल, कैरोटिन, फोलिक अम्ल, आयोडीन उपस्थित होता है ।

उपयोग (use) :-

1. पालक का उपयोंग सलाद के रूप में किया जाता है ।
2. इसका सूप बनाकर पिया जाता है ।
3. पालक विटामिन ए व आयरन का अच्छा स्त्रोत है ।
4. इसका उपयोग पकाकर सब्जी बनाने में भी किया जाता है ।

5. पशु चारे के रूप में भी उपयोगी है ।

11.2.5. फूल गोभी (Cauliflower)

वानस्पति नाम	**ब्रेसिका ओलिरेसिया वेरा ब्रोट्राइटिस**
(Botanical Name)	**Brassica olieracea var. botrytis**
कुल	**ब्रेसिकेसी**
(Family)	**Brassicaceac**
सामान्य नाम	फूल गोभी
(common name)	

वानस्पतिक (Botanical) विवरण -

1. यह एक बड़ा फूल है ।
2. फूल गोभी का उत्पत्ति स्थल पश्चिमी एशिया माना जाता है ।
3. इसका स्तम्भ छोटा होता है जो की बड़ी पत्तियों से घिरा रहता है ।
4. स्तम्भ के शीर्ष पर बड़ा पुष्पक्रम होता है ।
5. पुष्पक्रम अनेक अबोरेटिव (Abortive) पुष्पों से निर्मित होता है ।
6. इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं जो की पुष्पक्रम को घेरे रहती हैं ।

रासायनिक संगठन :- इसमें एल्केलाइड, प्रोटीन, शर्करा पायी जाती है, हरी पत्तियाँ में थायमीन विटामीन "ए" भी उपस्थित होते है ।

चित्र 11.4 : फूल गोभी

उपयोग (use) :

1. फूल गोभी का उपयोग सलाद के रूप में किया जाता है ।
2. इसे' पकाकर या उबाल कर भी खाया जाता है । ।
3. सूप निर्माण में इसका उपयोग होता है ।
4. इसका उपयोग पशु चारे के रूप में भी होता है ।

11.2.6. : खीरा (cucumber)

वानस्पति नाम	:	**क्यूकिमस सटाइवस**
(Botanical Name)	:	**Cucumus sativus**
कुल	:	**कुकटबिटेसी**
(Family)	:	**Cucurbitaceae**
सामान्य नाम	:	**खीरा, Cucumder**
(common name)		

वानस्पतिक (Botanical) विवरण :-

1. इसका उत्पत्ति स्थल मध्य एशिया में भारत में माना गया है ।
2. इसका स्तम्भ खोखला व कोणीय होता है । प्रतान आरोही है ।
3. पादप की पत्तियाँ बडी, एकान्तरित, सरल एवं बडे वृन्त युक्त होता है जो कि हस्ताकार पालित होती है ।
4. मादा पुष्प एकल कक्षीय जबकि नर पुष्प कक्षीय ससीमाक्ष व गुच्छों में होते हैं ।

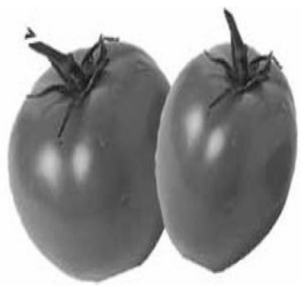

चित्र 11.4 : टमाटर फल

5. पुष्प प्रायः पीले रंग के होते हैं ।
6. इस पादप का फल **'पीपों (Pepo)** कहलाता है ।

रासायनिक संगठन :- इसमें मुख्य रूप से जल की मात्रा होती है, लवण उपस्थित होते हैं साथ ही विटामिन ए व बी भी उपस्थित होते हैं ।

उपयोग (use) -

1. इस फल को कच्चा सलाद के रूप में खाया जाता है ।
2. इससे शुद्ध फलों की जाली का उपयोग बरतनों की सफाई हेतु करते हैं ।
3. सूखे हुये पत्तों से वाद्‌य यन्त्र भी बनाये जाते हैं ।
4. इसका उपयोग **'बाथ स्पन्ज'** के रूप में भी करते हैं ।

11.2.7 टमाटर (Tomato)

वानस्पति नाम	:	**लाइकोपरसिकम एस्कुलेनटम**
(Botanical Name)	:	Lycopersicom esculentum
कुल	:	**सोलेनेसी**
(Family)	:	**Solanaceae**
सामान्य नाम	:	**टमाटर, Tomato**
(common name)		

वानस्पतिक (Botanical) विवरण -

1. टमाटर का उत्पत्ति स्थल पेरू एवं इक्वेडोर को माना जाता है ।
2. वर्तमान से सभी शीतोष्ण एवं सब ट्रापिकल भागों में इसकी खेती की जाती है ।
3. व्यावसायिक दृष्टि से सर्वाधिक उत्पादन पेरू एवं इक्वेडोर में किया जाता है ।
4. पादप छोटे वृक्ष के रूप में शाकीय प्रकृति के होते हैं ।
5. इसकी जडें मूसला व शाखित होती हैं ।
6. तना रोमिल (Hairy) होता है ।
7. पुष्प कम ससीमाक्ष होता है ।
8. टमाटर में खाने योग्य भाग मॉसल जरायु **(fleshy placenta)** होता है ।

रासायनिक संगठन :- टमाटर में लगभग 94.0 प्रतिशत मात्रा जल की होती है किन्तु घुलनशील शर्करा, विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल जैसे सिट्रिस और मैलिक एसिड उपस्थित होते हैं । विटामिन "सी' प्रचुर मात्रा में होता है । विटामिन "ए' भी संतरे की तुलना में 20 गुना होता है कुछ भाग में B_1 एवं B_2 विटामिन भी होते हैं ।

उपयोग (use) -

1. सम्पूर्ण विश्व में इसे कच्चा या पकाकर खाया जाता है ।
2. सलाद व सूप के रूप में इसका प्रयोग अत्यधिक प्रचलित है ।
3. हरे टमाटर का उपयोग सब्जी व अचार निर्माण में किया जाता है ।
4. पके टमाटरों से साँस व केचप व चटनी निर्मित की जाती है ।
5. टमाटर के बीज में 24 प्रतिशत अर्धशुष्क तेल होता है जो कि सलाद तेल के रूप में उपयोगी है ।

11.2.8. : भिण्डी (Lady's Finger)

वानस्पति नाम	:	**एबलमास्कॅस एस्कुलेन्टस**
(Botanical Name)	:	**Abelmischus esculentus**
कुल	:	**मालवेसी**
(Family)	:	**Malvaceae**
सामान्य नाम	:	**भिण्डी Lady,s finger**
(Common Name)		

वानस्पतिक (Botanical) विवरण :-

1. भिण्डी का उत्पत्ति स्थल अफ्रीका के शीतोष्ण प्रदेशों को माना जाता है ।
2. भिण्डी का पौधा उर्ध्व, रोबस्ट (robust) एक वर्षीय शाक है जो कि 2 मीटर लम्बा हो सकता है ।
3. पत्तियाँ बडी व एकान्तर है और 3-7 पंक्तियों में विभक्त रहती है ।
4. पुष्पक्रम एकल कक्षीय होते हैं ।
5. इसके हरे या गहरे हरे फल 10-30 सेमी. लम्बे होते हैं जो कि चोंच युक्त होते हैं, रोमिल होते हैं अपरिपक्व फल म्यूसीलेज युक्त होते हैं ।

रासायनिक संगठन :- भिण्डी के फल में लगभग 86.1% नमी, 9.7% कार्बोहाइड्रेट, 2.2% प्रोटीन, 1.0% रेशे, 0.2% वसा उपस्थित होती है । यह विटामिन ए व बी का भी अच्छा स्त्रोत है । आयोडीन विशेष रूप से उपस्थित होती है ।

उपयोग (uses) -

1. भिण्डी का उपयोग सब्जी निर्माण में किया जाता है ।
2. इसके फलों में म्यूसिलेज की उपस्थिति के कारण इनका उपयोग गाढ़ा सूप व करी निर्माण में होता है ।
3. यूरोपीय देशों में इसके बीजों को भूनकर खाया जाता है ।

4. इसके तने व जड़ों से प्राप्त म्यूसीलेज का उपयोग भारत में गन्ने से गुड निर्माण कई दौरान गन्ने के रस को साफ करने हेतु किया जाता है ।
5. तने और परिपक्व फल में उपस्थित रेशों का उपयोग कागज निर्माण और बीज उद्योग में किया जाता है ।

11.2.9 : मटर (Pea)

वानस्पति नाम	:	**पाइसम सटाइवम**
(Botanical Name)	:	**Pisum saticum**
कुल	:	**फेबेसी**
(family)	:	**Fabaceae**
सामान्य नाम	:	**मटर, pea**
(common name)		

वानस्पतिक (Botanical) विवरण -

1. ऐसा माना जाता है, कि मटर पश्चिमी, मध्य एशिया में सर्वप्रथम उगाया गया ।
2. प्रारम्भ में इनका उपयोग शुष्क दाल के रूप में किया जाता था, हरी मटरों का उपयोग 16वी शताब्दी के बाद प्रारम्भ हुआ ।
3. भारत में मैदानी भागों में सर्दी में उगाया जाता है जबकि पहाडी क्षेत्रों में गर्मियों में इसकी खेती की जाती है ।
4. मटर का पौधा शाकीय प्रकृति का होता है फूल सफेद या बैंगनी रंग के होते हैं ।
5. उद्यान मटर के बीज बडे होते है जबकि फसली मटर (field pea) के बीज छोटे होते हैं ।
6. फसली मटर में स्टार्च की मात्रा अधिक होती है ।
7. मटर का पौधा एकवर्षीय प्रतान आरोही (climbing or trailing) होता है ।
8. इसका स्तम्भ खोखला होता है जो कि 0.1 से 1.5 मीटर लम्बा हो सकता है ।

चित्र 11.6 मटर पौधा

9. पत्तियाँ संयुक्त होती हैं अनुपर्ण (stipule) युक्त होती हैं । अनुपर्ण बडे, पत्तीनुमा अण्डाकार होते हैं ।

रासायनिक संगठन :- शुष्क मटर के बीजों में 10.6% नमी, 22.5% प्रोटीन, 1.0% वसा, 58.5% कार्बोहाइड्रेट, 4.4% रेशे होते हैं ।

उपयोग (uses) -

1. मटर के बीजों का उपयोग हरी खाद के रूप में किया जाता है ।
2. इसका उपयोग चारे के रूप में किया जाता है ।

3. मटर बीजों से मटर सूप निर्मित होता है ।

4. भारत में हरे मटर की सब्जी का उपयोग बहुतायत रूप से होता है ।

11.3 सारांश (summary)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद अब विभिन्न प्रकार की सब्जियों के सामान्य विवरण का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, आप समझ गये होंगे की इन सब्जियों के वानस्पतिक लक्षण क्या है, तथा इनका रासायनिक संगठन क्या है । आप इस इकाई में इन सब्जियों के उपयोगों के बारे में जान चुके हैं । अब तक आप समझ गये होंगे कि विश्व में सब्जियों का उत्पादन अत्यधिक होता है तथा सब्जियाँ मानव आहार में विशेष स्थान रखती है, सम्पूर्ण मानव जाति के साथ-साथ पशुओं के लिये भी सब्जियाँ प्रकृति प्रदत्त उपहार है, जिनके उचित व सही उपयोग से मानव स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकता है ।

11.4 बोध प्रश्न :-

नोट :- (i) प्रत्येक प्रश्न में छोडी गयी जगह का उपयोग अपने उत्तर लिखने हेतु करें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलाऐ ।

प्रश्न 1 रिक्त स्थान भरो

1. मूली का वानस्पतिक नाम.. है ।
2. प्याज की तीक्ष्ण गंध का कारण उसमें उपस्थित .... है।
3. पत्ता गोभी .... कुल का सदस्य है ।
4. पालक विटामिन .... का अच्छा स्त्रोत है ।
5. खीरा का फल .... कहलाता है ।

प्रश्न II बहुविकल्पी प्रश्न

1. मटर के पौधे का उत्पत्ति स्थल माना गया है :-

   (अ) अफीका (ब) यूरोप (स) मध्य एशिया (द) आस्ट्रेलिया

2. आयोडीन उपस्थित होता है :

   (अ) खीरा (ब) भिण्डी (स) टमाटर (द) सभी में

3. शुष्क मटर के बीजों में सर्वाधिक होता है :-

   (अ) वसा (ब) कार्बोहाइड्रेट (स) आयोडीन (द) प्रोटीन

प्रश्न III निम्न में से कौनसा कथन सत्य/असत्य है । सही का निशान लगायें :-

1. प्याज का वानस्पतिक नाम एलियम सीपा है ।
2. पत्ता गोभी एक बडा पुथ है ।
3. पालक फेबेसी कुल का सदस्य है ।
4. खीरा पादप का स्तम्भ कोणीय होता है ।
5. टमाटर की शुष्क बीजों से सलाद तेल प्राप्त होता है ।

11.5 शब्दावली (Glossary) :

असीमाक्ष (Raceme) : एक सरल, दीधित अनिश्चित पुष्पक्रम जिसके पुष्प सवृन्ज हों।

एक कक्षीय (Solitary axillary) : पत्ती के कक्ष में विकसित अकेला पुष्प ।

सिलिकुआ (siliqua): अधिक लम्बा संकरा और अनेक बीज वाला द्विकोष्ठी फल, जो नीचे से ऊपर की ओर दोनों सीवन से खुलता है ।

सरस फल (Beery) : गूदेदार, अस्फुटनशील, कुछ अथवा अनेक बीजधारी फल, जो प्रायः युक्तांण्डपी उर्ध्ववती अंडाशय से विकसित होता है ।

पीपो (pepo) : बैरी की भाँति गूदेदार अनेक बीजधारी फल, लेकिन जो कि अधोवर्ती, द्विअंडपी एककोष्ठीय भित्तिय बीजांडन्यास वाले अण्डाषय से विकसित होता है ।

11.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Economic Botany in the tropics - S.L.Kochar
2. Practical Botany : Bendre Kumar
3. आयुर्वेद का प्राण - बाह्यवर्चस

11.7 बोध प्रश्नों उत्तर

प्रश्न 1

1. रेफेनरा सेटाइवस
2. ब्रेसीकेसी
3. "ए"
4. पीपों

प्रश्न 11

1. स
2. ब
3. द

प्रश्न III

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

प्रश्न 1. निम्न के वानस्पतिक नाम व कुल लिखें,

(अ) मूली

(ब) टमाटर

(स) पालक

(द) खीरा

प्रश्न 2. प्याज के वानस्पतिक लक्षणों पर टिप्पणी लिखिये ।

प्रश्न 3. निम्न पर संक्षिप्त विवरण लिखिये -

1. भिण्डी
2. फूलगोभी
3. पत्ता गोभी
4. लहसुन

प्रश्न 4, आपके द्वारा अध्ययन की गई किन्ही तीन सब्जियों का तुलनात्मक विवरण दीजिये ।

इकाई 12

फल एवं उनका आर्थिक महत्व

FRUITS AND THEIER ECONOMIC IMPORANCE.

इकाई संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 फलों का सामान्य विवरण

12.2.1 सामान्य विवरण

12.2.2 पोषण महत्व

12.3 आम

12.4 केला

12.5 सन्तरा

12.6 सेब

12.7 अमरूद

12.8 तरबूज

12.9 जामुन

12.10 खरबूजा

12.11 शहतूत

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.13 सारांश

12.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.15 पारिभाषिक शब्दावली

12.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य (objective) -

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य हैं :-

(i) फलों के आर्थिक महत्व को जानना ।

(ii) फलों की प्रकृति उनके वानस्पतिक स्रोत तथा उपयोगों का जानकारी प्राप्त ।

(iii) भारतीय परिवेश में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख फलों का सामान्य परिचय प्राप्त करना तथा फलों के रस के विभिन्न उपयोगों की जानकारी प्राप्त करना ।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

फल हमारे, दैनिक भोजन का एक प्रमुख व अत्यंत लाभकारी घटक हैं । संतुलित आहार में फलों को प्रमुख स्थान दिया जाता है । फल एक ओर जहाँ विभिन्न प्रकार के विटामिन, अमीनों अम्ल, रेशा, खनिज आदि के प्रचुर स्त्रोत है वहीं दूसरी ओर अत्याधिक स्वादिष्ट होने के कारण इन्हें विश्व के समस्त भागों में खाने में उपयोग किया जाता है । अनके औषधीय गुणों से परिपूर्ण होने के कारण फलों को विभिन्न रोगों की चिकित्सा करने में भी प्रमुखता से प्रयोग किया जाता है । फलों से प्राप्त होने वाले रस को पेय के रूप में तथा अन्य खाद्‌य पदार्थो को तैयार करने में उपयोग किया जाता है । भारत में अलग-अलग मौसम में अलग-अलग फलों के पौधों की खेती की जाती है । साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के फल दूसरे देशों से आयात भी किये जाते हैं जिनमें कीवी, सेब, स्ट्राबेरी, लीची आदि प्रमुख हैं । आइये कुछ महत्वपूर्ण फलों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते हुये उनकी उपयोगिता को जानने का प्रयास करते

12.2 फलो का सामान्य विवरण (General Description of Fruits)-

अपने विशिष्ट स्वाद व सुगंध के कारण फल प्राचीन काल से ही मानव का प्रमुख भोजन रहे हैं । मानव द्‌वारा खेती की कला सीखने के काफी समय पूर्व से ही उसने फलों, सब्जियों तथा शाकों को भोजन के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था । वर्तमान समय में उपयोग किये जाने वाले अनेक फलों की उत्पत्ति दुनिया के उन हिस्सों में हुई जहाँ मनुष्य का निवास था । प्राचीन काल में मनुष्य अपनी भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये गेहूँ जौ, खजूर, अंजीर, तथा अंगूर का उपयोग किया करता था ।

फलों की खेती (Pomolgy) आधुनिक समय में एक अत्यंत लाभकारी व्यवसाय बन गया है । फल हमारे दैनिक भोजन का प्रमुख हिस्सा बन गये हैं । सब्जियों की तरह ही फलों को स्वास्थ्य के लिये अपरिहार्य माना जाता है । फल रोगों की रोकथाम करने के साथ ही साथ स्वास्थ्यवर्धक भी होते है । हमारे रोजाना के भोजन में अनाज, दालें दूध तथा सब्जियों के साथ फलों का होना भी आवश्यक है ।

12.2.1 सामान्य गुणधर्म (General Properties)

फल पादपों के परिपक्व अण्डाशय होते हैं जिनमें बीज स्थित रहते है । अधिकांश फलों का खाने योग्य भाग गूद्देदार होता है जो बीजों के चारों ओर स्थित रहता है । सामान्यत: फल शर्करायुक्त तथा अम्लीय प्रकृति के होते है । इन्हें वानस्पतिक लक्षणों तथा अन्य गुणों के आधार पर अनेक समूहों में बीटा गया है । उदाहरण स्वरूप, बेरी फल छोटे तथा अत्यधिक नाजुक होते हैं । अंगूर भी बेरी फल होते हैं परन्तु ये गुच्छे में लगते है । तरबूज तथा खरबूज़ा आकार में बड़े, कठोर होने के साथ इनके बाहर मोटा दृढ छिलका लगा रहता है । चेरीफल आढु आलू बुखारा, लोकाट में एक गढ्‌ढा होता है जिसके कारण इन्हें ड्रूप (Drupe) कहते हैं । सेब, नाशपाती, में एक से अधिक गढ्‌ढे होते है अत: इन्हें पोम (Pome) कहते हैं । सिट्रस फलों

(Citrus fruits) में विशेष रूप से साइट्रिक अम्ल की अधिकता होती है, जिनमें संतरे मौसमी, नारंगी, नींबू आदि को सम्मिलित किया गया है । ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उगने वाले फलों में केला, खजूर, अंजीर, शरीफा, पपीता, आम, आदि को सम्मिलित किया गया है ।

12.2.2 पोषण महत्व (Nutritional value)

सब्जियों की भाँति ही फल भी अत्यधिक रसीले (Juicy) होते है तथा इनमें वसा की मात्रा कम होती है । फलों में जल की मात्रा अधिकतम (लगभग 95% तक) होती है जो इनके कुल भार को दर्शाता है । केला तथा खजूर ऊर्जा देने वाले कार्बोहाइड्रेट्स (शर्करा) से परिपूर्ण होते हैं । फलों में अपचनीय (non-digestible) तथा पचने योग्य (digestible) दोनों ही प्रकार की शर्करा प्रचुर मात्रा में होती है । सामान्य शर्करा (Glucose fructose) आदि आसानी से पचने वाली शर्करा है । जबकि पेक्टिन तथा सेलुलोज अपचनीय होते हैं, परन्तु ऐसा माना जाता है कि ये आहारनाल के सुचारू क्रियाकलाप के लिये आवश्यक होते है । फलों में खनिज तथा विटामिन्स अत्यधिक मात्रा में होते है, जिनमें विटामिन 'ए' तथा 'सी' प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त फलों में कार्बनिक अम्ल जैसे- मौलिक अम्ल साईट्रिक अम्ल तथा टारटेरिक अम्ल, वर्णक तथा टैनिन भी पाये जाते हैं ।

निम्न लिखित तालिका में कुछ प्रमुख फलों के नाम तथा कुल का विवरण दिया गया हैं:-

तालिका 12.1 प्रमुख फलों के नाम तथा कुल

क्रमांक	फल का नाम	वानस्पतिक नाम	कुल
1.	अंगूर (Grape)	vitis uenifera	vitaceae
2.	केला (Banana)	Musa sapientum	Musaceae
3.	नारंगी (Orange)	Citrus sinensis	Rutaceae
4.	नारियल (coconut)	Cocos nucifera	Arecaceae
5.	सेब (Apple)	Malus pumila	Rosaceae
6.	आम (Mango)	Mangifera indica	Anacardiaceae
7.	नाशपाती (Pear)	Pyrus communis	Rosaceae
8.	आडू (Peach)	Prunus persica	Rosaceae
9.	आलूबुखारा (Plum)	Prunus domestica	Rosaceae
10.	अनानास (Pineapple)	Ananas comosus	Bromeliaceae
11.	नींबू (lemon)	citrus limon	Rutaceae
12.	खजूर (Date)	Phoenix dactylifera	Areacaceae
13.	चेरी (Cherriy)	Prunus avium	Rosaceae
14.	स्ट्राबेरी (Strawberry)	Fragaria spp	Rosaceae
15.	अंजीर (Fig)	Ficus carica	Moraceae
16.	रसभरी (Raspberry)	Rubus spp	Rosaceae

17.	अमरूद (Guava)	Psidium guajava	Myrtaceae
18.	तरबूज (wetermelon)	citrullus ranatus	cucubitaceae
19.	जामुन (Black berry)	syzygium cumini	Myrtaceac
20.	खरबूजा (Musk melon)	cucumis melo	Cucubitaceae
21.	शहतुत (mulberry)	Morus alba	Moraceae

बोध प्रश्न

1. फलों की खेती को किस नाम से जाना जाता है?
2. फल पादप का कौन सा भाग होता है?
3. किन्हीं चार प्रकार के फलों के नाम बताइये ।
4. फलों में सवार्धिक मात्रा किस की होती है?
5. फलों के प्रमुख विटामिन कौन-कौन से हैं?

12.3 आम (Mango) वानस्पतिक नाम :- मैन्जीफेरा इन्डिका, कुल - ऐनाकार्डियेसी)

आम को 'फलों का राजा' के रूप में सम्मान दिया जाता है क्योंकि यह अत्यधिक स्वादिष्ट व रसीला फल है । इसका खाने योग्य भाग मीजोकार्प (mesocarp) होता है जो रसीला व गूद्देदार होता है । भारत में आम का सर्वाधिक उत्पादन होता है जो विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत है । यह गर्मियों के मौसम का प्रमुख फल है, जिसकी लगभग 1000 प्रजातियाँ है जिनमें से 500 प्रचलित किस्में है । आम के फल के वजन में भी विभिन्नता होती है तथा एक फल का भार 200-600 ग्राम तक होता है । आम एक लोकप्रिय फल है तथा इसकी विशेषता अत्यधिक मधुर स्वाद रसीला गदा तथा बढ़िया सुगंध है । आम से अच्छी गुणवत्ता के अचार, चटनी, जैली, मुरब्बे इत्यादि बनाये जाते हैं । आम की पतली पतली कतरियां, आम पापड, आमरस आदि गर्मियों के मौसम में खाये जाने वाले प्रमुख उत्पाद हैं । आम के फल को अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता है तथा पके हुये फल जल्दी खराब हो जाते हैं । आम विटामिन ए, बी तथा सी के अच्छे स्त्रोत हैं । आम एक अच्छा विरेचक भी है । आम की कुछ प्रमुख किस्में दशहरी, सफेदा, लंगड़ा, बम्बइया, गुलाबखस, माल्दा, कोहिनूर, मोहनभोग, गोपालभोग किशनभोग अल्कान्सों, केसर, जहाँगीर, तोतापुरी आदि हैं । उत्तर-प्रदेश आम का उत्पादन करने वाला सबसे बड़ा राज्य है । बिहार में भी आम का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है ।

12.4 केला (Banana) वनस्पति नाम भूसा पैराडीसीयाका, कुल - मूसेसी)

केला एक उच्च गुणवत्ता का बेरी फल है । इसका पादप लंबा, मोटा शाक होता है जिसे भारत के अधिक भागों में उगाया जाता हैं । लगभग 325700 हैक्टेयर भूमि पर केले की खेती की जाती है । अच्छी किस्म के पौधों से प्रतिवर्ष लगभग 18.6 टन प्रति हैक्टेयर केला का

उत्पादन किया जा सकता है । इसमें एकल बडा स्पैडिक्स (spadix) होता है, तथा इसका पका हुआ फल नरम, मधुर, सुगंधयुक्त, पोषणयुक्त तथा आसानी से पचने वाला होता है । यह एक अच्छा विरेचक है । इसकी लगभग 200 किस्में प्रचलित है जिनमें विशिष्ट स्वाद, आकार तथा सुगंध आदि होते हैं । केला लगभग वर्षभर उपलब्ध रहने वाला फल है, परन्तु वर्षा ऋतु में यह अधिक आता है । अनेक मिठाइयों को तैयार करने में तथा चिप्स, बनाना शेक आदि के रूप में भी केले का उपयोग किया जाता है । केले के फल में लगभग 20 प्रतिशत शर्करा, लगभग 4.7% प्रोटीन, विटामिन ए, बी, सी तथा डी आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं । इसमें कैल्शियम, आयरन तथा फास्फोरस आदि खनिज पर्याप्त मात्रा में होते हैं । अल्प मात्रा में केले का निर्यात भी किया जाता है ।

12.5 संतरा (orange) वनस्पति नाम - सिट्रस रैटीकुलेटा कुल रुटेसी)

संतरा एक सर्वाधिक लोकप्रिय रसदार फल है जिसे विश्व के लगभग सभी भागों में उपयोग किया जाता है । इसकी विशेषता इसका खट्टा-मीठा स्वाद तथा अनोखी सुगंध है । इसके रस में साईट्रिक अम्ल तथा विटामिन सी की मात्रा अत्यधिक होती है । इसका पादप अत्यधिक शाखित झाड़ी होता है जिसमें नुकीले काँटे होते हैं । एक स्वस्थ लगभग दस वर्ष पुराने वृक्ष पर लगभग 300-400 तक फल लगते हैं । फलों से लदे वृक्ष अत्याधिक आकर्षक तथा लुभावने होते हैं । इसकी खेती के लिये पहाड़ों की ढालू जमीन जिसकी मिट्टी में चूना तथा फास्फेट प्रचुर मात्रा में होते है, सर्वाधिक उपयुक्त होती है । आसाम, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, चेन्नई, हैदराबाद आदि संतरा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र हैं । राजस्थान 'मीठा संतरा' (Malta) के उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है तथा इसे 'किन्तु, के नाम से भी जाना जाता है । संतरे के रस में साइट्रिक अम्ल (1-2%) तथा शर्करा (5-10%) तक होते हैं । संतरे के रस से मृदु पेय तथा जैम आदि भी तैयार किये जाते हैं । नागपुर (महाराष्ट्र) उच्च गुणवत्ता के संतरे की खेती के लिये प्रसिद्ध है ।

12.6 सेब (Apple) वनस्पति नाम - मेलस प्यूमिला कुल रोजेसी)

सेब उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण फल है । ऐसा माना जाता है कि सेब की उत्पत्ति पश्चिमी एशिया की कॉकेसस पहाड़ियों में हुई जहाँ आज भी जंगली सेबों के विस्तृत वनों का अस्तित्व है । सेब का उपयोग प्राचीन मानव सभ्यता के समय से ही किया जाता रहा है, स्विट्जरलैण्ड में मिले अवशेषों में सेब के बीज तथा अन्य भाग प्राप्त हुये हैं । विश्व के अनेक भागों में सेब की खेती तथा उपयोग लगभग 5000 वर्षो से किया जा रहा है । भारतवर्ष में सेब की खेती हिमाचल प्रदेश तथा कश्मीर में बड़े पैमाने पर की जाती है ।

सेब एक मध्यम ऊँचाई वाला, सघन, छितराया हुआ, लम्बे समय तक फलने-फूलने वाला वृक्ष है । इसके फल को पोम (Pome) कहते हैं । इस फल की विशेषता यह है कि इसमें परिपक्व अण्डाशय चारों ओर से मोटे, गूद्देदार (receptacle) तथा अन्य सहायक अंगों से घिरे रहते है । इनमें अत्यधिक मात्रा में भोजन तथा जल स्थित रहता है । इसका खाने योग्य गदा रसीला, कठोर तथा भुरभुरा होता है । सेब का रंग हरा, पीला, नारंगी, लाल अथवा मैरून होता है । गहरे

लाल रंग के सेब अत्यधिक आकर्षक व स्वादिष्ट होते है । सेब की कुछ प्रसिद्ध प्रजातियाँ-रैड डेलीशियस, रीयल डेलीशियस, गोल्डन डेलीशियस, जोनाथन, ट्रॉपिकल ब्यूटी, बेवरली हिल्स आदि हैं । अच्छी तरह से पके हुये फलों को वृक्ष से सावधानी से तोड़ लिया जाता है । यदि अधिक समय तक फल वृक्ष पर लगे रहें तो स्वाद खराब होने के साथ-साथ पिलपिले भी हो जाते हैं । आरम्भिक अवस्था में, सेब का गदा कड़ा, हरा तथा मैलिक अम्ल व स्टार्चयुक्त होता है । पकने के साथ ही स्टार्च शर्करा में परिवर्तित हो जाता है, अम्ल की मात्रा कम हो जाती है तथा एक विशिष्ट सुगंध उत्पन्न हो जाती है । पके हुये सेब में लगभग 85 प्रतिशत जल, 11 प्रतिशत शर्करा, 1 प्रतिशत रेशे तथा अल्प मात्रा में प्रोट्रीन, वसा, खनिज तथा अम्ल होते है । सेब की विशिष्ट सुगन्ध ऐस्टर तथा तेल के कारण होती है । सेब के उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा ताजे फल के रूप में उपयोग किया जाता है । शेष फलों से प्रसंस्कृत खाद्य जैसे-सेब मक्खन, जैली, एप्पल जूस तथा अल्कोहल पेय पदार्थ तैयार किये जाते है । सूखे हुऐ सेब तथा सेब का आटा भी अन्य प्रचलित उत्पाद हैं । सेब का मुरब्बा भारत में काफी लोकप्रिय है जिसे चीनी के शर्बत (चाश्नी) में तैयार किया जाता है ।

बोध प्रश्न

6. 'फलो का राजा' किस फल को कहा जाता है?
7. किस राज्य में आम का सर्वाधिक उत्पादन होता है?
8. आम की चार प्रमुख किस्मों के नाम बताइये ।
9. केले के पुष्पक्रम को क्या कहते हैं?
10. केले में कौन-कौन से खनिज होते हैं?
11. राजस्थान में कौन सा फल प्रमुखता से उगाया जाता है?
12. सेब की उत्पत्ति कहाँ हुई?

12.7 अमरूद (Guava) वनस्पति नाम सीडीयम ग्वाजवा कुल मिरटेसी)

अमरूद एक अत्यधिक प्रचलित फल है जिसकी बनावट लगभग नाशपाती के समान होती है । अमरूद का रंग हरा-पीला तथा इसका गदा, सफेद, पीला, गुलाबी अथवा लाल होता है । अमरूद का वृक्ष मूल रूप से मैक्सिको, सेन्ट्रल अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका में उत्पन्न हुआ माना जाता है । विभिन्न देशों में अमरूद के फल को अनेक नामों से जाना जाता है-श्रीलंका में इसे 'पेरा' हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में 'अमरूद', बंगाली में ' पेयारा नाम से पुकारा जाता है ।

अमरूद के फल को कच्चा होने पर भी खाया जा सकता है परन्तु अधिकांशतः इसमें पके हुये नरम फलो को ही खाने का प्रचलन है । कच्चे फल अत्यधिक कठोर तथा कठिनाई से पचने वाले होते हैं । अमरूद में विटामिन तथा खनिज तत्व भरपूर मात्रा में होते हैं । ऐसा माना जाता है कि अमरूद में संतरे की तुलना में पाँच गुना अधिक मात्रा में विटामिन 'सी' होता है । इसमें विटामिन 'ए' 'बी' के अतिरिक्त कैल्शियम, निकोटिनिक अम्ल, फॉस्फोरस अम्ल,

पोटेषियम, लौह, रेशे आदि भी प्रचुर मात्रा में होते हैं । अमरूद औषधीय गुणों से परिपूर्ण है । इसके फल के साथ-साथ अन्य भाग जैसे पत्तियाँ आदि भी अनेक याधियों में औषधि के रूप में प्रयोग में लाये जाते है

a. अमरूद में एन्टीसेप्टिक गुण होता हैं । इसे पेट के कीड़े मारने के लिये भी उपयोग किया जाता है ।
b. अमरूद शरीर में जीवाणु, कवक तथा अमीबा को नष्ट करने में सहायता करता है ।
c. अमरूद में रेशे की बहुतायत होने के कारण यह रक्त चाप तथा कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित रखने में सहायता करता हैं ।
d. अमरूद का सेवन करने से गुर्दे अच्छी प्रकार कार्य करते हैं ।
e. अमरूद का सेवन मधुमेह के नियंत्रण में सहायता करता है तथा कब्ज से बचाव करता है ।
f. अमरूद की पत्तियों को चबाने से दाँत के दर्द में आराम मिलता है ।

12.8 तरबूज (watermelon) वनस्पति नाम सिट्रलुस लेनेटस कुल कुकुर बीटेसी)

तरबूज का पादप एक बेल की भाँति होता है जिसे आरोही (climber) वायवतना (trailer) अथवा रस्सी के रूप में देखा जा सकता है । वैज्ञानिक भाषा में इसके फल को पीपो (pepo) के नाम से जाना जाता है । इस फल का छिलका (rind;exocarp) अत्याधिक मोटा (vine) हरे, चितकबरे रंग का होता है । अन्दर की ओर का स्तर (endocarp तथा mesosarp) मृदु, गूद्देदार तथा रसीला होता है । जिसमें असंख्य काले रंग के बीज भरे रहते है । इसका मीठा, रसीला गदा गुलाबी, गहरा लाल अथवा पीले रंग का होता है ।

तरबूज एक स्वादिष्ट फल है जिसमें कम मात्रा में कैलोरी तथा वसा की मात्रा बिल्कुल भी नहीं होती है । प्राय: इसके गूदे को ही खाने तथा शर्बत के रूप में काम में लिया जाता है परन्तु कुछ देशों में बाहरी आवरण (छिलके) को भी खाया जाता है । इसके गूदे से जैम, अचार, आदि भी बनाये जाते हैं ।

पोषण की दृष्टि से तरबूज एक अच्छा फल है । इसमें लगभग 92% जल होने के कारण यह प्यास बुझाने वाला उत्कृष्ट फल है । तरबूज में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'ए', तथा 'सी' होने के साथ-साथ पोटेशियम, थायमीन, आदि भी प्रचुर मात्रा में होते है । तरबूज औषधीय दृष्टि से एक अच्छा फल है, इसके सेवन से स्वास्थ्य पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते है :-

(a) तरबूज में अत्यधिक मात्रा में लाइकोपीन होता है । यह एक प्रति ऑक्सीकारक (antioxidant) है जो विभिन्न हृदय रोगों का मुकाबला करने में तथा प्रोस्टेट कैंसर से बचाव में सहायता करता है ।

(b) तरबूज की एक फॉक (slice) से विटामिन 'सी' की दिनभर की आपूर्ति हो जाती है ।

(c) तरबूज एक दुर्लभ फल है, जिसमें 'सिट्रुलिन' भरपूर मात्रा में होता है । यह एक अमीनों अम्ल है जो घाव, चोट आदि को भरने में सहायता करता है तथा कोशिका विभाजन को उत्साहित करता हैं ।

(d) तरबूज में विटामिन 'बी' की अधिकता होने से शरीर की ऊर्जा में वृद्धि होती है ।

(e) तरबूज के नित्य सेवन से संक्रमण से लड़ने की शक्ति मिलती है, इसमें बीटा कैरोटीन (a carotene) की अधिकता होती है जो विटामिन 'ए' के निर्माण में उपयोग में आता है ।

बोध प्रश्न

13. अमरूद में कौन-कौन से विटामिन्स होते हैं?
14. किस फल के सेवन से मधुमेह रोग में लाभ मिलता हैं?
15. कौन सा फल लाइकोपीन का अच्छा श्रोत हैं?
16. सिड्रलिन का क्या औषधीय महत्व हैं?
17. बीटा किस विटामिन ' के निर्माण में उपयोग में आता हैं?

12.9 जामुन (jammun, Blackberry) वनस्पति नाम-साइजाइजीयम क्यूमीनि कुल-मिरटेसी) :-

जामुन एक सदाबहार वृक्ष है जिसे भारत, पाकिस्तान, तथा इन्डोनेशिया मूल का माना जाता है । इसे दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया, फिलीपींस, म्यांमार, तथा अफागानिस्तान में भी बहुतायत में उगाया जाता है । इसका वृक्ष विशाल तथा अत्यधिक शाखायुक्त होता है, इसकी ऊँचाई लगभग 30 मीटर तक होती है । जामुन का वृक्ष एक दीर्घ आयु वृक्ष है जो लगभग 100 वर्ष से अधिक तक फलता-फूलता रहता है । छायादार होने के कारण जामुन को सड़कों के किनारे भी लगा हुआ देखा जा सकता है ।

जामुन के वृक्ष पर मार्च-अप्रैल में पुष्पन होता है । पुष्प सुगंधित व छोटे होते हैं, मई-जून के माह में फल पककर तैयार हो जाते हैं । जामुन का फल रसीला बेरी जैसा होता है फल गहरे बैंगनी रंग के होते हैं जो गुच्छे में लगते हैं । फल अत्यधिक स्वादिष्ट मीठे रसीले, हल्के खट्टे तथा तीखे होते है । अधिक मात्रा में खाने पर जीभ पर बैंगनी रंग छोड़ देते हैं ।

जामुन के कुल उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत भाग फल के रूप में खाने में उपयोग किया जाता है । जामुन में ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज शर्करा की अधिकता होती है । सुक्रोज का पूर्णतया अभाव होता है । जामुन के फल के सेवन से अनेक खनिज तत्वों की आपूर्ति भी होती है साथ ही साथ इसमें प्रचुर मात्रा में कार्बोहाइट्रेट होने के कारण स्वास्थ्यप्रद होता है । विटामिन 'ए' तथा “सी”' से परिपूर्ण होने के कारण रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है । जामुन के ताजे फलों को ऐसे ही नमक लगाकर खाया जाता है । जामुन का उपयोग जैम, जैली तथा शर्बत बनाने में भी किया जाता है । पके हुये फलों से उच्च गुणवत्ता की स्वादिष्ट शराब भी तैयार की जाती है । घरेलू स्तर पर अधिक पके हुये फलों का प्रयोग सिरका तैयार करने में भी किया जाता है । जामुन के फलों का सेवन मधुमेह, अतिसार, आदि रोगों के उपचार में किया जाता है । जामुन के रस में रक्त को शुद्ध करने की क्षमता होती है । जामुन के रस का सेवन करने से पाचन सम्बंधी समस्यायें दूर होती हैं । अनेक वैज्ञानिक शोधों से यह पता चला है कि जामुन के बीजों का अल्कोहलीय सार यदि मधुमेह के रोगियों को नियमित दिया जाये तो उनके रक्त में शर्करा का स्तर कम हो जाता है ।

12.10 खरबूजा (Muskmelon) वनस्पति नाम-कुकुमिस मेलो, कुल-कुकुरबिटेसी

खरबूजा एक अन्य रसीला, शीतलता प्रदान करने वाला फल है जिसे हजारों वर्षो से चीन, रोम, मिश्र, ग्रीस के निवासियों द्वारा उगाया जाता रहा है । भारत में भी खरबूजे की खेती अनेक राज्यों में की जाती है । खरबूजों की विभिन्न किस्मों को दो समूहों में रखा जा सकता है- ऐसे खरबूजे जिनका छिलके पर जाली सदृश आकृति बनी होती है, तथा दूसरे प्रकार के खरबूजे जिनका छिलका चिकना होता है । छिलके का रंग सफेद, पीला, हरा, नारंगी, भूरा, धारीदार, चितकबरा होता है । खरबूजा विटामिन 'ए' तथा 'सी से परिपूर्ण होता हैं । इसके अतिरिक्त विटामिन 'बी' पोटोशियम तथा फोलिक अम्ल भी खरबूजे में प्रचुर मात्रा में होते है । खरबूजे की विशेषता इसमें पाये 'जाने वाले रेशे हैं । इसका रसीला रेशेदार गदा आसानी पचने वाला होता है । खरबूजा अनेक गंभीर रोगों जैसे हृदय रोग, कैंसर आदि से बचाव करने में सक्षम है ।

12.11 शहतूत (Mulberry) वनस्पति नाम- मोरस अल्बा कुल - मोरेसी

शहतूत को 'मोरस फल' के नाम से भी जाना जाता है । शहतूत की अनेक प्रजातियाँ विश्व के अनेक देशों में उगाई जाती हैं परन्तु मोरस अल्बा (alba=white=सफेद) सर्वाधिक प्रचलित प्रजाति है । वानस्पतिक दृष्टि से शहतूत का फल बेरी न होकर एक संगठित फल है जिसे सोरोसिस (sorosia) के नाम से जाना जाता है । यह एक फूली हुई लोगनबेरी की भाँति दिखाई देता है । जब पुष्पों में परागण की क्रिया होती है तो उनका आधारीय भाग फूलने लगता है । अन्त में ये पूरी तरह एक मोटे, रसीले आकर्षक रंगयुक्त फल में परिवर्तित हो जाते हैं । शहतूत का रंग हरा, सफेद, बैंगनी अथवा काला हो सकता है तथा इसके फलों के रंग के आधार पर प्रजाति की पहचान करना कठिन होता है । काले शहतूत बड़े तथा रसीले होते हैं । फलों का स्वाद मीठा होता है तथा हल्का खट्टापन इसके स्वाद को और अधिक बढ़ा देता है ।

शहतूत के फल में लगभग 85-88 प्रतिशत जल होता है । इसमें पाये जाने वाले प्रमुख शर्करा ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज हैं जिसके कारण यह मीठा होता है । शर्करा का प्रतिशत लगभग 7.8 से 9.2 के बीच रहता है । इसके अतिरिक्त इसमें कुछ अम्ल भी होते है जैसे :- मैलिक अम्ल जो फलों के खट्टेपन के लिये उत्तरदायी है । शहतूत में रेशे भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं ।

शहतूत को औषधीय दृष्टि से एक अच्छे रक्त टॉनिक के रूप में मान्यता दी जाती है । प्राचीन काल से ही शहतूत के औषधीय गुणों को पहचान कर इसे अनेक व्याधियों जैसे :- शारीरिक कमजोरी, रक्त अल्पता समयपूर्ण बालों का सफेद होना, मूत्र रोग, टिटेनस, बेहोशी, कब्ज आदि में सफलता पूर्वक उपयोग किया जाता है ।

बोध प्रश्न

18. जामुन में कौन-कौन सी शर्करा होती हैं?
19. जामुन के फलों का रस किस रोग के उपचार में लाभदायक होता हैं?
20. बालों के असमय सफेद होने से रोकने में कौन सा फल लाभदायक हैं?

12.12 सारांश (summary)

फल हमारे भोजन का एक प्रमुख अंग है । प्राचीन काल से ही मनुष्य फलों को अपने भोजन के मुख्य स्त्रोत तथा ऊर्जा की पूर्ति के लिये उपयोग में लाता रहा हैं । विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताओं में विभिन्न फलों की खेती उपयोग, उत्पादन व परिष्करण की जानकारी मिलती है । भारत में लगभग सभी प्रमुख फलों की सैकड़ों किस्मों की खेती अनेकों वर्षो से की जा रही है । आम, सेब, केला, अमरूर, शहतूत, तरबूज, खरबूजा, जामुन, आदि प्रमुख फल है जिन्हें भारत के विभिन्न हिस्सों में प्रमुखता से उगाया जा रहा है ।

फल भोजन के प्रमुख विकल्प होने के साथ-साथ खनिज तत्वों, शर्करा, विटामिन, अम्ल आदि के सबसे अच्छे स्त्रोत हैं । ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज प्रमुख शर्करा हैं जबकि विटामिन 'ए', 'बी, सी, बहुतायत में फलों में पाये जाते हैं । फास्फोरस, कैल्शियम, लौह आदि प्रमुख खनिज तत्व है जो फलों में प्रचुर मात्रा में स्थित रहते हैं । लगभग सभी फलों के सेवन से जल की आपूर्ति होती है जो शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक है ।

An apple a day keeps doctor away' - 'एक सेब के नित्य सेवन से निरोग रहा जा सकता हैं । उक्त कहावत से यह स्वत: सिद्ध हो जाता है कि फल व्यक्ति को स्वास्थ्य व निरोगी बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं । विटामिनों का सबसे अच्छा स्त्रोत होने के कारण ये अनेक रोगों से लड़ने के लिये प्रतिरोधक क्षमता का विकास करते हैं । रक्त का बोधन, रक्त का निर्माण, जीवन क्षमता में वृद्धि, बढ़ती उम्र, के प्रभाव को कम करना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जो फलों के सेवन से सम्पन्न किये जा सकते हैं, कब्ज, अतिसार मधुमेह, रक्त अल्पता, हृदय रोग, पथरी, मुखरोग त्वचा रोग आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जिनमें नियमित फलों का सेवन अत्यधिक लाभदायक होता है । नियमित फलों के सेवन से मोटापा, असमय वालों का सफेद होना, शारीरिक कमजोरी, थकान आदि से छुटकारा पाया जा सकता है ।

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर-

1. पोमोलोजी (Pomology)
2. फल पादपों के परिपक्व अण्डाशय होते हैं जिनमें बीज स्थित होते हैं ।
3. बेरीफल ड्रूप, पोम स्पैडिक्स, अष्ठिफल तथा पीपो
4. जल की (लगभग 60- 95 प्रतिशत)
5. विटामिन 'ए' तथा 'सी'
6. आम

7. उत्तर प्रदेश
8. आम्रपाली, दशहरी, लंगड़ा तोतापुरी, मुम्बइया
9. स्पैडिक्स
10. कैल्शियम, आयरन तथा फॉस्फोरस
11. किन्नू
12. पश्चिमी एशिया की कॉकेसस की पहाड़ियों में ।
13. विटामिन 'ए', 'बी तथा सी
14. अमरूद जामुन
15. तरबूज
16. सिट्रुलिन, घाव, चोट आदि के उपचार में लाभदायक होता है ।
17. विटामिन 'ए'
18. ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज
19. मधुमेह व अतिसार
20. शहतूत का रस

12.14 अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

1. फल क्या हैं । फलों के सामान्य लक्षण तथा गुणधर्म का विवरण दीजिये ।
2. आम, केला, तरबूज तथा सेब फलों का संक्षिप्त विवरण दीजिये ।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

a. शहतूत
b. खरबूजा
c. केला
d. जामुन
e. अमरूद

1. अमरूद, शहतूत, आम, जामुन तथा तरबूज के औषधीय महत्व पर टिप्पणियाँ लिखिये ।
2. किन्हीं चार फलों के पोषणीय महत्व का उल्लेख कीजिये ।

12.15 पारिभाषिक शब्दावली - (Glossary of Terms)

(I)	Pomology	–	फलों की खेती
(II)	spadix	–	स्पैडिक्स
(III)	Antioxident	–	प्रतिऑक्सीकारक
(IV)	Diabetes	–	मधुमेह
(V)	Sorosia	–	सोरोसिस (संगठित फल)
(VI)	Rind	–	छिलका

Mesocarp	मध्यफल भित्ति
Pome	पोम
Pepo	पीपो

12.16 संदर्भ ग्रंथ - (Reference Book) :

1. Economic Botany in the tropics -SL Kochhar macmillan india Ltd new delhi
2. Economy Botany BP Pandey S Chand and company Ltd Ram Nagar New Delhi

इकाई 13

प्रमुख खाद्य तेल एवं उनका आर्थिक महत्व
CHIEF EDIBLE OILS AND THEIR ECONOMIC IMPORTANCE

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 मूंगफली का तेल

13.2.1 उत्पत्ति

13.2.2 वानस्पतिक लक्षण

13.2.3 मूंगफली की खेती

13.2.4 पोषण महत्व

13.2.5 उपयोग

13.3 सरसों का तेल

13.3.1 उत्पत्ति

13.3.2 वानस्पतिक लक्षण

13.3.3 उन्नत प्रजातियां

13.3.4 सरसों की खेती

13.3.5 पोषण महत्व

13.3.6 उपयोग

13.4 नारियल का तेल

13.4.1 उत्पत्ति

13.4.2 वानस्पतिक लक्षण

13.4.3 उन्नत प्रजातियां

13.4.4 नारियल की खेती

13.4.5 पोषण महत्व

13.4.6 उपयोग

13.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.6 सारांश

13.7 पारिभाषिक शब्दावली

13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य हैं :-

1. खाद्य तेल क्या हैं? सामान्य संघटन एवं परिचय ।
2. मूंगफली, सरसों एवं नारियल की उत्पत्ति, वानस्पतिक लक्षण एवं खेती ।
3. खाद्य तेलों के विभिन्न उपयोग ।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

वसा एवं तेलों को अति प्राचीन काल से ही मानव के द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है । मानव के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले वसा को पशुओं से प्राप्त किया जाता था जिनमें भेड़ तथा बछड़े प्रमुख थे । वनस्पति तेलों को प्राप्त करने तथा इनके उपयोग करने की विधियों को, माना जाता है कि, प्राचीन चीनी तथा हिन्दुओं ने विकसित किया । भारतवर्ष में तेलों को प्राप्त करने के लिये बैलों से चलाये जाने वाले कोल्हू अथवा घनी का प्रयोग बहुतायत में किया जाता रहा है ।,

प्राचीन मिश्र के निवासी वनस्पति तेलों का उपयोग खाद्य तेलों के रूप में तथा शरीर पर मालिश करने के लिये किया करते थे । वर्तमान समय में विभिन्न वनस्पति तेलों जैसे मूंगफली, सरसों, नारियल, सूर्यमुखी, तिल आदि का उपयोग खाद्य तेलों के रूप में तथा अन्य कार्यो में किया जा रहा है ।

कार्बोहाइड्रेट्स की भांति ही, वसा तथा तेलों में कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन होते है । इनमें आक्सीजन का प्रतिशत बहुत कम होता है । वनस्पति तेल तथा वसा जटिल वसीय अम्ल के ट्राईग्लिसराइड्स होतें हैं । वसीय अम्ल को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:-

संतृप्त वसीय अम्ल - उदाहरण - पामिटिक अम्ल तथा स्टीयरिक अम्ल । ये वनस्पति वसा में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं ।

असंतृप्त वसीय अम्ल उदाहरण - ओलिक लिनोलिक तथा लिनोलिनिक अम्ल तेल एवं वसा का संघटन एक समान होता है । तेल सामान्य तापमान पर तरल अवस्था में रहते हैं जबकि वसा ठोस अथवा अर्द्ध ठोस होते हैं । नारियल तेल, पाम तेल, कोकोआ बटर आदि वसा के उदाहरण हैं जबकि सरसों, तिल, सूर्यमुखी, सोयाबीन, मूंगफली आदि तेलों के उदाहरण हैं ।

13.2 मूँगफली का तेल (Groundnut Oil)

मूंगफली एक प्रमुख वनस्पति खाद्य तेल का स्रोत है । मूंगफली के कुल उत्पादन का दो तिहाई भाग तेल उत्पादन में काम में लिया जाता है जिसे रसोईतेल, सलाद तेल तथा मार्गरीन (Margarine) के रूप में उपयोग में लाया जाता है ।

13.2.1 उत्पत्ति

वानस्पतिक नाम – एरेकिस हाईपोजिया (Arachis hypogea)

अंग्रेजी नाम – ग्राउन्डनट (Groundnut), पीनट (Peanut)

हिन्दी नाम – मूंगफली

कुल – फैबेसी (Fabaceae)

मूंगफली की उत्पत्ति ब्राजील में होने का सन्दर्भ मिलता है जिसे सर्वप्रथम दक्षिण अमेरिका में बहुतायत में उगाया गया । ऐसा माना जाता है कि लगभग सोलहवी शताब्दी में इसे पुर्तगालियों के द्वारा ब्राजील से उत्तरी अफ्रीका तत्पश्चात चीन, जापान, मलेशिया तथा भारत में लाया गया । भारत मूंगफली का विश्व में सर्वाधिक उत्पादन करने वाला देश है परन्तु इसके उत्पादन का अधिकांश भाग घरेलू मांग की आपूर्ति कर पाने में उपयोग हो जाता है जबकि अल्प मात्रा में इसका निर्यात विश्व के अन्य हिस्सों में किया जाता है । आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश मूंगफली उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं ।

13.2.2 वानस्पतिक लक्षण

मूंगफली एक वार्षिक शाक है जिसकी उँचाई 30-60 सेमी० तक होती है । इसकी पत्तियाँ रोमिल जटिल पर्ण होती हैं । लगभग 5-7 सेमी. माप के अवृन्त पीले पुष्प एकल, दो अथवा चार के समूह में लगते हैं । पेपलियोनेसी कुल का प्रतिनिधित्व करने वाला पुष्प संयोजन (जिसमें दस पुंकेसर होते हैं) इसमें स्पष्ट दिखाई देता है । इस पादप में स्वपरागण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है ।

निषेचन के पश्चात् अण्डाशय धनात्मक गुरूत्वानुवर्तन के कारण भूमि की ओर गति करने लगती है । कुछ समय पश्चात् अण्डाशय पूरी तरह भूमिगत होकर फल में परिवर्तित हो जाती है । मूंगफली का फल एक लम्बी, अप्रस्फुटनशील फली के रूप में होता है जिसमें 2-6 तक बीज होते हैं । फलभित्ति सूखकर कठोर, तन्तुमय तथा जालिकावत् निशानों को प्रदर्शित करती है । परिपक्व बीज माप तथा आकार में विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं, प्रायः अण्डाकार अथवा बेलनाकार होते हैं जिनके ऊपर सफेद, गुलाब, लाल अथवा रहे जा का झिल्ली सदृश आवरण चढ़ा रहता है । बीजों की प्रकृति अभ्रूणपोषीय होती है ।

13.2.3 मूंगफली की खेती

मूंगफली एक गर्म मौसम की फसल है जिसकी सामान्य वृद्धि के लिये बहुतायत में धूप का होना आवश्यक है । इसकी खेती प्रायः उन स्थानों पर की जाती है जहाँ वार्षिक वर्षा लगभग 100 सेमी० तक होती है । उच्च गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन के लिये लगभग 4-6 माह का धुंध रहित वृद्धिकाल आवश्यक होता है, फल परिपक्वन तथा फसल की कटाई के दौरान शुष्क वातावरण का होना आवश्यक होता है । इसकी खेती के लिये ढीली, भुरभुरी, रेतीली मृदा अच्छी होती है । चिकनी गीली मिट्टी मूंगफली की खेती के लिये सर्वोत्तम है । इसकी बुवाई के लिए पूर्ण फली अथवा छिले हुये बीजों का उपयोग बहुतायत में किया जाता है । इसके अतिरिक्त मूंगफली की फसल को कायिक प्रवर्धन की विधि से कटिंग लगाकर भी उगाया जा सकता है ।

विश्व के अधिकांश भागों में मूंगफली की फसल को हाथों द्वारा ही इकट्ठा किया जाता है । पौधों को खोदकर तथा ऊपर खींचकर फलियों को तोड़ लिया जाता है ।

13.2.4 पोषण महत्व

मूंगफली के बीजों में लगभग 26 प्रतिशत प्रोटीन तथा 45 प्रतिशत तक तेल होता है । इसके अतिरिक्त मूंगफली की गिरी (kernel) में फास्फोरस तथा प्रचुर मात्रा में थायमीन, राईबोफ्लेविन तथा नियासीन विटामिन भी होते हैं । शीत संपीडित (cold pressed) तेल सुनहरे पीले रंग का होता है जबकि उष्ण-संपीडित (hot pressed) मूंगफली का तेल गहरे पीले रंग का होता है । मूंगफली के तेल में पाये जाने वाले प्रमुख वसीय अस्त तथा उनकी प्रतिशत मात्रा निम्नलिखित है:-

1.	ओलिक अम्ल	56 प्रतिशत
2.	लिनोलेनिक अम्ल	25 प्रतिशत
3.	पामिटिक अम्ल	6- 12 प्रतिशत
4.	स्टियरिक अम्ल, ऐरेकिडिक अम्ल	अल्प मात्रा में

मूंगफली के बीज उच्च कैलोरी युक्त पोषण प्रदान करते हैं, लगभग 100 ग्राम बीजों से 549 कैलोरी उर्जा प्राप्त होती है । इन्हें प्रायः भूनकर अथवा घी में तलकर प्रयोग किया जाता है ।

13.2.5 उपयोग

मूंगफली, सोयाबीन के पश्चात् वानस्पतिक तेल का सबसे बड़ा स्रोत है । सम्पूर्ण विश्व के कुल मूंगफली उत्पादन का लगभग 60-70 प्रतिशत भाग तेल निष्कर्षण में उपयोग में लिया जाता है । मूंगफली के तेल को प्रमुख रूप से खाद्य तेल, सलाद तेल अथवा मार्गरीन के रूप में उपयोग में लाया जाता है । भारत में मूंगफली के तेल के कुल उत्पादन का अधिकांश भाग हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) विधि द्वारा 'वनस्पति घी के निर्माण में काम में लिया जाता है । कम गुणवत्ता वाले तेल का उपयोग साबुन, स्नेहक (lubricant) के रूप में तथा अन्य कार्यों में किया जाता है । मूंगफली का तेल औषधीय रूप में भी महत्वपूर्ण है, यह विरेचक (laxative), त्वचामृदुकारक (skin emolient) होता है ।

बोध प्रश्न-

1. मूंगफली का वानस्पतिक नाम तथा इसके कुल का नाम बताइये ।
2. मूंगफली के तेल में पाये जाने वाले प्रमुख वसीय अम्लों के नाम बताइये ।
3. भारत में मूंगफली उत्पादन के प्रमुख स्थानों के नाम लिखिये ।

13.3 सारसों का तेल (Mustard Oil)

भारतवर्ष में सरसों का तेल एक प्रमुख खाद्य तेल है जिसे खाना पकाने के लिये बहुतायत में प्रयोग किया जाता है । सरसों का वानस्पतिक वंश ब्रेसिका (Brassica) है जिसकी

विभिन्न प्रजातियाँ तेल प्राप्त करने के लिये प्रयोग में लाई जाती है । इसके अन्तर्गत लगभग 150 प्रजातियों को सम्मिलित किया गया है जिसमें से अधिकांश वार्षिक शाक के रूप में उगाई जाती है ।

13.3.1 उत्पत्ति

आनुवांशिक विविधता की दृष्टि से ब्रेसिका को तीन जैव विविधता केन्द्रों में बांटा जा सकता है- यूरोप, चीन तथा मध्य व दक्षिण एशिया । वनस्पति तेल के लिये उगाई जाने वाली प्रमुख प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं:-

1.	ब्रेसिका नेपस	चीन, जापान, यूरोप
2.	ब्रेसिका जुन्सिया	चीन, जापान, भारत
3.	ब्रेसिका प्रीकोक्स	यूरोप, अमेरिका
4.	ब्रेसिका नेपस	मेडिटरेनियन
5.	ब्रेसिका जुन्सिया	रूस, मेडिटरेनियन
6.	ब्रेसिका कैम्पैस्ट्रिस	भारत

भारतवर्ष में ब्रेसिका कैम्पैस्ट्रिस (Brassica campestris) से तीन वैराइटी विकसित की गई हैं - भूरी सरसों, पीली सरसों तथा तोरिया, जो विशिष्ट पर्य-भोगोलिक (eco geographical) क्षेत्रों में ही उगाई जाती हैं । भारत में उगाई जाने वाली सरसों तथा रेप की पहचान तथा नाम को लेकर अत्यधिक भ्रम है । सिंह (1958) तथा सिक्का व राजन (1964) के द्वारा दिये गये नामकरण को ही सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है । इनके अनुसार सरसों को निम्न रूप में पहचाना जा सकता है-

1.	ब्रेसिका कैम्पैस्ट्रिस वैराइटी भूरी सरसों	भूरी सरसों
2.	ब्रेसिका कैम्पैस्ट्रिस वैराइटी पीली सरसों	पीली सरसों
3.	ब्रेसिका कैम्पैस्ट्रिस वैराइटी तोरिया	तोरिया
4.	ब्रैसिका जुन्सिया	राई
5.	ब्रेसिका नाइग्रा	बनारसी राई
6.	ब्रेसिका अल्बा	उजली सरसों

भारतवर्ष विश्व में सबसे विस्तृत भूभाग पर सरसों की खेती करने के लिये जाना जाता है । सरसों व रेप उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं:- राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल तथा बिहार । राजस्थान सर्वाधिक मात्रा में सरसों उत्पादन के लिये जाना जाता है, कुल उत्पादन का लगभग 65 प्रतिशत भाग अकेले राजस्थान से ही प्राप्त किया जाता है ।

13.3.2 वानस्पतिक लक्षण

रेप तथा सरसों के पौधे पतले, उर्ध्वशाखित शाक के रूप में उगते हैं । पौधों की ऊंचाई लगभग 60-150 सेमी तक होती है । पत्तियाँ निशिताग्र (acute), सामान्यत: वीणाकार

(lyrate) होती हैं । चमकीले बसंती रंग के पुष्प असीमाक्षी असीम पुष्पक्रम में लगते हैं । पुष्प क्रूसीफेरी कुल के प्रतिनिधि होते हैं अर्थात इसमें चार मुक्त बाह्यदल, चार मुक्त दल, चतुष्टकीय पुंकेसर होते हैं । अण्डाशय आभासी पट पर बनने के कारण द्विकोष्ठीय होती है । आभासी पट को रेप्लम (replum) के नाम से जाना जाता है । इसका फल सिलीकुआ (siliqua) के नाम से जाना जाता है जो एक छोटी फली के रूप में होता है । प्रस्फुटन के पश्चात् बीज रेप्लम पर लगे रहते है । इसके बीज छोटे, गोल, पीले, भूरे अथवा काले रंग के होते हैं ।

13.3.3 उन्नत प्रजातियाँ

भारत में उगाई जाने वाली सरसों की कुछ घरेलू उन्नत प्रजातियाँ वरूणा, क्रान्ति, कृष्णा, रोहिणी, वरदान, वैभव, उर्वषी, आशीर्वाद, वसंती, माया, वसुन्धरा आदि हैं ।

13.3.4 सरसों की खेती

सरसों की खेती सरलतापूर्वक तथा कम खर्चे में की जा सकती है । सरसों को उर्वर तथा अच्छी सिंचाई वाली भूमि जिसका pH 4.2 से 8.3 के मध्य हो, पर अच्छी तरह से उगाया जा सकता है । सरसों की खेती के लिये बीज की बुवाई की जाती है । बीज की बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े तक उपयुक्त रहता है । बीजों को सीधे ही मिट्टी में लगभग एक चौथाई इंच गहराई तक छिड़काव करके बोया जाता है । यदि मिट्टी में सड़ी हुई गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट अच्छी तरह से मिला हुआ हो तो फसल का उत्पादन अच्छा होने की सम्भावना होती है । लगभग दस दिन के अन्दर बीज अंकुरित हो जाते हैं ।

सरसों की प्रजाति तथा मौसम की स्थिति के अनुसार फसल लगभग 40-60 दिन में तैयार हो जाती है । सरसों के पौधे सब्जी के रूप में भी उपयोग में लाये जाते हैं । इसके लिये पौधों में पुष्पन प्रारम्भ होने से पूर्व ही पत्तों को तोड़कर साग बनाकर खाया जाता है । सरसों की फसल लगभग 60 दिनों में तैयार हो जाती है । परन्तु फसल काटते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि फली को पूरी तरह सूखने न दें । पूरी तरह पकने तथा सूखने पर फली का प्रस्फुटन हो जाता है तथा बीज खेत में ही झड़ जाते हैं । कुछ स्थानों पर पौधों को जड़ से उखाड़कर छोटे छोटे गट्ठरों में बांधकर कुछ दिनों तक रख दिया जाता है जबकि अधिकाश स्थानों पर हँसिये से जमीन से कुछ ऊंचाई पर तने को काटकर फसल की कटाई कर ली जाती है लगभग 4- 10 दिनों में पौधे धूप में सूखकर परिपक्व हो जाते हैं । बीजों से तेल प्राप्त करने की अनेक विधियां प्रचलन में हैं जिनमें कोल्हू एक्सपेलर तथा हाईड्रोलिक प्रक्रिया आदि प्रमुख हैं । आजकल बाजार में परिष्कृत (refined) सरसों का तेल सुगमता से उपलब्ध है।

13.3.5 पोषण महत्व

सरसों के बीजों में एक ग्लाइकोसाइड होता है जिसे सिनिग्रिन (sinigrin) अथवा पोटेशियम मायरोनेट कहते हैं । मायरोसिन एन्जाइम की उपस्थिति में इनका जल अपघटन

करने पर इनसे डैक्स्ट्रोंस शर्करा तथा सरसों का तेल प्राप्त होता है । सरसों का तेल अत्यधिक तीखी गन्ध वाला होता है । तेल की मात्रा विभिन्न प्रजातियों में अलग अलग होती है, जो 30 से 45 प्रतिशत तक होती है । तेल के अतिरिक्त बीजों से लगभग 20 प्रतिशत प्रोटीन प्राप्त होता है । सभी प्रजातियों में इरूसिक अम्ल (erucic acid) की मात्रा सर्वाधिक होती है जो कुल वसीय अम्लों का लगभग 45-50 प्रतिशत तक होती है । इसके अतिरिक्त ओलिक अम्ल, लिनोलिनिक अस्त (लगभग 47 प्रतिशत) तथा अन्य वसीय अम्ल जैसे - पामिटिक, स्टियरिक अम्ल आदि अल्प मात्रा में पाये जाते हैं ।

13.3.6 उपयोग

रेप तथा सरसों से प्राप्त किया जाने वाला तेल एक प्रमुख खाद्य तेल है । इसे अचार, सब्जी, सलाद, चटनी आदि तैयार करने में प्रयोग किया जाता है । रोजाना के खाना पकाने के लिये सरसों का तेल बहुतायत में प्रयोग किया जाता है । स्नेहक, ग्रीस तथा मृदु साबुन बनाने में भी सरसों के तेल का उपयोग किया जाता है । कम गुणवत्ता के तेल को दीपक में जलाने में काम में लिया जाता है । इसके अतिरिक्त सरसों के तेल का उपयोग मालिश करने तथा त्वचा मधुकारक के रूप में भी किया जाता है ।

बोध प्रश्न:-

4. सरसों की किन्ही जीन प्रजातियों के नाम बताइये ।
5. सरसों के तेल के दो प्रमुख उपयोग बताइये ।
6. सरसों के पुष्प किस प्रकार के होते है?
7. सरसों की फली को किस नाम से जाना जाता है?
8. सरसों की चार उन्नत किस्मों के नाम बताइये ।

13.4 नारियल का तेल (Coconut Oil)

नारियल पाम (coconut Oil) प्रकृति का मनुष्य को एक अनुपम उपहार है । यद्यपि पादप के समस्त भाग उपयोग में लाये जाते हैं तथापि सूखी गिरी (dried kernel) सर्वाधिक उपयोगी है । अनेक स्थानों पर इसे कच्चा अथवा सुखाकर प्रयोग में लाया जाता है ।

13.4.1 उत्पत्ति

नारियल की उत्पत्ति एवं इसके वास्तविक भोगोलिक स्थल के विषय में मतभेद है । उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह मानो जाता है कि नारियल की उत्पत्ति का स्थान इण्डो-पैसिफिक क्षेत्र है जहाँ से यह समुद्र की धारा के साथ बहकर अन्य तटवर्ती क्षेत्रों में पहुँच गया । सम्पूर्ण विश्व के कुल नारियल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत भाग फिलीपींस से आता है । इसके अतिरिक्त इन्डोनेशिया, भारत, वियतनाम मैक्सिको, मलेशिया तथा श्रीलंका भी नारियल तेल उत्पादन के प्रमुख देश है । अमेरिका विश्व में सर्वाधिक मात्रा में नारियल का आयात करता है । नारियल उत्पादन में भारत का तीसरा स्थान है । भारत में नारियल की खेती केरल, तमिलनाडु कर्नाटक तथा आन्धप्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में की जाती है । केरल लगभग 50

प्रतिशत नारियल का उत्पादन करने वाला प्रमुख राज्य है । अल्प मात्रा में नारियल की खेती गोवा, दमन तथा दीव, अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह, महाराष्ट्र उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, लक्षद्वीप, पण्डिचेरी आसाम तथा त्रिपुरा में की जाती है ।

13.4.2 वानस्पतिक लक्षण

नारियल पाम एक लम्बा, दर्शनीय वृक्ष है जिसकी ऊंचाई 15 से 30 मी० तक होती है तथा जिसका तना हवा के रूख की ओर हल्का सा झुका रहता है । वृक्ष के तने पर स्पष्ट वलयाकार पर्णछत (leaf scars) दिखाई देते हैं । मुख्य तना सामान्यत: अशाखित तथा आधार पर ठोस फूला हुआ होता है जो सघन अपस्थानिक जड़ों से घिरा रहता है । इसकी पत्तियाँ विशाल होती है जिनका माप लगभग 1.8 मी0 x 60 मी० तक होता है । नारियल मे स्पेडिक्स प्रकार का पुष्पक्रम पाया जाता है जो पत्तों के अक्ष से निकलता है । पुष्पक्रम में एक केन्द्रीय अक्ष तथा लगभग 40 पार्श्व शाखायें होती हैं । आरम्भ में सम्पूर्ण पुष्पक्रम एक आवरण स्पेथ से ढका रहता है । पुष्पक्रम में नर तथा मादा पुष्प अलग अलग होते हैं, नरपुष्प की संख्या 200-300 तक होती है जो एक अथवा 2-3 के समूह में लगते हैं । मादा पुष्प अपेक्षाकृत कम संख्या में होते हैं जो प्रायः एकल होते हैं पुष्पक्रम शाखा के आधार पर लगते हैं । नरपुष्पों में पुंकेसरों की संख्या छः होती है जो दो चक्रों में लगते हैं । मादा पुष्प त्रिकोष्ठीय अंडाशयों से युक्त होते हैं । अण्डाशय लगभग एक समान माप वाले 6 परिदल से ढके रहते हैं । 'जब वृक्ष लगभग 3-4 वर्ष पुराना हो जाता है तो इस पर पुष्प लगना आरम्भ हो जाते हैं । एक वृक्ष पर लगभग 50 वर्षा तक पुष्पन होता रहता है । नारियल पाम का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि इस पर वर्ष भर पुष्पन होता रहता है तथा फल पकने में लगभग 9- 12 माह का समय लगता है । एक गुच्छे में लगभग 3-7 तक नारियल लगते हैं । परिपक्व फल एक रेशेदार अष्ठिफल (fibrous drupe) होता है जो अण्डाकार होता है । फल का वजन लगभग 1.2 - 20 किग्रा तक होता है ।

नारियल का फल मुख्यतः तीन परतों में विभेदित रहता है-

1. **बाह्ययफलभित्ति** - यह सबसे बाहरी आवरण है जो कठोर, मजबूत, चिकना होता है । कच्चे फलों में यह हरा होता है जबकि परिपक्व फलों में सूखकर पीला अथवा भूरा हो जाता है । पूर्ण परिपक्व फलों में यह झड़कर अलग हो जाता है ।
2. **मध्य फलभित्ति** - यह मध्य परत है जो अत्यधिक रेशायुक्त होती है । यह व्यावसायिक नारियल जूट (coir of commerce) है । इससे घरेलू उपयोग की अनेक वस्तुएं तैयार की जाती हैं ।
3. **अंत:फलभित्ति** - यह आन्तरिक परत है जो अत्यधिक मजबूत, कठोर तथा गहरे भूरे रंग की होती है । यह कवच के रूप में भी जानी जाती है । इसके अन्दर एक खोखला बीज स्थित रहता है तथा बाहर की ओर यह दृढ़तापूर्वक ठोस भ्रूणपोष (endosperm) से चिपका रहता है । यह शुल्क भ्रूणपोष ही व्यावसायिक नारियल (copra of commerce) है जिसे अनेक खाद्य पदार्थो के निर्माण में प्रयोग किया जाता है ।

13.4.3 नारियल की उन्नत प्रजातियाँ

नारियल का सर्वाधिक उत्पादन केरल के तटवर्ती क्षेत्रों में किया जाता है । अधिकांश प्रजातियाँ इन स्थानों को ध्यान में रखकर ही विकसित की गई हैं । कुछ उच्च गुणवत्ता वाली प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं:-
कप्पदम, अण्डमान जायन्ट थायरू थेन्गाई, कैथाथाली, गंगाभवानी, वैरी कोबारी लक्षद्वीप मध्यम, गंगाबोन्दम, मालदीव ड्वार्फ तथा चाऊघाट ग्रीन ।

13.4.4 नारियल की खेती

नारियल का प्रवर्धन बीजों से किया जाता है । अंकुरण अत्यधिक धीमा होता है जिसमें लगभग 4 माह का समय लगता है । बीज अंकुरण के साथ ही प्ररोह बाहर निकल आता है । भ्रूण का बीज पत्र फूलना प्रारम्भ कर देता है तथा वृद्धि करते हुये भ्रूणपोष से पोषण लेना प्रारम्भ कर देता है । शिशु प्ररोह तथा मूल वृद्धि करते हुये बाहर निकल आते हैं तथा रेशायुक्त मीजोकार्प से पोषण लेना प्रारम्भ कर देता है । इस प्रकार लगभग एक वर्ष की अवधि तक शिशु पादप फल के विभिन्न भागों से ही पोषण प्राप्त करते हुये वृद्धि करता है । नारियल के सफल प्रवर्धन हेतु पर्याप्त सूर्य का प्रकाश, लगभग 27-32 डिग्री सेन्टीग्रेड के मध्य तापमान तथा अच्छी वर्षा का होना आवश्यक है । इसे विभिन्न प्रकार की मृदा पर उगाया जा सकता है, यहां तक कि तटवर्ती रेत, पठारी, ज्वालामुखी लैटराइट तथा मिट्टी जिसमें अच्छी पानी का बहाव तथा पर्याप्त वातायन हो, नारियल की खेती के लिये उपयुक्त है । समुद्र तट के पीछे की छिद्रयुक्त मृदा नारियल की खेती के लिये सर्वाधिक उपयुक्त होती है ।

नारियल कोपरा के उत्पादन के लिये, पूरी तरह पके हुये फलों को वृक्ष से तोड़ लिया जाता है, इस समय इनमें तेल की मात्रा सर्वाधिक होती है । कच्चे नारियल का पानी जिसे पीने के काम में लिया जाता है, लगभग सात माह के फलों को तोड़कर प्राप्त किया जाता है ।

13.4.5 पोषण महत्व

नारियल के फलों को छीलकर इनमें से भ्रूणपोष को निकालकर सुखा लिया जाता है । अच्छी गुणवत्ता वाले कोपरा में लगभग पाँच प्रतिशत नमी तथा 60-65 प्रतिशत तक तेल होता है । बहुत अच्छी गुणवत्ता वाले नारियल से लगभग 75 प्रतिशत तक तेल प्राप्त किया जा सकता है । नारियल के तेल में प्रमुख रूप से लॉरिक अम्ल होता है जो एक मुख्य वसीय अस्त है । इसकी मात्रा लगभग 45-50 प्रतिशत तक होती है ।
निम्नलिखित तालिका में नारियल के तेल में पाये जाने वाले प्रमुख वसीय अस्त तथा उनकी प्रतिशत मात्रा का वर्णन दिया गया है -

क्रमांक	**नाम**	**प्रतिशत मात्रा**
1.	लॉरिक अम्ल	45-50 प्रतिशत
2.	मायरिस्टिक अम्ल	13- 18 प्रतिशत
3.	पामिटिक अम्ल	7- 10 प्रतिशत

4.	कैप्रोइक अम्ल	0.2-0.5 प्रतिशत
5.	कैप्रिक अम्ल	5.4- 9.5 प्रतिशत
6.	स्टियरिक अम्ल	1.0-3.2 प्रतिशत
7.	ऐरेकिडिक अम्ल	0- 1.5 प्रतिशत
8.	ओलिक अम्ल	5.0 -8.0 प्रतिशत

कम तापमान अथवा सामान्य तापमान - लगभग 24 डिग्री सेन्टीग्रेड होने पर नारियल का तेल सफेद अथवा हल्के पीले ठोस वसा के रूप में होता है । उच्च तापमान पर यह पिघलकर पारदर्शी अथवा हल्के पीले तेल के रूप में आ जाता है ।

13.4.6 उपयोग

नारियल पाम एक बहुउपयोगी वृक्ष है भारत के अनेक प्रदेशों में नारियल कोपरा को विभिन्न खाद्य पदार्थो को तैयार करने में प्रयोग किया जाता है । इसके विभिन्न उपयोगों तथा महत्व को ध्यान में रखते हुये इसे कल्पवृक्ष के रूप में मान्यता दी गई है । बहुउपयोगी तथा प्रमुख खाद्य तेल होने के कारण नारियल तेल को व्यावसायिक स्तर पर उत्पादित किया जाता है । यह एक उच्च गुणवत्तायुक्त खाद्य तेल है जिसका उपयोग प्रमुख रूप से खाना पकाने, मिठाइयाँ बनाने तथा विभिन्न खाद्य पदार्थ तैयार करने में किया जाता है । मार्गरीन तैयार करने में नारियल का तेल एक प्रमुख घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है । इसके अतिरिक्त नारियल के तेल को स्नेहक के रूप में, डिटर्जेन्ट में, त्वचा पर लगाने वाले सोंदर्य उत्पादों, क्रीम, शैम्पू रबर, संश्लेषित राल (resin) आदि के निर्माण में भी प्रमुखता से किया जाता है । नारियल के तेल को शरीर की मालिश करने तथा बालों में लगाने के लिये भी प्रयोग किया जाता है ।

बोध प्रश्न:-

1. नारियल पाम का वानस्पतिक नाम तथा इसके कुल का नाम बताइये ।
2. नारियल का सर्वाधिक उत्पादन करने वाला राज्य कौन सा है?
3. नारियल के पुष्पक्रम को किस नाम रमे जाना जाता है?
4. नारियल के तेल के दो प्रमुख घटकों के नाम बताइये ।

13.5 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

1. ऐरेकिस हाइपोजिया कुल- फेबेसी
2. ओलिक अम्ल,पामिटिक अम्ल स्टियरिक अम्ल लिनोलिनिक अम्ल
3. आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक महाराष्ट्र गुजरात, उत्तरप्रदेश
4. ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस बेसिका जुन्सिया ब्रैसिका नाइग्रा
5. खाद्य तेल के रूप में, साबुन बनाने में, मालिश करने में
6. सरसों के पुष्प क्रूसीफेरी कुल के प्रतिनिधि होते हैं ।

7. सिलिकुआ अथवा सिलिकुला
8. वरूणा, क्रान्ति, कृष्णा, रोहिणी, वरदान वसुन्धरा
9. क्रोकस न्यूसीफेरा कुल- पामी
10. केरल
11. स्पैयैडिक्स
12. प्रमुख खाद्य तेल के रूप, मिठाइयाँ बनाने में, मालिश करने तथा साबुन बनाने में

13.6 सारांश (summary)

वनस्पति जगत के अधिकांश पादप आर्थिक रूप से बहुत उपयोगी व महत्वपूर्ण हैं । इन पादपों के विभिन्न भागों तथा इनसे प्राप्त होने वाले असंख्य उत्पादों को मनुष्य द्वारा अनेक रूपों में उपयोग में लाया जाता है । खाद्य तेलों के स्रोत के रूप में अनेक पादपों को प्रयोग किया जाता है । भारतवर्ष में तथा अन्य देशों में सरसों, मूंगफली तथा नारियल के तेल को बहुतायत में प्रयोग किया जाता है । ये तीनों ही प्रकार के तेल प्रमुख वसीय अम्लों तथा वसा के प्रमुख स्रोत हैं जिनमें पामिटिक अम्ल, ओलिक अम्ल, लिनोलिनिक अम्ल, स्टियरिक अम्ल आदि प्रमुख हैं । तेल के रूप में प्रयोग करने के साथ ही इन सभी को वनस्पति घी तैयार करने में भी उपयोग किया जाता है । गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र राज्य जहाँ मूंगफली उत्पादन के प्रमुख केन्द्र हैं, वहीं सरसों का उत्पादन प्रमुख रूप से राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश, बिहार, गुजरात में बहुतायत में किया जाता है । नारियल एक समुद्र तटीय वृक्ष है जिसका सर्वाधिक उत्पादन केरल में किया जाता है । नारियल बहुउपयोगी वृक्ष है जिसके तेल वसा के अतिरिक्त अन्य उत्पादों जैसे जटा, नारियल गिरी, नारियल पानी, नारियल के सूखे भ्रूणपोष आदि को भी विभिन्न रूपों में उपयोग में लाया जाता है ।

13.7 पारिभाषिक शब्दावली (Glossary)

वसीय अम्ल	Fatty Acid
भ्रूणपोष	Endosperm
विरेचक	Laxative
पोषण महत्व	Nutritive value
गिरी	kernel
मृदुकारक	Emolient
स्नेहक	Lubricant

13.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Book)

1. **Economic Botany in the Tropics** -S.L. Kochhar Macmillan India Ltd New Delhi
2. **Economic Botany** -BP Panday S Chand and company Ltd Ram Nagar New Delhi.

13.9 अभ्यास प्रश्न (Exercise question)

1. किन्ही दो खाद्‌य तेलों के उत्पादन, स्त्रोत,गुण तथा उनके उपयोग का वर्णन कीजिये ।
2. सरसों की विभिन्न प्रजातियों का उल्लेख कीजिये । सरसों की खेती तथा सरसों के तेल के प्रमुख घटकों का वर्णन कीजिये ।
3. नारियल पाम से प्राप्त होने वाले तेल के प्रमुख घटकों का उल्लेख करते हुये इसके उपयोग पर टिप्पणी लिखिये ।
4. मूंगफली, सरसों तथा नारियल के वानस्पतिक लक्षणों का उल्लेख कीजिये । इनकी उन्नत प्रजातियों तथा खेती करने की विधियों पर एक लेख लिखिये ।
5. निम्नलिखित पर लघु टिप्पणी लिखिये-

1. मूंगफली का तेल
2. सरसों के वानस्पतिक लक्षण
3. नारियल कोपरा के उपयोग
4. सरसों की खेती
5. मूंगफली की खेती

इकाई - 14

मसाले

(Condiments)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य (objective)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 सामान्य विवरण (General description)

14.2.1 अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance)

14.2.2 रासायनिक प्रकृति (chemical nature)

14.2.3 स्त्रोत (sources)

14.3 प्रमुख मसालों का विवरण (Description of major spices)

14.3.1 हल्दी

14.3.2 हींग

14.3.3 दालचीनी

14.3.4 लोंग

14.3.5 केसर

14.3.6 मिर्च

14.3.7 काली मिर्च

14.3.8 इलायची

14.3.9 धनियां

14.3.10 जीरा

14.3.11 अजवायन

14.3.12 मेथी

14.3.13 राई

14.4 इकाई सारांश (unit summary)

14.5 शब्दावली (Terminology)

14.6 सन्दर्भ ग्रंथ (References)

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer)

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercises)

14.0 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के मुख्य उद्देश्य हैं -

1. मसालें एवं इसी प्रकार के पदार्थो को परिभाषित करना एवं उनका कार्य समझना ।

2. मसालों के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य की जानकारी लेना ।
3. मसालों के रासायनिक घटक अर्थात् उनके सक्रिय सत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
4. विभिन्न दैनिक उपयोग के मसालों के स्त्रोत पादपों, उनके प्रवर्धन एवं महत्व अथवा उपयोगों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

मसालों का उपयोग तथा उनकी खेती इतिहास काल के प्रारम्भ से ही चीन, इजिप्ट, रोम ग्रीस (Greece) तथा पुराने विश्व के लोगों को ज्ञात थे । मसाले सबसे प्रथम उत्पाद थे जिनका पूर्व तथा पश्चिम के मध्य व्यापार प्रारम्भ हुआ तथा पारसी (Parsians) इनके मुख्य व्यापारी (traders) थे । ये भारत तथा मोलूका द्वीप से मसालों का उंटों पर परिवहन कर वेनिस, इजिप्ट व ग्रीस में बेचते थे । इजिप्ट शासकों द्वारा मसालों पर अत्यधिक कर (high duty) लगाये जाने से यूरोपियन अन्वेषकों में भारत का समुद्री मार्ग खोजने की इच्छा जाग्रत हुई । वास्को डी गामा (Vasco de gama) पुर्तगाली अन्वेषक 1498 ई. में समुद्री मार्ग द्वारा भारत पहुंचा, इस प्रकार "भारत-मसालों का देश (India land of spices)" की खोज हुई । ऐसा माना जाता है कि वास्को डी गामा अपने साथ दो जहाज मसालों से भर कर ले गया था जिनकी कीमत उसके अभियान हुए कुल खर्च से 60 गुना अधिक थी । पुर्तगालियों ने भारतीय समुद्र तट पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया । इस प्रकार पुर्तगालियों का मसालों के व्यापार में एकाधिकार स्थापित हो गया तथा एक शताब्दी तक रहा । ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) की स्थापना के पश्चात् मसालों का व्यापार ब्रिटिश हाथों में चला गया ।

अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मसालों को विश्व के विभिन्न भागों में उगाया जाने लगा तथा इसके पश्चात् इनकी कमी तथा एकाधिकार समाप्त हो गया । यद्यपि अधिकतर मसाले अब भी वैनिला (vanilla), मिर्च (capsicum) तथा आलस्पाइस (allspice), अफ्रीका में मेडागास्कर क्लोव (Ravensara) तथा ग्रेन्स ऑफ पेराडाइस (Aframomum melegueta) यूरोप में जीरा, धनिया व सरसों तथा ब्राजील में काली मिर्च, ग्रेनाडा में जायफल व जावित्री (nut meg & mace) का उत्पादन होने लगा था ।

भारत में मसालों की विभिन्न 63 जातियों की खेती की जाती है तथा मुख्य मसालों (major spices)में काली मिर्च (pepper), इलायची (cardamom.), हल्दी (turmeric), अदरक (zinger) तथा मिर्च (chillies)का उत्पादन होता है । भारत की मसालों के निर्यात में सबसे अधिक आय काली मिर्च से तथा इसके बाद इलायची से होती है । अन्य महत्वपूर्ण मसाले जो भारत में उगाये जाते हैं निम्न प्रकार है अजवायन (ajwain), विलायती सौंप (aniseed), साहजीरा (caraway), अजमूद (clery), डिल (soya), सौंप (saunf), मैथी (fenugreek), लहसुन (garlic), धनिया (coriander), जीरा (coriander), केसर (saffron)तथा वेनिला (vanilla) आदि ।

भारत में मसाले मुख्य रूप से केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान तथा बिहार राज्यों में उगाये जाते हैं ।

राजस्थान में मुख्य रूप से हल्दी, अदरक, धनिया, जीरा, सौंप, मिर्च, अजवाइन, राई, मेथी, तथा लहसुन आदि की खेती की जाती है ।

14.2 सामान्य विवरण (General description)

14.2.1 अर्थ एवं महत्व (Meaning and importance)

वे वानस्पति उत्पाद (vegetable products) जो भोजन को सुगन्धित तथा रूचिपूर्ण बनाने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, मसाले (spices) कहलाते हैं । ये तीखे स्वाद युक्त (pungent) तथा खुशबूदार होते हैं । इन्हें भोजन में पकाने से पूर्व डाला जाता है । ऐसे मसाले, जिनका स्वाद अधिक तीखा होता है तथा ये सामान्यत: पके हुए भोजन में डाला जाता है कॉण्डिमेन्ट (condiments) कहलाते हैं । इन्हें भोजन नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें पोषक तत्व नहीं होते है । लेकिन इनमें पाचन शक्ति बढ़ाने की क्षमता तथा औषधीय गुण (medicinal properties) होते हैं, इसलिए मसालों को खाद्य अनुबंध (food adjuncts) कहा जाता है ।

इनका प्रयोग सामान्यत: अरूचिकर भोजन को सुगन्धित करने के लिए किया जाता है । इनकी उपस्थिति से भोजन की अवांछित गन्ध समाप्त हो जाती है । जिससे वह सुरुचिपूर्ण हो जाता है । ये पाचक रस (gastric juices) का प्रवाह बढ़ाते हैं जिससे पाचन-शक्ति बढ़ती है । इसके अतिरिक्त पीसने की दर (rate of properties) बढ़ाते हैं जिसका शरीर पर शीतल प्रभाव (cooling effect) होता है । अनेक मसालों में औषधीय गुण (medicinal properties) भी होते हैं । जैसे - अदरक खासी के उपचार एवं पाचन तन्त्र विकार में लाभदायक होता है, हल्दी रक्त शोधक एवं प्रतिजैविक है, लहसुन कालेस्ट्रोल की मात्रा को कम करता है, हिंग वातहर एवं पाचक तन्त्र उद्दीपक का कार्य करता है, लोंग दांत दर्द में लाभदायक है, केसर सर्दी-जुकाम में लाभदायक है तथा कालीमिर्च नेत्र ज्योति बढ़ाती है ।

14.2.2 मसालों की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of spices) :

मसाले पादप उत्पाद हैं जो प्रकन्द (rhizomes), छाल (barks), पर्ण (leaves), फल (fruits), बीज(seeds) तथा पादप स्त्राव (exudates) से प्राप्त किये जाते हैं । इनके शुष्क भार में मुख्यतः कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन, रेजीन, ओलियोरेजीन स्थिर तेल (fixed oil)तथा वाष्पशील तेल (volalite oils) उपस्थित होते हैं ।

कार्बोहाइड्रेट - शर्करा, सेल्यूलोज, स्टार्च तथा श्लेष्म के रूप में उपस्थित होते हैं । ग्लूकोज ग्लूकोसाइड (glucosides) के रूप में उपस्थित होता है जो अपघटन द्वारा तीखी गन्ध व स्वाद के लिए उत्तरदायी होता है । जैसे- सरसों के बीज में सिनिग्रिन (sinigrin) नाम

ग्लूकोसाइड उपस्थित होता है । इसी प्रकार कुछ बीजों जैसे सरसों व मेथी (mustard & fenugreek) में श्लेष्म उपस्थित होता है ।

रेजीन (Resin) - ठोस या अर्धतरल जटिल पदार्थ होते हैं जो वाष्पशील तेलों से मिलकर आलिओरेजीन का निर्माण करते हैं । जैसे - अदरक तथा काली मिर्च का तीखापन इन्हीं के कारण होता है ।

स्थिर तेल (fixed oil)अनेक मसालों का प्रमुख घटक होते हैं, जैसे सरसों, राई (rye) आदि ।

वाष्पशील तेल (Volatile oils)सबसे महत्वपूर्ण घटक होते हैं । जो रंगहीन, स्वादहीन, तरल तथा खुशबूदार होते हैं । इनमें मुख्यतः मोनोटरपिन्स (monoterpenes), सेसक्यूट्रपिन्स (sesquiterpenes) ऐल्डीहाईड (aldehydes), कीटोन्स (ketones), ईथर (ethers), एस्टर (esters) ऐल्कोहॉल (alcohols) मसालों की खुशबू इन्हीं घटकों के कारण होती है ।

कुछ मसालों में वर्णक (pigments) उपस्थित होते हैं जो विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं जैसे - केसर (saffron) में क्रोसीन (crocin) तथा हल्दी (turmeric) में करक्यूमीन (curcumin) वर्णक पाया जाता है ।

14.2.3 मसालों के स्त्रोत (Sources of spices):

मसाले पादप के विभिन्न भागों से प्राप्त किये जाते हैं । मसालों का वर्गीकरण पादप भाग, जिससे ये प्राप्त किये जाते हैं, के आधार पर निम्न वर्गो में किया जाता है -

1. मूल व प्रकन्द से प्राप्त मसाले - अदरक, हल्दी, लहसुन, हींग आदि
2. छाल से प्राप्त मसाले - दालचीनी
3. पत्तियों से प्राप्त मसाले - पीपरमिन्ट तेजपात आदि ।
4. पुष्प से प्राप्त मसाले - लौंग केसर आदि ।
5. फलों से प्राप्त मसाले - मिर्च, काली मिर्च, जीरा, सौंप, धनिया, अजवायन ।
6. बीजों से प्राप्त मसाले - इलायची, जायफल, राई, मेथी आदि

तालिका : प्रमुख मसाले तथा उनके स्त्रोत

	समान्य नाम (Common Name)	**वानस्पति नाम (Botanical Name)**	**कुल (Family)**
	I. प्रकन्द एवं जड़ से प्राप्त मसालें (Spices obtained from rhizomes & root)		
1.	हींग (Asafoetida)	फेरूला एसेफोटिडा (Ferula asafoetida)	एपीएसी
2.	अदरक (ginger)	जिंजीबर ओफिसिनेल (zingiber officinale)	जिंजीबरेसी
3.	हल्दी (Tur. meric)	कर्कुमा लौंगा (curcuma longa)	जिंजीबरेसी

4. लहसुन (garlic)	एलियन सैटाइवम (allium sativum)	लिलिएसी

II. छाल से प्राप्त मसालें (spices obtained from back)

5. दालचीनी (Cinnamon)	सिनेमोमम जेलेनिकम (Cinnamomum)	लॉरेसी
6. तेजपात (cassia)	सिनेमोमम केशिया सि. टमाला (cinnamomum, cassia,& c. tamala)	-Do-

III. पत्तियों से प्राप्त मसालें (spices obtained from leaves)

7. मरुआ (morjorum)	मेजोराना होर्टेन्सिस (majorana hortensis)	लेमिएसी
8. विलायती पुदीना (peppermint)	मेन्था पाइपरेटा (menthe piperata)	लेमिएसी
9. तेजपात (cassia)	सिनेमोमम टमाला (cinnamomum tamala)	लॉरेसी
10. वन तुलसी (Sweet basil)	ऑसिमम बेसीलिकम (ocimum bacilicum)	लेमिएसी

IV. पुष्प व कलिकाओं से प्राप्त मसालें (spices obtained from flowers)

11. लौंग (cloves)	यूजिनिया केरियोफिलाटा (Eugenia caryophylata)	मिर्टेसी
12. केसर (saffron)	क्रोकस सैटाइवस (crocus sativus)	इरिडेसी

V. फलों से प्राप्त मसालें (spices obtained from fruits)

13. लाल मिर्च (chillies)	केप्सिकम एनम (Capsicum Annuum) केप्सिकम फ्रूटेसेन्स (Capsicum Fruitescence)	सोलेनेसी
14. काली मिर्च (Black Pepper)	पाइपर नाइग्रम (Piper Nigrum)	पाइपरेसी
15. अजवायन (Ammi)	ट्रेकिस्पर्मम आमी (Trachyspermum Ammi)	एपिएसी
16. शाहजीरा (Caraway)	कारम कास्वी (Carum Carvi)	- do-
17. सौंफ	फिनीकुलम बल्गेर	do

(Fennel)	(Foeniculum Vulgare)	
18. जीरा	क्यूमिनम साईमीनम	-do-
(Cumin)	(Cuminum Cyminum)	
19. धनिया	कोरिएन्ड्रम सेटाइवम	-do-
(Coriander)	(Coriandrum Sativum)	
VI. बीजों से प्राप्त मसालें (spices obtained from seeds)		
20. जायफल एवं जावित्री	माइरीस्टिका फ्रेग्रेन्स	माइरीस्टिकेसी
(Nutmeg & Mace)	(Myristica Fragrans)	
21. छोटी इलायची	इलेटेरिया कार्डामोमम	जिंजीबरेसी
(Cardamom)	(Elettaria Cardamomum)	
22. मेथी	ट्राइगोनेला फोनम-ग्रीकम	फेबेसी
(Fenugreek)	(Trigonella Foenum- Graecum)	
23. राई	ब्रेसिका जंशिया	ब्रेसीकेसी
(Mustard)	(Brassica Juncea)	

14.3 प्रमुख मसालों का विवरण (description of major spices)

14.3.1 हल्दी (turmeric)

वानस्पति नाम – कुर्कुमा लौंगा/कुर्कुमा डोमेस्टिका

(Botanical Name) – (curcuma longa syn. C. Domestica)

कुल (Family)- – जिन्नीबरेसी (Zingiberaceae)

उपयोगी भाग (Useful Part)- – प्रकन्द (Rhizome)

उत्पत्ति तथा विवरण (origin and distribution) :

हल्दी दक्षिण एशिया का स्थानीय (indigenous) पादप है । यह भारत का सबसे पुराना मसाला है जिसका सामान्यत: निर्यात किया जाता रहा है । विश्व में भारत हल्दी का सबसे बड़ा उत्पादक देश है । भारत के अतिरिक्त श्रीलंका **(Sri lanka),** इण्डोनेशिया **(Indonesia),** चीन **(china),** ताइवान **(Taiwan),** पेरू (**Peru**) तथा जैमीका (**Jamaica**) में इसकी खेती की जाती है ।

भारत में हल्दी का उत्पादन मुख्यतः महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश तथा केरल में होता है । देश के कुल उत्पादन का एक-तिहाई अकेले आन्ध्रप्रदेश में होता है ।

पादप लक्षण (plant characters) :

हल्दी का पादप बहुवर्षीय शाक **(perennial herb)** होता है । पादप में एक केन्द्रीय मुख्य प्रकन्द (**rhizome**) तथा हासिल तना (**reduced stem**) होता है । जिसके शीर्ष पर बडी-चौड़ी, लैंसाकार पत्तियों का गुच्छ (**tuft**) स्थित होता है । पुष्पक्रम **6-15** सेमी. लम्बा

स्पाईक **(spike**) होता है जिसमें पीले रंग के सहपत्र युक्त पुष्प विकसित होते हैं । मुख्य प्रकन्द से अनेक बेलनाकार प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक प्रकन्द **(rhizomes or fingers)** विकसित होते हैं । प्रकन्द पीले या हल्के नारंगी रंग के **7-15** मि.मी**. X 2.5 - 7** सेमी. आकार के होते हैं । इनके शीर्ष हल्के नुकीले होते हैं । प्रकन्द की सतह खुरदरी, कठोर तथा वलयाकार उभारों युक्त होती है । प्रवर्धन (**cultivation):**

हल्दी का प्रवर्धन कायिक विधि से किया जाता है । प्राथमिक अथवा द्वितीयक प्रकन्द अथवा फिंगर (**rhizome or finger**) को बीजों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा जनवरी-फरवरी माह में प्रकन्दों की खुदाइ कर ली जाती है । सामान्यत: आधारी पत्तियों के पीला पड़ने पर ही खुदाई **(harvesting**) की जाती है ।

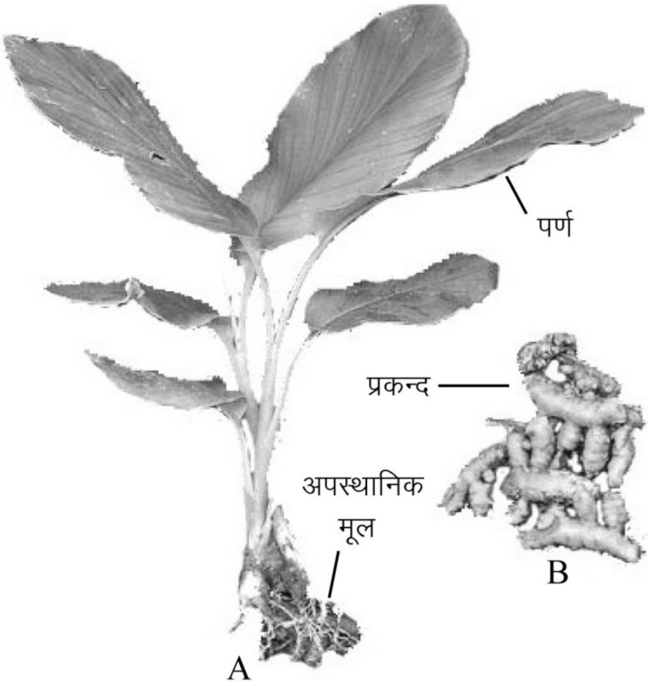

चि. 14.। हल्दी. a. पादप. b. भूमिगत प्रकन्द

उपयोगी भाग (useful plant part) **:**

मुख्य प्रकन्द तथा फिंगर को सावधानी से हाथों से मृदा से निकाल कर इनसे जड़ों को पृथक कर दिया जाता है । अब इन्हें पानी में धीरे-धीरे तब तक उबाला जाता है जब तक कि प्रकन्द नरम (soft) न हो जाएं । इसके पश्चात इन्हें सूर्य के प्रकाश में फैलाकर (10-15 दिन) सुखा लिया जाता है । इसके पश्चात् इन्हें विशिष्ट पात्रों (polishing drums) में डालकर हिलाया जाता है जिससे इनकी सतह चिकनी हो जाती है इस किया को पॉलिशींग (polishing) कहते हैं । पॉलिश किये गये प्रकन्दों को ग्रेडिंग (grading) कर बिक्री हेतु भेज दिया जाता है । प्रकन्दों को पीसकर हल्दी पाउडर तैयार किया जाता है ।

हल्दी में प्रोटीन, वसा, सेल्यूलोज व स्टार्च, स्थिर तेल, वाष्पशील तेल, रेजीन व वर्णक उपस्थित होते हैं । हल्दी की विशिष्ट तेलों के कारण होती है जिनकी मात्रा 5-6 प्रतिशत होती

है । तेल का प्रमुख घटक फेलेन्ड्रिन (phellandrene), सिनिओल (cineol), बोरनिओल (borneol), सेसक्विटरपीन (sesquiterpenes) आदि होते हैं । हल्दी में पीला नारंगी रंग किटोनिक वर्णक-कर्कुमिन (curcumine) के कारण होता है ।

उपयोग (uses):

1. यह आचार, सब्जियों, पुलाव तथा अन्य व्यंजनों को सुगन्धित व रंजित करने में प्रयुक्त होता है ।
2. हल्दी पाउडर प्राकृतिक रंजक का कार्य करता है, जो सूती, उनी व सिल्क वस्त्रों को रंगने में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. हल्दी पाउडर रक्त-शोधक (blood purifier) होता है तथा इसका प्रयोग चोट लगने पर घाव भरने में लाभदायक होता है ।
4. हल्दी का उपयोग विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों जैसे - त्वचा क्रीम, उबटन आदि में किया जाता है ।
5. इसका अचार जोड़ों के दर्द में लाभकारी होता है तथा हल्दी पाउडर को दूध में उबालकर सेवन करने से खांसी, जुकाम का उपचार होता है ।
6. प्रकन्द के आसवन से हल्दी का तेल प्राप्त किया जाता है जो सौन्दर्य प्रसाधनों में प्रयुक्त होता है ।

14.3.2 हींग (Asafoetida)

वानस्पतिक नाम	–	फेरूला आसाफोइटिडा
(Botanical Name)	–	(Ferula Asafoetida)
कुल (Family)	–	अम्बेलीफेरी/एपिएसी (Umbelliferae; Apiaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	मूल स्त्राव (Root Exudate)

वितरण (distribution):

पादप छोटा बहुवर्षी शाक अथवा झाड़ीनुमा होता है । यह मुख्यतः भारत (पंजाब, जम्मु व कश्मीर, हिमांचल प्रदेश) पाकिस्तान (मुलतान, सिन्ध), अफगानिस्तान, बलुचिस्तान व ईरान में उगाया जाता है ।

पादप लक्षण (plant characters) :

पादप बहुवर्षी शाक या झाड़ी होता है । पादप की जड़ मोटी व मांसल (thick and fleshy) होती है तथा स्तम्भ उर्ध्व व शाखित होता है । पत्तियां बड़ी तथा अत्यधिक विभाजित (decompound) होता है । पुष्पक्रम, पुष्पक्रम-छत्रक (umbell), पुष्प छोटे द्विलिंगी अथवा एकलिंगी होते हैं ।

इसे कायिक प्रवर्धन अथवा बीजों द्वारा उगाया जाता है ।

हींग प्राप्त करना (useful part).

पुष्पक क्रिया से पूर्व मूल में चीरे (cut) लगाये जाते हैं अथवा आधार रो तने को काट दिया जाता है । कटे हुए 'भागों से तरल पदार्थ (ओलियो गम रेजीन,oleogum resin) रिसने

लगता है जो वायु के सम्पर्क में आने पर गाढ़ा हो जाता है जिसे हींग (hing) कहते हैं । इसे एकत्र कर लिया जाता है तथा इस प्रकार के कई चीरे मूल पर लगाए जाते हैं ।

इरा प्रकार से प्राप्त गोंद की तरह अर्धशुष्क, भंगुर तथा मटमैला या पीले भूरे रंग का होता है इसका स्वाद कड़वा (bitter), तीखा तथा तीव्र अप्रिय गन्धयुक्त (foul odour) होता है । हींग में रेजीन, गोंद तथा वाष्पशील तेल जैसे अम्बेलीफेरीन (umbelliferin), फेरूलिक अम्ल (Ferulic acid) आदि उपस्थित होते हैं ।

उपयोग (uses) :

1. हींग का प्रयोग सांस, मांस, दाल, कड़ी इत्यादि को सुगन्धित करने में किया जाता है ।
2. हींग के औषधीय गुणों के कारण इसे अनक पाचन तन्त्र विकारों जैसे वातहर (carminarive), रेजक (laxative) तथा पाचक तन्त्र उद्दीपक (digestion stimulant) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. इसे खांसी (cough), दमा (dyspepsia) तंत्रिका विकार (nervous disorders) के उपचार में भी प्रयुक्त किया जाता है ।
4. यह उदरशूल (colic plain), मंदाग्नि (dyspepsia) तथा आफरा (flatulence) आदि में अत्यन्त प्रभावशील हैं।
5. पश्चिमी देशों में इसे इत्र निर्माण (perfumes) में भी प्रयुक्त किया जाता है ।

14.3.3 दालचीनी (Cinnamon)

वानस्पति नाम	– सिनेमोमम जेलेनिकम/सिनेमोमम वेरम
(botanical name)	– cinnamomum zeylanicum syn. C. verum)
कुल (family)	– लौरैंसी (lauraceae)
उपयोगी भाग (useful part)	– छाल (bark)

उत्पत्ति (origin and distribution)

यह श्रीलंका तथा दक्षिणी भारत का स्थानीय पादप है । दालचीनी का व्यापार पूर्व-ऐतिहाकस काल में किया जाता हा है । पूर्व में अरब लोग इसका व्यापार, स्थल मार्ग अरेबिया (arabia) तथा वहां से इजिप्ट (Egypt) तथा यूरोप को करते थे । इसके बाद इसका व्यापार क्रमशः पुर्तगालियों, डच तथा अंग्रेजों के हाथों में चला गया । वर्तमान में यह पादप बर्मा, मलेशिया, इण्डोनेशिया, चीन, दक्षिणी अमेरिका तथा वेस्टइंडीज में उगाया जाता है । श्रीलंका विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत उत्पादन करता है तथा यह सबसे बड़ा निर्यातक भी है । भारत में इसकी खेती केरल तथा पश्चिमी घाट में की जाती है ।

भारत में दालचीनी की खेती मुख्यतः केरल के केनानोर जिले (Cannanore district) में की जाती है इसके अतिरिक्त यह पश्चिमी घाट में उगाया जाता है । भारत में इसका उत्पादन आवश्यकता अनुरूप नहीं होता, इसलिए इसका आयात किया जाता है ।

पादप लक्षण (plant characters).

सिनेमोमम जिलेनिमकम(c.zeylanicum) पादप सदाबहार छोटे वृक्ष के रूप मे होता है जिसकी लम्बाई 30-40 फुट तक होती है । वृक्ष अत्यधिक शाखित होता है । पादप को सामान्यत: कटाई-छंटाई ('cut back') द्वारा झाड़ीनुमा रखा जाता है । पत्तियां बड़ी, चर्मिल (leathery), नुकीले शीर्ष युक्त, चमकीली गहरे हरे रंग की तथा अत्यधिक खुशबूदार होती है । पुष्प छोटे तथा पीले रंग के होते हैं जो शीर्षस्थ अथवा कक्षीय पुष्पक्रम में उत्पन्न होते हैं । फल एकबीजीय बैंगनी या काले रंग के बेरी (berries) कहलाते हैं ।

प्रवर्धन (cultivation)

विभिन्न प्रकार की मृदा तथा वातावरणी परिस्थितियों में उगाया जा सकता है । पादप रेतीली या दोमट मृदा तथा नम उष्ण वातावरण व 200-250 सेमी. औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि करता है । पादप का प्रवर्धन बीजों द्वारा किया जाता है ।बीजों को क्यारियों में बो कर पौध (seedlings) तैयार की जाती है। जिनका रोपण वर्षा ऋतु में किया जाता है । रोपण के 2-3 वर्ष पश्चात् पौधों को आधार से काट दिया (coppiced or cut-back) जाता है जिसके फलस्वरूप जड़ों रमे नये प्ररोह विकसित होते हैं । काटे गये तनों से छाल चित्र 142 : दालचीनी (जो दालचीनी का स्त्रोत है) को पृथक कर लिया जाता है । प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् इनकी आधर के निकट से कटाई (coppicing) की जाती है ।

चित्र 14.2: दालचीनी पुष्पी

उपयोगी भाग (useful plant part):

तने के दोनों तरफ छाल में एक-एक लम्बवत् चीरा लगाकर इसे लम्बवत् पट्टियों के रूप में उखाड़ लिया जाता है तथा इन्हें 24 घंटे तक किण्वन हेतु छोड़ दिया जाता है । इसके पश्चात बाह्य कार्की भाग को चाकू की सहायता से पृथक कर दिया जाता है । भीतरी छाल की पट्टियां (strips) धीरे-धीरे सूखने पर संकुचित होकर भीतर की ओर वेलित (curl) होकर पाइप या बांसुरी (pipe or quill) की आकृति ग्रहण कर लेती है । प्रारम्भ में छाल (दालचीनी) पीले - भूरे रंग की होती है । जो संग्रहण पर लाल रंग की हो जाती है ।

छाल में कार्बोहाइड्रेट (59.5%), वसा (2.2%) ,कैल्शियम (1.6%) एवं खनिज तत्व तथा विटामिन्स उपस्थित होते हैं । इसके अतिरिक्त 05-1.5% तक वाष्पशील तेल उपस्थित होता है जिसे सिनेमोन छाल तेल (cinnamon back oil) कहा जाता है सिनेमोन तेल का प्रमुख घटक सिनेमोक ऐल्डीहाइड(60-75%) होता है तथा अल्पमात्रा में यूजिनोल (4-8%) होता है ।

उपयोग (uses).

1. अत्यधिक रूचिपूर्ण सुगन्ध व स्वाद के कारण विभिन्न व्यंजनों जैसे - मांस, सब्जियां, मिष्ठान तथा अन्य भोज्य पदार्थो को सुगन्धित करने में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. कड़ी पाउडर (curry powder) के घटक के रूप में तथा गर्म मसाले के घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. सिनेमोन तेल केक तथा पेस्टी व आइसक्रीम में प्रयुक्त किया जाता है ।
4. तेल का उपयोग इत्र, सौन्दर्य प्रसाधनों, साबुन व टूथपेस्ट में भी किया जाता है ।
5. तेल के औषधीय गुण भी होते हैं जो दस्त व अतिसार (diarrhea and dysentry) में लाभदायक होता है ।

14.3.4 लौंग (Clove)

वानस्पतिक नाम	–	साइजीजियम ऐरोमेटिकम/यूजीनिया केरियोफिलाटा
(Botanical Name)	–	(syzygium aromaticum syn. Eugenia aryophylata)
कुल (Family)	–	मिर्टेसी (myrtaceae)
उपयोगी भाग (Useful art)	–	पुष्प कलिका (Flower bud)

उत्पत्ति एवं विवरण (Origin and distribution) :

लौंग मोलूका द्वीप (**Molucca Islands)** का स्थानीय पादप है । यह स्थान पूर्वी इण्डोनेशिया में स्थित है, इसे मसाला द्वीप (**Spice Island**) भी कहते हैं । पुर्तगालियों (**Portuguese**) द्वारा 16वी शताब्दी में इस द्वीप की खोज से पूर्व लौंग के उत्पत्ति स्थल के बारे में जानकारी नहीं थी परन्तु इसका उपयोग बहुत पहले से किया जाता रहा है । एक अनुमान के अनुसार चीनवासी इसे तीसरी शताब्दी (**B.C.**) में उपयोग में लेते थे तथा रोमन व ग्रीक भी लौंग के बारे में जानते थे । फ्रांसीसियों ने लौंग को 1770 ई. में मारीशस **(Mauritius)** तथा रियूनियन **(Reunion)** में सफलतापूर्वक उगाया तथा यहां से लौंग का प्रसार अनेक देशों में हुआ । 1818 ई. में इसे जंजीबार **(Zanzibar)** तथा तंजानिया **(Tanzania)** में उगाया जाने लगा तथा ये दोनों देश अब विश्व के कुल लौंग उत्पादन का 800' से अधिक उत्पादन करते हैं । मालागसे गणराज्य **(Malagasy Republic)** तथा इण्डोनेशिया **(Indonesia)** अन्य मुख्य लौंग उत्पादक देश हैं । इसके अतिरिक्त श्रीलंका, भारत तथा मलेशिया में भी लौंग का उत्पादन होता है ।

भारत में यह मुख्यतः तमिलनाडू व केरल के कुछ भागों में उगाया जाता है ।

पादप लक्षण (Plant Characters) :

लौंग का पादप सदाबहार वृक्ष **(evergreen tree)** होता है । वृक्ष नियमित शाखित, **25-40** फुट उंचाई का तथा शंक्वाकार **(conical)** होता है । पर्ण सम्मुख विन्यासित **(opposite)**, चमकीली हरी तथा तेल ग्रंथियों**(oil glands)** की उपस्थिति के कारण खुशबूदार **(aromatic)** होती है । पार्श्व शाखाओं के शीर्ष पर पुष्प समीमाक्ष पुष्पक्रम **(terminal cymes)** में विकसित होते हैं । जंगली वृक्ष में पुष्प गहरे लाल रंग **(crimson red)** के तथा

तीन के समूह में उत्पन्न होते है, परन्तु कृष्ट वृक्ष **(cultivated trees)** में इन्हें खिलने से पूर्व ही तोड़ लिया जाता है ।पुष्प नलिकाकार **(tubular)** तथा परिजयांगी **(epigynous)** होते हैं । प्रत्येक पुष्प में असंख्य पुंकेसर तथा एक अधोवृर्ती अण्डप **(inferior ovary)** होती है । फल एकबीजीय ड्रूप **(drupe)** होता है ।

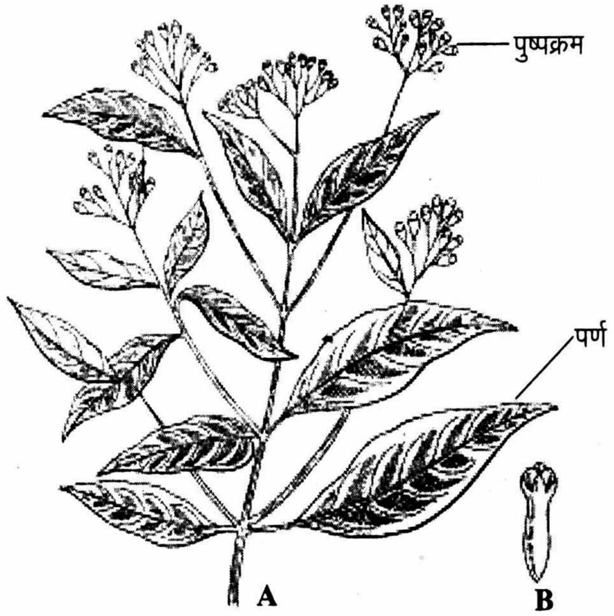

चित्र 14.3 : लांग A. पुष्पित शाखा B.पुष्प कलिका

प्रवर्धन (cultivation) _

यह एक उष्णकटिबन्धीय (tropic) पादप है, इसलिए उष्ण व नम (warm and moist) जलवायु में अच्छी वृद्धि करता है । अच्छे जल निकास वाली दोमट या काली मृदा उचित रहती है ।

इसे पौधारोपण द्वारा उगाया जाता है । अगस्त से अक्टूबर के मध्य बीजों को क्यारियों में उगाकर पौध (seedlings) तैयार की जाती हैं । 6 माह की पौध गमलों में स्थानान्तरित कर दी जाती है तथा इन्हें छायादार स्थानों पर विशेष देखभाल में रखा जाता है । 12-18 माह की आयु की पौध मृदा में स्थानान्तरित कर दी जाती है । पादप से 8-10 वर्ष की आयु से 60 वर्ष की आयु तक लौंग प्राप्त की जाती है ।

उपयोगी भाग (useful part of plant).

पुष्प कलिकाओं को जब वे हरे रंग की होती है, खुलने से पूर्व ही तोड़ लिया जाता है तथा इन्हें धूप में सुखा लिया जाता है । जिससे ये गहरे भूरे रंग की हो जाती है । इन शुष्क पुष्प कलिकाओं को ही लीग कहते हैं।

लौंग में 16%' वाष्पशील तेल होता है तथा तेल का प्रमुख घटक यूजिनोल (euginol) होता है जिसके कारण इसमें विशिष्ट खुशबू तथा स्वाद (odour and taste) होता है । इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में कैरियोफिलीन (Caryophylline) उपस्थित होता है ।

उपयोग (uses).

1. इसमें विशिष्ट खुशबू व स्वाद होता है जिसके कारण इसे विभिन्न खाद्य पदार्थो जैसे - मांस, मछली, सब्जीयों, सूप, सांस, केट चप आदि को सुगन्धित करने में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. यह गरम मसाले का प्रमुख घटक होता है ।
3. लौंग के आसवन से 'लौंग का तेल' (clove oil) प्राप्त होता है जो दांत-दर्द में औषध का कार्य करता है । लौंग का तेल टूथपेस्ट तथा माउथ-वाश (mouth - wash) निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है ।
4. लौंग का पाउडर बेकरी तथा मिष्ठान में प्रयुक्त किया जाता है ।
5. जावा (jawa) में लौंग से विशिष्ट प्रकार की सिगरेट बनाई जाती है ।
6. पादप के सभी भागों से यूजिनोल प्राप्त किया जाता है (जैसे पत्तियों से 2% तथा तने में 4-6% तेल होता है) जिसके उच्च गुणवत्ता वाले तेल को औषधि में व निम्न गुणवत्ता के तेल को साबुन उद्योग में प्रयुक्त किया जाता है ।

14.3.5 केसर (saffron)

वानस्पतिक नाम (botanical name)	–	क्रोकस सेटाइवस (crocus sativus)
कुल (family)	–	इरिडेसी (iridaceae)
उपयोगी भाग (useful part)	–	वर्तिकाग्र (stismas)

उत्पत्ति व वितरण (origin and distribution):

केसर सबसे पुराना व महंगा मसाला (precious condiment) है । ऐसा माना जाता है । कि यह दक्षिणी यूरोप तथा एशिया का माइनर का स्थानीय पादप (native) है । केसर की खेती स्पेन, तुर्की, फ्रांस, इटली, ग्रीस, ऑस्ट्रिया, इंग्लेण्ड, ईरान, चीन तथा भारत में की जाती है।

भारत में इसकी खेती मुख्यतः पम्पोर (कश्मीर) तथा जम्मु के किस्तवाड़ क्षेत्र में की जाती है । इसके अतिरिक्त प्रायोगिक तौर पर इसे उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है ।

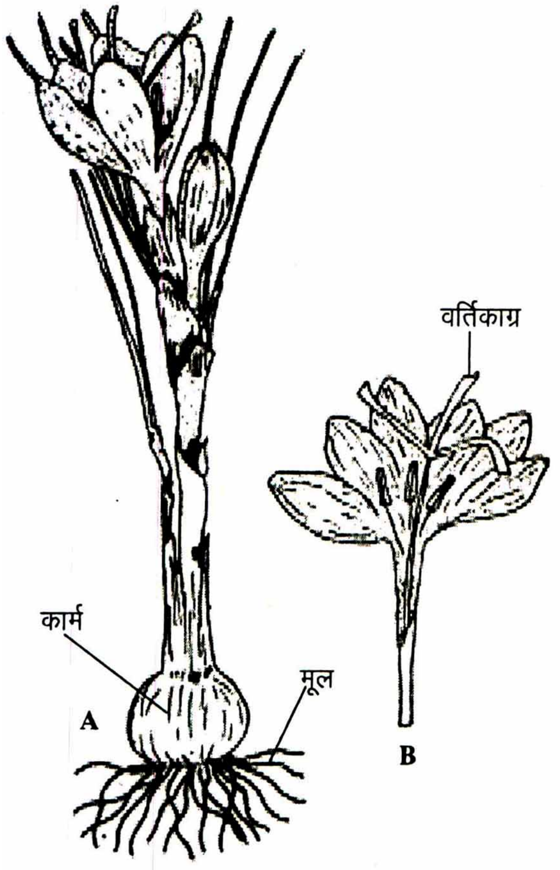

चित्र 14.4 केसर A. पादप. B. वर्तिका एवं वर्तिकाग्र

वानस्पतिक लक्षण एवं उपयोगी भाग (botanical characters & useful parts)

पादप छोटा (15-25 सेमी.) बहुवर्षी शाक होता है । पादप में आधारी भूमिगत गोलाकार कॉर्म (corm) होता है जिससे 6 या अधिक संकरी, रेखीय, मूलज (radicle) पर्ण विकसित होती है । पुष्प एकल (singly) विकसित होते हैं । प्रत्येक पुष्प लाल-बैंगनी रंग का जिसमें 3 पुंकेसर तथा एक अण्डप होता है । अण्डप के शीर्ष पर 3 लाल रंग के कीपाकार वर्तिकाग्र स्थित होते हैं जिन्हें केसर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

केसर की खेती कॉर्म (cormlets) को उगाकर (कायिक प्रवर्धन द्वारा) की जाती है । इसमें अक्टूबर मध्य से नवम्बर मध्य तक पुष्पन होता है । पुष्प के खिलने पर वर्तिकाग्र (stigmas) एकत्र कर लिये जाते हैं तथा इन्हें धूप में सूखा लिया जाता है ।

केसर में 0.5-1% वाष्पशील तेल होता है जिसमें पिकरोक्रोसीन (picrocrocin) नाम ग्लूकोसाइड (glucoside) तथा क्रोसीन (crocin) नामक पीला रंजक होता है । ग्लूकोसाइड के कारण इसका तीखा स्वाद होता है ।

उपयोग (uses)

1. इसकी रूचिपूर्ण सुगन्ध के कारण यह विभिन्न प्रकार के व्यंजन (जैसे-खीर, पुलाव आदि) तथा मिष्ठान को सुगन्धित करने व रंजित करने में प्रयुक्त किया जाता है ।

2. इसका उपयोग इत्र व सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता है ।
3. इसमें औषधीय गुण होते है जो सदी व जुकाम (cold & cough) में राहत प्रदान करता है ।
4. इसका विभिन्न धार्मिक (religious) व विधिपूर्वक (ceremonial) कार्यो में उपयोग होता है ।

14.3.6 लाल मिर्च / हरी मिर्च (Chillies)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name) – केप्सिकम स्पी (Capsicum Spp.)

कुल (family) – सोलेनेसी (Solanaceae)

उपयोगी भाग (Useful Part) – फल (Fruits)

उत्पत्ति व वितरण (origin & distribution) :

मिर्च मूलत: मध्य अमेरिका तथा वेस्टइंडीज का स्थानीय पादप है जहां इसकी खेती 5000 वर्ष पूर्व से की जा रही है । अमेरिका की खोज के पश्चात् पादप का विश्व के अन्य देशों में प्रसार हुआ तथा यह शीघ्र स्थापित हो गया । भारत में इसको 17वी शताब्दी में पुर्तगाली लाये थे । वर्तमान में मिर्च की खेती विश्व के लगभग सभी देशों में की जाती है तथा भारत, स्पेन व हंगरी विश्व के सबसे बड़े निर्यातक देश हैं ।

भारत में मिर्च के मुख्य उत्पादक राज्य आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु हैं जो देश के कुल उत्पादन का लगभग 75 प्रतिशत उत्पादन करते है । मध्य प्रदेश, पंजाब, बिहार तथा राजस्थान अन्य मिर्च उत्पादक राज्य हैं ।

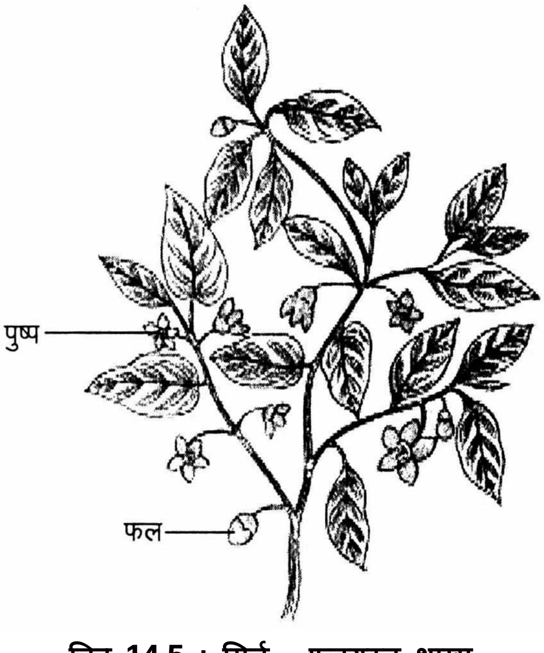

चित्र 14.5 : मिर्च - फलयुक्त शाखा

पादप लक्षण (plant characters):

केप्सीकम की विभिन्न पारिस्थितिकी कारकों के प्रति अनुकूलनता के कारण आवास, पादप आकारिकी तथा फलों की आकारिकी में विभिन्नता पाई जाती है ।

मिर्च का पादप एकवर्षी, शाखित शाक होता है । पत्तियां सरल, संवृन्त व अण्डाकार होती है । पत्तियों के कक्ष में एकल पुष्प विकसित होते हैं । फल विभिन्न किस्मों (varieties) में विभिन्न आकारिकी दर्शाता है जो गोल दीर्घित, शंक्वाकार अथवा बेलनाकार होते हैं तथा पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं । फल बहुबीजीय बेरी (berry) होता है ।

प्रवर्धन (Culvation)

पादप उष्ण व नम जलवायु का पादप है इसलिए उष्णकटिबंधीय तथा उप उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि करता है । इसके लिए 60-120 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं । इसके लिए उत्तम जल निकास वाली उपजाऊ चिकनी दोमट (clayey-loam) या काली मृदा (black soil) उपयुक्त रहती है ।

इरा बीजों द्वारा बोया (propagate) बीजों को क्यारियों में उगाकर पौध (seedlings) तैयार की जाती हैं जिन्हें 5-6 सप्ताह पश्चात् खेत मे स्थानान्तरित कर दिया जाता है । शीतकालीन फसल (winter crop) की बुवाई जुलाई-सितम्बर जबकि ग्रीष्म फसल (summer crop) के लिए बुवाई (sowing) फरवरी-मार्च माह में की जाती हैं।

लगभग दो माह पश्चात् फलों का पकना प्रारम्भ हो जाता है । आवश्यकतानुसार हरे फलों को तोड़ा जाता है अन्यथा फलो के पकने पर (लाल होने पर) इन्हें डण्ठलों सहित तोड़ लिया जाता है । जैसे - जैसे फल पकते जाते हैं, इन्हें तोड़ लिया जाता है ।

उपयोगी भाग (useful plant part)

फल मसाले के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं । पके फलों को धूप में डालकर (8-1० दिन) सुखा लिया जाता है । सूखे फलों को पीसकर मिर्च पाउडर (chilli powder) तैयार किया जाता है जो मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

शुष्क मिर्च में प्रोटीन **(13.8%),** कार्बोहाइड्रेट **(41.1%),** वसा **(10.2%),** खनिज लवण एवं विटामिन्स **(Vit.A, Vit.C and Vit.E)**उपस्थित होते हैं । इसके अतिरिक्त वाष्पशील, तीखा यौगिक कैप्सेसिन (capsaicin) तथा लाल रंजक के रूप में कैप्सेंसिन (Capsaicin) नामक कैरोटिनाइड उपस्थित होता है ।

उपयोग (Uses)

1. हरे, अपरिपक्व (कच्चे) फल विटामिन A, B व E युक्त होते हैं तथा इन्हें सलाद के रूप में खाया जाता हैं।
2. पके शुष्क फलों को पीसकर तैयार किया गया मिर्च पाउडर प्रमुख मसाला है जो सब्जियों, मांस, नमकीन, अचार, सांस, चटनी इत्यादि में प्रयुक्त होता है ।
3. कच्चे तथा पके फलों को क्रमशः हरी मिर्च का अचार व लाल मिर्च का अचार तैयार कर खाया जाता है ।
4. कच्चे फलों के गूदे से मिर्च का सांस (pepper sauce) तैयार किया जाता है ।

5. यह औषध के रूप में उत्तेजक (stimulant) तथा वातहर (carminative) के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं।

6. इसका पेस्ट कमर दर्द (lumbago), नाड़ी दर्द (neuralgia) तथा गठिया (rheumatism) में लेप के रूप में (externally) प्रयुक्त किया जाता है । इसके अलावा इसके अर्क से गरारे (gargales) करने पर ग्रसनीशोथ (pharyngitis) में लाभ होता है ।

14.3.7 काली मिर्च (black pepper)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	पाइपर नाइग्रम(Piper Nigrum)
कुल (Family)	–	पाइपरेसी (Piperaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	फल (Fruit)

उत्पत्ति व वितरण (origin and distribution)

काली मिर्च की उत्पत्ति स्थान भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया अथवा इण्डो-मलाया (indo-malayan) क्षेत्र माना जाता है । यह सबसे पुरातन (ancient) मसालों में से है जो रोमन तथा ग्रीक लोगों द्वारा प्रयुक्त किया जाता था । मध्य काल मे यूरोप में काली मिर्च का व्यापार अत्यधिक महत्वपूर्ण था, इसलिए व्यापारियों में भारत का मार्ग खोजने की होड़ लगी थी । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में मसालों में विदेशी मुद्रा अर्जित करने की दृष्टि से काली मिर्च का प्रथम स्थान है इसलिए 'मसालों का राजा' (king of spices) भी कहते हैं । भारत व इण्डोनेशिया विश्व के सबसे बड़े कालीमिर्च उत्पादक देश हैं जो विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 65% उत्पादन करते हैं । अन्य उत्पादक देशों में मलेशिया, श्रीलंका, कम्बोडिया, थाइलैण्ड, जमैका, ब्राजील आदि हैं । भारत में काली मिर्च की खेती केरल, व तमिलनाडु में की जाती है । केरल सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है जो देश के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादन करता है । प्रायोगिक तौर पर आक प्रदेश, आसाम तथा पश्चिमी बंगाल में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा रही है ।

पादप लक्षण (Plant Characters)

पादप दुर्बल, आरोही लता (climber) तथा बहुवर्षी (perennial) होता है । पादप (लता) की लम्बाई 9 मीटर तक होती है परन्तु संवर्धित अवस्था में इसे 4 मीटर से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है । तने की पर्वसन्धिया

चित्र 146 : काली मिर्च - एक शाखा

फूली हुई होती है जिनसे पत्तियां, पुष्पक्रम तथा अपस्थानिक मूल उत्पन्न होती है । पत्तियां सरल, अण्डाकार, नुकीले शीर्ष युक्त तथा खुशबूदार तीखे स्वाद वाली होती है । पुष्प छोटे, सफेद तथा 10-12 सेमी. लम्बे स्पाइक (spike) में उत्पन्न होते हैं । प्रत्येक स्पाइक में 50-60 गोल, एकबीजीय अस्फुटनशील ड्रूप फल विकसित होते हैं । ड्रूप (फल) अपरिपक्व अवस्था में चमकदार लाल रंग के होते हैं तथा परिपक्व होने पर काले व झुर्रीदार(cultivation)हो जाते हैं।

प्रवर्धन (cultivation) :

इसके लिए आर्द्र व उष्ण (moist and warm) जलवायु तथा 250 सेमी. वार्षिक वर्षा वृद्धि के लिए उत्तम होती है ।

काली मिर्च का प्रवर्धन कलम (stem-cuttings) रोपण द्वारा किया जाता है । 10-12 वर्ष आयु की स्वस्थ लता के परिपक्व स्तम्भ की कलम (cuttings) का रोपण किया जाता है । 2 या 3 कलम एक ही स्थान पर रोपी जा सकती हैं तथा लताओं के लकड़ी, बांस या कंकरीट के खम्भों पर या वृक्ष पर आरोहण कराया जाता हे । 2-3 वर्ष पश्चात् फल प्राप्त होने लगते हैं तथा 7 वर्ष से 20-25 वर्ष तक अधिकतम फल प्राप्त होते हैं । इसके बाद फल उत्पादन में गिरावट होने लगती है । फलों को दिसम्बर से मार्च माह के मध्य तोड़ा (picking) जाता है । मैदानी भागों में दिसम्बर-जनवरी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में जनवरी से मार्च में यह कार्य होता है ।

उपयोगी भाग (useful part):

फल उपयोगी भाग है । काली मिर्च तैयार करने के लिए अपरिपक्व अवस्था (हरे) में फलों को (सम्पूर्ण केटकिन) तोड़ लिया जाता है तथा इन्हें धूप में सुखाया जाता है । कुछ ही दिनों में पेरीकार्प कठोर व झुर्रीदार तथा प्राकृतिक किण्वन के फलस्वरूप गहरे भूरे या काले रंग

की हो जाती है । कई बार फलों को उबलते पानी में डूबो कर सुखा लिया जाता है जिससे यह कार्य शीघ्र होता है

काली मिर्च में स्टार्च **(28-49%),** रेशे **(8-18%)**, वाष्पशील तेल **(1- 3%)** तथा खनिज व अल्प मात्रा में ऐल्केलॉयड, ओलियोरेजीन होते हैं । वाष्पशील तेल a-पाइनिन व ß-पाइनिन उपस्थित होते हैं जिनके कारण इसकी विशिष्ट गन्ध होती है । पाइपेरिन **(Piperine)**, चेवीसिन **(Chevicine)** तथा पाइपेरिडिन **(Piperidine)** एल्केलॉइड्स के कारण तीखा **(Pungent)** स्वाद होता है ।

उपयोग (uses)

1. मसाले के रूप में सभी प्रकार की खाद्य सामग्री - शाकाहारी, मांसाहारी तथा मिष्ठान में प्रयुक्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त गरम मसाले का प्रमुख घटक होता है ।
2. यह लार व पाचक रसों के स्त्राव को प्रेरित करता है इसलिए सलाद, सूप, अचार, सांस, केचप इत्यादि में भी प्रयुक्त किया जाता है ।
3. बुखार, सदी, जुकाम व खांसी में मिश्री व तुलसी के साथ कालीमिर्च का काढ़ा बना कर सेवन किया जाता है ।
4. नेत्र ज्योति वर्धक तथा वातहर के रूप में भी लाभदायक होता है ।
5. मांस के परिरक्षक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
6. काली मिर्च के आसवन से तेल (pepper oil) प्राप्त होता है जो अनेक औषधियों में प्रयुक्त किया जाता है ।

14.3.8 छोटी इलायची (cardamom)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	इलेटेरिया कार्डामोमम(Elettaria Cardamomum)
कुल (Family)	–	जिन्जीबरेसी (Zingiberaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	बीज (Seeds)

उत्पत्ति व वितरण (Origin And Distribution)

छोटी इलायची भारत का स्थानीय (native) पादप है जो आदिकाल से महत्वपूर्ण मसाले का स्त्रोत है । भारत विश्व का सबसे बड़ा इलायची उत्पादक देश है जो विश्व के कुल उत्पादन का 80% उत्पादन करता है । श्रीलंका, गुआटेमाला (Guatemala), थाईलैण्ड, इण्डोचाइना, कोस्टारीका आदि अन्य उत्पादक देश है । भारत मसालों में काली मिर्च के बाद इलायची द्वारा सर्वाधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करता है इसलिए इलायची को मसालों की रानी (Queen of spices) भी कहा जाता है । भारत मे इलायची की खेती केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आसाम सिक्किम व तमिलनाडू में होती है ।

पादप लक्षण (Plant Characters)

पादप बहुवर्षी, झाड़ीनुमा शाक होता है जिसमें आधारी भूमिगत प्रकन्द होता है । प्रकन्द के आधारी भाग से अपस्थानिक जड़े तथा उपरी भाग से वायवीय पर्णिल शाखाएं विकसित होती

है । वायवीय शाखाएं दो प्रकार की होती हैं । कायिक शाखाएं लम्बी होती है जिन पर लम्बी लेंसाकार पर्ण एकान्तर विन्यासित होती है । पत्तियों का आधारी भाग आच्छद का निर्माण करता है । जनन शाखा पर्ण विहीन होती है जिन पर छोटे सफेद पुष्प पेनीकल में विकसित होते हैं । फल तिकोने कैप्सूल (triangular capsule) तथा पेपरी फलभित्ति (peppery pericarp)युक्त होते हैं । कैप्सूल अनेक बीजयुक्त होते हैं व बीज झिल्लीनुमा एरिल (aril) द्वारा परिबद्ध रहते हैं ।

चित्र 14.7 छोटी इलायची - A. पुष्पी शाखा, B.फल

उपयोगी भाग (Useful Part)

इलायची के बीजों को मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । कैप्सुल परिपक्व होने से पहले तोड़ लिये जाते हैं । तथा इन्हें धूप में सुखा लिया जाता है । बीजों को फलभित्ति में ही रहने दिया जाता है ताकि उनकी खुशबू बनी रहे ।

बीजों स्टार्च (45%), प्रोटीन (10%), रेशे (9%) वाष्पशील तेल (8.5%) तथा विटामिन्स (Vit. A& Vit.C) होते हैं । इलायची की खुशबू व स्वाद वाष्पशील तेलों के कारण होती है जिसके प्रमुख घटक होते हैं - सिनियोल (cineol), टर्पिनियोल (terpineol). टर्पिनीन (terpinene), सेबीनेन (sabinene) तथा लाइमोनेन (limonene) ।

उपयोग (Use)

1. इलायची विभिन्न खाद्य पदार्थो जैसे मिष्ठान, खीर, आइसक्रीम, केक, बिस्कुट इत्यादि को सुगन्धित करने में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. यह गरम मसाले के महत्वपूर्ण घटक होते हैं ।
3. यह लोकप्रिय चवर्णी पदार्थ (masticatory) है जो अकेले या पान में डालकर चबाया जाता है ।
4. यह कॉफी व चाय पेय को सुगन्धित करने तथा तम्बाकू को सुगन्धित करने में भी प्रयुक्त किया जाता हैं।

5. औषधि के रूप में इसका प्रभाव उत्तेजक (stimulant) तथा वातहर (carminative) होता है । दो अन्य किस्में (बड़ी इलायची) जो भारत में उगाई जाती है क्रमशः नेपाल इलायची (Amomum subulatum) एमोममसुबुलेटम तथा बंगाल इलायची (amomum aromaticum) एमोमम एरोमेटिकम छोटी इलायची के विकल्प के रूप में प्रयुक्त की जाती है ।

14.3.9 धनिया (Coriander)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	कोरिएन्ड्रम सेटाइवम (Coriandrum Sativum)
कुल (Family)	–	अम्बेलीफेरी/एपीएसी (Umbelliferae, Apiaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	फल (Fruit)

उत्पत्ति व वितरण (origin and distribution)

धनीय भुमध्यसागरीय (**Mediterranean**) क्षेत्र का पादप है जो सभी उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है । सूडान व इजिप्ट में यह अब भी जंगली पादप के रूप में उगता है । वर्तमान में यह रूस, पोलेण्ड, यूगोस्लाविया, रोमानिया, भारत, तुर्की, अर्जेन्टिना व अमेरिका में उगाया जाता है । मुख्य उत्पादक राज्य हैं - महाराष्ट्र, आक प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान व मध्यप्रदेश हैं । राजस्थान में कोटा, झालावाड़, बूंदी, सपाई माधोपुर व जयपुर में इसकी खेती की जाती है ।

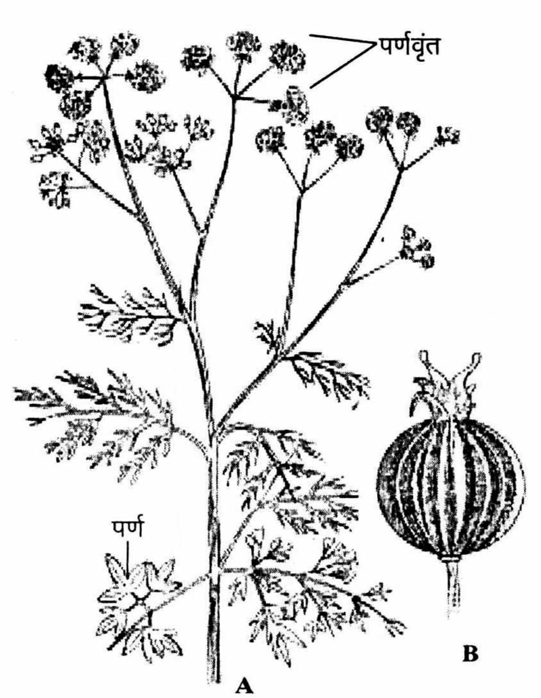

चित्र 14.8 धनिया A. पुष्पक्रम युक्त शाखा B.फल

पादप लक्षण (plant characters)

धनीया वर्षीक शाक (annual herb) है । पादप 2 - 3 फुट लम्बा, शाखित तथा दुर्बल खोखले तनेयुक्त **(hollow)** होता है । पत्तियां - द्विरूपी **(dimorphic),** निचली पत्तियां चौड़ी तथा कम खण्डित जबकि उपरी पत्तियां व्यापक खण्डित होकर बहुपिच्छकी **(decompound)** हो जाती है । पुष्पक्रम - संयुक्त छत्रक **(compound umbel)** प्रकार का होता है । पुष्प छोटे, सफेद व जायांगोपरिक **(epigynous)** । फल क्रिमोकार्प **(cremocrap)** जो दो मोरीकॉर्प **(mericrap)** का बना है जो कार्पोफोर **(carpophore)** द्वारा जुड़े रहते हैं जो अविभाजित रहता है ।

उपयोगी भाग (useful part)

फलो तथा पत्तियों को मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । फल जो क्रिमोकार्प कहलाता है, दो मेरीकार्प का बना होता है । क्रिमोकार्प पीले, भूरे 3-5 मि.मी. व्यास के तथा लम्बवत् उभारों युक्त होते है ।

शुष्क फलों में वसा, प्रोटीन, स्थिर तेल, वाष्पशील तेल **(1.4-1.7%)** तथा विटामिन **A** व **C** उपस्थित होते हैं । वाष्पशील तेल जिसे कोरिएण्ड्रोल **(coriandrol)** कहते है के कारण इसमें सुगन्ध होती है । तेल के प्रमुख घटक d-लिनेलूल (d-linalool) तथा हाइड्रोकार्बन (hydrocarbons) होते हैं ।

उपयोग (use):

1. धनिये की ताजा पत्तियों सब्जी, मांस आदि को सुगन्धित करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं तथा इनकी चटनी बनाई जाती है ।
2. शुष्क फलों को तथा उसके चूर्ण को विभिन्न खाद्यों को सुगन्धित करने के लिए मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. फलों को अचार-मसाले (pickling spice) के घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
4. यूरोपियन देशों में ऐल्कोहॉलिक पेय (gin) को सुगन्धित करने में प्रयुक्त किया जाता है ।
5. धनिये का तेल (coriander oil) का उपयोग इत्र उद्योग, आइसक्रीम, तम्बाकू चॉकलेट तथा औषधि निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है ।

14.3.10 जीरा (Cumin)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	क्यूमिनम साइमिनम (Cuminum Cyminum)
कुल (family)	–	अम्बेलीफेरी/एपीएसी (umbelliferae Apiaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	फल (Fruit)

उत्पत्ति व वितरण (Origin And Distribution)

एकल प्रारूपिक वंश क्यूमिनम **(Cuminum)** भूमध्य सागरीय क्षेत्र **(mediterranian region)** का पादप है । जीरा का उत्पादन माल्टा, मोरक्को, तुर्की, ईरान, रूस, सइप्रस, सीरिया,

इजिप्ट, भारत, जापान, इण्डोनेशिया आदि देशों में किया जाता है । ईरान विश्व का सबसे बड़ा जीरा उत्पादक व निर्यातक देश है ।

भारत में जीरे की खेती लगभग सभी राज्यों में होती हैं । उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात, राजस्थान तथा तमिलनाडु में इसका उत्पादन होता है ।

पादप लक्षण (plant characters) :

पादप छोटा शाखित वार्षिक, उर्ध्व शाक होता है । पादप लम्बाई 20-30 सेमी. तक होती है । पत्तियां अत्यधिक खण्डित **(decompound)** होती है । पुष्प छोटे, सफेद या हल्के बैंगनी रंग के तथा संयुक्त छत्रक **(compound umbel)** में विकसित होते हैं । फल अण्डाकार दीर्घित क्रिमोकार्प जो दो मेरीकार्प का बना होता है । दानो मेरीकार्प द्वारा जुड़े होते हैं जो परिपक्व होने पर एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं ।

चित्र 14.9 जीरा-एक शाखा

उपयोगी भाग (Useful Part).

क्रिमोकार्प (फल) उपयोगी मसाला होता है जो दो मेरिकार्प में विभक्त होता है । भित्ति (pericarp) पर रोम (hair) उपस्थित होते हैं । फलों में वाष्पशील तेल (2-4%) के कारण रूचिपूर्ण खुशबू होती है तथा स्वाद तीखा-कड़वा (bitter) होता है । वाष्पशील तेल का प्रमुख घटक क्यूमिनेल्डिहाइड (Cuminaldehyde) होता है । वाष्पशील तेल के अतिरिक्त इसके बीजों मे स्थिर तेल (10%) भी होता है ।

उपयोग (uses):

1. इसे मसाले के रूप में सूप, सांस, अचार, मीट (मास), केक इत्यादि को सुगन्धित करने में उपयोग किया जाता है ।
2. इसके फलों को सब्जियों व दालों में छोंक लगाने व सुगन्धित करने में प्रयुक्त किया जाता है।
3. भूने हुए (fried) फलों के पाउडर को दही, छाछ, जलजीरा व आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयुक्त किया जाता हैं।

4. जीरे का उपयोग उत्तेजक (stimulant) व वातहर (carminative) के रूप में तथा पेट दर्द (stomachic) उपचार में किया जाता है ।
5. फलों के आसवन से प्राप्त तेल इत्र उद्योग व पेय पदार्थो को सुगन्धित करने में किया जाता है ।

14.3.11 अजवायन (Lovage) :

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	ट्रेकीस्पर्मम अमी (Trachyspermu ammi)
कुल (Family)	–	एपीएसी (Apiaceae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	फल (Fruit)

उत्पत्ति व वितरण (origin and distribution)

अजवायन यूरोप, उत्तरी अफ्रीका एवं एशिया का मूल निवास (native) है । इसकी खेती अमेरीका, रूस, उत्तरी यूरोप, तथा एशिया में की जाती है । भारत में मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश तथा राजस्थान में इसकी व्यापक खेती की जाती है।

पादप लक्षण (Plant Characters) :

अजवायन का पादप दुर्बल, उर्ध्व, वार्षिक शाक है । तना शाखित, पत्तियां संयुक्त, बहुपिच्छकी एवं सगंध होती है । पुष्पक्रम संयुक्त छत्रक प्रकार (compound umbell) का होता है । जिसमें अनेक छोटे, नीले या सफेद रंग के पुष्प व्यवस्थित होते हैं । फल छोटे, वक्रित खुरदरे क्रिमोकार्प (cremocarp) होते हैं ।

उपयोगी भाग (Useful Part):

पादप का उपयोगी भाग क्रिमोकार्प फल होता है जो दो मेरीकार्प (mericarps)का बना होता है । प्रत्येक मेरीकार्प छोटा, वक्रित, धूसर रंग का तथा तीखी गंध युक्त होता है । फलों मे सगंध तेल (essential oil)उपस्थित होता है, जिसका प्रमुख घटक थायमोल (thymol) होता है।

उपयोग (uses)

1. फलों को बिस्कुट, पुड़ी, मठरी आदि में मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. फलों को औषध के रूप मे - पेटदर्द, अपच (idigestion),वातहर (carminative), दमा-खांसी व जोडो के दर्द में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. इसके सगंध तेल (thymol) का उपयोग अमृतधारा, बाम तथा क्रीम आदि में प्रयुक्त किया जाता है ।

14.3.12 मेथी (Fenugreek) :

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	ट्राइगोनेला फीनम ग्रीकम(Tigonella Foenum Graecum,)
कुल (Family)	–	लेग्यूमिनोसी/फेबेसी (Leguminosae/fabaceae)

उपकुल (Sub-Family)	–	पेपियोलेनेटी(Pepilionatae)
उपयोगी भाग (Useful Part)	–	बीज (Seed)

उत्पत्ति व वितरण (Origin And Distribution) :

यह दक्षिणी एशिया का स्थानीय निवासी है । इराकी खेती मुख्य रूप से उत्तरी भारत में की जाती हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characters)

पादप एक वर्षीय शाक (annual herb) है । पत्तियां तीन पत्र की (trifoliate), छोटी एवं संयुक्त तथा खुशबूदार (aromatic) होती है । फल लम्बे शिम्ब (pod) होते हैं, जिनमें स्पष्ट चोंच (beak) पाई जाती है । बीज पीले भूरे रंग के, छोटे तथा गहरी खांचयुक्त (deep furrowed) होते हैं ।

उपयोगी भाग (useful part) :

बीज पादप का मसाले के रूप में उपयोगी भाग है । बीजों में वाष्पशील तेल उपस्थित होता हैं। जिसमें कोलीन (choline) तथा ट्राइगोनेलीन (trigonellene) नामक ऐल्केलाइड उपस्थित होते हैं ।

उपयोग (uses):

1. बीजों को सब्जी, अचार इत्यादि में मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. पत्तियों को चारे एवं सब्जी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. मैथी को वातहर (carminative) जोड़ों के दर्द एवं टॉनिक के रूप में उपयोगी होते हैं ।
4. इसके बीज अग्नाशय की ß कोशिकाओं में इन्सुलिन संश्लेषण को प्रेरित करते हैं। इसलिए मधुमेह (diabetes) नियन्त्रण में लाभकारी है ।

14.3.13 राई (Rai) :

वानस्पतिक नाम (botanical name)	–	ब्रेसिका जन्सिया (brassica juncea)
कुल (family)	–	ब्रेसिकेसी (Brassicaceae)
उपयोगी भाग (useful part)	–	बीज (seed) ।

उत्पत्ति व वितरण (origin and distribution) :

यह यूरोप तथा पश्चिमी एशिया का स्थानीय पादप है । ब्रेसिका की कई जातियां राई के रूप में उगाई जाती है जैसे -

ब्रे. जन्सिया **(B. juncea)**-राई ।

ब्रे. नाइग्रा **(B.Nigra)** काली राई।

ब्रे. एल्बा **(B.alba)**-सफेद राई, ।

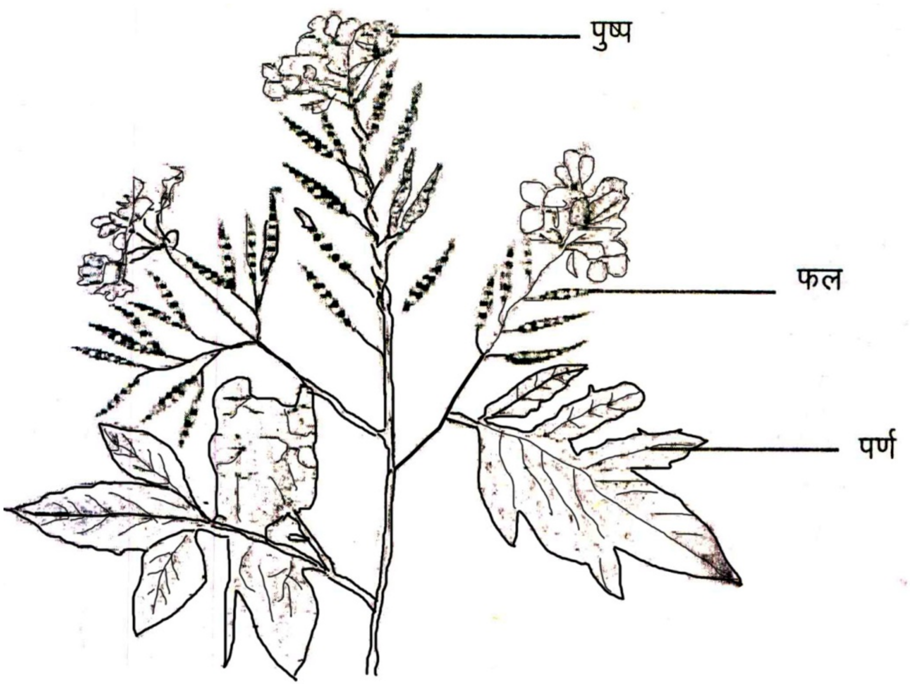

चित्र 14.10 : राई - फलयुक्त शाखा

एक मत के अनुसार ब्रेसिका नाइग्रा (b. nigra) की उत्पत्ति एशिया माइनर क्षेत्र से मानी जाती है जहां से इसका प्रसार यूरोप, अफ्रीका व भारत में हुआ। ब्रे जन्सिया (b. juncea) की उत्पत्ति मध्य - हिमाचल क्षेत्र में हुई तथा यहां से इसका प्रसार भारत व चीन को हुआ । ब्रे एल्बा (B. alba) की उत्पत्ति भूमध्य सागरीय क्षेत्र से हुई है ।

भारत में राई की कृषि मुख्यतः उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल तथा तमिलनाडु में की जाती है । राजस्थान में इसकी खेती अलवर, भरतपुर, सवाई माधोपुर तथा श्री गंगानगर जिलों में की जाती है ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters):

पादप उर्ध्व, 3-6 फुट उंचा वार्षिक शाक होता है । पत्तियां सरल एकान्तर, कटे-फटे किनारों युक्त तथा वीणाकार होती है । पुष्पक्रम कोरिम्बनुमा असीमाक्ष प्रकार का होता है । पुष्प छोटे, पीले रंग के तथा संवृन्त होते हैं । फल फलीनुमा सिलिकुआ (siliqua) प्रकार का तथा लम्बी चोंच युक्त (beaked) होता है । बीज छोटे, गोल, भूरे-पीले या काले होते हैं जो आभाषी पट पर लगे होते हैं ।

उपयोगी भाग (useful part) :

बीजों को मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । बीजों में 'सिनालबिन' (sinalbin) नामक ग्लूकोसाइड उपस्थित होता है जिसकी वजह से इनमें तीखी (pungent) गन्ध होती है । प्रत्येक फली में 20-30 बीज होते है जिनका आवरण गहरा भूरा या काला होता है परन्तु बीज अन्दर से सफेद या पीले होते हैं । बीजों में 27-30 प्रतिशत तेल होता है ।

उपयोग (Uses)

1. बीजों को आचार व सब्जियों में मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. बीजों को पीसकर पानी में पेस्ट तैयार की जाती है जिसे उत्तेजक (stimulant) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. बीजों से वसा तेल प्राप्त किया जाता है जो खाना पकाने में प्रयुक्त होता है ।
4. तेल औषध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जो शरीर की जलन कम करने (counter irritant) का कार्य करता है ।

बोध प्रश्न :

1 बहुविकल्पी प्रश्न -

1. किस पादप की वर्तिका व वर्तिकाग्र उपयोगी उत्पाद हैं -
   (अ) ऑसिमम (ब) ऐलिएन्थस
   (स) क्रोकस (द) आसाफोइटिडा । ()
2. दालचीनी का वानस्पतिक नाम है -
   (अ) सिनेमोमम टमाला (ब) सिनमोमम जिलेनिकम
   (स) इलेटेरिया कार्डामोमम (द) उपरोक्त कोई नहीं ।
3. मसालों का राजा' कहलाता है-
   (अ) मिर्च (ब) काली मिर्च
   (स) सहजीरा (द) जीरा ।
4. हींग में उपस्थित होता है -
   (अ) एरूसिक अम्ल (ब) फेरूलिक अम्ल
   (स) सिनामिक अम्ल (द) उपरोक्त कोई नहीं ।
5. किस पादप की छाल से 'केशिया तेल' प्राप्त होता है-
   (अ) सिनेमोम टमाला (ब) केशिया फिस्ट्रूला
   (स) सिनकोना स्पी. (द) उपरोक्त में से कोई नहीं ।

II अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न -

1. भारत में कालीमिर्च का सर्वाधिक उत्पादन किस राज्य में होता है?
   ……………………………………………………………………………………………
2. हींग का वानस्पतिक नाम तथा सक्रिय सत्व क्या है?
   ……………………………………………………………………………………………
3. केसर का वानस्पतिक नाम व कुल बताइये?
   ………………………………,……………………………………………………………….
4. भारत से निर्यात किये जाने वाले दो मसालों के नाम बताइये जो सबसे अधिक विदेशी मुद्रा का *अर्जन करते हैं?*
   ……………………………………………………………………………………….

14.4 इकाई सारांश (unit summary)

मसालों के इतिहास वानस्पतिक उत्पादों में सबसे रोचक है । प्राचीन काल में मसाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार एवं भौगोलिक खोजों के लिए उत्तरदायी रहे हैं । मसालों की खोज में यूरोपियन अन्वेषकों द्वार अनेक नये महाद्वीपों एवं समुद्री मार्गों की खोज की गई । मसाले ही प्रथम पादप उत्पाद है, जिनका पूर्व तथा पश्चिम के मध्य व्यापार प्रारम्भ हुआ ।

अठारहवीं के प्रारम्भ से ही मसालों की खेती विश्व के विभिन्न भागों में की जाने लगी थी । यद्यपि अधिक मसाले एशिया क्षेत्र से प्राप्त होते हैं, परन्तु कुछ मसाले, जैसे - वेनिला आलस्पाईस, जीरा, धनिया, सरसों, लौंग, जायफल आदि अमेरिका, अफ्रीका तथा ब्राजील आदि देशों में भी उगाए जाते हैं ।

मसाले प्रायः तीखे स्वादयुक्त तथा खुशबूदार होते हैं, जिन्हें भोजन में पकाने से पूर्व डाला जाता है । ऐसे मसाले जिनका स्वाद अधिक तीखा होता है तथा प्रायः पके हुए भोजन में डाला जाता है, कान्डिमेन्ट कहलाते हैं । मसालों को भोजन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि इनमें पोषक तत्वों का अभाव होता है । मसालों में पाचक शक्ति बढ़ाने की क्षमता तथा औषधीय गुण होते हैं, इसलिए इन्हें 'खाद्य अनुबन्ध' (food adjunts) कहा जाता है । इनका उपयोग सामान्यत: भोजन को सुगंधित एवं रूचिपूर्ण करने के लिए कहा जाता है । मसाले विभिन्न पादप भागों, जैसे - प्रकन्द (अदरक, हल्दी, हींग), -छाल (दालचीनी), पत्नी (तेजपात), पुष्प (लौंग, केसर), फल (मिर्च, कालीमिर्च, धनिया, जीरा) तथा बीजों (इलायची, मेथी, राई) आदि से प्राप्त होते हैं । अचार, सब्जियों, सांस, चटनी इत्यादि में इनका विशिष्ट प्रयोग होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न मसालों को औषध के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है ।

विभिन्न मसालों में विशिष्ट खुशबू तथा उसके औषधीय गुण उनमें उपस्थित ग्लूकोसाइड, श्लेष्म, रेजीन, तेल, वाष्पशील तेल तथा रंजकों के कारण होती है ।

14.5 शब्दावली (Terminology)

मसाले (Spices)- भोजन को सुगन्धित व सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाले पादप उत्पाद जिन्हें भोजन में पकाने से पूर्व डाला जाता है ।

कानिउमेन्ट (Condiment) - वे मसाले जो तीखे स्वाद वाले होते हैं तथा सामान्यतः पके भोजन में डाले जाते हैं ।

सिनिग्रिन (sinigrin) - सरसों के बीजों में उपस्थित ग्लूकोसाइड ।

वाष्पशील तेल (Volatile oil) - रंगहीन, स्वादहीन, तरल व खुशबूदार पदार्थ ।

कर्कुमिन (Curcumin) - पीला-नारंगी किटोनिक वर्णक जो हल्दी के रंग के लिए उत्तरदायी है । **यूजिनोल (Euginol)** - लौंग तथा तेजपात, दालचीनी आदि में उपस्थित वाष्पशील तेल ।

कार्म (Corm) - भूमिगत, रूपान्तरित तना, उदाहरण - केसर

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ (references)

(1) Bender, Kumar	–	Economic Botany, Rastogi Publication, Meerut
(2) Sen, s.	–	Economic Botany, New Central Book Agency, Kolkata
(3) Panday, B.P.	–	Economic Botany, s. Chand, New Delhi
(4) त्रिवेदी शर्मा, धनखड़	–	पारिस्थितिकी एवं आर्थिक वनस्पति विज्ञान, रमेश बुक डिपो, जयपुर

14.7 बोध के प्रश्न के उत्तर (Answers)

I. **बहु विकल्पी प्रश्न** -

1. (स)
2. (ब)
3. (ब)
4. (ब)
5. (अ)

II. अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न -

1. केरल
2. फेरूला एसेफोटिडा फेरूलिक अम्ल
3. क्रोकस सेटाइवस (इरिडेसी)
4. कालीमिर्च एवं इलायची

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise)

1. राजस्थान में उगाए जाने वाले किन्हीं तीन मसालों के वानस्पतिक लक्षण, कृषि, उपयोगी भाग तथा उपयोगों का वर्णन कीजिए ।
2. मसालों को परिभाषित कीजिए, उनकी रासायनिक संगठन तथा स्त्रोत बताइए ।
3. टिप्पणी लिखिए -
   (अ) कालीमिर्च
   (ब) अजवाइन
   (स) दालचीनी
   (द) लौंग ।

इकाई 15

औषधीय पादप

(Medicinal Plants)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य (objective)

15.1 प्रस्तावना (introduction)

15.2 सामान्य विवरण (general description)

15.2.1 औषधीय महत्व में सक्रिय सत्व (active principle) ।

15.2.2 स्त्रोत (sources)

15.3 प्रमुख औषधीय पादपों का विवरण (description of major medicinal plants)

15.3.1 सर्पगन्धा

15.3.2 अश्वगंधा

15.3.3 सफेद मूसली ।

15.3.4 नीम

15.3.5 ऐलो

15.3.6 सेना

15.3.7 धतूरा

15.3.8 ईसबगोल

15.4 इकाई सारांश (unit summary)

15.5 शब्दावली (terminology)

15.6 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference)

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Aunswers)

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (exercises)

15.0 उद्देश्य (Objective)-

1. प्रस्तुत इकाई के मुख्य उद्देश्य हैं -
2. औषधीय पादपों के इतिहास की जानकारी प्राप्त करना ।
3. औषधीय पादपों के सक्रिय सत्वों की जानकारी प्राप्त करना ।
4. विभिन्न पादप औषधीय के स्त्रोत एवं औषध निष्कर्ष का अध्ययन करना ।
5. विभिन्न औषधीय पादपों के प्रवर्धन एवं औषधीय महत्वों की जानकारी प्राप्त करना ।

15.1 प्रस्तावना Introduction-

वनस्पति का औषधियों के रूप में प्रयोग मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही किया जाता रहा है । ऐसा माना जाता है कि सबसे पूर्व (3500 b. c.) चीन में प्राकृतिक वनस्पति को औषधियों के स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा था । विभिन्न सभ्यताओं में पादपों के औषधीय उपयोग से सम्बन्धित मेटीरीया मेडिका (meteria medica) तैयार किये जाने के प्रमाण हैं । पौराणिक इजिप्त पुस्तक पेपाइरी (papyri), जो 1600.B. C. में लिखी गई थी में अनेक औषधीय पादपों तथा रोगों के उपचार की विधियों का ब्योरा मिलता हैं । एरिस्टोटल (Aristotle) तथा थीयोफ्रास्टस (Theophrastus) आदि ग्रीक विद्वानों ने अपने लेखों (writings) में अनेक औषधीय पादपों का विरतृत वर्णन किया है ।

भारत के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (Rigveda) में भी वनस्पति का औषधियों के रूप में उपयोग का उल्लेख मिलता हैं । ऋग्वेद के पश्चात् रचित ग्रन्थ अथर्ववेद (atharvaveda) में भी अनेक पादपों के औषधीय उपयोग वर्णित है । भारत में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति 3000 वर्षो से प्रयुक्त की जा रही है जो पौधों के औषधीय गुणों पर आधारित है । चरक संहिता (charak samhita) तथा सुश्रुत संहिता (susrut samhita) भारतीय औषध पादपों तथा रोग उपचार पर पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराते हैं । ये दोनों ग्रन्थ आज भी स्थानीय औषधीय पादपों के साहित्य का कोष (teasures of medicinal plants) माने जाते हैं, जिनमें 700 से अधिक औषध पादपों का विस्तृत विवरण दिया गया है । 15वी शताब्दी तक (1500 A. D. तक) वनस्पति विज्ञान तथा विशेष रूप से औषधीय पादपों के क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हुई । 16वी शताब्दी में अनेक विद्वान औषधज्ञों (Herbalists) ने महत्वपूर्ण औषध ग्रन्थों (Herbals) की रचना की । पिछले कुछ दशकों से वनस्पति से प्राप्त औषधियों के अनुसंधान में रूचि बढ़ी है तथा उनकी उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है । औषध तथा औषध पादपों, जिनकी चिकित्सा क्षेत्र में औषध क्षमता या सामर्थ्य (efficacy) स्थापित हो चुकी है, के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्रमाणिक पुस्तकों (authentic books) में उपलब्ध है जिन्हें फार्मेकोपिया (pharamacopoeia) कहते हैं । इन पुस्तकों को समय-समय पर संशोधित कर अपडेट (update) किया जाता है । अब तक 1500 से अधिक पौधे औषधि पादपों (durg plants) के रूप में स्थापित हो चुके हैं ।;

15.2 सामान्य विवरण (general description) -

विभिन्न पादप महत्वपूर्ण औषधियों के स्त्रोत हैं तथा ऐसे पादप जिनसे औषध **(drugs)** प्राप्त की जाती है, औषधीय पादप **(medicinal plants or drug plants**) कहलाते हैं । विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत औषधीय पादपों के विभिन्न पहलुओं **(aspects)** जैसे - इतिहास, संग्रहण, संरक्षण, औषध निष्कर्षण व निर्माण आदि का अध्ययन किया जाता है, फार्मेकोग्नोसी **(Pharmacognosy)** कहलाती है तथा पादप औषधियों के शरीर पर होने वाले प्रभावों के अध्ययन को फार्मेकोलोजी **(Pharmacology)** कहते हैं ।

15.2.1 औषधीय महत्व के सक्रिय सत्व (Active principle)

अधिकतर औषधीय पादप जंगली पादप **(wild plants)** के रूप में उगते हैं तथा कुछ अन्य उगाये जाते हैं । आयुर्वेदिक चिकित्सकों द्वारा इन्हें उपयोग में लिया जाता है तथा सामान्य भाषा में 'जड़ी - बूटी **(Jari-Butis)** के नाम से जाना जाता है । औषध पादप की औषधीय क्षमता **(medicinal value)** उसमें उपस्थित विशिष्ट रासायनिक पदार्थो के कारण होती है जिन्हें सक्रिय सत्व **(Active Principle)** कहते हैं । इनमें प्रमुख है - ऐल्केलॉइड **(Alkaloids),** ग्लाइकोसाइड्स **(Glycosides),** रेजीन **(Resins)** आलिओरेजीन **(Oleoresins),** वाष्पशील तेल **(Volatile Oils**) गोंद **(Gums),** टेनिन **(Tennins),** इत्यादि । इन पदार्थो में कुछ विष **(Poisons)** होते हैं जबकि अन्य मादक पदार्थ **(narcotic)** होते हैं, जो अधिक मात्रा में सेवन किये जाने पर हानिकारक होते हैं । यदि इनका अल्प मात्रा में उपयोग किया जाता है तो ये मानव की शरीर क्रियात्मक क्रियाओं पर औषध (drug) का कार्य करते हैं ।

पादप औषध के सक्रिय सत्व **(Active Principle)** सामान्यत: संचयी भागों में संगहीत होते हैं । ये मुख्यतः जड़, छाल, बीज तथा पत्तियों में अधिकता से पाये जाते हैं । सामान्यत: पुष्प व काष्ठ उत्तक औषधीय दृष्टि से निष्क्रिय होते है ।

औषधीय पादपों एवं औषधियों का वर्गीकरण औषधियों की रासायनिक प्रकृति एवं औषधि के स्त्रोत अर्थात् पादप भाग जिससे औषध प्राप्त होती है, के आधार पर किया जाता है।

तालिका :प्रमुख औषधीय **पादप एवं** औषधि **स्त्रोत**

	सामान्य नाम **(Common Name)**	वनस्पति नाम **(Botanical Name)**	कुल **(Family)**
	मूल तथा अन्य भूमिगत भाग (Root And Other Underground Parts)		
1.	सफेद मूसली (Safed Musli)	क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम (Chlorophytem Borivilianum)	लिलिएसी
2.	अश्वगंधा (Ashwagandha)	विथानिया सोग्नीफेरा (Withania Somnifera)	सोलेनेसी
3.	सर्पगन्धा **(Rauwolfia)**	रौवॉल्किया सर्पेन्टिना **(Rauvolfia Serpentine)**	एपोसाइनेसी
4.	सतावर (Asparagus)	एस्पेरागस रेसीमोसस (Asparagus Racemosus)	लिलिएसी
	छाल से प्राप्त औषध **(Drugs obtained from bark)**		
5.	अर्जुन **(Arjun)**	टर्मिनेलिया अर्जुना **(Terminalia Arjuna)**	कम्बरेटेसी
6.	कुनैन **(Quinine)**	सिनकोना स्पी. **(Cinchona Spp.)**	रूबीएसी

7.	टेक्सस **(Texas)**	टेक्सस बकेटा **(Texus Buccata)**	टैक्सेसी (जिम्नोस्पर्म)

स्तम्भ व काष्ठ से प्राप्त औषध (Drugs obtained from stem & wood)

8.	इफेड्रा **(Ephera)**	इफेड्रा इक्विसिटीना **(Ephedra Equisetina)**	इफेड्रेसी (जिम्नोस्पर्म)
9.	चन्दन **(Sandalwood)**	सेन्टेलम एल्बम **(Santalum Album)**	सेन्टेलसी

पत्तियों से प्राप्त औषध **(Drugs obtained from leaves)**

10.	एलो (Aloe)	एलो बार्बाडेन्सिस (Aloe Barbadensis)	लिलिएसी
11.	बेलाडोना (Belladona)	एट्रोपा बेलाडोना (Atropa Belladona)	सोलेनेसी
12.	तिलपुष्पी (Digitalis)	डिजिटेलिस परप्यूरिया -स्क्रोफुलेरिएसी (Digitalis Purpurea)	
13.	तुलसी (Holy basil)	ओसिमम सेक्टम (Ocimum Sanctum)	लेमिएसी
14.	टायलोफोरा (Tylophora)	टायलोफोरा इण्डिका -एस्क्लिपियाडेसी (Tylophora Indica)	
15.	सैना (Senna)	केशिया अंगुस्टिफोलिया (Cassia Angustifolia)	फेबेसी

फलों और बीजों प्राप्त औषध (Drugs obtained from seed & fruits)

16.	बहेड़ा (Bahera)	टर्मिनेलिया बेलेरिका	कम्बरेटेसी
17.		(Terminallia Bellerica)	
18.	हरड़ (Haritaki)	टर्मिनेलिया चुबेला	-Do-
19.		(Terminalia Chebula)	
20.	आंवला (Amla)	एम्बलिका ऑफिसिनेलिस	यूफार्बिएसी
21.		(Emblica Officinalis)	
22.	अमलतास (Cassia)	केशिया फिस्टूला	फेबेसी
23.		(Cassia Fistula)	
24.	नीम (Neem)	एजाडिरेक्टा इण्डिका	मिलिएसी
25.		(Azadirachata Indica)	
26.	ईसबगोल	प्लाण्टेगो ओबेटा	प्लैन्टेजिनेसी
27.		(Plantago Ovata)	
28.	अफीम (Poppy)	पैपेवर सोम्नीफेरम	पैपेवरेसी

15.3 प्रमुख औषधीय पादपों का विवरण (Description of major medicinal plants)

15.3.1 सर्पगन्ध (Rauwolfia)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	रौवॉल्फिया सर्पन्टाइना (Rauwolfia Serpentina)
कुल (Family)	–	ऐपासाइनेसी (Apocynaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	जड़ की छाल व जड़

उत्पत्ति व वितरण (Origin And Distribution)

रौवॉल्फिया भारतीय उत्पत्ति का पादप है । चरक संहिता में इसका विवरण संस्कृत नाम सर्पगन्धा **(Surpagandha)** के अन्तर्गत किया गया है, जो सर्पदंश **(Snakebite)** उपचार में प्रयुक्त किया जाता था । 17वी शताब्दी में फ्रांस के वनस्पतिज्ञ प्लूमियर **(Plumier)** ने जर्मन चिकित्सक लियोनार्ड रौवाल्फ **(Leonard Rauwolf)** के सम्मान में इसका नामकरण रौवॉल्फिया **(Rauwolfia)** किया ।

यह पादप भारत, बांग्लादेश, बर्मा, श्रीलंका, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया तथा मलेशिया में जंगली पादप के रूप में उगता है । भारत में राजस्थान को छोड़कर हिमाचल के तराई क्षेत्र से केरल तक सभी राज्यों में पाया जाता है । इसे आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार उत्तर प्रदेश, आक प्रदेश, महाराष्ट्र, कनार्टक व केरल में इसे व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाता है ।

वानस्पति लक्षण (Botanical Characters)

रौवॉल्फिया की भारत में पांच जातियां पाई जाती है - रौ. सर्पेन्टिना **(R. serpentina)**, रौ. ट्रेटाफिला - **(R. tetraphylla)**, रौ वोमिटोरिया **(R. Vomitoria)**, रौ. डेन्सीफ्लोरा **(R. densiflora)**, रौ. केनेसेन्स **(R. Canescens)**।

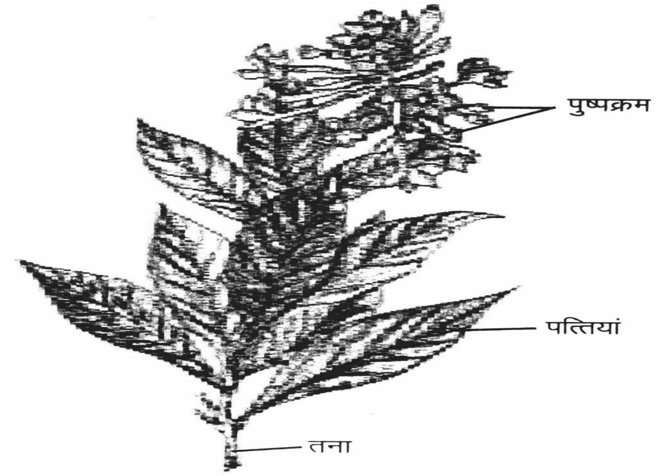

चित्र 15.1 सर्पगंधा - पुष्पीय शाखा

इनमें औषध प्राप्ति की दृष्टि से रौ. सर्पेन्टाइना सबसे महत्वपूर्ण है । रौ. टेट्राफिला तथा रौ. वोमिटोरिया से क्रमशः अमेरिका व अफ्रीका में औषध निष्कर्षण किया जाता है । रौ. सर्पेन्टाइना का पादप बहुवर्षीय, सदाबहार तथा उपेक्षुप (undershrub) होता है । जड़े कन्दिल (tuberous) टेढीमेढी तथा झुर्रीदार (wrinkled) होती है । जड़ की छाल का रंग धूसर, पीला या भूरा होता है । पत्तियां सरल, चिकनी, लैंसाकार या दीर्घवृतीय तथा चक्रीय व्यवस्थित होती हैं । प्रत्येक चक्र में 3-4 पत्तियां होती हैं । पुष्प कक्षीय (AXILLARY) अथवा समीमाक्ष पुष्पक्रम में उत्पन्न होते हैं । पुष्प सहपत्री, उभयलिंगी, जायांगधर (hypogynous) तथा सफेद या गुलाबी रंग के होते हैं । फल अण्डाकार, काले-बैंगनी ड्रूप (drupe) होते हैं ।

प्रवर्धन (Cultivation)

हल्की दोमट व जल निकास वाली मृदा में यह अच्छी वृद्धि करता है । इसके अतिरिक्त $15\text{-}40^0$ तापमान 150-300 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुकूल होते हैं ।

पौधों को बीजों द्वारा पौध तैयार कर उगाया जाता है । इसके अतिरिक्त इसका मूल तथा स्तम्भ कल्मों (root & stem cutting) द्वारा भी प्रवर्धन किया जाता है । बीजों अथवा कल्मों को पंक्तियों में रोपा जाता है । पौधों के मध्य की दूरी 50-60 सेमी. तथा पंक्तियों के मध्य की दूरी 90-100 सेमी. रखी जाती है । फसल की बुवाई (sowing) सामान्यत: वर्षा ऋतु में की जाती है । $1^{1/2}$-2 वर्ष में फसल औषध निष्कर्षण हेतु तैयार हो जाती हैं

उपयोगी भाग (Useful Part)

पौधों को जड़ों सहित उखाड़ लिया जाता है । यह कार्य उत्तरी भागों में नवम्बर माह में जबकि दक्षिण भारत में जनवरी-फरवरी में किया जाता है । जड़ों को काट कर पृथक कर लिया जाता है । तथा इन्हें धोकर D में सूखा लिया जाता है ।

जड़ों में ऐल्केलॉइड की कुल मात्रा 1.7-3% तक होती है जिसका लगभग 90% भाग छाल में होता है । पत्तियां व तने में ऐल्केलॉइड्स की मात्रा अत्यधिक कम होती है ।

रौवॉल्फिया की विभिन्न जातियों में 80 से भी अधिक ऐल्केलॉइड्स पृथक किये जा चुके हैं । इनमें रिसर्पिन (reserpine C_{33} H_{40} N_2 O_9) औषध के रूप में सबसे महत्वपूर्ण है । अन्य महत्वपूर्ण ऐल्केलॉइड्स हैं - रिसर्पिनाइन (Reserpinine), रिससिनेमाइन (rescinnamine), डिसर्पिडीन (deserpideine), डिसर्पिडाइन (deserpideine), सर्पेन्टाइन (serpentine), सर्पेन्टाइनिन (serpentineine), एजमेलीन (ajmalin), एजमेलीनीन (ajmalinine), आइसोएजमेलीन (isoajmaline) तथा रौवॉल्फेनीन (rauwolfanine) आदि ।

उपयोग (use) -

1. रिसर्पिन (reserpine) का उपयोग अनिद्रा (insomnia), मिर्गी (epilepsy), तनाव, चिड़चिड़ापन तथा मानसिक रोगों में किया जाता है ।
2. सर्पेन्टाइन (serpentine) का उपयोग उच्च रक्तचाप (high blood pressure) में किया जाता है, जो एड्रीनेलिन (adrenaline) व नौरएड्रीनेलिन (nor- adrenaline) हार्मोन की मात्रा नियन्त्रित कर रक्तचाप कम करता है ।

3. यह गर्भाशय संकुचन (uterine contraction) प्रेरित करता है इसलिए प्रसव के समय प्रसूता को दिया जाता है ।
4. इसकी पत्तियों का निचोड़ (extract) आंख के कोर्निया को अपारदर्शिता (opactity of cornea)के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है ।
5. सर्प व बिच्छू दंश के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है ।

15.3.2 अश्वगंधा (Ashawgandha)

वानस्पतिक नाम (botanical name)	–	विथानिया सोम्नीफेरा (withania somnifera)
कुल (family)	–	सोलेनेसी (solanaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	मूल (root)

उत्पत्ति व वितरण (Origin and distribution) -

यह भारतीय उत्पत्ति का पादप है तथा उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में विस्तृत रूप से पाया जाता है । भारत पाकिस्तान, श्रीलंका, भूमध्यसागरीय क्षेत्र तथा दक्षिणी अफ्रीका में सामान्य रूप से उगता है । भारत में राजस्थान पंजाब तथा गुजरात के शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में सामान्य जंगली पादप (wild plant) के रूप में उगता है । राजस्थान कमे उत्तरी - पश्चिमी मरूक्षेत्र में यह बहु तायत से उगता है । इसके अलावा नागोर व बाड़मेर जिलों में इसे व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाता है ।

वानस्पति लक्षण (Botanical Characteras)-

पादप उर्ध्व, शाखित लगभग 2-5 फूट उंचा अर्धक्षुप **(undershrub)** होता है : -पादप बारीक सफेद रोमों द्वारा आच्छादित होता है । जड़ें मांसल तथा हल्के पीले या भूरे रंग की होती है । ' सरल, अण्डाकार व रोमयुक्त होती है । पुष्प हरे-पीले रंग के, कक्षस्थ ससीमाक्ष अथवा एकल कक्षीय पुष्पक्रम में विकसित होते हैं । पुष्प पंचतयी, द्विलिंगी तथा जांयागधर **(hypogynous)** होते हैं । फल छोटे, गोल होते हैं तथा बेरी **(berry)** कहलाते है । अपरिपक्व फल हरे रंग के होते हैं जो परिपक्व होने पर लाल रंग के होते हैं । फल कागजी उत्तरवर्धी बाहय दलपुंज **(accrescent**) द्वारा ढके रहते हैं।

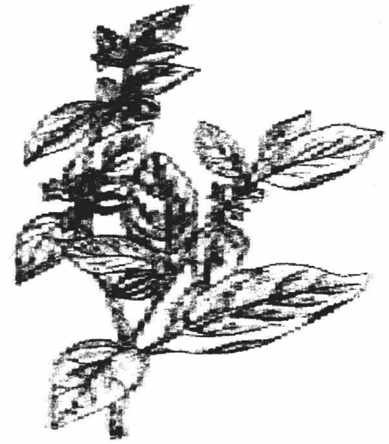

चित्र 15.2 : असगंध - फलयुक्त शाखा

प्रवर्धन (Cultivation)-

यह पादप उष्ण व शुष्क जलवायु के प्रति अनुकूलित हैं । इसकी खेती के लिए रेतीली या हल्की दोमट मृदा उपयुक्त रहती है । फसल की बुवाई के लिए खेत को तैयार करने तथा सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है । फसल को बीजों द्वारा वर्षा ऋतु में (अगस्त-सितम्बर) में बोया जाता है । इसकी फसल लगभग 6 माह में तैयार हो जाती है । ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में (मार्च-अप्रैल) खेत में हल चलाकर पौधों को उखाड़ लिया जाता है । मांसल जडों को तने से काटकर पृथक कर लिया जाता है । जड़ों को धोकर टुकड़ों में काट लिया जाता है तथा धूप में सूखने के लिए डाल देते हैं ।

उपयोगी भाग (Useful Part) -

पादक की शुष्क मूलों से औषध प्राप्त की जाती है । मूल हल्के पीले या भूरे रंग की खुरदरी, मांसल व भंगुर होती है । ताजा जडों (fresh undried roots) से घोड़े जैसी गन्ध आती है, जिससे इसको असंगध कहते हैं । शुष्क मूल को औषध के रूप में प्रयुक्त करते हैं । मूल में ऐल्केलॉयड्स (alkaloids) उपस्थित होते हैं जिनके कारण इसमें औषधीय गुण होते हैं । सोम्नीफेरिन (Somniferin), सोम्नीफेरिनिन (somniferinine) तथा विथैनेनिन (withananine) आदि प्रमुख ऐल्केलॉइड्स मूल से पृथक किये गये हैं ।

उपयोग (Uses) -

शुष्क मूलों को कूट कर या पीस कर चूर्ण बनाया जाता है तथा इसे सीधे ही औषध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

1. इससे आयुर्वेदिक टॉनिक 'असगंध पाक' बनाया जाता है जो वृद्धावस्था अथवा जीर्णता को स्थगित करने में सहायक होता है ।
2. यह चर्म रोग जैसे - अल्सर, फोड़े आदि में लाभदायक होता है ।
3. यह बलवर्धक एवं वीर्यवर्धक होता है तथा सभी प्रकार की दुर्बलता दूर करता है ।
4. स्नायु-तंत्र दुर्बलता तथा श्वेत प्रदत उपचार में लाभदायक होता है ।
5. जोड़ों के दर्द में लाभदायक होता है ।

15.3.3 सफेद मूसली (Safed Musli) -

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	– क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम
	– (Chlorophytem Borivillianum)
कुल (Family)	– लिलिएसी (Liliaceae)
उपयोगी पादप भाग	– कन्दिल मूल (Tuberous Root)

उत्पत्ति एवं वितरण (Origin and distribution)

यह भारत का स्थानीय पादप है जो प्राकृतिक रूप से आसाम से गुजरात तक जंगलों (forests) में उगता पाया जाता है । सफेद मूसली का अनेकों आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा यूनानी दवाइयों के निर्माण में वर्षो से उपयोग किया जाता रहा है । इसके कारण अत्यधिक दोहन किमया गया जिसके फलस्वरूप पादप संकटग्ररत् जातियों की श्रेणी में आ गया था ।

परन्तु इसकी मांग व आपूर्ति में अत्यधिक अन्तर होने के कारण अब इसकी व्यावसायिक स्तर पर खेती की जाने लगी है ।

भारत में सफेद मूसली की आठ जातियां पाई जाती है जिनमें से केवल क्लो. बोरिविलिएनम **(Ch. borivilliamum)**, क्लो. अरूडीनेशियम **(Ch. arundinaceum)** तथा क्लो. ट्यूबरोसम **(Ch. tuberosum)** का औषधियों में उपयोग किया जाता है । इनमें से केवल क्लो. बोरिविलएनम की व्यावसायिक खेती की जाती है ।

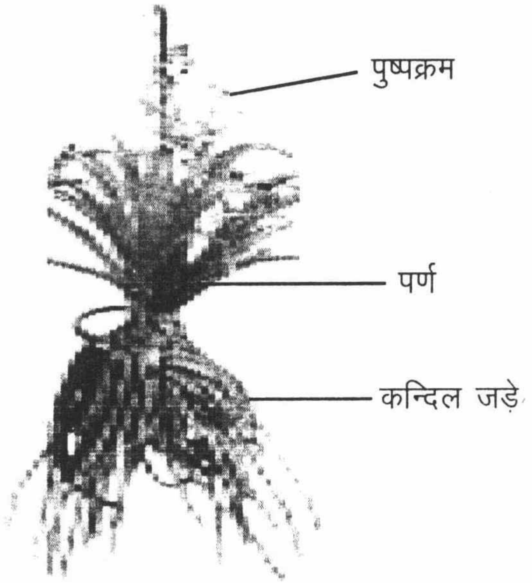

चित्र 153 : सफेद मूसली का पादप

वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters)-

पादप वार्षिक शाक (annual herb) तथा लगभग 1.5 फुट तक उंचा होता है । इसका तना हासित एवं डिस्कनुमा (reduced and discoid) होता है जिसे डिस्क या क्राउन (disc or crown) कहते हैं । डिस्क के आधारी भाग से मूलगुच्छ (tuft) के रूप में उत्पन्न होती है । जड़े कन्दिल (tuberous) प्रकार की होती है जिन्हें फिन्गर्स (fingers) भी कहा जाता है । कन्दिल जड़े या फिन्गर्स जमीन में लगभग 1० इंच गहराई तक जाती हैं । पत्तियां मूलज (radicle) प्रकार की होती है जो डिस्क के उपरी भाग पर संलग्न रहती है । पत्तियां लम्बी, उर्ध्व, सरल व लैंसाकार (lancceolate) होती है । पुष्प सफेद रंग के होते हैं जो उर्ध्व व सघन असीमाक्ष (racemose) पुष्पक्रम में व्यवस्थित होते हैं ।

संवर्धन (Cultivation) -

सफेद मूसली का संवर्धन कायिक प्रवर्धन (vegetative propagation) द्वारा किया जाता है । हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल तथा जम्मु-कश्मीर राज्यों के उपरी क्षेत्रों को छोड़कर इसकी खेती सम्पूर्ण भारतवर्ष के उष्ण तथा आर्द्र क्षेत्रों में की जा सकती है । इसके लिए अच्छी जल निकास वाली रेतीली दोमट मृदा (sandy loan soil) जिसमें ह्यूमरस की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो उपयुक्त रहती है ।

बीज के लिए फिन्गर्स (fingers or tubers) का उपयोग किया जाता है । बीज के लिए फिन्गर्स का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इनके साथ डिस्क अथवा क्राउन का कुछ भाग अवश्य संलग्न हो । फिनार्स को जमीन में उर्ध्व स्थिति में (क्राउन वाला भाग ऊपर तथा फिनार्स वाला भाग नीचे) रोप दिया जाता है । यह कार्य जून-जुलाई में किया जाता है तथा अक्टूबर-नवम्बर में जब पौधों के पत्ते सूख कर गिर जाते हैं, उसके पश्चात् (लगभग एक माह बाद) कन्दों को खोदकर निकाल लिया जाता है ।

उपयोगी भाग (Useful Part) -

परिपक्व कन्दिल मूलों का रंग गहरा भूरा होता है तथा ये एक समान मोटाई की अथवा उपर से नीचे को क्रमशः थोड़ी संकरी होती है । इन्हें धोकर, छीलकर तथा सुखाकर पाउडर बना लिया जाता है, जिसे औषध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसकी कन्दिल जड़ों में मुख्यतः काबोहाइड्रेट (40-45%), प्रोटीन (7-10%), रेशे (3-4%), खनिज लवण, विटामिन्स (A,B,C,D,E,or K) एल्केलाइड्स (लगभग 27) उपस्थित होते हैं । पादप स्टीराइड्स की मात्रा 17% तक होती है जिनमें मुख्यत - सेपोनिन (saponine), स्टिमेस्टिराल (stigmasterol) तथा हेकोजेनिन (hecogenin) आदि हैं । जिनके कारण इसके औषधीय गुण होते हैं ।

उपयोग (Uses) -

मूलत: यह एक ऐसी जड़ी-बूटी मानी गई है जिसमें किसी भी प्रकार की किसी भी कारण से आई शारीरिक शिथिलता (physical weakness) को दूर करने की क्षमता पाई गई है ।

इसलिए इसे 'दिव्य औषध' तथा वैकल्पिक वियाग्रा (an alternative to viagra) की संज्ञा दी गई है । इसके प्रमुख उपयोग निम्न प्रकार हैं

1. पोष्टिक व बलवर्धक होने के कारण विभिन्न हैल्थ टॉनिक तथा च्यवनप्राश इत्यादि के घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. वृद्धावस्था या जीर्णता को स्थगित करने तथा रोग निरोधी क्षमता बढ़ाने का कार्य करता है ।
3. इसका उपयोग खांसी, अस्थमा, पीलिया, ल्यूकोरिया तथा पेशाब सम्बन्धी रोगों के उपचार में किया जाता है ।
4. इसमें वीर्यवर्धक, शक्तिवर्धक तथा शुक्रवर्धक गुण होते हैं, इसलिए नपुंसकता दूर करने तथा यौनशक्ति बढाने हेतु इसका उपयोग किया जाता है ।
5. गठिया तथा मधुमेह (diabetes) के उपचार में लाभदायक है ।

15.3.4 नीम (Margosa) -

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	एजाडीरेक्टा इण्डिका (Azadirachta Indica)
कुल (Family)	–	मिलीएसी (Liliaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	सभी पादप भाग

उत्पत्ति व वितरण (Origin and distribution) -

यह बर्मा (Burma) तथा दक्षिण भारतीय (South Indian) उत्पत्ति का पादप माना जाता है । यह पादप इतना अधिक उगाया जाता है कि व्यापक रूप से पूरे भारत में फैला हुआ है । इसलिए इसका वास्तविक निवास स्थान (native place) निर्धारित करना कठिन है । अजाडीरेक्आ का फारसी अर्थ 'आजाद दरख्त' तथा इण्डिका अर्थात् भारतीय ।

यह पूरे भारत में विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगता है ।

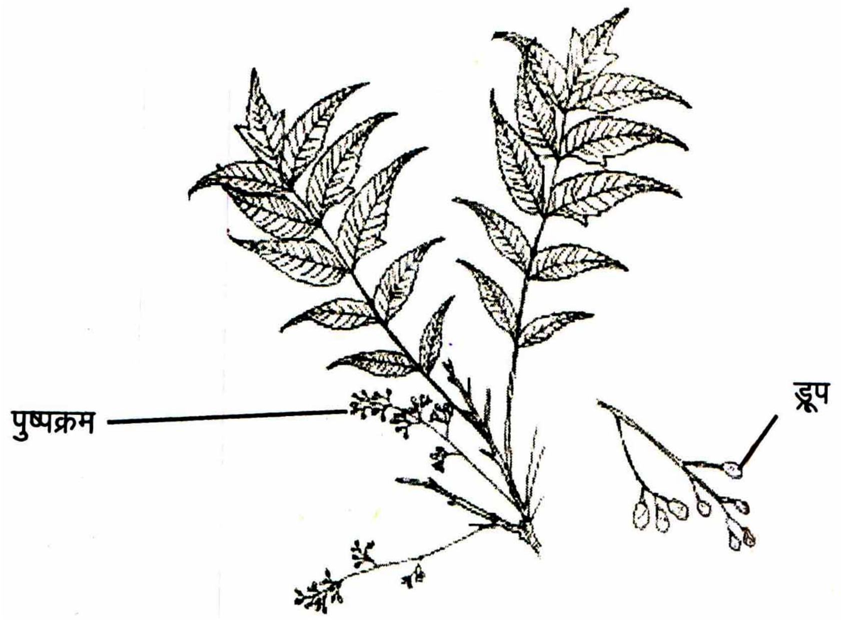

चित्र 15.4 : नीम - A. पुष्पी शाखा B. फल

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters) -

पादप मध्यम से विशाल शाखित वृक्ष होता है । वृक्ष सुन्दर, सदाबहार (evergreen) तथा मुख्य तना सीधा होता है । तने पर शुष्क, खुरदरी छाल उपस्थित होती है । इसकी छाल से गोंद (gum) का रत्रावण होता है । पत्तियां पिच्छाकार संयुक्त (pinnately compound) लम्बी, निलम्बी (peudent) तथा शाखाओं के अन्त में सघन विन्यासित होती है । तरूण पत्तियां हल्के हरे -लाल रंग की होती हैं जबकि परिपक्व पत्तियां गहरे हरे रंग की व चमकीली होती है । प्रत्येक पत्ती में 9-15 पर्णक (leafltes) होते हैं । पर्णक हल्के वक्रित (curved) तथा दांतेदार (toothed margins) उपान्तों युक्त होते हैं ।

संवर्धन (Cultivation) -

नीम शुष्क या अर्धशुष्क व उष्ण जलवायु का पादप है जो मैदानी भागों में बहुतायत से उगता है । इसके लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट, रेतीली दोमट या कंकरीली मृदा उपयुक्त रहती है । नीम का संवर्धन बीजों द्वारा किया जाता है । फल (बीज) वर्षा ऋतु के प्रथम अर्ध में परिपक्व हो जाते हैं तथा लम्बे समय तक जननक्षम **(viable)** नहीं रहते हैं । इसलिए इन्हें एकत्र कर तुरन्त बोया जाता है ।

नीम कठोर **(herby)** पादप होता है जो शुष्क परिस्थितियों तथा क्षारीय मृदा में भी अच्छी वृद्धि करता है । लेकिन यह पाला **(frost)** तथा जलाक्रान्त परिस्थितियों **(water-lodged conditions)** के प्रति संवदेनशील होता है ।

उपयोगी भाग व उपयोग (Useful part and Uses)

नीम ऐसा पादप है जिसके सभी भाग जड़ से बीज तक विभिन्न प्रकार से उपयोगी हैं ।

1. पादप की शुष्क पत्तियां अनाज व कपड़ों तथा पुस्तकों में रखी जाती है जो कीटों से सुरक्षा प्रदान करती है ।
2. पादप के विभिन्न भागों विशेषकर पत्तियों से एजाडीरेक्टीन (Azadirachtin) नाम कीटनाशी एल्केलॉइड प्राप्त होता है ।
3. छाल से गोंद (gum) का स्त्रावण होता है जो औषधियों में उद्दीपक (stimulant) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
4. पादप की छल (bark) स्वाद में कड़वी (bitter) होती है जो बुखार, मलेरिया, फोड़े-फुन्सी के उपचार में प्रयुक्त की जाती है । इसके अतिरिक्त इसकी छाल से टॉनिक (tonic) बनाया जाता है जो रक्त को शुद्ध करता है ।
5. नीम की पत्तियों का निचोड़ (extract) त्वचा रोग के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है ।
6. यदा-कदा नीम से अपने आप रस का स्त्रवण (sap exudation) होता है जिसे एकत्र कर टॉनिक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।
7. नीम की पतली शाखाएं दातुन के रूप (as tooth-sticks) में प्रयुक्त की जाती है जो दांतों के संक्रमण को रोकने में लाभदायक होती है ।
8. बीजों से 'नीम का तेल' (margosa oil) प्राप्त किया जाता है जिसका प्रमुख घटक निम्बीडीन (Nimbidin) होता है ।

नीम का तेल बहुउपयोगी होता है । इसके कुछ प्रमुख उपयोग निम्न प्रकार है -

1. इसमें प्रतिकवक व प्रतिजीवाणु (antifungal and antibacterial) गुण होते हैं, इसलिए कुष्ठ रोग (leprosy) तथा त्वचा रोग (skin disease) उपचार में प्रयुक्त किया जाता है ।
2. नीम का तेल पेट के कीडों की दवा का प्रमुख घटक होता है क्योंकि इसमें कीड़ों को मारने की क्षमता (antihelminthetic property) होती है ।
3. इसका उपयोग साबुन निर्माण (“Margo soap”') में किया जाता है ।
4. तेल का प्रमुख घटक निम्बीडीन औषधियों व अन्य उत्पादों, जैसे - मल्हम (ointments), क्रीम (cream), हेयर टॉनिक (hair tonic), ऐन्टिसेप्टिक माउथवाश (antiseptic mouthwash), शेविंग क्रीम (shaving cream), हेयर ऑयल (hair oil), शैम्पू (shampoo) इत्यादि में प्रयुक्त किया जाता है ।

9. तेल निष्कासन के पश्चात बचा अपशिष्ट खली (neam cake) उर्वरक या खाद के रूप में प्रयुक्त होती है, जो उपाजाऊपन बढाने के साथ-साथ दीमक का नाश भी करती है ।

15.3.5 घीकुंआर/ऐलो (Aloe) -

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	एलो बार्बाडेन्सिस, एलो बेरा
	–	(Aloe barbadensis syn. A. vera)
कुल (Family)	–	लिलिएसी (Liliaceae)
उपयोगी पादप भाग		पत्तियां

उत्पत्ति एवं वितरण (Origin and distribution)

यह उत्तरी अफ्रीका, केनरी द्वीप **(canary islands)** तथा स्पेन के स्थानीय पादप **(indigenous)** हैं । अब यह पादप वेस्टइण्डीज, इण्डोनेशिया, भारत, चीन तथा कुछ अन्य देशों में भी पाया जाता है ।

भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है । यह मुख्यतः मरुद्भिद पादप के रूप में अर्ध जंगली अवस्था **(semi wild state)** में मिलता है ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters) -

पादप छोटा क्षुप (small shrub), बहुवर्षी व मांसल (perennial succulent) होता है । तना हासित तथा उर्ध्व होता है । पत्तियां मांसल (fleshy), भालाकार तथा सघन विन्यासित (प०भतं०त) होती है । पत्तियां फैली हुई 3०-5० सेमी. लम्बी, 8-1० सेमी चौड़ी तथा 2 सेमी मोटाई की होती है । पत्तियों के किनारे दंतुर (crowded) होते हैं । पत्तियों में घी के समान गूदा (pulp) होती है । पत्तियों के मध्य से लम्बा पुष्पदण्ड (spadix) विकसित होता है जिस पर लाल-पीले पुष्प विकसित होते हैं ।

उपयोगी भाग (Useful part) -

पादप की मांसल पत्तियां औषध का स्त्रोत हैं । इसके पत्तों को काटने से पीले रंग का लसलसा (mucliaginous) रस (sap) निकलता है जिसे संग्रह कर गाढ़ा कर लिया जाता है । इसे एलुआ कहते हैं, जो औषध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसमें विशिष्ट प्रकार की गन्ध होती है तथा स्वाद कड़वा (bitter) होता है । यदि रस **(sap)** को हल्की आंच पर गर्म किया जाता है तो एलुआ चिकना तथा अपारदर्शक हो जाता है, इसे यकृताभ एलुआ कहते हैं । परन्तु यदि इसको तेज आंच पर गर्म किया जाता है तो यह पारदर्शक रहता है इसे ग्लासी एलुआ **(glassy)** कहते हैं । एलुआ में एलॉइन नामक क्रियाशील सत्व **(active principle)** होता है जो कई ग्लूकोसाईड्स का मिश्रण है । इसके अतिरिक्त B- आइसोबार्बालॉइन **(B-isobarbaloin)** बार्बालॉइन **(B-barbaloin),** एलोएमोडिन **(aloe-emodin)**, रेजीन **(resin)** तथा जल घुलनशील अन्य पदार्थ उपस्थित होते हैं ।

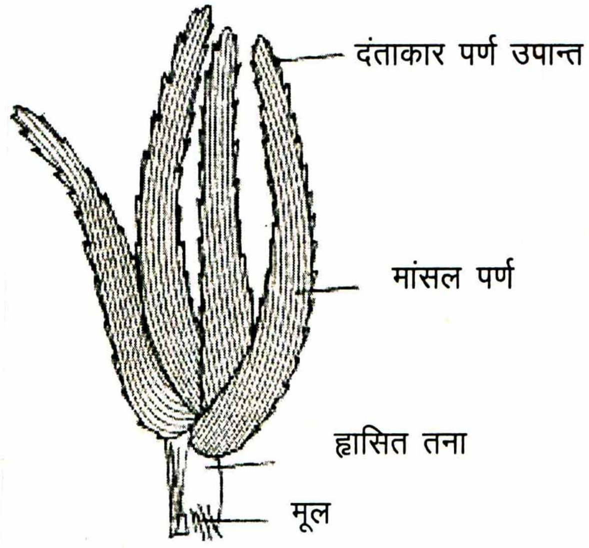

चित्र 15.5 : एलो पादप

उपयोग (Uses) -

1. इसका उपयोग यकृतवर्धन (liver enlargement), प्लीहा वर्धन (spleen enlargement), कब्ज, बवासीर तथा पेटदर्द तथा अल्सर (ulcer) में लाभकारी होता है ।
2. यह गठिया तथा पीलिया (पाडु Jaundice) में अत्यन्त लाभकारी होता है । गठिया में इसकी पत्तियों की सब्जी बनाकर भी खाया जाता है ।
3. पत्तियों को निचोड़कर निकाले गये रस में गुलाब जल मिलाकर आँखें धोने से मोतियाबिन्द (cateract) का उपचार किया जाता है ।
4. पत्तियों का लेप (poultice) फोड़े, चोटग्रस्त अथवा जले भाग पर लगाया जाता है ।
5. एलुआ (leaf extract) खांसी, जुकाम तथा बुखार में प्रयुक्त किया जाता है ।
6. यह त्वचा रोगों के उपचार में लाभदायक है । इसके अतिरिक्त यह त्वचा को नरम व चमकदार रखता है । इसके कारण इसे सौन्दर्य प्रसाधनों - शैम्पू क्रीम, फेस पैक तथा माइस्चराइजर आदि के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है ।
7. स्त्रियों के विकार जैसे महावारी की अनियमितता (Mensrual suppesson) तथा पांडु (jaundice) में लाभदायक होता है ।

15.3.6 सेना (Sena) -

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	केसिया एन्गुस्टिफोलिया
	–	**(Cassia Angustifolia)**
कुल **(Family)**	–	सिजलपिनेसी (Caesalpinaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	पत्तियां तथा लेग्युम फल (Leaves & fruits)

उत्पत्ति एवं वितरण (origin and distribution)

यह सोमालिया **(Somalia)** तथा अरेबिया **(Arabia)** का स्थानीय पादप है । दक्षिण भारत (तमिलनाडु तथा कर्नाटक) में इसकी व्यापक स्तर पर खेती की जाती है । भारत विश्व का सबसे बड़ा सेना उत्पादक एवं निर्यातक देश है ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters)

यह बहुवर्षीय, शाखित लगभग 1 मीटर उंचा झाड़ीनूमा पादप है । पत्तियां संयुक्त, समपिच्छकी (paripinnate) तथा फूले हुए पर्णाधार युक्त होती है । पत्तियों का पर्णफलक अच्छिन्नकोर (entire), पर्णशीर्ष निशिताग्र (acute) तथा दोनों सतह हल्की रोमिल (hairy) होती है । पुष्प असीमाक्ष में उत्पन्न होती है तथा पीले रंग के होते हैं । फल लेग्यूम (legume) होता है ।

प्रवर्धन (Cultivation) -

सेना की खेती शुष्क अथवा अर्ध सिंचित (semi-irrigated) भूमि पर की जाती है । इसे एकल अथवा चना, तिल या कपास के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है । इसे बीजों द्वारा छिड़काव विधि (broadcasting) द्वारा फरवरी-मार्च में बोया जाता है । तीन से चार माह पश्चात पौधों में पुष्पन होता है, जिन्हें हटा दिया जाता है । इसके परिणामस्वरूप अधिक पार्श्व शाखाएं उत्पन्न होती है । परिपक्व पत्तियों को तोड़ लिया जाता है । पुन: पुष्पन के पश्चात् विकसित होने वाली परिपक्व पत्तियों को पत्तियों के साथ ही तोड़ लिया जाता है । इन्हें छाया में डालकर चार से सात दिनों तक सुखाया जाता है तथा औषध निष्कर्षण के लिए भेज दिया जाता है।

उपयोगी भाग एवं उपयोग (useful part and uses) -

सेना की पत्तियां एवं फलियों का छिल्का औषधीय महत्व का भाग है । पादप के इन भागों में सेनोसाइड (sennocide) नामक सक्रिय सत्व (active principle) पाया जाता है । इसका प्रमुख औषधीय महत्व है -

1. यह महत्वपूर्ण रेचक (laxative) का कार्य करता है ।
2. सेना दस्तावर (purgative) का कार्य भी करता हैं जो पुराने कब्ज को भी मिटाता है ।
3. यह थकान, कमजोरी, आंत्रसूजन इत्यादि में लाभदायक होता है ।

15.3.7 धतूरा (Datura) -

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	ड्ट्रा स्ट्रेमोनियम
	–	(Datura stramonium)
कुल (Family)	–	सोलेनेसी (Solanaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	पत्तियां व बीज

उत्पत्ति एवं वितरण (Origin and distribution)

धतुरा एशिया उत्पत्ति का पादप है । इसकी कई जातियां मुख्यतः ड्ट्रा एल्बा (D. alba), डट्रा स्ट्रोमोनियम (D. stramoium) तथा डट्रा मेटेल (D. metel) भारत में पाई

जाती है । यह पूरे भारत में कश्मीर से मालाबार तक व्यापक रूप से पड़त भूमि (waste land) पर जंगली पादप के रूप में उगता है ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters) -

पादप बहुवर्षी, 1.5 से 2 मीटर उंचा उर्ध्व क्षुप (under shrub) होता है । पादप व्यापक रूप से शाखित होता है तथा स्तम्भ का आधारी भाग काष्ठिय तथा उपरी भाग शाकीय होता है । तने पर सघन रोम उपस्थित होते हैं । पर्ण सरल, संवृंत 15 से 18 सेमी लम्बी तथा गहरे हरे रंग की होती है । पुष्प बड़े, सफेद या क्रीम रंगे के, छोटे वृंत युक्त, कीपाकार तथा पंचतयी (pentamerous) होते हैं । फल - केप्सूल (septicidal capsule) होता है, जिसकी सतह पर कांटे (prickly) उपस्थित होते हैं ।

उपयोगी भाग (Useful part) -

पादप की पत्तियां, फल, बीज, पुष्प तथा जड़ में औषधीय गुण होते है । पादप के औषधीय गुण एल्केलाइड्स के कारण होते हैं जिनमें प्रमुख हायोसायमीन (hyoscyamine), स्कोपोलेमीन (scopolamine), हायोसिन (hyocine) तथा एट्रोपिन (atropine) । पादप में एल्केलाइड्स की मात्रा 0.2-0.6% तक होती है ।

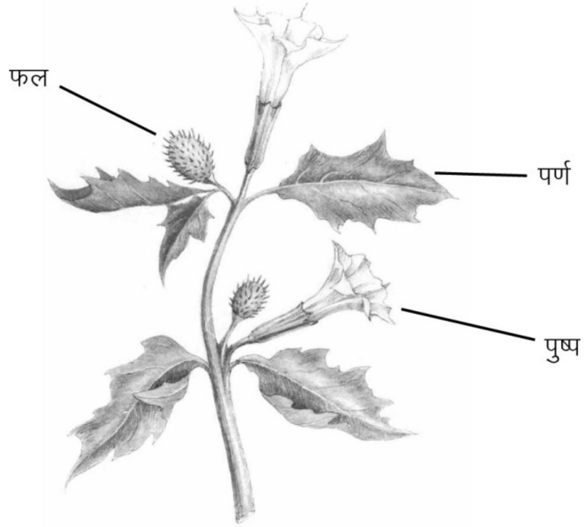

चित्र 15.6 धतूरा फलयुक्त शाखा

उपयोग (Uses)-

1. जड़ों को दूध में उबालकर पागलपन या उन्माद (insanity) के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है।
2. पत्तियों की पुल्टिस का प्रयोग गठिया, सूजन, फोड़े व दर्द के उपचार में किया जाता है ।
3. बीजों व शुष्क पत्तियों का धूम्रपान, दमा व श्वास नली की सूजन के उपचार में लाभदायक होता है।

4. बीजों का उपयोग पागल कुत्ते के काटे उपचार (bits of mad dog) तथा हाथी पांव (elephantiasis) के उपचार में किया जाता है।
5. इसके बीजों व पत्तियों से आयुर्वेदिक औषध 'कनक आसव' (Kanak Asava) तैयार की जाती है जो प्रतिउद्वेष्ठी (antispasmodic), शामक (doculacent) तथा स्वापक (narcotic) होती है जिसे पेट दर्द, ऐठन तथा दमे के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है।
6. हायोसिन तथा एट्रोपिन का प्रयोग पुतली के प्रसार (dilation of pupil) तथा केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र के उद्दीपक के रूप में किया जाता है ।
7. इसके एल्कोहाली निष्कर्ष (alcoholic extract of D. metal) में कृमिनाशक (anthelmintic)
8. एवं कैंसरगेंधी (anticancerous) गुण होते हैं ।

15.3.8 ईसबगोल (Isabgol)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	–	प्लान्टेगो ओवेटा
	–	(Plntago ovata)
कुल (Family)	–	प्लान्टेजिनेसी (Plantaginaceae)
उपयोगी पादप भाग	–	बीज व भूसा (Seed & Husk)

उत्पत्ति एवं वितरण (Origin and distribution) -

यह ईरान का स्थानीय पादप है । भारत विश्व में ईसबगोल का सबसे बडा उत्पादक एवं निर्यातक देश है । इसकी खेती गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में व्यापक स्तर पर की जाती है । इसकी एक अन्य प्रमुख जाति प्लान्टेगो मेजर (P. major) हिमाचल पर्वत श्रृंखला क्षेत्र में उगाई जाती है ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters) -

पादप स्तम्भ रहित (sub-caulescent), रोमिल पत्तियों वाला लगभग 50 सेमी उंचा वार्षिक शाक होता है । पत्तियां संकरी, रेखीय या फीतेनुमा, आच्छिनकोर (entire) अथवा स्वदंती (dentate) होती है । पुष्प बेलनाकार या अण्डाकार स्पाईक (spike) पुष्पक्रम में विकसित होते हैं । फल कैप्सूल (capsule) होता है । बीज अण्डाकार-दीर्घित, नावाकार तथा पीले भूरे रंग के होते हैं । बीजों पर पतली परत के रूप में भूसा (husk) उपस्थित होता है ।

प्रवर्धन (Cultivation) -

इसकी खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली हल्की दोमट मृदा उपयुक्त रहती है । फसल के परिपक्वन के समय शुष्क एवं शीत जलवायु लाभदायक होती है ।

तैयार किए गए खेत में क्वारियां बनाकर नवम्बर-दिसम्बर में इसे बीजों द्वारा बोया जाता है । बुवाई के पश्चात् हल्की सिंचाई की जाती है । दूसरी व तीसरी सिंचाई क्रमशः 3 सप्ताह पश्चात तथा पुष्पन के समय की जाती है । परिपक्व फसल को आधार के निकट से

काट लिया जाता है तथा थ्रेसिंग द्वारा बीजों को पृथक कर लिया जाता हैं प्रोसेसिंग द्वारा भूमि को बीजों से पृथक किया जाता है ।

उपयोगी भाग तथा उपयोग (Useful part and uses) -

ईसबगोल के बीज तथा भूसों में 30 प्रतिशत श्लेष्म पाया जाता है, जो औषधीय गुणों युक्त होता है इसके प्रमुख औषधीय उपयोग निम्न है -

1. शुष्क बीज एवं भूसे को रेचक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा यह पुराने कब्ज को दूर करता है ।
2. इसकी भूसी अतिसार, दस्त इत्यादि में लाभदायक होती है ।
3. ईसबगोल के बीज मूत्र तन्त्र विकार (urinary trouble) में शीतलक एवं मूत्रवर्धक (diuretic) का कार्य करते हैं ।
4. इसके बीजों का काढ़ा खांसी एवं सर्दी में लाभदायक होता है ।
5. इसके बीजों की पुल्टस सूजन (glandular swelling) तथा गठिया दर्द (rheumatic pain) में लाभदायक होती है ।

बोध प्रश्न

1. बहुविकल्पी प्रश्न -

1. उच्च रक्त दाब को नियंत्रित करने वाला दवा का स्त्रोत है-
   (अ) डिजिटेलिस (ब) रॉवौल्किया
   (स) विथानिया (द) उपरोक्त कोई नहीं । ()
2. रिसर्पिन का स्त्रोत है-
   (अ) विथानिया (ब) रॉवोल्फिया
   (स) सिन्कोना (द) डिजिटेलिस । ()
3. नीम का औषध के रूप में उपयोगी भाग है -
   (अ) जड़ (ब) छाल
   (स) फल (द) सम्पूर्ण पादप । ()
4. 'निम्बिडिन' प्राप्त होता है -
   (अ) एलो से (ब) टेक्सस से
   (स) इफिड्रा से (द) नीम से । ()
5. एलुआ नामक औषध एलो के किस भाग से प्राप्त होता है-
   (अ) जड़ से (ब) पत्तियों से
   (स) छाल से (द) पुष्पों से । ()

II. अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न -

1. सर्पगन्धा से प्राप्त दो एल्केलाइड्स के नाम बताइए?
   …………………………………………………………………….
2. असगंध से प्राप्त दो एल्केलाइड्स के नाम बताइए ।

………………………………………………………………………………….

3. नीम के तेल के दो औषधीय गुण बताइये ।

…………………………………………………………………………………..

4. औषधीय पादपों के अध्ययन की शाखा कहलाती है ।

……………………………………………………………………………………………………

15.4 इकाई सारांश (Unit summary) -

पौधों का औषधियों के रूप में उपयोग मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही किया जा रहा है । प्रारम्भ में रोगों के उन्मूलन हेतु मादक तथा नशीले पौधों का ही उपयोग किया जाता था । भारत में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पौधों के औषधीय गुणों पर आधारित है, जो 3000 वर्षों से प्रस्तुत करता है ।

अधिकतर औषधीय पादप जंगली पादप के रूप में उगते हैं तथा इनके औषधीय महत्ता के कारण इन्हें व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाने लगा है । अधिकतर औषधीय पादपों का आयुर्वेदिक पद्धति से सीधे ही 'जड़ी-बूटी' के रूप में उपयोग किया जाता है । पौधों में औषधीय गुण उनमें उपस्थित विशिष्ट रासायनिक पदार्थों के कारण होते हैं । ऐल्केलाइड, टेनिन ग्लाइकोसाइड्स रेजीन, ओलियोरेजीन वाष्पशील तेल आदि प्रमुख रसायन है । उपरोक्त सभी रसायन पादप के द्वितीयक उपाचयज (secondary metabolites) होते हैं । द्वितीयक उपापचयज स्तनधारियों की विभिन्न कार्यिकी प्रक्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित करते हैं, जिसके कारण इन्हें सक्रिय सत्व (active principle) कहते हैं । इन सक्रिय सत्व के कार्यिकी प्रभाव का उपयोग रोगों के उपचार में किया जाता है । इसलिए इन्हें प्राकृतिक औषध भी कहा जाता है । इन पदार्थों की अल्प मात्रा मानव शरीर पर औषध का कार्य करती है परन्तु अधिक मात्रा में सेवन किये जाने पर विषकारी होती है । पादप औषध के सक्रिय सत्व सामान्यत: जड़, छाल, पत्तियों एवं बीजों में होते हैं ।

15.5 शब्दावली (Terminology) -

फार्मकोनेसी (Pharmacognosy) - औषधीय पादपों के अध्ययन को फार्मकोग्नेसी कहते हैं ।

फार्मकोलोजी (Pharmacology) - पादप औषधियों के मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन को फार्मोकोलोजी कहते हैं ।

पेपाइरी (papyri) - पौराणिक इजिप्ट पुस्तक जिसमें पादप औषधियों का वर्णन दिया गया है ।

कनक आसव (Kanak Ashava) - धतुरे की पत्तियों एवं बीजों से प्राप्त औषध ।

एलुआ (Aluia) - ऐलो की मांसल पत्तियों से निकाले गए गाढ़े रस को एलुआ कहते हैं ।

15.6 सन्दर्भ ग्रंथ - (References)

1. Kochhar, S.L. - Economic Botany of Tropics
2. Pandey, B.P. - Economic Botany, S. Chand, New Delhi

3. Verma, V. - Economic Botany, Emkey Pub., Delhi
4. Sen, S. - Economic Botany, New Central Book Agency, Kolkatta
5. त्रिवेदी, शर्मा, धनखड़ - पारिस्थितिकी एवं आर्थिक वनस्पति विज्ञान, रमेश बुक डिपो, जयपुर

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(I) बहु विकल्पात्मक

1. (ब)
2. (ब)
3. (द)
4. (द)
5. (ब)

(II) अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सर्पेन्टाइन एवं अजमेलीन
2. सोम्नीफेरिनिन तथा विथैनेनिन
3. कीटनाशक दवा के रूप में, त्वचा रोग उपचार में
4. फार्मेकोग्नोसी

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercises)

1. औषधीय पादपों के इतिहास एवं स्त्रोत पर एक निबन्ध लिखिए ।
2. दस औषधीय पादपों के वानस्पतिक नाम, कुल, उपयोग पादप भाग एवं प्रमुख उपयोगों की सूची तैयार कीजिए ।
3. निम्न पर टिप्पणियां लिखें
    - (अ) सर्पगन्धा
    - (ब) अश्वगंधा
    - (स) नीम
    - (द) एलो
    - (य) ईसबगोल

इकाई-16

रेशे एवं काष्ठ पादप

(Fiber & Wood Plants)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.3 कपास

16.2. 1उत्पति तथा इतिहास

16.2.2 कपास के प्रकार

16.2.3 वानस्पतिक लक्षण

16.2.4 कृषिकरण

16.2.5 कपास से धागा बुनने की प्रक्रिया

16.2.6 उन्नत किस्में

16.2.7 उपयोग

16.3 जूट

16.3.1 उत्पति तथा इतिहास

16.3.2 जूट उत्पादक क्षेत्र

16.3.3 वानस्पतिक लक्षण

16.3.4 कृषिकरण

16.3.5 रेशों का निष्कर्षण

16.3.6 उन्नत किस्में

16.3.7 उपयोग

16.4 महत्वपूर्ण काष्ठ के स्त्रोत

16.4.1 सागवान

16.4.2 साल

16.4.3 शीशम

16.4.4 रोहेड़ा

16.4.5 बबूल

16.4.6 देवदार

16.4.7 चीड़

16.4.8 धोक

16.8.9 यूकेलिप्टस

16.8.10 एबनस

16.4.11 विलो

16.4.12 चन्दन
16.4.13 सेटिन
16.4.14 शहतूत
16.5 ईंधन काष्ठ
16.5.1 ईंधन काष्ठ के प्रमुख स्त्रोत
16.6 बाँस
16.6.1 वानस्पतिक लक्षण
16.6.2 कृषिकरण
16.6.3 उपयोग
16.7 सारांश
16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.10 पारिभाषिक शब्दावली
16.11 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

16.0 उद्देश्य -

वनस्पति शास्त्र का अध्ययन पादपों के उपयोग के ज्ञान के बिना अधूरा हैं । पादप प्रारम्भ से ही मनुष्य को रोटी कपड़ा और मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे हैं । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप महत्वपूर्ण रेशे एवं काष्ठ के स्त्रोत पादपों तथा उनके कृषिकरण सम्बन्धी ज्ञान से परिचित हो जाएंगे । साथ ही इन पादपों की उन्नत किस्मों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे ।

बाँस एक बहुउपयोगी पादप हैं । जो न केवल घर तथा पुल आदि बनाने में स्तम्भ की भांति प्रयुक्त होता हैं, बल्कि चटाई, टोकरियों आदि बनाने के काम भी आता हैं । इस इकाई में हम बाँस के बारे में भी अध्ययन करेंगे ।

16.1 प्रस्तावना -

सभ्यताओं के विकास के प्रारम्भ से ही मानव की तीन प्रारम्भिक आवश्यकताएँ-भोजन, वस्त्र तथा आवास (Food, Clothing and Shelter) रही हैं । इसलिए भोजन पादपों के पश्चात् पौधों का दूसरा महत्वपूर्ण समूह तन्तु पादपों (रेशे पादपों: fibers plants) का हैं । महत्वपूर्ण तन्तु पादपों को पुरानी सभ्यताओं के समय से ही उगाया जाता रहा हैं तथा जैसे-जैसे सभ्यताओं का विकास हुआ हैं, पादप रेशों का उपयोग भी बढता गया । आज के समय में लगभग दो हजार पादप प्रजातियों से रेशे प्राप्त किये जाते हैं ।

वनस्पति विज्ञान की भाषा में रेशे (fibers) मोटी भित्ति युक्त, लम्बी तथा संकरी, नुकीले सिरों युक्त दृढ़ोत्तकी कोशिकाएँ होती हैं । इनकी कोशिका भित्ति सेल्यूलोज, लिग्निन तथा हेमीसेल्यूलोज की बनी होती हैं इन कोशिकाओं की भित्ति में गर्त (pits) उपस्थित होते हैं

। परिपक्व रेशे मृत कोशिकाएँ होती हैं, जिनका कार्य केवल यांत्रिक दृढ़ता प्रदान करना हैं । इनकी लम्बाई 1 से 3 मिमी. तक होती हैं परन्तु कभी-कभी ये पादप समुदाय की सबसे लम्बी कोशिका (उदाहरण- 55 सेमी. रेमी तन्तु मे) के रूप में होते हैं । रेशे पादप ढाँचे (plant skeleton) का निर्माण करते हैं तथा ये केवल अथवा छोटे समूहों में उपस्थित होते हैं ।

भोजन तथा रेशे के पश्चात् काष्ठ सबसे व्यापक रूप से प्रयुक्त किये जाने वाला पादप उत्पाद हैं । आदिकाल में मानव काष्ठ को आवास, औजार, बर्तन तथा नाव इत्यादि निर्माण में प्रयुक्त करता था । यद्यपि आज के युग में धातुओं तथा प्लास्टिक का उपयोग किया जाता हैं परन्तु काष्ठ का कोई विकल्प नहीं हैं क्योंकि यह एक नवीनीकरण योग्य संसाधन (renewable resource) हैं ।

काष्ठ को इसके वास्तविक स्वरूप, जैसे-टिम्बर, ईंधन आदि के रूप में अथवा विभिन्न उत्पादों (जैसे-वस्त्र, रेशे कागज) के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं । प्रस्तुत इकाई में हम महत्वपूर्ण रेशे तथा काष्ठ के स्त्रोत पादपों का अध्ययन करेंगे ।

सारणी 16.1

प्रमुख रेशे तथा उनके स्त्रोत

सामान्य नाम (Common Name)	वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	कुल (Family)	रेशे का स्त्रोत (Source of Fibers)
वस्त्र रेशे (Textile Fibers :)			
1. कपास (Cotton)	गोसीपियम स्पी. (Gossypium spp.)	मालवेसी (Malvaceae)	बीज रोम (Seed hairs)
2. अलसी (Flex)	लाइनम युसिटाटीसिमम (Linum usitatissimum)	लाइनेसी (Linaceae)	बास्ट तन्तु (Bast Fibers)
3. भांग (Hemp)	कैनाबिस सैटाइवा (Cannabis sativa)	कैनाबिनेसी (Cannabinaceae)	बास्ट तन्तु (द्वितीयक फ्लोयम व फ्लोयम)
4. सनई (Sun hemp)	क्रोटोलेरिया जंष्शिया (Crotolaria juncea)	पेपिलियोनेसी (Papilionaceae)	-do-
5. जूट (Jute)	कोरकोरस केप्सूलेरिसू को. ओलिटोरियस(Chorchorus capsularis C. ditoris)	टिलिएसी टिलिएसी (Tiliaceae)-	do
6. पटसन (Kenaf)	हिबिस्करा केनाबिस (Hibiscus cannabis	मालवेसी(Malvaceae)	-do-
7. रेमी	बोहमेरिया निविया	अर्टिकेसी	-do-

(Ramie)	(Moehmeria nivea)	(Urticaceae)	
8. सिसल (Sisal hemp)	अगेव सिसलाना(Agave sisalana)	अगेवेसी (Agavaceae)	पत्तियाँ(Leaves)
9. मनीला (Manila hamp)	मूसा टेक्सटाइलिस (Musa textiles)	मूसेसी (Mussaceae)	पर्णवृन्त का बाह्य भाग (Outer part of leaf stalk)
10. न्यूज़ीलैण्ड फ्लेक्स Newze aland Flax)	फोरमियम टेनेक्स (Formium tenax)	अगेवेसी (Agavaceae)	पत्तियाँ (Leaves)
11. नारियल (Coir)	कोकोस न्यूसीफेरा (Cocos Nucifera)	पामी/एरीकेसी (Palmae or Arecaceae)	फल की मध्यभित्ति (Mesocarp)
ब्रुश रेशे **(Brush Fibers) :**			
12. ज्वार (Broom corn)	सोरगम वल्गेर वेरा. टेकनीकम (Sorghum vulgarevar. Technicum)	पोएसी (Poaceae)	पुष्पक्रम (Inflorescence)
13. तार (Palmyr a palm)	बोरासस फ्लेबेलिफर (Borassus flebelifer)	एरीकेसी (arecaceae)	पर्णवृन्त व पर्ण आच्छद (Leaf stalk & sheath)
14. ताड़ी (Toddy palm)	केरियोटा यूरेकेन्स (Caryota urens)	एरीकेसी (Aricaceae)	पर्ण आच्छद (Leaf sheath)
15. ब्रुम जड़ (Broom root)	म्हेलेन्बर्जिया मैक्रोरा (Mahlonbergia macroura)	पोएसी (Poceae)	शुष्क मूल (Dried roots)
गुथने वाले रेशे (Planting Fiber)			
16. स्वीट ग्रास (Sweat grass)	हाइरोक्लो ओडोरेटा (Hierchloe odorata)	पीएसी (Poaceae)	तना (Stem)
17. रतान (Rattan palm)	कैलेमम स्पी. (Calamus spp.)	एरीकेसी (Arecaceae)	-d-

18.	चटाई घास (Mat grass)	साइप्रस कोरिम्बोसस (Cyperus corymbosus)	साइप्रेसी (cyperaceae)	तना, पत्तियाँ (Stem & Leaves)
19.	बांस (Bamboo)	बम्बूसा स्पी. (Bambusa spp.)	पोएसी (Poaceae)	तना (Stem)
20.	मूँज (Munj)	सैकेरम मूँजा (Saccharum munja)	पोएसी (Poaceae)	पत्तियाँ (Leaves)
भराव रेशे (Filling Fibers)				
21.	सफेद मिसल (Kapok)	सिबा पेन्टेन्ड्रा (Ceiba pentandra)	बॉम्बेकेसी (Bombacaceae)	भीतरी फलभित्ति (Inner fruit wall)
22.	सेमल (Red silkcotton)	बॉम्बेक्स सिबा (Bombax ceiba)	-do-	-do-
23.	पीली कपास (White silk cotton)	कोचलोस्पर्मम रेलिजियोसम (Cochlospermu mreligiosum)	कोचलोरयर्मेसी (Cochlo spermacae)	पुष्प (Flowers)
24.	आक (Madar)	केलोट्रोपिस जाइगेन्टीया (Clotropis gigantia)	एरक्लेपियाडेसी (Asclepidadaceae)	बीज रोम (Seed hair)
25.	कागजी शहतूत (Paper mulberry)	ब्रोसोनेटिया पेपाइरीफेरा (Brousonetia papyifera)	मोरेसी (Moraceae)	छाल (Bark)

16.2 कपास (Cotton)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) – गोसीपियम स्पी (Gossypium spp.)

कुल (Family) – माल्वेसी (Malvaceae)

कपास विश्व का सबसे महत्वपूर्ण रेशा हैं । इसका वस्त्र निर्माण में सबसे पहले उपयोग किया जाने लगा तथा आज भी यह सबसे व्यापक स्तर पर प्रयुक्त किया जाने वाला पादप रेशा हैं ।

16.2.1 उत्पत्ति तथा इतिहास (Origin and History) :

कपास की खेती पूर्व ऐतिहासिक काल (per historic time) से विश्व के दो दूरस्थ महाद्वीपों दक्षिणी एशिया तथा अमेरिका में की जा रही हैं । इसकी खेती 4500-5000 वर्ष पूर्व पेरू तथा सिन्धु घाटी सभ्यता (Indus valley Civilization) में किये जाने के प्रमाण हैं ।

पौराणिक हिन्दू धर्म साहित्य ऋग्वेद (1500 BC) तथा मनुस्मृति (800 BC) में कपास के धागों का अस्तित्व मिलता हैं । सम्भवत: भारतीय ही सबसे पहले लोग थे जिन्होंने कपास का उपयोग वस्त्र निर्माण में प्रारम्भ किया तथा भारत कपास उत्पादन का (1500 BC से 1500 AD) सबसे प्रमुख केन्द्र था ।

कपास भारत से पूर्व में चीन तथा पश्चिम में इजिप्ट को 600 ईस्वी में प्रसारित हुई परन्तु इसकी खेती वहाँ 18 शताब्दी में प्रारम्भ हुई । मैक्सिको में पूर्व-कोलम्बस काल (per Columbus time) से ही कपास की खेती किये जाने के प्रमाण हैं । प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया हैं कि वेस्टइण्डीज, पेरू, मैक्सिको तथा भारत कपास के सम्भावित उत्पति केन्द्र हैं । कपास की खेती अब विश्व के लगभग सभी भागों में की जाती हैं ।

16.2.2 कपास के प्रकार (Kinds of cotton) :

कपास की लगभग 20 जातियाँ पाई जाती हैं । इनमें से 16 जातियाँ जंगली पादप के रूप में उगती हैं तथा केवल चार जातियाँ वाणिज्यिक महत्व की हैं जिनकी खेती की जाती हैं ।

जंगली जातियाँ (wild species) आस्ट्रेलिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में बहुवर्षीय झाड़ी या वृक्ष- रूप में होती हैं । चारों कृषित जातियों की अनेक किस्में हैं जिन्हें दो प्रमुख वर्गों (sections) में रखा गया हैं-

1. वर्ग-हर्बेशिया (Herbacca) (प्राचीन विश्व की कपास)-ये द्विगुणित (n=13) हैं तथा इन्हें एशियन कपास (Asian cotton) भी कहते हैं । इसमें दो जातियाँ सम्मिलित हैं
   (i) गो. आर्बोरियम (G. arboreum)
   (ii) गो. हर्बेशियम (G. herbaceum)
2. वर्ग-हिर्सूटा (Hirsuta): (नये विश्व की कपास)-ये चुर्गुणित (n=26) हैं तथा इन्हें अमेरिकन कपास (American cotton) भी कहते हैं । इसमें सम्मिलित दो जातियाँ हैं :
   (i) गो. हिर्सुटम (G. hirustum)
   (ii) गो. बार्बाडेन्स (G. barbdense)

एक अनुमान के अनुसार चतुर्गुणित कपास की उत्पति एशियन द्विगुणित कपास (Genome A) अमेरिकन द्विगुणित जाति (Genome D) के मध्य संकरण तथा गुणसूत्र द्विगुणन के फलस्वरूप हुई हैं ।

कपास की चारों कृषित जातियों के प्रमुख लक्षण तथा वितरण निम्न प्रकार हैं -

1. गो. आर्बोरियम (G. arboreum)-यह वृक्ष-कपास (Tree cotton), 'चीन की कपास' अथवा 'सिलोन कपास' भी कहलाती हैं । यह कपास एशिया-उत्पति (Indo-China origin) की हैं तथा इसे भारत, चीन, कोरिया, जापान, बर्मा, मलेशिया तथा अफ्रीका में उगाया जाता हैं । भारत व अफ्रीका इस कपास के सबसे बड़े उत्पादक देश हैं । पादप बहुवर्षी, झाड़ीनुमा 3 मीटर तक ऊँचा होता हैं । बाल या कैप्सूल नुकीले, त्रिकोष्ठकी, यदाकदा चतुः या पंचकोष्ठ की होते हैं जिन पर

अनेक तेल ग्रन्थियाँ उपस्थित होती हैं । प्रत्येक कोष्ठक में 17 बीज होते हैं । रेशे पीले, सफेद, स्थूल, छोटे (9.5 से 19 मिमी.) तथा मजबूत होते हैं । इसकी 6 प्रजातियाँ पहचानी गई हैं ।

2. गो. हर्बेशियम (G. herbaceum)- इसे 'लेवन्ट कपास' (Levant cotton) भी कहते हैं । इसकी उत्पति अफ्रीका में मानी जाती हैं । इसकी खेती मुख्यतः चीन, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा अफ्रीका के कुछ भागों में की जाती हैं ।

3. गो. हिर्सुटम (G. hirustum)-इसे 'उपरिभुमि कपास' (Upland cotton) भी कहते हैं । यह कपास मैक्सिको तथा मध्य अमेरिकी-उत्पति की हैं । इसकी पूरे विश्व में व्यापक स्तर पर खेती की जाती हैं । प्रमुख उत्पादक देशों में अमेरिका, तुर्किस्तान, ब्राजील, उत्तरी व दक्षिणी अफ्रीका, इराक, चीन व भारत आदि सम्मिलित हैं ।

पादप छोटे छोटे, झाड़ीनुमा, कम शाखित होते हैं । बॉल या कैप्सूल बड़े गोलाकार, 3-5 कोष्ठकी तथा कम तेल ग्रन्थियों युक्त होते हैं । इसकी कुल 8 प्रजातियाँ (races) पहचानी गई हैं जिन्हें दो प्रमुख वर्गों में रखा गया हैं : (a) छोटे रेशे वाली कपास (short staple cotton)- जिनमें रेशों की लम्बाई 16-27 मी.मी. लम्बे होते हैं, तथा (b) लम्बे रेशे वाली कपास (long staple cotton) इनमें रेशों की लम्बाई 28-38 मि.मी. तक होती हैं ।

4. गो. बार्बाडेन्स (G. barbadense)-इसे इजिप्टियन अथवा आइलैण्ड कपास भी कहते हैं । यह दक्षिण अमेरिका-उत्पति की कपास हैं । पादप बहुवर्षी, झाड़ीनुमा लगभग 25 मीटर ऊँचाई तक होते हैं । पुष्प चमकीले पीले लाल धब्बों युक्त होते हैं । बॉल या कैप्सूल लम्बे, नुकीले, हरे, अनेक तेल ग्रन्थियों युक्त तथा 3-5 कोष्ठकी होते हैं । प्रत्येक कोष्ठक में 5-8 बीज होते हैं । लिन्ट रेशे हल्के क्रीम रंग के तथा फल केवल सिरों पर उपस्थित होते हैं । इसकी दो प्रमुख किस्में हैं:

(a) समुद्री-द्वीप कपास (Sea-Island Cotton)-यह वेस्ट इण्डीज, दक्षिण अमेरिका, दक्षिणी केरोलाइना, जॉर्जिया तथा फ्लोरिडा के तटीय क्षेत्रों मे तथा भारत में केवल व कर्नाटक में तटीय क्षेत्रों में उगाई जाती हैं । इस किस्म से सर्वोत्तम प्रकार का रेशा प्राप्त होता हैं । लिन्ट रेशे सफेद, सिल्की तथा चमकीला (lustrous) होता हैं । रेशों की लम्बाई 38-51 मिमी. होता हैं जिससे सर्वोत्तम किस्म का वस्त्र बनाया जाता हैं ।

(b) इजिप्टयन कपास (Egyptian Cotton)- यह मिश्र (Egypt), सूडान तथा मध्य अमेरिका में सिंचित फसल के रूप में व्यापक रूप से उगाई जाती हैं । इसके अतिरिक्त तुर्की, मेक्सिको तथा द.अमेरिका मे भी इसकी खेती की जाती हैं । इसके रेशे समुद्री-द्वीप कपास के समान परन्तु कम लम्बाई के होते हैं । रेशों की लम्बाई 30-45 मिमी. तक होती हैं । इसे होजरी वस्त्र तथा अन्य मूलायम वस्त्रों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है ।

16.2.3 वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters) :

पादप शाकीय, झाड़िनुमा अथवा वृत्ताकार होते हैं । जंगली जातियाँ (wild spp.) बहुवर्षी परन्तु कृषित जातियाँ वार्षिक होती हैं । मुख्य तना ऊर्ध्व तथा एकलशाखित

(monopodial) होता हैं । मुख्य तने पर शाखाएँ व पत्तियाँ सर्पिल विन्यासित होती हैं परन्तु पुष्प विकसित नहीं होते हैं । पत्तियों पर कक्षीय तथा अतिरिक्त कक्षीय (axillary and extra-axillary) कलिकाएं होती हैं, परन्तु इनमें से केवल एक वृद्धि करती हैं । ऊपरी भाग में पत्तियों की अतिरिक्त कक्षीय शाखाएँ (extra axillery branches) फलद शाखाओं का निर्माण करती हैं । कायिक शाखाएँ मुख्य अक्ष के समान होती हैं तथा इन पर पुष्प विकसित नहीं होते, परन्तु इनसे द्वितीयक शाखाएँ फलद शाखाओं के रूप में विकसित होती हैं । फलद शाखाओं के शीर्ष पर पुष्प विकसित होता हैं, परन्तु पुष्प के नीचे स्थित पत्ती की कक्षीय कलिका वृद्धि कर शाखा का निर्माण करती हैं । यह क्रिया जारी रहती हैं जिससे फलद शाखा टेढ़ी-मेढ़ी (Zig-zag) दिखाई देती हैं ।

पत्तियाँ अनुपर्णी, लम्बे वृन्त युक्त तथा आकार में बडी होती हैं । पर्णफलक चौड़ा, हस्ताकार संयुक्त, 3-9 पालियुक्त होता हैं जिसकी सतह पर अनेक बहुकोशिक रोम उपस्थित होते हैं । पुष्प एकल, सफेद या पीले तथा परिचक्र द्वारा परिबद्ध रहते हैं । फल कैप्सूल होता हैं जिसे बॉल (boll) कहते हैं । बॉल अण्डाकार, गोलाकार अथवा दीर्घित होते हैं । प्रत्येक बॉल में 3-5 कोष्ठक होते हैं जिन्हें लॉक्स (locks) कहते हैं । प्रत्येक कोष्ठक में 6-9 अथवा अत्यधिक बीज होते हैं । बीजों की सतह पर लिन्ट तथा फज रेशे उपस्थित होते हैं ।

16.2.4 कृषिकरण (Cultivation)

कपास ऊष्ण कटिबन्धीय जलवायु (tropical climate) का पादप हैं, जो 50 सेमी. से अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि करता हैं ।

पादप को वृद्धि के लिए सामान्य नमी तथा पुष्पन के समय तुलनात्मक रूप से शुष्क जबकि कपास चुनने के समय वर्षा मुक्ता वातावरण की आवश्यकता होती हैं ।

कपास को प्रारम्भिक वृद्धिकाल में उच्च तथा एकसमान तापमान (21-40˚C) तथा पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती हैं । बाद की अवस्थाओं में कम तापमान तथा कम नमी की आवश्यकता होती हैं जो कायिक वृद्धि को कम कर पुष्पन क्रिया को प्रेरित करता हैं । बॉल (कैप्सूल) के खुलने के समय शुष्क वातावरण आवश्यक होता हैं क्योंकि वर्षा से रेशे मैले व बदरंग (mouldy and discolored) हो जाते हैं ।

कपास की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा पर की जा सकती हैं परन्तु रेतीली दोमट नम मृदा जो अच्छे जल निकास युक्त हो उत्तम रहती हैं । इसलिये नदी घाटी क्षेत्र कपास की खेती के लिए अच्छे रहते हैं । भारत में कपास की खेती प्रायद्वीप क्षेत्र (peninsular region) में काली कॉटन मृदा (black cotton soil) पर, दक्षिण भारत में लाल मृदा (red soil) पर तथा गंगा मैदानी क्षेत्रों में एल्युवियल मृदा (alluvial soil) पर की जाती हैं । कपास की एकल अथवा मिश्रित खेती की जाती हैं । विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु, मृदा तथा किस्म के आधार पर खेती की विधि भिन्न-भिन्न हो सकती हैं । इसे बीजों द्वारा बोया जाता हैं । बुवाई से पहले बीजों को गारा मिट्टी (mud) अथवा गाय के गोबर (cow dung) से मसलकर सूखा लिया जाता हैं ।

खेत को 2-3 बार हैरो (harrow) किया जाता हैं ताकि मृदा नरम व भुरभुरी हो जाए । इसके पश्चात खेत को समतल कर दिया जाता हैं । अब बुवाई के लिए तैयार किये गये बीजों को खेत में बिखेर कर (broadcasting) अथवा ड्रिल्स (drilling) द्वारा कतारों में बोया जाता हैं । कतारों के मध्य पर्याप्त दूरी रखी जाती हैं । कपास को प्रारम्भिक वृद्धि काल में पर्याप्त खाद की आवश्यकता होती हैं । इसलिये बुवाई के समय गोबर की खाद तथा नाइट्रोजन उर्वरक डाला जाता हैं । पौधों के मध्य पर्याप्त दूरी रखने के लिए अतिरिक्त पौधों को निकालना (thinking) तथा खरपतवार हटाना (weeding) आवश्यक होता हैं । कपास के पौधों में शाखन क्रिया बढाने के लिए पुष्पी शाखा के शीर्षों को काटना लाभदायक रहता है ।

पुष्पन की क्रिया लगभग दो माह बाद प्रारम्भ होती हैं तथा लगभग दो माह तक जारी रहती हैं । जैसे-जैसे कैप्सूल (बॉल) परिपक्व होकर स्फुटित होते हैं, कपास को चुन लिया जाता हैं । इस प्रकार कपास की चुनाई (picking) 15 दिनों के अन्तराल से 3-4 बार की जाती हैं । इस क्रिया में खुले कैप्सूलों से बीज कपास (seed cotton) निकाल ली जाती हैं । कपास की चुनाई हाथों द्वारा की जाती हैं परन्तु विकसित देशों में यांत्रिक मशीनों (mechanical pickers) का प्रयोग किया जाता हैं ।

16.2.4 कपास से धागा बनने की प्रक्रिया (Processing of Cotton):

बॉल से एकत्र कपास से धागा निर्माण के लिये इसे कई चरणों से गुजरना पडता हैं । ये चरण (steps) निम्न प्रकार हैं-

1. ओटना (Gining)- कपास के बीजों से रेशों (lint) को पृथक करने की क्रिया ओटना कहलाती हैं । यह कार्य दाँतेदार (saw-tooth gin) अथवा बेलनवाली (roller gin) जीणों द्वारा किया जाता हैं । इस क्रिया द्वारा रेशे (lint) पृथक हो जाते हैं तथा कपास के बीजों (बिनौले) को तेल निष्कासन हेतु तेल मिल भेज दिया जाता हैं ।
2. गांठे बनाना (Bailing) -ओटन द्वारा प्राप्त रेशों को दबाकर गाँठों में बाँध कर धागा निर्माण हेतु मिलों मे भेज दिया जाता हैं । गाँठ बाँधने का कार्य हाइड्रॉलिक दाब (hydraulic press) द्वारा किया जाता हैं तथा प्रत्येक गाँठ 500 पौंड वजन की होती हैं ।
3. चुनना (Picking)- इस क्रिया में रूई में फंसे अवांछित कचरे या कैप्सूल के भागों आदि को हटाया जाता हैं । चुनाई का कार्य हाथों या मशीनों द्वारा किया जाता हैं ।
4. लेपिंग (Lapping)- इसके अन्तर्गत रेषों को पृथक-पृथक (fluff) किया जाता हैं तथा तीन स्तरों को मिलाकर एक स्तर (शीट) बनाया जाता हैं जिसे लैप (Lap) कहते हैं ।
5. धुनाई, कंकतन तथा कर्षण (Carding, Combing and Drawing)- धुनाई द्वारा रेशों के गुच्छों (lumps) को एक-एक रेशे में पृथक किया जाता हैं तथा कंकतन क्रिया (combing) में छोटे रेशों को पृथक कर दिया जाता हैं । लम्बे रेशों को समान रूप से फैलाकर सीधा किया (drawing) जाता हैं तथा इनकी पोनियाँ बनाई जाती हैं ।

6. कातना (Twisting)- तकवों की सहायता से पोनियों से धागा बुनने की क्रिया कातना या बटना (twisting) कहलाती हैं । इन धागों को शंकु के आकार में लपेट कर कपड़ा बुनने हेतु कपड़ा मिल में भेज दिया जाता हैं ।

16.2.6 उन्नत किस्में (Improved Varieties)

भारत में कपास पर अखिल भारतीय कपास सुधार परियोजना के (All India Coordinated Cotton Improvement Project, 1967) से अनुसंधानों में तेजी आई तथा 1968-72 के मध्य कई उन्नत किस्में तैयार की गई, जैसे-कृष्णा, संकर-MCU, सुजाता, खण्डवा-1, खण्डवा-2, G-27, भारती, K-8, महालक्ष्मी, MCU-7, RS-89, तथा वरहालक्ष्मी ।

इनके अतिरिक्त आधुनिक वर्षों में कई अन्य नई किस्में विकसित की गई हैं, जैसे- बीकानेर नरमा, H-777, F414, F286, LH900 तथा गंगानगर अगेती (उत्तरी क्षेत्र के लिए) । G. Cot 10. G. Cot. 11, G. Cot. 12, G. Cot 13 व L-147, (मध्य क्षेत्र के लिए) । जयाधर, लक्ष्मी, कन्चन व सुविन (दक्षिण क्षेत्र के लिए) ।

राजस्थान में निम्न प्रमुख उन्नत किस्में बोई जाती हैं-

देशी किस्में-जी-I, जी कपास-II, विरनार आरजी. 8

अमेरिकन - बीकानेरी नरमा, गंगानगर अगेती, आर एस टी-9

संकर किस्में- NHH-44, LR 5166, संकर 4, वरहालक्ष्मी तथा मरू विकास आदि ।

16.2.7 उपयोग (Uses) :

कपास एक महत्वपूर्ण पादप हैं जिससे रेशा (fiber), भोजन (food) तथा पशु आहार (cattle feed) प्राप्त होता हैं ।

1. इसके रेशे लिन्ट (lint) से अकेले अथवा अन्य रेषों के साथ मिलाकर विभिन्न प्रकार के धागे तथा वस्त्र बनाए जाते हैं ।
2. कपास के रेशों 'फज' (fuzz) से गद्दे, रजाइयाँ तकिये इत्यादि की भराई की जाती हैं ।
3. रेशों को अच्छी तरह साफ करके तथा इनकी मोमीय परत हटाकर एब्जोंबेन्ट कॉटन (absorbant cotton) तैयार की जाती हैं जो सेल्यूलोज निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं ।
4. इसके रेशों को रबर टायर, दरियाँ, गलीचे तथा रस्सियाँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
5. रेशों को कास्टिक सोडा से उपचारित कर मर्सराइज्ड कॉटन (mercerized cotton) तैयार की जाती हैं ।
6. कपास के बीजों से खाद्य तेल (edible oil) प्राप्त किया जाता हैं । इससे वनस्पति घी (vegetable ghee) का निर्माण भी किया जाता हैं तथा इसकी थोड़ी निम्न किस्म को साबुन निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है
7. तेल निष्कासन के पश्चात बचा अपशिष्ट खली (seed cake) पशु आहार तथा उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

8. कपास के सूखे तने (cotton stalks) ईंधन के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं तथा इसकी लुगदी कागज निर्माण में भी प्रयुक्त होती हैं ।

9. इसकी जडों से अरगट जैसी औषधि प्राप्त की जाती हैं ।

10. इसके बीजों (बिनौले) को दुधारू पशुओं को खिलाया जाता हैं, जिससे दूध में वसा की मात्रा बढ़ती हैं ।

11. पादप की पत्तियाँ चारे के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं ।

16.3 जूट (Jute)

वानस्पतिक नाम	–	कोरकोरस प्रजातियाँ
(Botanical Name)	–	(Corchorus spp.)
कुल (Family)	–	टिलिएसी (Tiliaceae)

जूट सबसे महत्वपूर्ण बास्ट तन्तु (bast fiber) हैं । प्राकृतिक रेशों के उत्पादन में कपास के बाद जूट का उत्पादन सर्वाधिक होता हैं । जूट रेशे कोरकोरस (Corchorus) की दो प्रमुख जातियों क्रमशः को. केप्सूलेरिसस (C. capsularies) तथा को ओलिटोरियस (C. olitorius) के तनों से प्राप्त किये जाते हैं ।

16.3.1 उत्पति तथा इतिहास (Origin and History) :

वर्ष कोरकोरस में लगभग 40 जातियाँ सम्मिलित हैं जो ऊष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं । अफ्रीका में इसकी 36 जातियाँ जबकि भारत में 8 जातियाँ पाई जाती हैं । केवल दो जातियाँ वाणिज्यिक महत्व की हैं तथा शेष जातियाँ जंगली पादप के रूप में उगती हैं ।

कोरकोरस ओलिटोरियस का प्राथमिक उद्गम केन्द्र अफ्रीका (Africa) है, जबकि द्वितीयक उद्गम केन्द्र भारत (India) या इण्डो-बर्मा (Indo-Burma) माना जाता हैं । अन्य जाति कोरकोरस केप्सूलेरिस अफ्रीका में नहीं पाई जाती हैं तथा इसका उद्गम केन्द्र इण्डो बर्मा (Indo Burma) माना जाता हैं ।

भारत में जूट रेशे प्राचीन काल से प्रयुक्त किये जाते रहे हैं परन्तु सोलहवीं शताब्दी के अन्त में यह बोरा वस्त्र या टाट (sack-cloth) के निर्माण में प्रचलित होने लगा था । जूट की व्यापक पैमाने पर खेती 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से की जाने लगी थी ।

16.3.2 जूट उत्पादक क्षेत्र (Jute Growing Regions)

एक समय भारत का जूट उत्पादन में एकाधिकार था जो विश्व के कुल उत्पादन का 99 प्रतिशत उत्पादन करता था । परन्तु 1947 के विभाजन पश्चात अधिकतर जूट उत्पादक क्षेत्र बांग्लादेश (उस समय पूर्वी पाकिस्तान) में स्थानान्तरित हो गया । भारत व बांग्लादेश आज भी विश्व के कुल जूट उत्पादन का 60 प्रतिशत उत्पादन करते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य जूट उत्पादक देश हैं चीन, बर्मा, नेपाल, ब्राजील, ताइवान तथा थाइलैण्ड आदि । बांग्लादेश कच्चे जूट (ray jute) का सबसे बड़ा निर्यातक देश हैं जबकि भारत जूट उत्पादों (jute products) के निर्यात में सबसे अग्रणी हैं ।

भारत में जूट की खेती पश्चिम बंगाल, आसाम, बिहार तथा उड़ीसा में की जाती हैं । इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, त्रिपुरा तथा मेघालय के कुछ भागों में भी इसकी खेती की जाती हैं । पश्चिम बंगाल अकेला ही देश के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत से अधिक उत्पादन करता हैं।

16.3.3 वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters) :

कोरकोरस की दोनों कृषित जातियाँ काष्ठिय, अल्प शाखित, उर्ध्व तथा वार्षिक होती हैं तथा पादप लम्बाई 2-3 मीटर तक होती हैं । पत्तियाँ सरल, अनुपर्णी (stipulate), अण्डाकार, दन्तिल उपान्तोंयुक्त (denate margins) तथा एकान्तर विन्यासित होती हैं । प्रत्येक पत्तों के आधार पर दो कंटकी अतिवृद्धियाँ (spinuous bristles) उपस्थित होती हैं ।

पुष्प एकल अथवा 3-4 पुष्पी समीमाक्ष (cymes) में व्यवस्थित होते हैं । पुष्प छोटे, पीले रंग के सवृन्त तथा द्विलिंगी (hermaphrodite) होते हैं । फल कैप्सूल (capsule) कहलाता है ।

कोरकोरस की दोनों जातियाँ अनेक लक्षणों में भिन्नता प्रदर्शित करती हैं ।

सारणी 16.2 को केप्सूलेरिस तथा को. ओलिटोरियस की तुलना

1. को. केप्सूलेरिस (C. capsularis)(White Jute)	1. को ओलिटोरियस (C. olitorius(Tossa Jute)
2. पादप साधारण लम्बे ।-	2. तुलनात्मक रूप से अधिक लम्बे।
3. पत्तियाँ चिकनी तथा स्वाद में कड़वी होती हैं (Corchorin के कारण); इसलिये इसे 'कड़वापात' कहते हैं ।	3. पत्तियों की ऊपरी सतह चिकनी तथा निचली इसलिये इसे सतह खुरदरी, स्वाद में कड़वी नहीं होती; इसे 'मीठापात' कहते हैं ।
4. फल छोटा, गोलाकार केप्सूल होता हैं ।	4. यह लम्बा, बेलनाकार तथा उभारों युक्त कैप्सूल होता हैं ।
5. बीज बडे तथा भूरे रंग के होते हैं ।	5. बीज छोटे, हरे, धूसर या काले रंग के होते हैं ।
6. रेशे निम्न गुणवत्ता के होते है ।	6. रेशे तुलनात्मक रूप से नरम, मजबूत तथा अच्छी गुणवत्ता के होते हैं ।
7. यह निम्न भूमि जाति (lowland spp.) हैं जो जलाक्रान्त स्थिति (water lodging) सह सकता हैं ।	7. यह उपरिभुमि जाति (upland spp.) हैं तथा जलाक्रान्त (water lodging) नहीं सह सकता ।

16.3.4 कृषिकरण (Cultivation):

जूट की फसल को वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने से पहले बोया जाता हैं । खेतों को पहले अच्छी तरह जोत (plough) कर तैयार किया जाता हैं । सामान्यत: को. केप्सूलेरिस (C. capsularis) को फरवरी-मार्च में तथा को: आलिटोरियस (C. olitorius) को अप्रैल मध्य तक

बोया जाता हैं । फसल की बुवाई (sowing) बीजों को बिखेर कर (broadcasting) की जाती हैं । बीज अंकुरण के पश्चात निराई (thinning) द्वारा पौधों के मध्य की दूरी 4-6 ईंच के मध्य रखी जाती हैं ।

बाढ़ के जल से मृदा जमाव वाले क्षेत्रों में खाद की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु अन्य प्रकार की मृदा में गोबर की खाद तथा लकड़ी की राख मिलाई जाती हैं ।

फसल की कटाई 3-4 माह पश्चात सामान्यत: पुष्पन होने पर की जाती हैं । फसल की कटाई यदि कैप्सूल लगने के समय (फल निर्माण के समय) की जाये तो अच्छी किस्म का रेशा प्राप्त होता हैं । इस अवस्था के पश्चात रेशों की गुणवत्ता (क्वालिटी) घटने लगती हैं । क्योंकि रेशों पर लिग्निन का जमाव बढ़ जाता हैं जिससे ये काष्ठीय तथा खुरदुरे (coarse) हो जाते हैं । पौधों की दराँती (sickles) द्वारा आधार के निकट से काट लिया जाता हैं तथा इन्हें गट्ठरों (bundles) में बांध लिया जाता हैं ।

16.3. शों का निष्कर्षण (Fiber Extraction):

जूट पादप के तनों के द्वितीयक फ्लोयम (secondary phloem) से रेशों को पृथक किया जाता हैं । चूँकि ये रेशे फ्लोयम से प्राप्त होते हैं, इसलिये इनकी मात्रा तने की लम्बाई तथा मोटाई पर निर्भर करती हैं । रेशों के पृथक्करण की क्रिया निम्न चरणों में होती हैं-

(i) रैटिंग (Retting) -यह वह प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा रेशों को तने की काष्ठ से ढीला व पृथक (loosening & separation) किया जाता हैं । बण्डलों में बाँधे गये पौधों को 3-4 दिनों तक धूप में डाल दिया जाता हैं जिससे पत्तियाँ सूख कर झड़ जाती हैं । अब इन्हें (बंडलों को) तालाब के जल में डाल दिया जाता हैं तथा दबा दिया जाता हैं ताकि बण्डल जल में डूबी हुई अवस्था में रहे । सूक्ष्म जीवों (microbes) तथा जल की सामूहिक क्रिया से तने की कोशिकाओं से पेक्टिन, गोंद तथा अन्य श्लेष्मी पदार्थ घुलने लगते है । इसके फलस्वरूप द्वितीयक फ्लोयम कोशिकाएँ जो रेशों का स्त्रोत हैं, अन्य ऊतकों से पृथक हो जाती हैं । रैटिंग क्रिया में वातावरणी परिस्थितियों के अनुसार 20-25 दिनों का समय लगता हैं ।

इस क्रिया में अवायुवीय जीवाणु क्लोस्ट्रिडियम पेक्टिनोवोरम (Clostridium pectionovorum) तथा क्लो. फेल्सीनियम (C. felsineum) का विशेष योगदान होता हैं ।

(ii) निष्कर्षण (Extraction)- बंडलों को जल से निकाल लिया जाता हैं तथा 10-12 तनों के समूह को (बंडल बनाकर), लकड़ी के हथौड़े या मोगरी (mullet) द्वारा हल्के-हल्के पीटा जाता हैं रेशे अन्य ऊतकों से एकदम पृथक हो जाते हैं । अब इन्हें जल में डालकर अच्छी तरह हिलाया जाता हैं । जिससे रेशे उत्तकों से मुक्त हो जाते हैं तथा शेष ऊतक जल में निकल जाते हैं । इन मुक्त रेशों को धोकर धूप में सुखाया जाता हैं तथा सूखने पर बंडलों में बाँधकर विभिन्न उत्पादों के निर्माण हेतु फैक्ट्री में भेज दिया जाता हैं ।

16.3.6 उन्नत किस्में (Improved Varieties):

जूट अनुसन्धान केन्द्र, बैरकपुर (पश्चिमी बंगाल) तथा भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद (ICAR), नई दिल्ली द्वारा इसकी अनेक उन्नत किस्में तैयार की गई हैं ।

को. कैप्सूलेरिस की कुछ प्रमुख उन्नत किस्में हैं : फन्डूक (Fanduk), फूलेश्वरी (Fuleshwari), धालेश्वरी (Dhaleshwari) (JRC 212, JRC 7447, D 154, JRC 1108,) आदि ।

को: ओलिटोरियस की उन्नत किस्में हैं : टोसा (Tosah), देशी (Desi), चिन्सुरा (Chinsurah), JRO 524, JRC 7835, JRO 878, JRO 620 आदि ।

16.3.7 उपयोग (Uses):

1. जूट के रेशों से मुख्यतः टाट तथा बोरे व थैले बनाये जाते हैं जो विभिन्न उत्पादों की पैंकिग में प्रयुक्त किये जाते हैं ।
2. इसके रेशों से विभिन्न प्रकार के रस्से तथा सुतली का निर्माण होता हैं ।
3. जूट के अच्छी किस्म के रेशों से कम्बल, परदे, दरी, डोर-मेट तथा सस्ते गलीचे आदि का निर्माण किया जाता है।
4. तने के आधार भागों तथा छोटे रेशों (jute butts) को कागज तथा कागज-बोर्ड निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है।
5. इसकी तरूण पत्तियों तथा तने के शीर्ष (tender shoots) की इजिप्ट, सूडान तथा ग्रीस जैसे देशों में सब्जी बनाई जाती हैं ।
6. जूट के बीजों से तेल निकाला जाता हैं । यह तेल साबुन, पेन्ट तथा वार्निश आदि में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

बोध प्रश्न

1. भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय वस्त्र रेशा पादप हैं-

   (अ) गोसीपियम (ब) क्रोटोलेरिया

   (स) कोरकोरस (द) उपरोक्त कोई नहीं ।

2. सबसे पहले कपास के रेशे से वस्त्र निर्माण प्रारम्भ हुआ-

   (अ) चीन (ब) वेस्ट इण्डिज

   (स) भारत (द) अमेरिका

3. निम्न में से प्राचीन विश्व की कपास हैं-

   (अ) गो. हर्बेशियम (ब) गो. हिर्सुटन

   (स) गो. बार्बाडेन्स (द) उपरोक्त कोई नहीं ।

4. इजिप्टियन कपास किस्म हैं-

   (अ) गो. बार्बाडेन्स की (ब) गो. हिर्सुटम की

   (स) गो. आर्बोरियम (द) गो. हर्बेशियम की।

5. कपास में वाणिज्यिक महत्व का रेशा हैं-

(अ) फज रेशा (ब) लिन्ट रेशा

(स) गो. बार्बाडेन्स (द) उपरोक्त कोई नहीं ।

6. भारत में जूट उत्पादक सबसे बड़ा राज्य हैं-

(अ) बिहार (ब) उत्तर प्रदेश

(स) प. बंगाल (द) उड़ीसा

7. हेम्प रेशा प्राप्त होता हैं-

(अ) लाइनम युसिटाटीसिमम (ब) क्रोटोलेरिया

(स) कैनाबिस सैटाइवस (द) कोरकोरस स्पी.

8. मनीला हेम्प का स्त्रोत हैं-

(अ) कोकोस न्यूसीफेरा (ब) कोरकोरस स्पी.

(स) हिबीरकस केनाबिस (द) मूसा टेक्सटाइलिस

16.4 महत्वपूर्ण काष्ठ के स्त्रोत (Important Sources of wood):

16.4.1 सागवान (Teak)

वानस्पतिक नाम	–	टैक्टोना ग्रेन्डिस
(Botanical Name)	–	(Tectona Grandis)
कुल (Family)	–	वर्बीनेसी (Verbenaceae)

वितरण (Distribution)

सागवान विश्व का सबसे महत्वपूर्ण काष्ठ पादप हैं । यह भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया (South-east asia) मूल का पादप हैं । सागवान भारत, बर्मा, थाइलैण्ड, मलेशिया, चीन, जावा तथा इण्डोनेशिया में बहुतायत से पाया जाता हैं ।

भारत में सागवान के वन मध्य प्रदेश, गुजरात, दक्षिण राजस्थान, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु तथा आन्ध्रप्रदेश में पाये जाते हैं । राजस्थान में उदयपुर, बाँसवाड़ा, चित्तौड़गढ़ तथा डूँगरपुर जिलों में इसके वन पाये जाते हैं । डूँगरपुर जिले में सागवाड़ा कस्बे का नाम इस क्षेत्र में सागवान की बाहुल्यता का द्योतक हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics):

सागवान का पादप पर्णपाती वृक्ष (deciduous tree) के रूप में होता हैं जिसकी लम्बाई 20-30 मीटर तथा तने का व्यास 25 रो 4 मीटर तक होता हैं । वृक्ष की औसत आयु लगभग 200 वर्ष होती हैं । शाखाएँ रोमिल तथा चतुष्कोणीय होती हैं । पत्तियाँ बडी, सरल, सवृंत, अण्डाकार तथा सम्मुख विन्यासित होते हैं । फल चार कोष्ठकी ड्रूप (drup) होता हैं । सागवान समुद्र तल से 3000 फुट ऊँचाई तक सुगमता से उगता हैं । इससे अधिक ऊँचाई पर इसकी वृद्धि बहुत कम हो पाती हैं । इसकी अच्छी वृद्धि के लिए 120-130 सेमी. वार्षिक वर्षा

तथा 25-30°C तापमान अनुकूल होता हैं । यह अच्छे जल निकास वाली हल्की दोमट से भारी दोमट (light to heavy loam) अथवा कंकरीली (gravel) मृदा में उग सकता हैं ।

इसे बीजों द्वारा उगाया जाता हैं । अप्रैल-मई में बीजों को क्यारियों में उगाकर पौध (seedlings) तैयार की जाती हैं । पौधों की लम्बाई 30 से 40 सेमी. होने पर इन्हें वन भूमि में स्थानान्तरित कर दिया जाता हैं । पोधों के मध्य पर्याप्त दूरी रखी जाती हैं ताकि इन्हें पर्याप्त सूर्य का प्रकाश मिल सके तथा सुगम वायु प्रवाह हो सके । 40 से 80 वर्ष की आयु के वृक्षों से काष्ठ प्राप्त होती हैं ।

काष्ठ के लक्षण (Properties of Wood)

सागवान की काष्ठ रसकाष्ठ (sap wood) तथा अन्तःकाष्ठ (heart wood) मे विभेदित होती हैं । परिधीय भाग में स्थित रस काष्ठ सफेद या हल्के पीले रंग की तथा केन्द्रीय भाग में स्थित अन्त: काष्ठ सुनहरी पीले रंग की होती हैं जो आयु के साथ गहरी होती जाती हैं । रसकाष्ठ विलगनकारी कवकों तथा दीमक के प्रति सुग्राही (susceptible) होती हैं, इसलिये उपयोगी नहीं होती हैं । काष्ठ का गठन खुरदरा तथा विषम होता हैं अर्थात काष्ठ वलय छिद्रिल (ring porous) प्रकार की होती हैं । यह छूने में चिकनी तथा पुराने चमड़े जैसी तीव्र गन्ध युक्त होती हैं । काष्ठ का वजन 620 से 650 कि.ग्राम/$मी_3$ होता हैं ।

काष्ठ को वायु संशोषित (air seasoned) किया जाता हैं । संशोषित काष्ठ फूलने व सिकुड़ने, फटने (split) तथा टूटने (crack) के प्रति प्रतिरोधी होती हैं । काष्ठ अत्यधिक टिकाऊ (durable), चमकदार (lustrous), खरोंच प्रतिरोधी तथा अच्छी पॉलिश लेने वाली होती हैं । सागवान काष्ठ के छिद्रों में रेजीनमय (resinous) पदार्थ भरा रहता हैं जिससे यह जल-प्रतिरोधी तथा चिरस्थायी (durable) होती हैं ।

उपयोग (Uses) :

सागवान बहुउपयोगी टिम्बर काष्ठ (timber wood) हैं जिसे विविध कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है ।

1. जहाजों, नावों, जहाजों के मस्तूल (mast), रेल के डिब्बे, स्लीपर्स आदि का निर्माण किया जाता हैं ।
2. पुल निर्माण, खम्भे (poles), शहतीर (beam), कोयले की खदानों में पिट प्रोप्स (pit props) के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
3. खिड़की, दरवाजे, टेबल, कुर्सियाँ, सोफे, अलमारियाँ तथा अन्य बढिया किस्म का फर्नीचर बनाया जाता हैं ।
4. केबीनेट, प्याले, खिलौने, हार्मोनियम तथा पियानो आदि के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
5. काष्ठ अपशिष्ट को चिप बोर्ड तथा फाइबर बोर्ड निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
6. काष्ठ के आसवन से प्राप्त तेल चर्म रोगों (skin disease) के उपचार में लाभदायक होता हैं ।

7. इसकी पत्तियाँ छप्पर निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं तथा पत्तियों से रंजक भी प्राप्त होता हैं ।

8. इसके पुष्पों तथा तरूण फलों में औषधीय गुण होते हैं ।

16.4.2 साल (Sal)

वानस्पतिक नाम	षेरिया रोबस्टा
(Botanical name)	(Shorea robusta)
कुल (Family)	डिप्टेरोकार्पेसी (Dipterocarpaceae)

वितरण (Distribution)

साल भारत का महत्वपूर्ण टिम्बर पादप हैं जो सागवान के बाद सबसे मुलायम काष्ठ हैं । साल मुख्यतः भारत, श्रीलंका, नेपाल, बर्मा तथा अन्य दक्षिण-पूर्व एशियन देशों में बहुतायत से उगता हैं । भारत में हिमालय के तराई वाले क्षेत्रों में, पंजाब की काँगड़ा घाटी से आसाम तक बहुतायत से मिलता हैं । इसके अतिरिक्त मध्य केन्द्रीय पट्टी (central Indian belt) में स्थित राज्यों में जैसे पचमड़ी क्षेत्र, छोटा नागपुर तथा गोदावरी नदी क्षेत्र में भी उगता हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics):

साल का वृक्ष लम्बा, विशाल तथा यूथी होता हैं । पादप लम्बाई (ऊँचाई) 30-40 मीटर तथा तने का व्यास 4-7 मीटर तक होता हैं । मुख्य स्तम्भ के आधारी भाग में शाखाएँ अनुपस्थित होती हैं । तना मोटी छाल द्वारा ढका रहता हैं जिसकी दरारों में आलियोरेजीन (oleoresin) का स्त्राव होता हैं ।

पत्तियाँ सरल, चर्मिल तथा 10 से 25 सेमी. लम्बी होती हैं जिनमें जालिकावत् शिराविन्यास होता हैं । पुष्प छोटे, हल्के पीले रंग के कक्षीय अथवा शीर्षस्थ पुष्पगुच्छों (terminal) में विकसित होते हैं । फल अण्डाकार, अस्फुटनशील, एकबीजीय पक्ष्मयुक्त समारा (winged samara) प्रकार का होता हैं ।

साल के लिए 25-35°C तापमान तथा 300-450 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त होते हैं । वर्ष भर नम वातावरण इसकी अच्छी वृद्धि के लिए आवश्यक होता हैं, इसलिये हिमालय के तराई वाले क्षेत्र में यह प्रभावी वृक्ष के रूप में उगता हैं । इसके लिए हल्की छिद्रिल मृदा (light porous oil) अथवा कंकरीली (gravel) मृदा उपयुक्त रहती हैं ।

साल को बीजों द्वारा उगाया जाता हैं । बीजों की जीवन-क्षमता अल्पकालिक होती हैं । अत: बीजों को परिपक्व होने के तुरन्त पश्चात जून-जुलाई में क्यारियों में बोकर पौध (seedling) तैयार की जाती हैं । एक वर्ष पुराने नवोद्भिदों को गड्ढों में स्थानान्तरित किया जाता हैं । पौधों के मध्य 4-6 मीटर की दूरी रखी जाती हैं । 30-50 वर्ष आयु के वृक्षों से काष्ठ प्राप्त की जाती हैं ।

काष्ठ के लक्षण (Properties of wood):

साल की काष्ठ स्पष्ट रूप से रस काष्ठ (sap wood) तथा अन्तःकाष्ठ (heart wood) में विभेदन दर्शाती हैं । रस काष्ठ सफेद या हल्की भूरी बाहय पतली परत के रूप में होती हैं । केन्द्रीय अन्तःकाष्ठ गहरे भूरे या लाल रंग की कठोर तथा धारियों-युक्त होती हैं । अन्तःकाष्ठ खुरदुरे संगठन की तथा विसरित छिद्रित (diffuse porous) प्रकार की होती हैं । छिद्र चौड़े व्यास के तथा टाइलोसिस द्वारा अवरूद्ध रहते हैं । संशोषित काष्ठ में 12 प्रतिशत नमी रहती हैं तथा काष्ठ का वजन 850 कि.ग्राम/मी^{3} होता हैं ।

साल की काष्ठ का पूर्ण संशोषण कर पाना मुश्किल होता हैं, इसलिये यह काष्ठ फट जाती हैं । यदि इसकी काष्ठ में पूर्ण संशोषण प्राप्त कर लिया जाये तो यह काष्ठ मजबूती, लचीलापन तथा टिकाऊपन में सागवान से भी बेहतर हो सकती हैं ।

उपयोग (Uses):

1. रेल्वे स्लिपर, पुल निर्माण, कोयले की खदानों में पिट प्रोप्स (pit props), नाव निर्माण, खम्भे निर्माण, बैलगाड़ियो के पहिये तथा हल आदि के निर्माण में इसका व्यापक उपयोग किया जाता हैं ।
2. हल्की किस्म का फर्नीचर बनाया जाता हैं ।
3. इसके तने से साल डामर (Sal dammer) नामक ओलियोरेजीन प्राप्त होता हैं । इसका उपयोग धूप सामग्री, वारनिश, जूता पॉलिश, पेन्ट, कार्बन पेपर, टाइपराईटर के फीते आदि के निर्माण में किया जाता हैं ।
4. साल डामर के आसवन से 'चुआ तेल' (Chua oil) प्राप्त होता हैं जो इत्र निर्माण में प्रयुक्त होता हैं तथा औषधीय उपयोग का हैं ।
5. वृक्ष की छाल का चर्म शोधन व सेल्यूलोज उत्पादन में उपयोग किया जाता हैं ।
6. इसके बीजों से 'साल बटर' (Sal butter) प्राप्त होता हैं जिसे कोको बटर के स्थान पर चाकलेट निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

16.4.3 शीशम (Shisham)

वानस्पतिक नाम (Botanical name	–	डल्बर्जिया सिसू (Dalbergia sissoo)
कुल (Family)	–	लेम्यूमिनोसी अथवा फैबेसी (Leguminosae or Fabaceae)
उपकुल (Sub-Family)	–	पेपिलियोनिटी (Papilionate)

डल्बर्जिया की कई जातियाँ इमारती काष्ठ के स्त्रोत के रूप में उगाई जाती हैं जिनमें ड. सिसु (D. sissoo: शीशम), ड. लेटीफोलिया (D. latifolia : काली शीशम), ड. मिलोनोजाइलोन (D. melanoxylan : अफीकन ब्लेकबुड), ड. नाइग्रा (D. nigra : ब्राजिलियन रोजवुड) आदि प्रमुख हैं ।

वितरण (Distribution):

भारत में शीशम तथा काली शीशम को पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम में व्यापक पैमाने पर उगाया जाता हैं । इसके अतिरिक्त यह मध्य भारत तथा गुजरात में भी उगाया जाता हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics)

शीशम का पादप पर्णपाती (deciduous) वृक्ष होता हैं जिसकी ऊँचाई 20 मीटर तक तथा मुख्य स्तम्भ का व्यास 2-4 मीटर तक होता हैं । शाखाएँ फैली हुई (अपसारी) तथा काली शीशम में लटकी हुई (पेन्डूलस) होती हैं । पत्तियाँ पिच्छाकार संयुक्त, 3-5 पर्णक युक्त होती हैं तथा पर्णक चौड़े व अण्डाकार होते हैं ।

पुष्प छोटे, हल्के पीले रंग के तथा कक्षीय पेनीकल (axillary panicale) में विकसित होते हैं । फल चपटे, 1-3 बीजयुक्त शिम्ब (pod) कहलाते हैं ।

शीशम आर्द्र जलवायु का पादप हैं तथा समुद्र तल से 1000 मीटर ऊँचाई तक सामान्यत: उगता हैं । यह पादप मुख्यतः नदियों के किनारे या खेतों में बहुतायत से उगता हैं । इसके सड़क के दोनों ओर (road side) तथा चाय के बागानों में भी छायादार वृक्ष के रूप में बहुतायत से लगाया जाता हैं ।

शीशम का प्रवर्धन बीजों द्वारा अथवा वर्षा ऋतु में कलम रोपण द्वारा किया जाता हैं । बीजों से प्रवर्धन के लिए पहले क्यारियों में पौध तैयार की जाती हैं । 2 से 3 फुट लम्बे पौधों को गड्ढों में रोप दिया जाता हैं । 20-25 वर्ष की आयु के वृक्षों से काष्ठ प्राप्त की जाती हैं ।

काष्ठ के लक्षण (Properties of wood) :

काष्ठ स्पष्ट रूप से परिधीय रसकाष्ठ (sap wood) तथा केन्द्रीय अन्तःकाष्ठ (heart wood) में विभेदित होती हैं । रस काष्ठ हल्की पीली जबकि अन्तःकाष्ठ सुनहरी भूरे रंग की होती हैं जिसमें गहरे रंग की लाइनें (streaks) होती हैं । काष्ठ खुरदरी तथा अन्तर्ग्रन्थित ग्रेन वाली (interlocked grains) होती हैं । वार्षिक वलय स्पष्ट होती हैं । यह विसरित छिद्रित प्रकार से वलय छिद्रिल प्रकार की होती हैं । छिद्र सामान्य से बडे तथा गहरे चिपचिपे पदार्थ द्वारा अवरूद्ध रहते हैं । काष्ठ में नमी लगभग 12 प्रतिशत तथा इसका औसत वजन 780 किग्रा/मी^{3} होता हैं । शीशम की काष्ठ सामर्थ्य, स्थायित्व तथा प्रत्यास्थता के गुणों युक्त होती हैं ।

उपयोग (Uses) :

1. नाव, बैलगाड़ियाँ, बोझा ढोने वाली अन्य गाड़ियाँ तथा कृषि यन्त्रों, हल, जुआ आदि के निर्माण में प्रयुक्त होता हैं ।
2. मकानों के खिड़की, दरवाजे, फ्रेम तथा गर्डर निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
3. बढ़िया किस्म का फर्नीचर तथा केबीनेट व अन्य गृहसज्जा सामग्री निर्माण किया जाता हैं, क्योंकि इस पर चमकदार पॉलिश होती हैं ।
4. खिलौने, वाद्ययन्त्र, हुक्के की नलियाँ, चारपाइयाँ आदि का निर्माण किया जाता हैं ।
5. इसकी कोष्ठ से उत्तम किस्म का कोयला बनाया जाता हैं तथा चारकोल का निर्माण किया जाता हैं ।

6. अन्तःकाष्ठ से प्राप्त तेल चर्मरोगों (skin disease) तथा पशुओं के 'पाद रोग' (foot disease) के उपचार में लाभकारी होता हैं ।

7. तरूण टहनियों व पत्तियाँ चारे के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं ।

16.4.4 रोहेड़ा (मारवाड़ टीक : (Marwar Teak)

वानस्पतिक नाम	–	टिकोमेला अन्डूलेटा
(Botanical Name)	–	(Tecomella undulata)
कुल (Family)	–	बिग्नोनिएसी (Bignoniaceae)

वितरण (Distribution) :

रोहेड़ा उष्ण जलवायु का पादप हैं, जो मुख्यतः मरूप्रदेशों में उगता हैं । यह पादप (वृक्ष) मुख्यतः भारत पाकिस्तान, ब्लूचिस्तान तथा अरब की खाड़ी के देशों में वितरित हैं ।

भारत में यह उत्तर-पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात के मरू भागों में प्रमुख वृक्ष के रूप में मिलता हैं । राजस्थान में सीकर, झुन्झनूँ चूरू, बीकानेर व जोधपुर जिलों में बहुतायत से पाया जाता हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics)

यह मध्यम आकार का वृक्ष होता है । पादप ऊँचाई 5 से 8 मीटर तक तथा तने का व्यास 1 से 25 मीटर तक होता हैं । रोहेड़ा सघन शाखित होता हैं जिसकी शाखाएँ निलम्बित (pendulus) होती हैं । पत्तियाँ सरल लैंसाकार दीर्घित व तरंगित किनारों-युक्त होती हैं । पुष्प पीले या नारंगी रंग से केसरिया रंग के तथा बड़े व आकर्षक होते हैं । पुष्पक्रम शीर्षस्थ ससीमाक्ष तथा फल दीर्घित कैप्सूल होता हैं ।

पादप धीमी वृद्धि करता हैं जिससे 20-25 वर्ष की आयु के पश्चात् काष्ठ प्राप्त की जाती हैं । राजस्थान में यह पादप स्वत: ही उगता हैं सामान्यत: इसका प्रवर्धन नहीं किया जाता हैं ।

काष्ठ के गुण (Properties of Wood) :

रसकाष्ठ (sap wood) सफेद बाहय परत के रूप में तथा अन्त: काष्ठ (heart wood) केन्द्रीय हल्के भूरे रंग की तथा धारियों युक्त होती हैं । काष्ठ कठोर, टिकाऊ, सिकुड़ने व फटने के प्रति प्रतिरोधी होती हैं । रोहड़े की काष्ठ को वायु संशोषित (air seasoned) किया जाता हैं, जिसमें इसके लम्बे पतले फन्टे चीरकर छाया में सूखने के लिए डाले जाते हैं ।

राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग में इस काष्ठ को सागवान के स्थान पर टिम्बर काष्ठ के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं, इसलिये इसे मारवाड़ टीक (Marwar teak) के नाम से जाना जाता हैं ।

उपयोग (Uses)

1. खिड़की, दरवाजे, अच्छी किस्म का फर्नीचर, खिलौने, केबीनेट तथा अन्य नक्काशीदार वस्तुएँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

2. गाड़ियाँ (बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी आदि) के पहिए, चारपाइयाँ तथा विभिन्न कृषि यन्त्रों के हत्थे बनाने में इसे प्रयुक्त किया जाता हैं ।

3. रोहड़े की पत्तियाँ चारे के रूप में पशुओं को खिलाई जाती हैं ।

4. पादप की छाल तथा बीज औषधि में प्रयुक्त किये जाते हैं ।

5. इसके पुष्पों से गुलाल अथवा रंजक भी तैयार किया जाता हैं ।

16.4.5 बबूल/किकर (Babul)

वानस्पतिक नाम (Botanical name)	–	अकेषिया नाइलोटिका (Acacia nilotica)
कुल (Family)	–	लेग्यूमिनोसी (Leguminosae)
उपकुल (Subfamily)	–	माइमोसॉइडी (Mimosoideae)

वितरण (Distribution) :

बबूल दक्षिण-पूर्व एशिया उत्पत्ति का पादप हैं जो मरू क्षेत्रों में अपने आप बहुतायत से उगता हैं । बबूल के वृक्ष अरब, अफ्रीका, भारत तथा पाकिस्तान में सामान्य रूप से जंगली अवरथा में उगते हैं । उत्तरी भारत के क्षेत्रों में मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में यह एक प्रभावी वृक्ष हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics) :

पादप मध्यम आकार का सदाबहार, काँटेदार वृक्ष होता हैं । बबूल का वृक्ष 8-12 मीटर ऊँचा तथा तने का व्यास 1 से 25 मीटर तक होता हैं । तने पर गहरे भूरे या काले रंग की छाल (bark) उपस्थित होती हैं जो खण्डित होती हैं ।

पत्तियाँ संयुक्त, द्विपच्छकी व अनुपर्णी (bipinnate and stipulate) होती हैं तथा अनुपर्ण कीटों में रूपान्तरित होते हैं । काँटे लम्बे व नुकीले होते हैं । पुष्प मण्डक (head) में उत्पन्न होते हैं जो छोटे तथा पीले रंग के होते हैं । फल-लेग्यूम (लोन्टम) प्रकार का होता हैं जो चपटा तथा वक्रित होता हैं ।

बबूल अर्धशुष्क से शुष्क परिस्थितियों के प्रति अनुकूलित होता हैं । यह हल्की दोमट से भारी दोमट तथा काली चिकनी मृदा में आसानी से उगता हैं । इसे वर्षा ऋतु में बीजों द्वारा उगाया जाता हैं । 15-25 वर्ष की आयु के पादप से काष्ठ प्राप्त की जाती हैं ।

काष्ठ के गुण (Properties of Wood) :

काष्ठ रसकाष्ठ (sap wood) तथा अन्तःकाष्ठ (heart wood) में विभेदित होती हैं । रसकाष्ठ पीले सफेद रंग की जबकि अन्तःकाष्ठ गुलाबी से लाल रंग की होती हैं जो धीरे-धीरे (काटने के पश्चात) गहरे भूरे या कत्थई रंग की हो जाती हैं । अन्तःकाष्ठ कठोर, सघन संघटन तथा हल्के ग्रन्थिल ग्रेनयुक्त होती हैं । काष्ठ गंध रहित तथा चिरस्थायी होती हैं । इसे वायु संशोषित (air seasoned) किया जाता हैं ।

उपयोग (Uses) :

बबूल की काष्ठ सस्ती, मजबूत, चलाऊ, कठोर तथा आसानी से उपलब्ध होने के कारण व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होती हैं ।

1. बैलगाड़ी तथा अन्य बोझा ढोने वाली गाड़ियों के निर्माण में उपयोग की जाती हैं ।
2. विभिन्न कृषि यन्त्र जैसे हल, जुआ, सुहागा तथा दराँती व कुल्हाड़ी आदि के हत्थों के निर्माण में ।
3. खिड़की, दरवाजे, फ्रेम, चारपाइयाँ तथा फर्नीचर निर्माण में उपयोगी हैं ।
4. पत्तियाँ व फल चारे के रूप में उपयोगी हैं ।
5. इसकी छाल से टेनिन प्राप्त किया जाता हैं जिसे चमड़ा उद्योग में प्रयुक्त करते हैं ।
6. तने से गोंद प्राप्त होता हैं तथा शाखाओं को दातुन के रूप में प्रयुक्त करते हैं ।

16.4.6 देवदार, दार (Deodar)

वानस्पतिक नाम (Botanical name)	सिड्रस देवदारा (Cidrus deodara)
कुल (Family)	पाइनेसी (Pinaceae)
	जिम्नोस्पर्म (Gymnosperm)

वितरण (Distribution) :

देवदार अफगानिस्तान तथा ब्लुचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्रों तथा उत्तरी-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र का पादप हैं । यह काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के हिमालय क्षेत्र में बहु तायत से सघन वन का निर्माण करता हैं । पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में गढ़वाल से कश्मीर तक 2400 से 8000 मीटर ऊँचाई पर देवदार के सघन वन पाये जाते हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics) :

यह विशाल सदाबहार वृक्ष होता हैं । सामान्य पादप ऊँचाई 45-60 मीटर तक यदाकदा 76 मीटर तक होती हैं । इसकी शाखाएँ क्षैतिज (horizontal) दिशा में फैली रहती हैं जो वृक्ष को विशिष्ट आकृति प्रदान करती हैं । तने का व्यास 25 मीटर से 60 मीटर तक होता हैं । पत्तियाँ गहरे हरे रंग की शूच्याकार 25 से 4 सेमी लम्बी तथा सघन गुच्छों में लघुशाखा पर उत्पन्न होती है । पादप द्विलिंगाश्रयी होता हैं । नर शंकु एकल तथा ऊर्ध्व व चमकीले पीले रंग की होती हैं जो दूर से मोमबत्ती के समान दिखाई देती हैं । मादा शंकु बैरल की आकृति की लगभग 10 सेमी. लम्बी होती हैं ।

देवदार भारी तथा उपजाऊ अच्छे जल निकास वाली वन भूमि (well drained forest land) में ही उगता हैं । इसका प्रवर्धन बीजों द्वारा किया जाता हैं ।

काष्ठ के गुण (Properties of Wood) :

इसकी काष्ठ रसकाष्ठ व अन्तःकाष्ठ में विभेदित होती हैं तथा वार्षिक वलय स्पष्ट दिखाई देती हैं । रस काष्ठ सफेद अथवा क्रीमी सफेद रंग की जबकि अन्तःकाष्ठ हल्के पीले या भूरे रंग की होती हैं । अन्तःकाष्ठ सीधे ग्रेनयुक्त, एकसमान व उत्तम संगठन युक्त तथा चिरस्थायी होती हैं जिस पर कवक आदि का संक्रमण नहीं होता । देवदार की काष्ठ अछिद्रित (non porous) होती हैं इसलिये नरम काष्ठ (soft wood) कहलाती हैं ।

काष्ठ को आसानी से चीरा (sawn) जा सकता हैं तथा चिकनी होती हैं । रेजीन व तेल की अधिकता के कारण इस पर पॉलिश करना मुश्किल होता हैं । संशोषण के पश्चात् भी इससे रेजीन रिसता रहता हैं इसलिये आंतरिक सज्जा के लिए काष्ठ उपयोगी नहीं हैं । काष्ठ का वजन 435-525 कि.ग्राम/मी^{3} होता हैं । तेल व रेजिन के कारण इसमें विशिष्ट तीखी गंध होती हैं । देवदार की काष्ठ कोनीफर में सबसे मजबूत तथा टिकाऊ होती हैं ।

उपयोग (Uses) :

1. रेल्वे स्लीपर, खम्भे, गर्डर, पुल निर्माण तथा रेल्वे वैगन निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं।
2. बैरक तथा अन्य इमारतों के निर्माण में खिड़की, दरवाजों के फ्रेम, फर्नीचर तथा पैकिंग बॉक्स निर्माण किया जाता हैं ।
3. काष्ठ से ओलियोरेजीन (oleoresin) तथा तेल (oil) प्राप्त होता हैं । इसका तेल चर्मरोगों तथा अल्सर उपचार में लाभदायक होता हैं ।
4. काष्ठ मूत्रवर्धक (diuretic) व वायुनाशक (carminative) होती हैं । इसके अतिरिक्त बुखार, बवासीर आदि के उपचार में भी लाभदायक होती हैं ।

16.4.7 चीड़ (Chir : Pine)

वानस्पतिक नाम (Botanical name)	– पाइनस (Pinus spp.)
कुल (Family)	– पाइनेसी (Pinaceae)
	– जिम्नोस्पर्म (Gymnosperm)

वितरण (Distribution):

पाइनस उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण (temperate) क्षेत्रों में वितरित हैं । इसकी 60 से अधिक जातियाँ हैं जिनमें से कुछ ही इमारती काष्ठ का स्त्रोत हे । भारत में पाँच जातियाँ प्रमुख रूप से पाई जाती हैं, जिनमें से केवल दो जातियाँ पाइनस रॉक्सबर्गाई (Hard pine or Blue pine) तथा इमारती काष्ठ का स्त्रोत हैं ।

पा: रॉक्सबर्गाई (P. roxburghi) 400 से 2290 मीटर ऊँचाई तक जबकि पा: वालिचाई (P. wallichai) 1800 से 2690 मीटर ऊँचाई तक पाया जाता हैं । हिमाचल प्रदेश, जम्मु कश्मीर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश क्षेत्र की हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं पर इनके व्यापक वन पाये जाते हैं ।

पादप लक्षण (Plant Characteristics)

पादप लम्बा, विशाल सदाबहार वृक्ष होता हैं तथा 30 मीटर तक ऊँचाई का होता हैं । वृक्ष पिरामिड की आकृति का होता हैं जो बाद में अनियमित हो जाता हैं पर्ण सूच्चाकार, गहरे रंग की तथा बौनी शाखाओं पर समुच्चय (Cluster) में उत्पन्न होती हैं । पा. रॉक्सबर्गाई में पर्ण तीन के समूह में तथा पा. वालिचाई में 5 के समूह में उत्पन्न होती हैं । सभी शाखाएँ छोटी शल्की पर्णो द्वारा आच्छादित होती हैं ।

पाइनस उभयलिगाश्रयी (monoecious) पादप हैं जिसमें नर शंकु सामान्यत: निचले भाग में तथा मादा शंकु ऊपरी शाखाओं पर उत्पन्न होती हैं । बीज पक्ष्म युक्त (winged seeds) होते

हैं । यह वृक्ष खुले वायु निर्गमित स्थानों पर जहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं अच्छी वृद्धि करता हैं । इसके लिए पथरीली, ढलवाँ तथा जल निकास वाली मृदा अनुकूल होती हैं ।

काष्ठ के गुण (Properties of Wood) :

पा. वालिचाई (Blue pine) की काष्ठ नरम हल्के रंग की होती हैं । रसकाष्ठ सफेद तथा अन्तःकाष्ठ गुलाबी रंग की होती हैं । काष्ठ हल्की परन्तु चीड़ (Chir) की तुलना में कम चिरस्थायी होती हैं । काष्ठ सीधे ग्रेन युक्त तथा कम रेजिनयुक्त होती हैं । बसन्तकाष्ठ तथा शरद काष्ठ में स्पष्ट विभेद नहीं होता हैं ।

पा: रोक्सबगाई (Chir pine) की काष्ठ कठोर होती हैं । रसकाष्ठ सफेद तथा अन्तःकाष्ठ लाल भूरे रंग की होती हैं । इसकी काष्ठ मजबूत चिरस्थायी तथा अधिक मात्रा में रेजिन उपस्थित होता हैं । काष्ठ खुरदरी तथा सर्पिल या कुण्डलित ग्रेन युक्त होती हैं । बसन्त काष्ठ तथा शरद काष्ठ में स्पष्ट विभेदन होता हैं ।

उपयोग (Uses) :

1. काष्ठ निर्माण कार्यो (timber), बस व ट्रक की बॉडी निर्माण, रेल्वे वैगन, रेल्वे स्लीपर, पुल निर्माण आदि में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
2. फर्नीचर, पेकिंग बॉक्स माचिस, पेन होल्डर, पैन्सिल आदि निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है ।
3. काष्ठ कागज उद्योग में भी प्रयुक्त होती हैं ।
4. रेजीन से तारपीन का तेल (turpentine oil) प्राप्त किया जाता हैं जो पेन्ट, वार्निश तथा कीटनाशियों व औषधियों में प्रयुक्त होता हैं ।
5. काष्ठ से चारकोल का निर्माण किया जाता हैं ।
6. छाल टेनिन उद्योग में प्रयुक्त होती हैं ।

16.4.8 धोक (Dhok)

वानस्पतिक नाम (Botanical name)	–	एनोजिसस लेटीफोलिया (Anogeissues latifolia)
कुल (Family)	–	कम्ब्रेटेसी (Combretaceae)

यह पर्णपाती वृक्ष हैं, जो सामान्यत: उपहिमालय क्षेत्र, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, नीलगिरी तथा पश्चिमी पेनीनसुला में आता हैं । इसकी काष्ठ गाड़ियों के पहिए निर्माण में तथा कपड़ा मिल में 'पिक्कर आर्म्स' (Picker arms) के निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं । इसके अलावा कप बोर्ड, लकड़ी के मुड़े पर हुए सामान, कागज निर्माण, चारकोल तथा काष्ठ ऐल्कोहॉल (wood alcohol)ए निर्माण में प्रयुक्त होती हैं ।

16.4.9 यूकेलिप्टस (Ecucalyptus) :

वानस्पतिक नाम-	–	यूकेलिप्टस स्पी. (Eucalyptus spp.)
कुल (Family) -	–	मिरटेसी (Myrtaceae)

पादप लम्बा, सजावटी, सदाबहार, सुगन्धित वृक्ष होता हैं । इसे ऑस्ट्रेलिया, न्यू गुइनीया तथा तसमानिया का स्थानीय पादप माना जाता हैं । प्रमुख जातियाँ यू. सिट्रीओडोरा (E. Citiodora) यू. ग्लोबूलस (E. globulus), यू माइक्रोथिका (E. microtheca), यू रोस्ट्राटा (E. rostrata) आदि हैं । काष्ठ समांग पीली-लाल, हल्की, कठोर तथा मजबूत होती हैं । इसके पतले-लम्बे मुख्य तने की बल्लियाँ (pillars) बनाई जाती हैं, इसे ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं । इसके अलावा उद्योग तथा चारकोल निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं।

16.4.10 एब्नस (Abnus)

वानस्पतिक नाम – डायोस्पाइरोस एबनम (Diospyros ebenum)

कुल (Family) – एबनेसी (Ebenaceae)

दक्षिण भारत में सदाबहार वनों का प्रमुख पादप हैं । पादप लम्बे वृक्ष के जप में (लगभग 60 फुट लम्बा) होता हैं । रसकाष्ठ हल्की पीली या काली धारियों युक्त परन्तु अन्तःकाष्ठ काली हल्की भूरी धारियाँ होती हैं काष्ठ का उपयोग फर्नीचर निर्माण में, सजावटी व नक्काशीयुक्त वस्तुएँ बनाने में तथा खेल सामग्री व संगीत उपकरणों के निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं ।

16.4.11 विलो/सरपत (White willow)

वानस्पतिक नाम – सेलिक्स एल्बा (Salyx alba)

कुल (Family) – मोरेसी (Moraceae)

पादप छोटा वृक्ष हैं जो उत्तर-पश्चिमी हिमालय तथा कश्मीर घाटी में मिलता है। काष्ठ सफेद चिरस्थायी तथा बढ़ईगिरी के लिए उत्तम होती है। काष्ठ हल्की तथा यान्त्रिक आघात सहन करने की क्षमता टूटती व फटती नही है।

16.4.12 चन्दन (Sandal wood)

वानस्पतिक नाम – सेन्टेलम अल्बम (Sntalum album)

कुल (Family) – सेन्टेलेसी (Santalaceae)

चन्दन के वृक्ष प्राकृतिक रूप से विन्ध्याचल पहाड़ियों के वनों मुख्यतः तमिलनाडु तथा कर्नाटक में उगते हैं । इसके अलावा इसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में भी उगाया जाता हैं । अन्तःकाष्ठ हल्की, मध्यम मजबूत तथा चिरस्थाई होती हैं । इसकी काष्ठ समांग ग्रेन युक्त, चमकीली तथा विश्व की सबसे महँगी काष्ठ हैं । इस काष्ठ से नक्काशीदार सजावटी वस्तुओं का निर्माण किया जाता हैं । इसकी अन्तःकाष्ठ के आसवन से चन्दन का तेल प्राप्त होता हैं जो सौन्दर्य साबुन, त्वचा क्रीम, टेल्कम पाउडर तथा इत्र निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं । काष्ठ को घिसकर तैयार पेस्ट बुखार व सिरदर्द में ठण्डक प्रदान करती हैं । इसकी टहनियाँ व काष्ठ का चूरा धार्मिक अनुष्ठानों में हवन में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

16.4.13 सेटिन वुड (Satin wood)

वानस्पतिक नाम – क्लोरोजाइलोन स्वेटिनीया (Chloroxylon swietenia)

कुल (Family) – फ्लिन्डरसियेसी (Flindersiaceae)

पादप छोटा वृक्ष होता हैं जो भारतीय प्रायद्वीप (Indian peninsular) में उगता हैं । अन्तःकाष्ठ पीले या गहरे भूरे रंग की तथा धब्बेदार होती हैं । काष्ठ कठोर, उत्तम संगठन एवं समांग ग्रेनयुक्त तथा चमकीली (shiny) होती हैं ।

इसकी काष्ठ का उपयोग उच्च श्रेणी का फर्नीचर, सजावटी दरवाजे तथा केबिनेट निर्माण में किया जाता हैं । इसके अलावा संगीत उपकरण आदि निर्माण में प्रयुक्त होती हैं । इसके अतिरिक्त प्लाईबुड, पेपर निर्माण में भी प्रयुक्त किया जाता हैं ।

16.4.14 शहतूत (Mulberry)

वानस्पतिक नाम – मोरस एल्बा (Morus alba)

कुल (Family) – मोरेसी (Moraceae)

यह पादप चीन की उत्पत्ति का हैं । भारत में प्रमुख रूप से पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, कश्मीर तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में बहुतायत से उगाया जाता हैं ।

काष्ठ कठोर, आघात प्रतिरोधी (shock resistant) तथा मध्यम संगठन की होती हैं । रसकाष्ठ (sapwood) सफेद रंग की जबकि अन्तःकाष्ठ (heart wood) पीले-भूरे रंग की होती हैं । काष्ठ को वायु संशोधित (air seasoned) किया जाता हैं अथवा सीधे ही निर्माण कार्य में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

शहतूत की काष्ठ खेल सामग्री जैसे हॉकी, टेनिस रैकिट, बैडमिण्टन रैकिट, क्रिकेट स्टम्प आदि निर्माण में काम आती हैं । इसके अतिरिक्त इसकी हरी शाखाओं से टोकरे (baskets) बनाये जाते हैं ।

16.5 ईंधन काष्ठ (fire wood)

काष्ठ सबसे सामान्य प्रकार का ईंधन का स्त्रोत हैं जो आदिकाल से मानव द्वारा प्रयुक्त किया जा रहा हैं । विश्व के बड़े भू-भाग पर मुख्यतः विकासशील देशों जैसे अफ्रीका व एशिया महाद्वीप में यह सबसे अधिक प्रयुक्त होता हैं । काष्ठ ईंधन (fire wood) का प्रयोग मुख्य रूप से घरेलू कार्यों (cooking etc) में होता हैं । इसके अतिरिक्त चाय स्टालों (tea stalls) तथा शवदाह-क्रिया (cremation) तथा कुछ छोटे कारखानों आदि में भी काष्ठ ईंधन का उपयोग होता हैं ।

काष्ठ को सीधे जलाकर अथवा निम्न रूपों में भी ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है:

(i) बुरादा व छीलन (Sawdust and Shavings)- लकड़ी की चिराई (sawing) व प्लानी (plani, चिकना करना) से बनने वाले छोटे-छोटे कण बुरादा कहलाता हैं । काष्ठ की चिराई के समय सतही छिल्के उतारे जाते हैं जिन्हें छीलन (shavings) कहते हैं । बुरादा व

छिल्के ईंधन के रूप में जलाने में प्रयुक्त होते हैं । बुरादा छीलन व अन्य काष्ठ के छोटे खण्डों को रोलर में पीस कर काष्ठ आटा (wood flour) तैयार किया जाता हैं, जिसे भी ईंधन के रूप में प्रयुक्त करते हैं ।

(ii) चारकोल (Charocoal)- काष्ठ का आंशिक दहन (partial combustion) करे इसे काले व भंगुर (brittle) स्वरूप में परिवर्तित किया जाता हैं जिस चारकोल (charocoal) कहते हैं । चारकोल को व्यापक रूप से घरेलू ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं । यह लौ-रहित (flameless), धुआँ-रहित (smokeless) तथा लम्बे समय तक (long lasting) ऊष्मा देता हैं ।

(iii) कोयला (Coal)- काष्ठीय पादपों के जीवाश्म अवशेष जो कालान्तर में काले तथा कठोर कार्बनिक पदार्थ में रूपान्तरित हो गये कोयला (Coal) कहलाते हैं । चूँकि इराका निर्माण संपीडन (compression) द्वारा होता हैं, इसलिये यह अधिक ऊष्मा देता हैं ।

(iv) पैट्रोलियम (Petroleum)- पैट्रोलियम पदार्थ भी जीवाश्म पादप भागों से व्युत्पन्न होता हैं तथा यह तरल अवस्था में होता हैं जो कार्बन व हाइड्रोजन यौगिकों का बना होता हैं ।

ईंधन काष्ठ की विशेषताएँ (Characteristics of fire Wood):

काष्ठ को सीधे ही जलाकर (by burning) ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं तो इसे जलाऊ लकड़ी (fire wood) कहते हैं । काष्ठ को निम्न विशेषताओं के कारण ईंधन के रूप में व्यापक रूप रो प्रयुक्त किया जाता है:-

1. ईंधन के रूप में प्रयुक्त पादप (fire wood) आसानी से सभी जगह उपलब्ध हो जाते हैं ।
2. अनेक पादप जातियाँ काष्ठ का निर्माण (सभी द्विबीजपत्री व जिम्नोस्पर्म) करती हैं जिन्हें समान रूप से ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता हैं ।
3. यह सबसे सामान्य प्रकार का नवीनीकृत (renewable) संसाधन (resource) हैं ।
4. काष्ठ को आसानी से एकत्र या प्राप्त किया जा सकता हैं जिसमें अधिक धन, परिरक्षण व तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती हैं ।
5. इसे आसानी से जलाया जा सकता हैं तथा शुष्क काष्ठ ईंधन औसत 4600 कैलोरी प्रति किग्रा. ऊष्मा का उत्पादन करती हैं ।
6. इसे घरेलू उपयोग से लेकर व्यापक पैमाने पर प्रयुक्त किया जा सकता हैं ।
7. काष्ठ को सीधे उपयोग के अतिरिक्त अन्य स्वरूपों में भी (e.g. carbonization, pyrolysis and gasification) परिवर्तित किया जा सकता हैं ।

वैसे तो सभी काष्ठ ईंधन के रूप में प्रयुक्त की जा सकती हैं परन्तु एक अच्छे ईंधन काष्ठ (fire wood) में निम्न लक्षणों का होना आवश्यक है:

1. इसमे अत्यधिक दहन क्षमता होनी चाहिए जिससे पूर्ण रूप से राख (ash) में परिवर्तित हो जाए 10 बुरादा व छीलन (99% combustile) ।
2. काष्ठ के जलने पर अधिक कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होनी चाहिए ।

3. जलते समय काष्ठ का विखण्डन (splitting) नहीं होना चाहिए ।

4. रेजीन व नमी की मात्रा कम होनी चाहिए ताकि आसानी से सुखाया जा सके ।

5. जलने पर धुआँ (smoke) कम उत्पन्न होना चाहिए तथा दुर्गंध नहीं आनी चाहिए ।

6. यह लम्बे समय तक तथा एकसमान जलनी (uniform burning) चाहिए ।

सारणी 16.3 ईंधन काष्ठ (fire wood) के प्रमुख स्त्रोत

क्र.स. S.No.	सामान्य नाम (Common Name)	वानस्पतिक नाम (Botanical Name)	कुल (Family)
1.	बबूल (Babool)	अकेषिया नाइलोटीका (Acacia nilotica)	माइमोसेसी (Mimosacae)
2.	कुमता (Kumta)	अ. सेनेगल (A. senegal)	,,
3.	विलायती बबूल (Vilayati Babool)	अ. टोरटेलिस (A.tortalis)	,,
4.	खैर (Khair)	अ. केटेच्यू (A.catechnu)	,,
5.	खेजड़ी (Jant)	प्रोसोपिस साइनेरेरिया (Prosopis cineraria)	,,
6.	इजराइली बबूल	प्रो: जूलीफ्लोरा (P.juliflora)	,,
7.	सुबबूल (Subabool)	ल्यूसिना ल्यूकोसिफेला (Luceaena leucocephala)	,,
8.	आइरूल (Irul)	जाइलिया जाइलोकार्पा (Xylia xylocarpa)	,,
9.	सिरिस (Siris)	एल्बिजिया लेबेक (Albizia lebbeck)	,,
10.	शीशम (Sisoo)	डलबर्जिया सिसू Dulbergia Sisoo	पेपेलियोनेसी (Papilionaceae)
11.	नीम (Neem)	ऐजाडिरेक्टा इण्डिका (Azadirachta indica)	मिलिऐसी (Meliacea)
12.	बेर/झाड़ी	जिजीफस जुजूबा (Zizyphus jujuba)	रेम्नेसी (Rhamnaceae)
13.	धोक (Dhawra)	एनोजिसस लेटिफोलिया	कम्बरेटेसी

		(Anogeissus latifolia)	(Combretaceae)
14.	हल्दू (Haldu)	एडिना कोर्डिफोलिया (Adina cordifolia	रूबीएसी (Rbiaceae)
15.	जामुन (Jamun)	साइजिगियम क्यूमिनी (Syzygium cumini)	मिर्टेसी (Myrtacea)
16.	महुआ (Mohua)	मधुका इण्डिका (Madhuca indica)	सेपोटेसी (Sapotaceae)
17.	केजुराइना (Jhau)	केजुराइना इक्वीसीटीफोलिया (Casuarina equistifolia)	केजुराइनेसी (Casuarinaceae)
18.	सुन्दरी (Sundri)	हेरीटीयरा फोम्स (Heritiera fomes)	राइजोफोरेसी (Rhizophoraceae)
19.	फोग (Fog)	केलिगोनम पोलीगोनोइडस (Anthocephalus kadamba)	रूबीएसी (Rubiaceae)
20.	चूरेल	होलोप्टिलिया इन्टिग्रीफोलिया (Holoptelia integrigolia)	डाइप्टेरोकार्पेसी (Dipterocarblceae)

16.6 बाँस (Bamboos)

विश्व (bamboos) के उष्णकटिबन्धीय (tropical) तथा उप उष्णकटिबन्धीय (subtropical) क्षेत्रों में, मुख्य रूप से एशिया के पूर्वी भागों तथा दक्षिणी अमेरिका के नम व उष्ण प्रदेशों में बहुतायत से उगता हैं । भारत, म्याँमार (बर्मा), श्रीलंका, बांग्लादेश, मलेशिया, इण्डोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया, चीन तथा दक्षिणी अमेरिका में यह बहुतायत से मिलता हैं ।

भारत में बाँस की अनेक जातियाँ मुख्यतः आसाम, नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में उगती हैं ।

बाँस (bamboos) के अन्तर्गत प्रमुख रूप से बेम्बूसा (Bambusa),आरूण्डिनेरिया (Arundinaria), डेन्ड्रोकैलेमस (Dendrocalamus), जाइगेन्टोक्लोआ (Gigantochloa), थैमनोकैलेमस (Thamnocalamus), सिफेलोस्टेकियम (Cephalostachium) तथा स्यूडोस्टेकियम (Pseudostachium) आदि वंशों की अनेक जातियाँ सम्मिलित हैं । भारत में पाई जाने वाली आर्थिक महत्व की प्रमुख जातियाँ निम्न हैं:

-बेन्दुला टुल्डा (Chau: Bambusa tulda)

-बेम्बूसा वल्गेरिस (Basini bans : Bambusa Vulgaris)

-डैन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनाई (Kaghzi bans: Dendrocalamus hemitoni)

-डे स्ट्रीक्टस (Kaban bans or Solid bamboo : D. strictus)

-डे. गाइगेन्टियस (Giant bamboo : D. giganteus)

वानस्पतिक लक्षण (Botanical characters):

बाँस की विभिन्न जातियों में आकारिकी विभिन्नता पाई जाती हैं । इन्हें पोएसी Poaceae) कुल की बेम्बूसी शाखा (bambuseae tribe) के अन्तर्गत रखा गया हैं ।

पादप बहुवर्षी (perennial) वृक्ष या झाड़ी के रूप में होते हैं तथा सघन समूह (dense tufts) में उगते हैं । तना कल्म (culm.) कहलाता हैं, जो सामान्यत: काष्ठीय, सान्धित (jointed) अर्थात पर्व व पर्वसन्धियों (internode & node) में विभेदित होता है । तना बेलनाकार, चिकना (glabrous) तथा हरा अथवा सुनहरी भूरे या पीले रंग का होता हैं । पर्व (internode) खोखला (hollow) तथा पर्वसन्धियाँ (node) अनुप्रस्थ पटयुक्त होती हैं, परन्तु डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रीक्टस (Dendrrocalamus astrictus) में तना ठोस होता हैं पत्तियाँ भालाकार (lanceolate), लिग्युल युक्त (Ligulate) व अवृंत (sessile) होती हैं । प्रत्येक पत्ती में अनेक समानान्तर शिराएँ (veins) उपस्थित होती हैं ।

बाँस में पुष्पन की क्रिया 20-25 वर्ष में एक बार होती हैं । परन्तु कुछ जातियों में 3 वर्ष के अन्तराल से पुष्पन होता है तथा कुछ अन्य में प्रतिवर्ष पुष्पन होता हैं ।

पुष्पक्रम स्पाइक (spike) कहलाता हैं जो स्पाइकिकाओं (spikelets) से बना हुआ हैं । प्रत्येक स्पाइकिका (spikelet) में अनेक पुष्प होते हैं । पुष्प छोटे (inconspicuous) तथा हरे रंग के होते हैं । ग्लूम glumes), अण्डाकार व लेमा (lemma), तुषरहित (awnless) होते हैं । पुंकेसर 5 या अधिक, वर्तिका सरल (simple) अथवा द्विशाखित (stigma) 2-3 । फल केरियोप्सिस (caryopsis) कहलाता हैं ।

बाँस उष्ण जलवायु का पादप हैं, इसलिये नम या आर्द्र (humid climate) वातावरण इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त रहता हैं । इस प्रकार की जलवायु हिमालय की तहलटी वाले उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में पाई जाती हैं, जहाँ बाँस बहुतायत से उगता हैं । इसकी वृद्धि के लिए 25-40^{0}C तापमान तथा 80-200 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं ।

16.6.2 कृषिकरण (Cultivation)

बाँस में पुष्पन तथा बीज निर्माण बहुत कम होता हैं, इसलिये इसे कायिक प्रवर्धन (vegetative) द्वारा उगाया जाता हैं । इसके लिए सामान्यत: कल्म (cutting) रोपण या दाब (layering) विधि का प्रयोग करते हैं । वर्षा ऋतु से पूर्व बॉस रोपण हेतु 5-6 मीटर की दूरी पर गड्डे (pits) खोदे जाते हैं । गड्डों में कार्बनिक खाद (organic manures), खली (oilcakes) तथा तालाब की ह्यूमस युक्त चिकनी मिट्टी डाली जाती हैं । अब इनमें कल्म रोप दी जाती हैं तथा खड्डों को भर दिया जाता हैं ।

बाँस का पादप तेजी से वृद्धि करता हैं । पौधों के आधारी भाग से तलशाखन (tillering) द्वारा अनेक शाखाएँ विकसित होती हैं, जिसके फलस्वरूप इसके सघन समूह (dense tufts) विकसित होते हैं । एक वर्ष पश्चात् इन्हें उपयोग हेतु काटा जा सकता हैं ।

16.6.3 उपयोग (Uses):

बाँस बहुउपयोगी पादप हैं जिसे निर्माण कार्यो, घरेलू उत्पादों व कागज उद्योग में'प्रयुक्त किया जाता हैं ।

1. मकान निर्माण, सीढ़ियों (staircase) के निर्माण, पुलनिर्माण तम्बू के खम्भों (tent pole) के रूप में तथा बाड़ निर्माण (fences) में बहुतायत से प्रयुक्त होता हैं ।
2. चटाइयाँ (mats), चारपाइयाँ, छड़ी, ब्रुश, लाठी, छतरी के हैण्डिल तथा टोकरियॉ निर्माण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।
3. मजबूत, हल्का व लचीला फर्नीचर, जैसे-कुर्सियाँ, सोफे, टेबल आदि का किया जाता हैं ।
4. खिलौने तथा अनेक सजावटी वस्तुएं जैसे फूलदान (flower pot) ट्रे (tray) आदि बनाये जाते हैं ।
5. छप्पर निर्माण में इसका बहुतायत से उपयोग किया जाता है । ।
6. कागज उद्योग के लिए कच्ची सामग्री (raw material) प्रदान करता हैं ।

बोध प्रश्न

9. टीक' काष्ठ प्राप्त होते हैं-
   (अ) टिकोमेला अन्डूलेटा (ब) टेक्टोना ग्रेन्डिस
   (स) शोरिया रोबस्टा (द) डाइप्टेरोकार्पस टर्बिनेटस ।
10. हॉकी स्टिक निम्न में से किससे बनाई जाती हैं-
    (अ) मोरस अल्बा (ब) सेलिक्स एल्बा
    (स) शोरिया रोबस्टा (द) उपरोक्त में से कोई नहीं ।
11. बैलगाड़ी व घोड़ा गाड़ी के पहियों के लिए उपयुक्त काष्ठ हैं-
    (अ) पाइनस (ब)एनोजीसस लेटोफोलिया
    (स) मेन्टेलब एल्बम (द) उपरोक्त सभी।
12. क्रिकेट बैट का निर्माण होता हैं-
    (अ) टर्मेनेलिया (ब) सैलिक्स एल्बा
    (स) पाइनस (द) सेन्टेल्म एल्बम ।
13. 'साल' का कुल (family) हैं-
    (अ) डाइप्टेरोकार्पेसी (ब) वर्वीनेसी
    (स) पेपिलियोनेटी (द) सेंन्टेलेसी ।
14. शीशम की काष्ठ होती हैं-
    (अ) सरन्ध्री काष्ठ (ब) अरन्ध्री काष्ठ
    (स) विसरित छिद्रित काष्ठ (द) वलय छिद्रित काष्ठ
15. शीशम की काष्ठ होती हैं-
    (अ) सरन्ध्री काष्ठ (ब) अरन्ध्री काष्ठ

(स) अ तथा ब दोनों (द) उपरोक्त कोई नहीं ।

16. रोहेड़ा सामान्यत: पाया जाता हैं-

(अ) दक्षिण-पूर्वी राजस्थान (ब)उत्तर- पश्चिमी राजस्थान

(स) पंजाब-उत्तरप्रदेश (द) महाराष्ट्र ।

17. तारपीन का तेल प्राप्त किया जाता हैं-

(अ) शीशम काष्ठ से (ब) साल की काष्ठ से

(स) रोहेड़ा की काष्ठ से (द) चीड़ की काष्ठ से।

16.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम भली भाँति जान चुके है कि मनुष्य की दैनिक जीवन की महती आवश्यकता रेशे तथा काष्ठ की आपूर्ति पादप करते हैं । इन रूपों के उपयोगी पादपों की खेती कर हम न केवल दैनिक जरूरतें पूरी करते हैं बल्कि निर्यात भी करते है । बाँस एक बहुउपयोगी पादप है जो अनेकों रूपों में उपयोगी है ।

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 (अ), 2. (स), 3. (अ), 4. (अ), 5. (ब), 6. (स), 7. (स), 8. (द) 9. (ब), 10. (ब), 11. (ब), 12. (ब), 13. (अ), 14. (ब), 15. (अ), 16. (ब), 17. (द) ।

16.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कपास की उत्पत्ति, प्रकार उन्नत किस्में तथा धागा निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ।
2. जट की उत्पति, वानस्पतिक लक्षण, कृषि तथा रेषा-निष्कर्षण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ।
3. टिप्पणियाँ लिखिए-

   (a) रेशों का वर्गीकरण, (b) कपास के प्रकार, (c) कपास तथा जूट के उपयोग ।
4. छिद्रिल व अछिद्रिल काष्ठ में अन्तर बताइए ।
5. बसन्त काष्ठ व शरद काष्ठ में अन्तर बताइए ।
6. अन्त: काष्ठ व रस काष्ठ में विभेद कीजिए ।
7. काष्ठ संशोषण व परिरक्षण से क्या तात्पर्य हैं ?
8. अच्छे ईंधन काष्ठ की विशेषताएँ बताइए ।
9. साल व सागवान के वानस्पतिक लक्षणों, काष्ठ के गुणों तथा उपयोगों का वर्णन कीजिए ।
10. किन्हीं दो जिम्नोस्पर्म पादपों से प्राप्त काष्ठ के लक्षण तथा उपयोगों का वर्णन कीजिए ।
11. शीशम, बबूल तथा रोहेड़ा के वानस्पतिक नाम, कुल, वानस्पतिक लक्षण, काष्ठ के गुण तथा उपयोग बताइये ।
12. बाँस की विभिन्न जातियों के नाम, वानस्पतिक लक्षण तथा उपयोग बताइए ।
13. ईंधन काष्ठ के विभिन्न जातियों के नाम, वानस्पतिक लक्षण तथा उपयोग बताइए ।
14. ईंधन काष्ठ के स्त्रोत 10 पादपों के वानस्पतिक व कुल बताइए ।

16.10 पारिभाषिक शब्दावली

1. रेशे पादप	–	Fiber plants
2. इमारती लकड़ी	–	Timber
3. काष्ठ	–	Wood
4. ईंधन	–	Fuel

16.11 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. पांडे बी. पी., इकोनोमिक बोटनी, एस. चाँ एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली ।
2. कोचर, इकोनोमिक बोटनी इन द ट्रॉपिक्स मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली ।

इकाई -17

पेय पादप तथा रबर

(Beverage Plants and Rubber)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 चाय

17.2.1 उत्पजि एवं वितरण

17.2.2 चाय उत्पादक क्षेत्र

17.2.3 वनस्पतिक लक्षण

17.2.4 किस्में

17.2.5 जलवायु तथा मृदा

17.2.6 कृषिकरण

17.2.7 चाय का संसाधन

17.3 कॉफी

17.3.1 उत्पत्ति तथा इतिहास

17.3.2 कॉफी उत्पादक क्षेत्र

17.3.3 वानस्पतिक लक्षण

17.3.4 जलवायु तथा मृदा

17.3.5 कृषिकरण

17.3.6 कॉफी का संसाधन

17.4 रबर सामान्य विवरण

17.4.1, रबर का इतिहास

17.4.2 रबर के गुण

17.4.3 पारा रबर

17.4.4 भारतीय या आसाम रबर

17.5 इथनोबॉटनी : सामान्य विवरण

17.6 सारांश

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.9 पारिभाषिक शब्दावली

17.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

17.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. चाय एवं कॉफी पेय पदार्थो के वानस्पतिक लक्षणों एवं इनके उपयोगों को जानना ।
2. रबर के स्त्रोत तथा उत्पादन एवं इसके आर्थिक महत्व की जानकारी प्राप्त करना ।
3. इथनोबोटनी का आधारभूत ज्ञान प्राप्त करना तथा औषधीय पादपों के विषय में जानना ।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

अनाज (cereals), दालें (pulses), सब्जी (vegetable) तथा फलों के अतिरिक्त कुछ पेय (beverages) भी मनुष्य के भोजन का प्रमुख अंग माने जाते हैं । आदिकाल से मनुष्य कुछ ऐसे स्वादिष्ट पेय पदार्थो की तलाश में रहा है, जो अधिक ताजगी देने वाले (refreshing) तथा हल्के उत्तेजक (mild stimulant) हों । इस दिशा में अनेक पादप जातियों, मुख्यतः मसालों (Condiments) का प्रयोग किया गया, परन्तु कुछ ही पादप वाणिज्यिक दृष्टि से पेय पादपों के रूप में स्थापित हो पाये । पेय सामान्यत: पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं अपितु इन्हें केवल स्वाद तथा ताजगी के लिए ग्रहण किया जाता है । वे तरल पदार्थ जो स्वादयुक्त (tasty), आनन्द दायक (pleasant) तथा हल्के उत्तेजक (stimulant) होते हैं तथा शरीर व मस्तिष्क को तरोताजा (refresh) कहते हैं, पेय (beverages) कहलाते हैं ।

चाय (Tea)

वानस्पतिक नाम – कमेलिया साइनेन्सिसा/थीया साइनेन्सिस
(Botanical Name) (Camellia sinensis syn. Thea sinensis)
कुल (Family) – थीएसी (Theaceae)

17.2.1 उत्पत्ति एवं विवरण (Origin and Distribution) -

अऐल्कोहॉलिक (non-alcoholic) पेयों में चार सबसे प्रमुख पेय है, जो विश्व की लगभग आधी जनसंख्या द्वारा नियमित उपयोग किया जाता है । चाय के उत्पत्ति स्थल के बारे में वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं । ऐसा माना जाता है कि इसकी उत्पत्ति भारत अथवा चीन अथवा दोनों ही देशों में हुई है । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि चीन में 2700 ईसा पूर्व (2700 B.C.) में चाय की खेती की जाती थी परन्तु वहाँ चाय का पादप कभी भी जंगली पादप (wilde plant) के रूप में नहीं पाया गया । 1823 में आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों में जंगली चाय के पादप थीया असामिक (Thea assamica) पाये गये तथा इसके आधार पर ऐसा माना जाता है कि चाय की सभी कृषित जातियाँ (cultivated spp.) इसी पादप से विकसित हुई है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राचीन काल में चीनी यात्री भारत से चाय के बीजों को चीन लेकर गये तथा वही इन्हें उगाया जाने लगा । इस प्रकार भारत को चाय की उत्पत्ति का प्राथमिक उत्पत्ति केन्द्र (primary center of origin) तथा चीन को द्वितीयक उत्पत्ति केन्द्र

(Secondary center of origin) कहा जा सकता हे । भारत में चाय की व्यापक स्तर पर खेती 1818-1834 के मध्य प्रारम्भ हुई ।

एक अन्य मत के अनुसार बड़ी पत्ती वाली भारतीय किरनों की उत्पत्ति जंगली पौधों से आसाम तथा उत्तरी बर्मा में हुई है, जबकि सँकरी पत्नी वाली चाइनीज प्रकार की चाय की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप से चीन में हुई है । इसलिए कुछ विशेषज्ञ चीन तथा भारत दोनों को चाय के उत्पत्ति केन्द्र मानते हैं ।

चीन में चाय-पान की आदत पाँचवीं शताब्दी में एक सामाजिक रिवाज के रूप में स्थापित हो चुकी थी तथा यहाँ से बौद्ध भिक्षुओं द्वारा 8वीं शताब्दी में इसे जापान लाया गया । 17वीं शताब्दी में तुर्क (Turks) इसे चीन से अन्य एशियन देशों तथा इंग्लैण्ड लेकर गये । इंग्लैण्ड के लन्दन में 1657 में प्रथम 'चाय हाउस' (Turks) प्रारम्भ हुआ । आज इंग्लैण्ड पश्चिम का सबसे बड़ा चाय उपभोक्ता व आयातक देश हैं । अमेरिका में चाय का प्रचलन 8वी. शताब्दी में प्रारम्भ हुआ ।

17.2.2 चाय उत्पादक क्षेत्र (Tea producing Areas):

चाय अनेक उष्णकटिबन्धीय व उप-उष्णकटिबन्धीय (tropical and sub tropical) देशों में उगाई जाती हैं । प्रमुख चाय उत्पादक देशों में भारत, चीन, श्रीलंका, जापान, रूस, इण्डोनेशिया, केन्या, बर्मा, बांग्लादेश तथा ईरान हैं । इसके अतिरिक्त आधुनिक वर्षो में चाय की खेती पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका में भी की जाने लगी हैं ।

भारत व चीन सम्मिलित रूप से विश्व के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक उत्पादन करते हैं तथा- भारत विश्व का सबसे बड़ा चाय उत्पादक व निर्यातक (largest and sub tropical) देश हैं तथा भारत व श्रीलंका सम्मिलित रूप से विश्व के कुल निर्यात का 50 प्रतिशत से अधिक आपूर्ति करते हैं । अन्य चाय निर्यातक देशों में इण्डोनेशिया, चीन, जापान तथा ताइवान हैं ।

भारत में चाय का उत्पादन मुख्यतः आसाम में बह्मपुत्र व सुरमा घाटी तथा पश्चिम बंगाल में दार्जिलिग व जलपाइगुड़ी जिलों में होता हैं । इन दोनों राज्यों में देश में कुल उत्पादन का 70 प्रतिशत उत्पादन होता हैं । दक्षिण भारत के नीलगिरी क्षेत्र में कुल उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत उत्पादन होता हैं । चाय का कुछ उत्पादन राँची, देहरादून, काँगड़ा व कुमाऊँ जिलों में भी होता हैं । दार्जिलिंग (प. बंगाल) में सबसे सर्वोत्तम किस्म की चाय का उत्पादन होता हैं ।

17.2.3 वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters):

प्राकृतिक अवस्था में चाय का पादप सदाबहार (evergreen), काष्ठीय व शाखित वृक्ष होता हैं । जिसकी ऊँचाई 9-12 मीटर तक होती हैं । कृषित अवस्था (cultivated conditions) में इसे झाड़ीनुमा (shruby) रखा जाता हैं, अर्थात पादप को कटाई-छँटाई द्वारा 1-15 मीटर तक रखा जाता हैं ताकि पत्तियाँ चुनने (plucking) में आसानी रहे । शाखाएँ

चिकनी (glabrous) होती हैं । पत्तियाँ सरल, एकान्तर, अननुपर्णी (exstipulate) भालाकार (oblong) तथा कटे-फटे किनारों युक्त (serrated margins) होती हैं । पत्तीयाँ चर्मिल (leathry) तथा 5-30 सेमी. लम्बी व 3-7 सेमी. चौड़ी होती हैं । पत्तियों में तेल ग्रन्थियॉ (oil glands) उपस्थित होती हैं जिनके कारण ये सुगन्धित व स्वादयुक्त होती हैं । पुष्प एकल कक्षीय अथवा 2-4 के समूह में विकसित होते हैं । पुष्प सफेद या हल्के गुलाबी रंग के तथा द्विलिंगी (bisexual) होते हैं, जो पंचतयी या षटतयी (penta or hexamerous), पुंकेसर असंख्य, अण्डाशय 3-5 कोष्ठकी तथा ऊर्ध्ववर्ती (superior) । फल काष्ठीय कैप्सूल, त्रिकोष्ठकी तथा प्रत्येक कोष्ठक में एक या दो बीज स्थित होते हैं ।

17.2.4 किस्में (Varieties):

व्यावहारिक तौर पर चाय की दो कृष किस्में हैं, जो चीनी चाय (Chinese tea; C. sinensis var. sinensis) तथा आसाम चाय (Assam tea: C. sinensis var. assamica) कहलाती हैं । इसके अतिरिक्त इन दोनों किस्मों की संकर (sinensis X assamica) किस्में भी उगाई जाती हैं । चीन, भारत व जापान के अलावा अधिकतर देशों में मुख्यतः संकर किस्म ही उगाई जाती हैं ।।

चीनी चाय (Chinses tea)-धीमी वृद्धि करने वाली, बहुस्तम्भी तथा छोटी पत्तियों (5-7 सेमी.) वाली चाय है । पुष्प एकल विकसित होते हैं । इसका जीवनकाल 100 वर्ष तक होता है तथा प्रतिरोधी होती हैं । कम उपज देती हैं ।

आसाम चाय (Assam tea) तेज वृद्धि करने वाली, कम प्रतिरोधी, एकल-स्तम्भी तथा बड़ी पत्तियों युक्त (15-30 सेमी.) होती हैं । पुष्प 2-4 होते हैं । इसका जीवनकाल 40 वर्ष तक होता हैं । यह अधिक उपज देती हैं ।

17.2.5 जलवायु तथा मृदा (Climate and Soil):

चाय ऊष्ण व नम जलवायु का पादप हैं जो ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में 8000 फुट तक सुगमता से उगता हैं । वर्ष भर अच्छी वर्षा तथा अत्यधिक उच्च व निम्न तापमान की अनुपस्थिति वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि होती हैं । इसके लिए 20-32^{0}C तापमान तथा वार्षिक औसत वर्षा 150-350 सेमी. उपयुक्त होते हैं ।

यद्यपि चाय विभिन्न प्रकार की मृदा में उगायी जा सकती हैं, लेकिन अच्छे जल निकास वाली भुरभुरी (friable), दोमट अथवा वन भूमि जिसमें ह्यूमस की प्रचुर मात्रा हो, उपयुक्त रहती हैं । हल्की अम्लीय मृदा (pH4-6) जिसमें लौह तत्व (iron) तथा मैंगनीज (manganese) उपस्थित हो, वृद्धि के लिए अच्छी होती हैं ।

चाय का पादप छायाप्रिय (shade-loving) हैं, इसलिये खेत में नियमित अन्तराल पर छायादार वृक्षों का रोपण भी आवश्यक होता हैं ।

17.2.6 कृषिकरण (Cultivation):

चाय प्रमुखत: बीजों द्वारा बोयी जाती हैं । आजकल उच्च उपज किस्मों को कलम-रोपण (cutting) या दाब लगाकर (kayering) भी बोया जाता हैं ।

(i) **खेत तैयार करना (Preparation of fields)-** चाय के बागान (Tea gardens) तैयार करने के लिए वनों की ह्यूमस युक्त मृदा उपयुक्त रहती हैं । भूमि की जुताई (plough) कर पुराने वृक्षों की जड़ों को निकाल दिया जाता हैं । पहाड़ी क्षेत्रों में ढलानों को परिरेखाओ में परिवर्तित कर दिया जाता हैं, जिससे मृदा का कटाव न हों ।

(ii) **पौध तैयार करना (Raising of seedling)-** स्वस्थ बीजों को छायादार क्यारियों में उगाया जाता हैं । बीजों को एकत्र कर तुरन्त उगाया जाता हैं, क्योंकि इनकी जीवन क्षमता (viability) अल्पकालिक होती हैं । दक्षिण भारत में मई-जून में जबकि उत्तर-पूर्व में नवम्बर में यह कार्य होता हैं ।

(iii) **पौध रोपण (Transfer of Seedling)**- 9-16 माह की आयु में पौध (Seedings) खेतों में स्थानान्तरित की जाती है । पौध 30 से 45 सेमी. गहरे तथा 24 सेमी. चौड़े गढ्ढों में रोपी जाती हैं, जिनमें कार्बनिक खादयुक्त मिट्टी. भरी जाती हैं । गढ्ढों के मध्य की दूरी 120 x 75 सेमी. रखी जाती है । सामान्यत: एक हैक्टेयर भूमि पर 10,000 पादप रोपे जाते हैं ।

खेत में नियमित अन्तराल पर लेग्यूमिनस वृक्षों का रोपण किया जाता हैं, जो इन्हें छाया प्रदान करते हैं, जिससे वृद्धि अच्छी होती हैं ।

(iv) **कटाई-छँटाई (pruning)-** खरपतवार का नियन्त्रण आवश्यक होता हैं, जो हाथों द्वारा अथवा रसायनों के छिड़काव द्वारा किया जाता हैं । सामान्यत: 120-300 किग्रा / हैक्टेयर नाइट्रोजन का छिड़काव पादप वृद्धि के लिए लाभदायक होता हैं ।

2-3 वर्ष की आयु में पौधों की कटाई-छँटाई की जाती हैं तथा पौधों को झाड़ीनुमा रखा जाता हैं (40-50 सेमी.) । कटाई-छँटाई से शाखाओं की संख्या बढ़ती हैं, जिससे पत्तियाँ भी अधिक विकसित होती हैं । इसके अतिरिक्त पादप ऊँचाई भी कम रहती हैं, जिससे पत्तियाँ चुनने (Plucking) में आसानी रहती हैं । पौधों की कटाई-छँटाई तथा पत्तियों के चुनने की क्रिया नियमित अन्तराल पर की जाती हैं ।

(v) **पत्तियाँ चुनना (Plucking of leaves)-** चाय के पादप से 3-4 वर्ष की आयु में पत्तियाँ तोड़ी (pluck) जाती हैं तथा इसके बाद नियमित अन्तराल से यह क्रिया की जाती हैं । शीर्ष कलिका (terminal bud) तथा इसके नीचे स्थित 2-3 माँसल पत्तियों सहित शाखा को तोड़ा जाता हैं । युवा व कोमल पत्तियों में सुगन्ध तेल व ऐल्केलॉइड की मात्रा अधिक होती हैं तथा पुरानी पत्तियों में इनकी मात्रा कम होती जाती हैं । इसलिये युवा पत्तियों से अच्छी गुणवत्ता की चाय प्राप्त होती हैं । यह कार्य (plucking) सामान्यत: महिलाओं द्वारा किया जाता हैं, जो अपनी पीठ पर टोकरी बाँध कर रखती हैं तथा तोड़ी गई पत्तियों को इसमें एकत्रित करती हैं ।

पत्तियाँ चुनने का कार्य अप्रेल से दिसम्बर माह तक किया जाता हैं । सामान्यत: प्रत्येक 7-10 दिन के अन्तराल से पत्तियों को चुना जाता हैं । दिसम्बर से मार्च के मध्य पादप वृद्धि कम होती हैं, इसलिये पत्तियों को चुनने का कार्य नहीं किया जाता हैं । सामान्यत: एक पादप से 10 वर्ष तक पत्तियाँ प्राप्त करते हैं । इसके पश्चात पादप को जमीन के समीप से काट दिया जाता हैं । प्रस्फुटन द्वारा इससे नये पादप का निर्माण हो जाता हैं ।

चाय की गुणवत्ता पत्तियों की आयु पर निर्भर करती हैं । 'गोल्डन टिप्स' (golden tips) चाय शीर्षस्थ कलिका से तैयार की जाती हैं, जिसमें टेनिन 28 प्रतिशत तथा कैफीन 4-45 प्रतिशत होता हैं । अन्य श्रेणियों में 'ऑरैन्त पिको' (orange pekoe)-प्रथम पत्ती रो (टेनिन 28 प्रतिशत), 'पिको' (pekoe souchong)-द्वितीय पत्ती से (टेनिन 21 प्रतिशत) 'पिको साउचोंग (pekoe souchong)-तीसरी पत्ती से (टेनिन 18 प्रतिशत), 'साउचोंग(souchong)-चतुर्थ पत्ती से (टेनिन 14 प्रतिशत), कोंगोउ (congou)-पंचम पत्ती से (टेनिन अल्प मात्रा में) प्राप्त की जाती हैं ।

17.2.7 चाय का संसाधन (Processing of Tea):

चाय की ताजा पत्तियाँ संसाधन द्वारा वाणिज्यिक दृष्टि से उपयोगी चाय में परिवर्तित की जाती हैं । संसाधन द्वारा तीन प्रमुख प्रकार की चाय तैयार की जा सकती हैं-

(i) काली या किण्वित चाय (Block of fermented tea)

(ii) हरी या अकिण्वित चाय (Green or unfermented tea)

(iii) ऊलांग या अर्धकिण्वित चाय (Oolong or semi- fermented tea)

इन तीनों में काली या किण्वित चाय वाणिज्यिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण हैं तथा इसका सर्वाधिक निर्माण किया जाता हैं । काली चाय के निर्माण अथवा संसाधन में चार प्रक्रियाएँ-मुरझाना, बेलन, किण्वन तथा शुष्कन सम्मिलित है।

1. **मुरझाना (Withering)**-चुनी गई ताजा पत्तियों में जल की मात्रा (नमी) 70-80 प्रतिशत तक होती हैं । इन्हें विशेष प्रकार के रेकों (racks) में फैलाकर शुष्कन कक्ष (drying chamber) में सुखाया जाता हैं । शुष्कन कक्ष का तापमान 30.C पर नियन्त्रित किया जाता हैं । यह कार्य 10-12 घण्टे में पूर्ण होता है तथा नमी की मात्रा 50 प्रतिशत रह जाती हे । इस प्रक्रिया के फलस्वरूप पत्तियाँ मुरझा कर मुलायम हो जाती हैं । इस क्रिया में जल-हास के अतिरिक्त आशिक कार्बोहाइड्रेट तथा सीमित प्रोटीन अपघटन भी होता हैं ।
2. **बेलन (Rolling)-** शुष्क (withered) पत्तियों को रोलिंग मशीन (rolling machines) में डालकर पत्तियों को ऐंठा जाता हैं । इस क्रिया में पत्नी की कोशिकाएँ टूट जाती हैं तथा उनमें उपस्थित रस बाहर आ जाता हैं । इस क्रिया से एन्जाइम तथा पोलीफिनोल्स (polyphenols) अन्तर्मिश्रित हो जाते हैं तथा कोशिका रस पत्ती की सतह पर फैल जाता हैं । बेलन के फलस्वरूप पत्तियाँ कुण्डलित (twisted) हो जाती हैं तथा कोशिका रस किण्वन हेतु सतह पर उपलब्ध होता है ।

इस प्रक्रिया के पश्चात् पत्तियों को सुखा लिया जाता हैं, जिससे इनका रंग हल्का हरा (pale green) हो जाता हैं । इन्हें इस अवस्था में हरी चाय या अकिण्वित (Green or unfermented tea) चाय कहा जाता हैं । काली चाय तैयार करने के लिए इसका किण्वन किया जाता हैं ।

3. **किण्वन (Fermentation)** बेलन के पश्चात इन्हें एल्यूमीनियम शीट पर फैलाकर किण्वन कक्ष (Fermentation) में किण्वन हेतु रखा जाता हैं । किण्वन कक्ष में आर्द्रता तथा तापक्रम को नियन्त्रित रखा जाता हैं । किण्वन के दौरान पॉलीफिनॉल ऑक्सीडेज (polyphenol oxidase) नाम एन्जाइम पत्तियों में उपस्थित केटेचिन (catechin) नामक फिनोल का ऑक्सीकरण कर थिआफ्लेविन तथा थियारूबीजिन्स (theaflavin and thearubigins) में परिवर्तित कर देता है । किण्वन क्रिया 3-5 घण्टे में पूर्ण होती हैं । फिनोल (टेनिन) के ऑक्सीकरण से पत्तियों का रंग लाल-भूरा हो जाता है तथा खुशबू उत्पन्न हो जाती है । इसे सुनहरी चाय (Golden tea) भी कहते हैं ।

4. **शुष्कन (Drying)** निश्चित किण्वन के पश्चात् पत्तियों को सुखाया जाता हैं ताकि आवश्यकता से अधिक किण्वन को रोका जा सके तथा पत्तियों में नमी की मात्रा कम की जा सके । शुष्कन हेतु (90-100C तापमान) गर्म हवा को 20-25 मिनट तक प्रवाहित किया जाता हैं । शुष्कन के फलस्वरूप पत्तियों में नमी की मात्रा 3-4 प्रतिशत तक रहती हैं तथा इनका रंग काला हो जाता हैं, जिसे काली चाय (Black Tea) कहते हैं । शुष्कन के समय तापमान नियन्त्रण आवश्यक होता हैं क्योंकि अधिक तापमान पर पत्तियों का स्वाद बदल जाता है तथा कम तापमान पर शुष्कन सही नहीं होने से भण्डारण में कठिनाई होती हैं ।

5. **छँटनी व ग्रेड निर्धारण (Sorting and garding)**-शुष्कन के पश्चात् तैयार चाय में साबुत पत्तियाँ तथा छोटे व बड़े टुकड़े तथा चूर्ण होता हैं । इन्हें कम्पमान छलनियों (vibrating sieves) द्वारा पृथक कर लिया जाता हैं । विभिन्न आमाप की पृथककृत पत्तियाँ विभिन्न ग्रेड कहलाती हैं । विभिन्न ग्रेड की चाय को लकड़ी की अलग-अलग पेटियों में भरकर बाजार में भेज दिया जाता हैं ।

प्रमुख ग्रेड निम्न प्रकार हैं:

(i) ब्रोकन ऑरेंज पिको (B.O.P.)

(ii) फ्लावरी ब्रोकन ऑरेंज पिको (F.B.O.P.),

(iii) ब्रोकन पिको (B.P.)

(iv) ऑरेंज पिको (O.P.)

(v) ब्रोकन ऑरेंज पिको फेनिंग्स (B.O.E.P.),

(vi) फेनिंग एवं डस्ट

भारत में अधिकतर चाय बागानों में संसाधन उपर्युक्त विधि द्वारा ही किया जाता हैं लेकिन कुछ प्रतिष्ठानों में आधुनिक मशीनें, जिन्हें सी.टी.सी. मशीन (C.T.C.machine) कहते हैं,

स्थापित की हैं । इसमें रोलर (rollers) को पूर्ण या आशिक रूप से प्रतिस्थापित कर दिया गया हैं ।

बाजार में उपलब्ध विभिन्न ब्राण्ड की चाय के साथ सामान्यत: 'CTC' चाय लिखा जाता हैं । इसका तात्पर्य CTC मशीन (Crushing tearing and curling) द्वारा संसाधित (processed) चाय से हैं ।

17.3 कॉफी (Coffee)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) – कॉफिया अरेबिका (Coffea arabica)

कुल (family) – रूबिऐसी (Rubiaceae)

कॉफी की खेती लगभग 500 वर्ष पुरानी हैं, परन्तु 18वी शताब्दी के पश्चात् इसकी लोकप्रियता बढ़ी हैं । आजकल विश्व की लगभग एक-तिहाई जनसंख्या इसका सेवन करती हैं । पेय का निर्माण कॉफी के भुने हुए बीजों को पीस कर गर्म या ठण्डे पानी में घोलकर किया जाता हैं । वाणिज्यिक दृष्टि से कॉफी का चाय से अधिक महत्व हैं ।

17.3.1 उत्पत्ति तथा इतिहास (Origin and History):

कॉफी के पादप की उत्पति दक्षिण-पश्चिमी एबिसिनिया (South-West Abyssinia) में काफा (Kaffa) क्षेत्र से मानी जाती हैं । इसके उत्पत्ति स्थल के नाम के आधार पर इसका नामकरण कॉफिया (Coffea) किया गया । 15वी शताब्दी के मध्य में इसका प्रवेश अदन (Adan) में (शेख शहाबुदीन दखानी द्वारा) हुआ, जहॉ से शीघ्र ही पूरे अरब (Arabia) में इसका प्रसार हो गया । उत्तेजक पेय (मादक पेय) होने के कारण कोरान (Koran) द्वारा इसे प्रतिबन्धित कर दिया गया । परन्तु इसकी लोकप्रियता के कारण यह शीघ्र ही अरेबिया का प्रमुख पेय पदार्थ बन गया तथा 1470 में मक्का व मदीना में काफी हाऊस खुल गये ।

अरब से कॉफी का प्रसार मिश्र (Egypt) तथा तुर्की (Turkey) से होते हुए 16वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में हुआ। सत्रहवीं शताब्दी में कॉफी व्यापक रूप से लोकप्रिय पेय के रूप में फ्रांस व इंग्लैण्ड में स्थापित हो गई । भारत में कॉफी का प्रवेश 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। ऐसा माना जाता हैं कि बाबा बुदान नामक मुस्लिम तीर्थ यात्री मक्का से अपने साथ कॉफी के बीज लाया था, जिन्हें चिकमंगलूर के पास चन्द्रागिरि पहाड़ियों पर उगाया गया, जहाँ अब भी कॉफी की खेती की जाती हैं । यह पादप धीरे-धीरे विश्व के अन्य भागों में जैसे श्रीलंका तथा जावा में 1700 ई. में, वेस्ट इण्डीज में 1720 ई. में तथा ब्राजील में 1770 ई. में पहुँचा।

17.3.2 कॉफी उत्पादक क्षेत्र (Coffee producing Areas):

कॉफी की खेती विश्व के अनेक ऊष्णकटिबन्धीय तथा उप-ऊष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में की जाती हैं। कॉफी के कुल उत्पादन का लगभग 2/3 भाग नये विश्व (New World) से आता हैं । ब्राजील, कोलिम्बया मैक्सिको, आइवरी कोस्ट, इथोपिया, युगाण्डा इण्डोनेशिया, ग्वाटेमाला,

साल्वाडोर आदि देशों में कॉफी का व्यापक उत्पादन होता हैं । ब्राजील कॉफी का सबसे बड़ा उत्पादक तथा निर्यातक देश हैं, जबकि अमेरिका विश्व का सबसे बड़ा कॉफी आयातक देश हैं । भारत में कॉफी की खेती मुख्यतः कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल में की जाती हैं । इसके अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश, आसाम तथा उड़ीसा में भी इसका उत्पादन होता हैं । भारतीय कॉफी विश्व में सर्वोत्तम गुणवत्ता की कॉफी मानी जाती हैं । इसलिये कॉफी निर्यात में भारत का महत्वपूर्ण स्थान हैं । भारत में कॉफी के कुल उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत उत्पादन अकेले कर्नाटक में होता हैं ।

17.3.3 वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters):

कॉफिया वंश में अनेक जातियाँ सम्मिलित हैं, परन्तु व्यावसायिक दृष्टि से केवल 3 जातियाँ महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें कॉफी उत्पादन हेतु उगाया जाता हैं । ये जातियाँ हैं: कॉफिया अरेबिका Coffea arabica), का: लिबेरिका (C-liberica) तथा का. रोबस्टा (C. robusta) । इनमें का. अरेबिका सबसे महत्वपूर्ण जाति हैं, जिससे विश्व की 90 प्रतिशत कॉफी प्राप्त होती है ।

1. कॉफिया **अरेबिका: अरेबियन कॉफी (C. Arabica; "Arabian coffee):**

यह एबीसिनिया उत्पत्ति का पादप हैं तथा अन्य जातियों की तुलना में सबसे व्यापक रूप से उगाया जाता हैं । इसके अतिरिक्त यह सबसे अच्छी किस्म की कॉफी का स्त्रोत हैं । यह चतुर्गुणित (tetraploid; 2n=44) जाति हैं । इसकी अनेक किस्में हैं, जिनमें दो प्रमुख किस्में हैं कॉ. अरेबिका देरा. अरेबिका (C. Arabica var. arabica) तथा कॉ. अरेबिका वेरा बौरबन (C. Arabica var. bourban) । पादप शोभाकारी झाड़ी अथवा छोटा वृक्ष होता है, जिसकी ऊँचाई 15-30 फुट तक होती हैं । पादप को सामान्यत: कटाई-छँटाई द्वारा झाड़ीनुमा रखा जाता हैं, जिसमें नई शाखाएँ विकसित होती रहती हैं तथा फल अधिक लगते है । स्तम्भ ऊर्ध्व काष्ठीय तथा शाखित होता हैं । पत्तियाँ सरल, सम्मुख, चर्मिल तथा चमकदार तथा सदाबहार होती हैं । पत्तियाँ अननुपर्णी होती हैं, जिनकी कक्ष से गुच्छे में पुष्प उत्पन्न होते हैं । पुष्प सफेद, ताराकार, (star-shaped), द्विलिंगी तथा उपरिजायांगी (epigynous) होते हैं । पुष्प वर्ष में तीन-चार बार विकसित होते हैं तथा पुष्पन से फल पकने में 6-9 माह का समय लगता हैं । तरूण फल हरे होते हैं, जो पकने पर गहरे लाल (crimson red) रंग के हो जाते हैं । फल बेरी (berry) प्रकार के होते हैं, जिन्हें लोकप्रिय रूप से चेरी (cherry) कहते हैं चित्र (11.2 A,B) । परिपक्व फल (कॉफी चेरी) की बाह्य रंग की त्वचा बाह्य फलभिति (exocarp) कहलाती हैं, इसके नीचे पीली-भूरी व श्लेष्मी मध्यफलभित्ति (mesocarp) कहलाती हैं तथा भीतरी कठोर झिल्ली अन्तःभित्ति (endocarp or parchment) कहलाती हैं । अन्त:फलभित्ति के अन्दर 2 बीज स्थित होते हैं (Coffee beans) । प्रत्येक बीज चमकदार बीजचोल (silver skin) द्वारा ढका होता हैं (चित्र 11.3) । कई बार फल में एक बीज स्थित होता हैं, जो व्यावसायिक दृष्टि से दोबीजीय फल से अधिक मूल्यवान होता हैं ।

2. कॉफिया रोबस्टा: 'काँगो काँफी (C. robusta; congo coffee:

यह अफ्रीका के कॉगो का स्थानीय पादप हैं । इसे अफ्रीका, मेलाग्से गणतन्त्र, भारत, इण्डोनेशिया तथा श्रीलंका में उगाया जाता हैं । यह तीव्र वृद्धि करने वाला कठोर लम्बा वृक्ष होता हैं, जो नम व ऊष्म जलवायु में अच्छी वृद्धि करता हैं । पत्तियाँ मोटी अथवा माँसल होती हैं । पुष्प व फल अत्यधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं । फल (berry) हल्के लाल रंग के होते हैं तथा पुष्पन से परिपक्व होने में 9-11 माह का समय लगता हैं । काँफी की गुणवत्ता अरेबियन काँफी की तुलना में हल्की होती हैं । बीजों में कैफीन की मात्रा 1.5-2.5 प्रतिशत होती हैं ।

3. कॉफिया लिबेरिका : लिबेरियन कॉफी (C. liberica;Liberian coffee) :

यह अफ्रीका के पश्चिमी तटीय क्षेत्र (लाइबेरिया) का स्थानीय पादप हैं । यह नम व ऊष्ण जलवायु के प्रति अनुकूलित हैं । पादप लम्बा वृक्ष होता हैं । यह अधिक तेजी से वृद्धि करता हैं तथा कम रोगग्राही (less susceptible) होता हैं । इसकी खेती पश्चिमी अफ्रीका तथा इण्डोनेशिया में की जाती हैं । पुष्पन से फल पकने में 12-14 महीने का समय लगता हैं । इससे सबसे हल्के किस्म की काँफी प्राप्त होती हैं, जिसमें कैफीन की मात्रा 1-15 प्रतिशत तक होती हैं ।

17.3.4 जलवायु तथा मृदा (Climate and Soil):

नम जलवायु तथा अच्छी वर्षा (1200-3000 मिमी.) वाले क्षेत्र काँफी की खेती के लिए अनुकूल होते हैं । काँफी की खेती सामान्यत: पर्वतीय ढलानों पर 900 से 1200 मीटर ऊँचाई पर की जाती हैं । इसकी वृद्धि के लिए 12^0C से 36^0C तापमान उपयुक्त रहता हैं । फल पकते समय इसके लिए शुष्क वातावरण लाभदायक रहता हैं । काँफी के लिए छिद्रिल नमीयुक्त, उपजाऊ तथा हल्की अम्लीय मृदा उपयुक्त रहती हैं । मृदा का संगठन रेतीली दोमट से लेकर चिकनी तक उपयुक्त रहता हैं । भारत में इसकी खेती पर्वतीय ढलवाँदार अथवा सीढ़ीनुमा भूमि पर की जाती हैं । ब्राजील में इसकी खेती 'Terra roxa' मृदा पर की जाती हैं । चाय के समान काँफी के पौधे पत्तियों को भी प्रारम्भिक अवस्था में छाया की आवश्यकता होती हैं, इसलिये इनके बीच-बीच में छायादार वृक्षों का रोपण किया जाता हैं ।

17.3.5 कृषिकरण (Cultivation):

काँफी का प्रवर्धन बीजों द्वारा किया जाता हैं । इसके अतिरिक्त इसे कलम (Cutting) या रोपण (grafting) द्वारा भी उगाया जाता हैं । पहले बीजों को क्यारियों में (दिसम्बर-जनवरी) उगाकर पौध तैयार की जाती हैं । क्यारियों में प्रचुर मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होने चाहिए तथा इन्हें छायादार स्थलों पर तैयार किया जाता है । बीजांकुरण में 35-40 दिन का समय लगता हैं । जब पौध की ऊँचाई 6-9 सेमी. होती हैं (मार्च-अप्रैल) इन्हें द्वितीयक पौधशाला (अन्य क्यारियों) में स्थानान्तरित किया जाता हैं । 16-18 माह की पौध (seeding) वर्षा ऋतु में खड्डो में स्थानान्तरित कर दी जाती हैं तथा खड्डों को मृदा व खाद से भर दिया जाता हैं । पादप के चारों ओर मिट्टी का माउण्ड बना दिया जाता हैं ताकि पौध के पास पानी न

भरे । पौधों को बाँस के डण्डे के सहारे बाँध दिया जाता हैं । पौधों के मध्य 8-10 फुट की दूरी रखी जाती हैं ।

पौधों को प्रत्येक वर्ष खाद की आपूर्ति की जाती हैं तथा समय-समय पर निराई-गुड़ाई की जाती हैं । तीन वर्ष की आयु में पादप फल देने लगते हैं तथा एक पादप सामान्यत: 40 वर्ष तक फल देता हैं ।

कटाई-छँटाई (Pruning or Tipping):

पादप की दो बार छँटाई (pruning) की जाती हैं । प्रथम छँटाई उस समय होती हैं, जब पादप आधा मीटर से कुछ लम्बा होता हैं तथा द्वितीय छँटाई उस समय करते हैं, जब पादप लगभग डेढ़ मीटर लम्बा हो जाता हैं । इस क्रिया में पादप शीर्ष को काट दिया जाता हैं, जिससे पर्याप्त मात्रा में पार्श्व शाखाएँ विकसित होती हैं तथा पादप भी झाड़ीनुमा रहता हैं ।

सस्यकर्तन (Harvesting):

अरेबियन कॉफी के फलों का सस्कर्तन (Harvesting) अक्टूबर से दिसम्बर माह के मध्य किया जाता हैं जबकि काँगो कॉफी में जनवरी से मार्च के मध्य किया जाता हैं । शाखाओं पर फल पक कर जब लाल रंग के हो जाते हैं, तब इन्हें तोड़ा जाता हैं । फलों को पकने में सामान्यत: 8-9 माह का समय लगता हैं । पके हु ए फलों को एकल रूप से चुनकर अथवा एक शाखा के सभी फलों को एक साथ सूत कर (sripped off) अथवा भूमि पर गिरने के पश्चात एकत्र किया जाता हैं । कॉफी का पादप 3-40 वर्ष की आयु तक फल देता हैं ।

17.3.6 कॉफी का संसाधन (Processing of coffee):

कॉफी का संसाधन अथवा प्रोसेसिंग (processing) दो प्रमुख विधियों द्वारा किया जाता हैं:

(i) शुष्क विधि (Dry method)

(ii) आर्द्र विधि (Wet method)

(i) शुष्क विधि **(Dry method)-** यह संसाधन की पुरानी तथा सरल विधि हैं । यह विधि मुख्यतः अफ्रीका में अपनाई जाती हैं । इस विधि में एकत्र किये गये फलों को पक्के फर्श (concrete or tiles floor) पर पतली परत के रूप में फैलाकर धूप में सुखाया जाता हैं । फलों को नियमित अन्तराल पर हिलाया जाता हैं ताकि चारों ओर एकसमान धूप लगे । इस क्रिया के फलस्वरूप फलभित्तियाँ सुख कर एक मोटी भूसी (husk) बन जाते हैं । भूसी को हाथों से अथवा मशीन (hulling machines) में डालकर पृथक कर दिया जाता हैं तथा शुष्क बीजों को संगहीत कर लिया जाता है ।

(ii) **आर्द विधि (wet method)**-इस विधि में फलों को जल से भरे बड़े टैंक में डाल दिया जाता हैं । पूर्ण विकसित फल जल में डूब जाते हैं जबकि खराब फल तथा पत्तियाँ, टहनियाँ आदि सतह पर तैरने लगते हैं । इन अशुद्धियों को पृथक कर दिया जाता हैं इसके पश्चात परिपक्व फलों का लुगदीकरण (pulping), किण्वन (fermentation), शुष्कन (drying) किया जाता हैं ।

फलों को लुगदीकरण मशीन (pulping machine) में डालकर कुचला जाता हैं । इस क्रिया में छिलका (skin) तथा आशिक रूप से गुदा (pulp) पृथक हो जाता हैं । अब इन्हें बर्तनों में डालकर किण्वन (fermentation) हेतु रखा जाता हैं, जिससे शेष गदा भी नष्ट हो जाता हैं । किण्वन के पश्चात् इन्हें अच्छी तरह जल से धोया जाता हैं, जिससे बीज पृथक हो जाते हैं अर्थात गुदा पृथक हो जाता है । बीजों को अब धूप में सुखा लिया जाता हैं, जिससे इनमें नमी की मात्रा कम हो जाती हैं । बीजों पर अब भी पर्चमेंन्ट (perchment) झिल्ली उपस्थित होती हैं, जिसे छिलका हटाने वाली मशीन (hulling machine) में डालकर पृथक कर दिया जाता हैं । बीजों की चोल (silver skin) पॉलिशिंग द्वारा पृथक की जाती हैं ।

कॉफी चूर्ण तैयार करना (Preparation of coffee powder): पॉलिश किये गये (polished) कॉफी बीजों (beans) को रोस्टिंग मशीन में डालकर 260^{0}C पर 5 मिनट के लिए रोस्ट (भूना) किया जाता हैं । भूनने से बीज गहरे-भूरे रंग के हो जाते हैं । इनका वजन 13-23 प्रतिशत तक कम हो जाता हैं परन्तु इनके आमाप में 30-90 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती हैं । बीजों में खुशबू उत्पन्न हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त इसका मुख्य संघटक कैफीन (caffeine) कैफीयोटेनिक अम्ल (caffeotanic acid) नामक टेनिन सम्मिश्र से मुक्त हो जाता हैं । कॉफी की खुशबू वाष्पशील तेल-कैफीयोल (caffeol) के कारण होती है । भूने बीजों को तेजी से ठण्डा किया जाता हैं तथा इन्हें पीस कर चूर्ण बनाया जाता हैं । चूर्ण को तुरन्त निर्वात में वायुरूद्ध (Air tight) पैकेट में पैक कर दिया जाता हैं ताकि उसकी खुशबू व ताजगी बनी रहे ।

इन्सटेन्ट कॉफी (Instant coffee)-कॉफी चूर्ण के निष्कर्षण (extract) को निर्वात में सान्द्रित कर इन्सटेन्ट कॉफी चूर्ण का निर्माण किया जाता हैं । रोबस्टा कॉफी का इन्सटेन्ट कॉफी निर्माण में बहुतायत से उपयोग किया जाता हैं । यह कॉफी का ब्राण्ड आजकल बहुत लोकप्रिय हैं, जिससे शीघ्रता से कॉफी पेय तैयार किया जा सकता हैं इसलिये इसे reay-to-mix कॉफी ब्राण्ड भी कहते हैं । इसका होटलों, रेस्टोरेन्ट तथा समारोहों आदि में उपयोग किया जाता हैं, जिससे तुरन्त अधिक मात्रा में कॉफी पेय तैयार किया जा सकता हैं । इसमें कैफीन की मात्रा 4.4 प्रतिशत तक होती है ।

कैफीन मुक्त (decaffeinsed) कॉफी भी बाजार में उपलब्ध होती हैं । इसका निर्माण कॉफी के बीजों से कार्बनिक विलायक विधि द्वारा कैफीन को पृथक किया जाता हैं ।

बोध प्रश्न

1. कॉफी में चिकोरी के किस भाग के चूर्ण को सम्मिश्रित (blending) किया जाता हैं-
   (अ) कन्दिल मूल का चूर्ण (ब) बीजों का चूर्ण
   (स) फलों का चूर्ण (द) उपरोक्त सभी ।
2. 'इन्सटेन्ट कॉफी' में कैफीनन की मात्रा होती हैं-
   (अ) 0.1-1 प्रतिशत तक (ब) 1-2 प्रतिशत तक

(स) 2-3 प्रतिशत तक (द) 4-4.5 प्रतिशत तक

3. कॉफी में उपस्थित वाष्पशील तेल का नाम हैं-

(अ) ओलिक अम्ल (ब) सिनिओल

(स) कैफिओल (द) उपरोक्त कोई नहीं।

4. मुख्य कॉफी उत्पादक जाति हैं-

(अ) कॉफिया लिबेरिका (ब) कॉफिया रोबस्टा

(स) कॉफिया अरेबिका (द) कॉफिया इण्डिका ।

5. भारत का सबसे बड़ा कॉफी उत्पादक राज्य हैं-

(अ) केरल (व) कर्नाटक

(स) आन्ध्रप्रदेष (द) तमिलनाडु ।

6. चेसिमा किस्म हैं-

(अ) कॉफी की (ब) चाय की

(स) कोको की (द) उपरोक्त में कोई नहीं ।

7. निम्न में से सबसे अच्छी गुणवत्ता की चाय हैं-

(अ) साऊचोंग (ब) पिको

(स) गोल्डन टिप्स (द) कॉगोंऊ ।

8. प्राकृतिक अवस्था में चाय का पौधा होता हैं-

(अ) एक छोटी झाड़ी (ब) एक छोटी आरोही

(स) एक वक्ष (द) एक षाक

9. भारत में चाय का मुख्य रूप से उत्पादन होता है-

(अ) केरल व कर्नाटक में (ब) तमिलनाडु व केरल में

(स) पश्चिम बंगाल व आसाम में (द) कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में ;

17.4 रबर : सामान्य विवरण

रबर पौधों द्वारा स्त्रावित हाइड्रोकार्बन, रेजीन, गोंद व अन्य पदार्थो का सम्मिश्रण होता हैं, जो लेटेक्स के रूप में स्त्रावित होता हैं । ऊष्णकटिबन्धीय तथा उप-ऊष्णकटिबन्धीय (tropical and sub-tropical) क्षेत्र के आरोही, काष्ठीय या ऊर्ध्व पादप एक सफेद दूधिया (milky) पदार्थ का स्त्रावण करते हैं; इसे लेटेक्स (latex) कहते हैं । यह पदार्थ विशिष्ट लेटेक्स कोशिकाओं अथवा नलिकाओं (latex ceils or latex tubes) में भरा रहता हैं । लेटेक्स में रबर हाइड्रोकार्बन, कार्बनिक अम्ल, खनिज, लवण, शर्करा, स्टार्च, प्रोटीन, एंजाइम, ऐल्केलॉइड, रेजीन, गोंद इत्यादि पदार्थ उपस्थित होते हैं । लेटेक्स का निर्माण उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप होता है । लेटेक्स में रबर सूक्ष्मदर्शीय कणों (0.03-3.0 um.) के रूप में निलम्बित अवस्था में होते हैं । प्रत्येक रबर कण गोलाकार तथा तीन भागों में विभेदित होता हैं । सबसे

भीतरी भाग अर्ध तरल शुद्ध रबर हाइड्रोकार्बन, मध्य श्यान रबर त्वचा तथा सबसे बाह्य प्रोटीन का रक्षात्मक कवच होता हैं, जो रबर कणों के स्कन्दन (coagulation) को रोकता हैं ।

रासायनिक दृष्टि से रबर पॉलिटरपीन (polyterpene) होता हैं । यह असंख्य आइसोप्रीन (Isoprene;C_5H_8) इकाइयों के बहुलकी (polymerisation) से बनता हैं । आइसोप्रीन अणु सिरों से आपस में संयुक्त होकर बडे अणु (बहुलक (polymer) बनाते हैं, जो छोटे स्प्रिंग के समान कुण्डलित होते हैं, जिसके कारण रबर लचीली प्रकृति की होती हैं ।

पुष्पी पादपों की 80 कुलों (families) की लगभग 2000 जातियाँ लेटेक्स का उत्पादन करती हैं । मुख्य रबर उत्पादक पादप निम्न कुलों से सम्बन्धित हैं : यूफॉर्बिएसी (Euphorbiaceae), मोरेसी (Moraceae), एपोसाइनेसी (Apocyanacease), एसक्लीपीएडेसी (Asclepiadaceae) तथा सेपोटेसी (Sapotaceae) व्यावसायिक रबर के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादन हीविया ब्रेसिलिएन्सिस (यूफॉर्बिएसी) से प्राप्त होता हैं ।

17.4.1 रबर का इतिहास (History of Rubber):

पश्चिमी गोलार्द्ध के ऊष्णकटिबन्धीय (tropical region) के लोगों को रबर की जानकारी पूर्व ऐतिहासिक काल से थी । पेरू, मैक्सिको तथा मध्य व दक्षिणी अमेरिका में रबर का उपयोग कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज से पूर्व से किया जा रहा हैं । कोलम्बस (1492) ने अपनी खोजी यात्रा के दौरान होती (Haiti) के निवासियों को रबर की उछलने वाली तथा जलसह (water-proof) गेंद से खेलते देखा । वहाँ के निवासी ऐसी गेंद से अपने स्थानीय खेल ईट या पत्थर के मैदान पर खेलते थे तथा इसे स्थानीय भाषा में "कैचूक" (Cachuc) कहते थे, जिसका अर्थ हैं weeping wood" क्योंकि इसे एक वृक्ष से उत्सर्जित होने वाले गोंद से तैयार किया जाता था । ऑक्सीजन के आविष्कारक जोसेफ प्रिस्टले (Joseph priestley) ने 1770 में इसे (कैचूक) रबर नाम दिया क्योंकि उन्होंने देखा कि यह पैन्सिल के चिन्हों को मिटाने (rubbing) में सक्षम हैं । इसकी जलसह (water proofing) प्रकृति के कारण मैकिन्टोश (Machintosh; 1823) ने वस्त्रों को रबर द्वारा जलरोधी करने की विधि का विकास किया तथा मेन्चेस्टर में रेनकोट (rain coat) बनाने की फैक्ट्री स्थापित की । परन्तु कम ताप पर भंगुरता के कारण यह प्रयोग असफल रहा ।

चार्ल्स गुडईयर (Charless Goodyear) ने 1839 में रबर के वल्कनीकरण (vulcanization) का आविष्कार किया, जिसने रबर उद्योग में क्रान्ति ला दी । 1867 में प्रथम रबर के ठोस टायर का निर्माण हुआ तथा 1888 में डनलप (Dunlop) ने साइकिल का प्रथम वायु टायर (pneumatic tyre) विकसित किया । इसके पश्चात अन्य गाड़ियों के टायरों का विकास हुआ। 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्राजील (अमेजन घाटी) के जंगली वृक्षों से ही व्यावसायिक रबर प्राप्त होती थी । वल्कनीकरण की खोज के पश्चात रबर की माँग को देखते हुए विश्व के अन्य क्षेत्रों में रबर के पौधों के उगाये जाने के प्रयास प्रारम्भ हुए ।

17.4.2 रबर का गुण (Properties of Rubber):

रबर एक लचीला (flexible), प्रत्यास्थ (elastic) तथा चिरस्थायी (durable) पदार्थ हैं । इसके अतिरिक्त यह वायुरोधी (air-tight) तथा जलसह (water proof) होता हैं । रबर एक वष्हत अणुक (macromolecular) यौगिक हैं, जो अनेक छोटे सरल अणुओं (soprene) के बहुलकीकरण (polymerisation) से बनता हैं । रबर में विशिष्ट भौतिक व रासायनिक गुण होते हैं ।

(i) **भौतिक गुण (physical properties)**-शुद्ध रबर खुशबू रहित, लचीला व पारभासक (transluscent) होता हैं । रबर का विशिष्ट घनत्व 0.915 होता हैं । न्यून ताप (0-10^{0}C) पर यह कठोर व अपारदर्शी होता हैं परन्तु अधिक ताप (20^{0}C) पर यह नरम व पारभासक हो जाता हैं । 25^{0}C से अधिक ताप पर इसका लचीलापन समाप्त हो जाता हैं तथा यह चिपचिपा हो जाता हैं । रबर जल में अघुलनशील होता हैं परन्तु कार्बनिक विलायकों, जैसे-ईथर, बेन्जीन, क्लोरोफॉर्म तथा कार्बन डाइसल्फाइड आदि में घुलनशील होता हैं ।

(ii) **रासायनिक गुण (Chemical properties):** असंसाधित रबर (raw rubber) में 92-94 प्रतिशत रबर हाइड्रोकार्बन, 3 प्रतिशत रेजीन, 2 प्रतिशत प्रोटीन तथा 0.2 प्रतिशत राख (ash) होता हैं । रबर हाइड्रोकार्बन आइसोप्रीन (C_5H_8) के रूप में होता हैं । रबर दुर्बल अम्लों व क्षारों द्वारा अप्रभावित रहता हैं । यह हैलोजन अम्लों ओजोन तथा नाइट्रोजन ऑक्साइडों से क्रिया कर इनके यौगिकों (compounds) का निर्माण करता हैं । उच्च ताप व दाब पर रबर के हाइड्रोजनीकरण से हाइड्रोरबर (hydroubber) का निर्माण होता हैं ।

सारणी 17.1 कुछ रबर उत्पादक पादप तथा उनमें रबर हाइड्रोकार्बन की मात्रा

क्र.स.	रबर	पादप का नाम	कुल	रबर हाइड्रोकार्बन
1.	पारा रबर	हीविया ब्रेसिलिएन्सिस	युफॉर्बिएसी	94
2.	भारतीय रबर	फाइकस इलास्टिका	मोरेसी	78
3.	पानामा रबर	कैरिटला इलास्टिका	मोरेसी	93
4.	अफीकन रबर	लैण्डोल्फिया ह्यूडेलोटी	एपोसाइनेसी	93
5.	सियरा रबर	मेनिहॉट ग्लेजियावी	यूफॉर्बिएसी	88
6.	पाले रबर	क्रिप्तोस्टेजिया ग्रेंडिपलोरा	एसक्लिपियेडेसी	88
7.	लागोस सिल्क रबर	फन्टुमिया इलास्टिका	एपोसाइनेसी	88

17.4.3 पारा रबर

वानस्पतिक नाम – हीविया ब्रेसिलिएन्सिस
(Botanical name) (Hevea brasiliensis)
कुल (Family) – यूफॉर्बिएसी (Euphorbiaceae)

उत्पति व विवरण (Origin and distribution):

हीविया ऊष्णकटिबन्धीय दक्षिणी अमेरिका (ब्राजील) की अमेजन घाटी (Amazon valley) का स्थानीय पादप हैं, जहाँ यह जंगली पादप के रूप में उगता हैं । इसके अलावा पेरू, बोलिविया तथा कोलम्बिया में भी जंगली अवस्था में उगता हैं । ब्राजील में पारा-रबर के बीजों को 1873 में रॉयल वानस्पतिक उद्यान' किव (इंग्लैण्ड) लाया गया तथा वहाँ से इनके पौध (Seedlings) को बाद में रॉयल वानस्पतिक उद्यान कलकत्ता (भारत) भेजा गया । परन्तु ये पौध यहाँ जीवित नहीं रह पाए । 1875 में पुन: ब्राजील से एकत्र बीजों को उगाकर तैयार पौध श्रीलंका भेजी गई, जिन्हें श्रीलंका, मलाया तथा इण्डोनेशिया में स्थापित किया गया । इसके अतिरिक्त रबर का रोपण लाइबेरिया तथा पश्चिमी अका में भी किया गया । भारत में रबर का वृक्षारोपण 1905 में केरल में प्रारम्भ हुआ ।

मलेशिया, थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, श्रीलंका, भारत, दक्षिणी अमेरिका (ब्राजील) तथा अफ्रीका (नाइजीरिया, लाइबेरिया तथा जायरें) में हीविया की खेती की जाती हैं । मलेषिया थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, श्रीलंका तथा भारत सामूहिक रूप से विश्व के कुल रबर उत्पादन का 90 प्रतिशत उत्पादन करते हैं ।

भारत में रबर की खेती मुख्यतः केरल में की जाती हैं (कोट्टायम तथा क्यूलोन जिलों मे) जो भारत के कुल उत्पादन का 94 प्रतिशत रबर उत्पादन करता है । केरल के अलावा कर्नाटक, तमिलनाडु तथा अण्डमान व निकोबार व गोवा में भी रबर की खेती की जाती हैं ।

वानस्पतिक लक्षण (Botanical Characters)

हीविया पादप लम्बा, शाखित व तेज वृद्धि करने वाला वृक्ष होता हैं, जिसकी ऊँचाई 60 से 100 फुट तक होती हैं । मुख्य स्तम्भ 6-9 फुट व्यास का सीधा तथा 10-15 फुट ऊँचाई तक अशाखित रहता हैं । शाखाएँ शंक्वाकार केनोपी (canopy) का निर्माण करती हैं । पत्तियाँ एकान्तर संयुक्त, त्रिपत्रकी (trifoliate) तथा गहरे रंग की होती हैं । पर्णक (pinna) दीर्घवृत्तीय (elliptical) या प्रतिअण्डाकार (obovate) तथा लम्बाग्र (acuminate) शीर्ष युक्त होते हैं । पुष्प छोटे, हरे, सुगन्धित होते हैं जो कक्षीय यौगिक असीमाक्ष (axillary panicles) में विकसित होते हैं । पुष्प एकलिंगी (unisexual) होते हैं तथा नर पुष्पों की तुलना में मादा पुष्प बड़े होते हैं । पुष्पक्रम में नर पुष्प नीचे की ओर जबकि मादा पुष्प ऊपर की ओर व्यवस्थित हैं । फल त्रिकोष्ठीय कैप्सूल होता हैं तथा प्रत्येक कोष्ठक में एक तेलयुक्त बीज स्थित होता हैं । परिपक्व कैप्सूल का स्फुटन विस्फोटी विधि (explosive mechaism) से होता हैं, जिसके फलस्वरूप बीज 10-12 मीटर दूर तक बिखर जाते हैं ।

जलवायु तथा मृदा (Climate and soil):

हीविया ऊष्णकटिबन्धीय क्षेत्र का पादप हैं, इसलिये इसे ऊष्ण व नम जलवायु की आवश्यकता होती हैं । इसकी वृद्धि के लिए 170-250 सेमी. औसत वार्षिक वर्षा तथा 21-35^{0}C तापमान की आवश्यकता होती हैं । यह कठोर पादप हैं, जो 2 महीने तक का शुष्क काल सहन कर सकता हैं । समुद्र तल से 450 से 600 मीटर ऊंचाई वाले स्थान इसकी वृद्धि के अनुकूल हैं।

अच्छे जल निकास वाली (Well drained) दोमट मृदा इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त रहती हैं । इसके अतिरिक्त यह हल्की अम्लीय प्रकृति की मृदा (PH4.5-6) में अच्छी वृद्धि करता हैं ।

प्रवर्धन (Cultivation):

हीविया का प्रवर्धन बीजों द्वारा अथवा कलिकारोपण (bud propagation) द्वारा किया जाता हैं । इसके बीजों की जीवन क्षमता (viability) अल्पकालिक होती हैं इसलिये बीजों को परिपक्वन के तुरन्त पश्चात एकत्र कर उगाना चाहिए । बीजों को क्यारियों में उगाकर पौध (seedlings) तैयार की जाती हैं । स्वस्थ पौध का चयन कर जून-जुलाई में इन्हें गड्ढों में स्थानान्तरित किया जाता हैं । प्रारम्भिक अवस्था में पौधों को 4.3-5 मीटर की दूरी पर रोपित किया जाता हैं, जिससे एक हैक्टेयर में 500 पौधों का रोपण होता हैं । अधिक उपज वाली किस्मों में कलिका-रोपण किया जाता हैं । कलिकाओं के प्रस्फुटन के लगभग 4 सप्ताह बाद इनका मृदा में रोपण किया जाता हैं । कलिका रोपण की दशा में सघनता 420-450 पादप प्रति हैक्टेयर रखते हैं । लेटेक्स का अधिक उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए वृक्षों में नियमित सन्तुलित उर्वरक (N,P,K,Mg) डाले जाते ई 6-7 वर्ष की आयु से पादप से रबर निष्कासन (tatpping) प्रारम्भ किया जाता हैं । लेटेक्स की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती हैं तथा 10-12 वर्ष की आयु के वृक्षों से पर्याप्त मात्रा में लेटेक्स प्राप्त होने लगता हैं । एक वृक्ष 25-30 वर्ष की आयु तक उत्पादन योग्य होता हैं । इसके पश्चात इन्हें उखाड़ दिया जाता हैं ।

(Tapping of Rubber):

प्रारम्भिक काल में अमेजन घाटी में रबर निकासन हेतु हीविया के पादपों को काटकर लेटेकन एकत्र किया जाता था । इसके पश्चात वृक्ष के तन में कुल्हाड़ी से अनियमित घाव बनाकर लेटेक्स संग्रहित किया जाने लगा । यह विधि पूर्णत: अवैज्ञानिक थी, जिससे पादप के घावों से संक्रमण की सम्भावना भी बढ़ जाती थी । लेकिन आजकल लेटेक्स के संग्रहण तथा संसाधन का वैज्ञानिक विधि से प्रबन्धन किया जाता हैं ।

आजकल विशेष चाकुओं की सहायता से चीरा लगाकर लेटेक्स एकत्र किया जाता हैं । चूंकि हीविया में लेटेक्स वाहिकाएँ सर्पिल क्रम में विन्यासित होती हैं, इसलिये चीरा (incision) अनुप्रस्थ व अनुदैर्ध्य न लगाकर 30. के कोण पर तिरछा लगाया जाता हैं । प्रत्येक चीरे की मोटाई 1-15 मिमी. होती हैं । कभी-कभी चीरे V आकृति में लगाये जाते हैं । एक तीसरी विधि में कई समान्तर सर्पिल चीरे लगाकर उन्हें एक उर्ध्व चीरे द्वारा जोड़ दिया जाता हैं । इसे हेरिंग अस्थि तन्त्र कहते हैं ।

चीरे स्तम्भ के आधार भाग से कुछ ऊँचाई (2-3 फुट) पर लगाये जाते हैं तथा इस बात का ध्यान रखा जाता हैं कि एधा नष्ट न हो पाये । सामान्यत: एक समय में स्तम्भ के एक तरफ ही अच्छी दूरी में (आधे व्यास पर) धीरे लगाये जाते हैं । लेटेक्स एकत्र करने के लिए चीरे के ठीक नीचे एक पात्र रख दिया जाता हैं, जिसमें धीरे-धीरे रिस कर लेटेक्स एकत्र हो जाता हैं । पात्रों में रबर का स्कन्दन रोकने के लिए प्रतिस्कंदक (anticoagulant), जैसे-हाइड्रोजन परऑक्साइड, फॉर्मल्डिहाइड, अमोनिया आदि मिला दिये जाते हैं । चीरे के निचले भाग

पर वृद्धि हार्मोन 2,4-D व 245- T के इन्जेक्शन द्वारा लेटेक्स की मात्रा 30 प्रतिशत बढ़ाई जा सकती हैं ।

चीरा प्रात: काल लगाया जाता हैं, क्योंकि कप ताप पर इसका प्रवाह तेजी से होता हैं तथा धीरे-धीरे कम होता हुआ दोपहर में बन्द हो जाता हैं । लेटेक्स सफेद-पीले रंग का लसलसा तरल पदार्थ होता हैं । इसमें 25-40 प्रतिशत रबर होता हैं । रबर के अतिरिक्त प्रोटीन, रेजीन, ऐल्केलॉयड, स्टार्च, कार्बनिक, अम्ल, रेजीन गोंद आदि पदार्थ होते हैं ।

रबर का संसाधन (Preocessing of Rubber):

लेटेक्स को एकत्र करने के पश्चात रबर निर्माण हेतु फैक्ट्री में भेज दिया जाता हैं । सर्वप्रथम इसे बड़ी छन्नियों से छाना जाता हैं ताकि इसमें उपस्थित छाल के टुकड़े, पत्तियाँ इत्यादि अशुद्धियों को दूर किया जा सके । लेटेक्स में उपस्थित पानी की मात्रा नाप कर तथा इसके पश्चात जल मिलाकर इसे मानकीकृत (standardise) कर लिया जाता हैं । इसे पुन: छन्नी से छानकर बड़े पात्रों में स्थानान्तरित कर दिया जाता हैं । अब इसमें फॉर्मिक अम्ल या ऐसीटिक अम्ल मिलाकर इसे स्कंदित किया जाता हैं । इस क्रिया में लेटेक्स को तब तक हिलाया जाता हैं, जब तक रबर नरम सफेद स्पंजी गेंद के रूप में स्कंदित न हो जाए । इस स्कंदित रबर को क्रूड रबर भी कहते हैं । इसे पानी से धोया जाता हैं फिर इसे रोलर में दबाकर निचोड़ लिया जाता हैं तथा इसे शीट का रूप दे दिया जाता हैं । इसे क्रीप रबर (crepe rubber) कहते हैं । क्रीप रबर शीट को आंशिक रूप से छाया में सुखाया जाता हैं । इसके पश्चात इन्हें सुखाने के लिए धूम कक्षों (smoke house) में 4-5 दिन तक रखा जाता हैं । धूम कक्ष का तापमान 40-50^{0}C तक रखा जाता हैं । अब इसे स्मोक क्रीप शीट कहते हैं । इसके पश्चात शीटों को गुणवत्ता (quality) के अनुसार ग्रेडेड करके विभिन्न उत्पादों के निर्माण हेतु भेज दिया जाता हैं । स्मोक क्रीप शीट्स (smoke crepe sheets) के अतिरिक्त पेल क्रीप (pale crepe) तथा सोल क्रीप (sole crepe) का निर्माण भी किया जाता हैं ।

रबर का वल्कनीकरण (Vulcanization of Rubber):

इस प्रकार संसाधित रबर अधिक ताप पर लचीली तथा कम ताप पर भंग दर होती है इसलिये औद्योगिक उत्पादों में यह लाभदायक नहीं होती हैं । रबर को अधिक चिरस्थायी, लचीला व तापरोधी बनाने के लिए इसका वल्कनीकरण किया जाता हैं । वल्कनीकरण का आविष्कार चार्ल्स गुडईयर (Charles Goodyear, 1839) ने किया था । इस क्रिया में रबर को वल्कनीकृत रबर (vulcanized rubber) कहते हैं । सल्फर के अलावा अन्य रसायन, जैसे सेलेनियम (selenium), कार्बनिक परऑक्साइड (organic peroxides) तथा नाइट्रो-परऑक्साइड्स (nitro peroxides) आदि का प्रयोग भी किया जाता हैं ।

उपयोग (Uses)

रबर बहुपयोगी पादप उत्पाद हैं जिसके घरेलू औद्योगिक तथा वाणिज्यिक महत्व निम्न प्रकार है:

1. इसका उपयोग गुब्बारे, दस्ताने (golves), वाशर (washers), गॉस्केट (gaskets), हौज पाइप (hose pipes), इरेजर (erasers), खिलौने, बेल्ट, पेन, कंघे व चटाइयाँ इत्यादि निर्माण में होता हैं ।

2. रबर का उपयोग खेल उपकरण, रबराइज्ड वस्त्र (रेन कोट आदि) तथा एडहेसिव टेप इत्यादि निर्माण में होता

3. 70 प्रतिशत से अधिक रबर का उपयोग विभिन्न प्रकार के वाहनों के टायर-ट्यूब निर्माण में होता हैं ।

4. असंसाधित लेटेक्स फुटवियर (footwear) उद्‌योग में एडहेसिव (rubber soultion) के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

5. रबर का उपयोग जूतों के तले (sole) निर्माण में किया जाता हैं ।

6. फोम का रबर का उपयोग गद्दे, तकिये व फर्नीचर तथा मोटरगाड़ियों की गद्दियों के निर्माण में किया जाता

7. रबर का उपयोग टेलीफोन, रेडियो व टेलीविजन के केबिनेट्स तथा चिकित्सकीय उपकरणों के निर्माण में किया जाता हैं ।

8. बिजली के तारों के विद्‌युतरोधन (insulation) में रबर का उपयोग किया जाता हैं ।

17.4.4 भारतीय या आसाम रबर (Assam Rubber)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) – फाइकस इलास्टिका (Ficus elastica)

कुल (Family) – मोरेसी (Moracease)

पादप भारत व मलाया का स्थानीय वासी (native) हैं । भारत में यह हिमालय के तराई क्षेत्र में, आसाम से नेपाल तक तथा बर्मा में जंगली पादप के रूप में उगता हैं । यह नम घाटी क्षेत्रों व पर्वतीय ढलानों पर समुद्र तल से 3000 से 5000 फुट की ऊँचाई पर अच्छी वृद्धि करता हैं ।

पादप के मुख्य स्तम्भ, मुख्य शाखाओं तथा वायवीय मूलों से लेटेक्स प्राप्त किया जाता हैं । सामान्यत: तीन वर्ष में एक बार लेटेक्स का निष्कासन किया जाता हैं । लेटेक्स सफेद रंग का तथा ईथर की गंधयुक्त होता है । यह रबर हल्के स्तर का तथा कम वाणिज्यिक महत्व का होता हैं ।

बोध प्रश्न

10. लेटेक्स में उपस्थित रबर के कणों का आकार होता हैं-
    (अ) 30 - 300 im. (ब) 3 - 30 im.
    (स) 0.03 - 3.0 im. (द) 0.003 -0.03 im.

11. वाणिज्यिक रबर का मुख्य स्त्रोत हैं-
    (अ) हिविया ब्रेसिलेन्सिस (ब) मेनिहाट ग्लेजियावी
    (स) यूफार्बिया टिरूकली (द) उपरोक्त कोई नहीं ।

12. गट्टा-पर्चा का स्त्रोत हे-

(अ) फाइकस इलास्टिका (ब) कैस्टिला इलास्टिका
(स) पालाक्यूस गट्टा (द) क्रिप्टोस्टेजिया ग्रेन्दिपलोरा ।

13. चुइंग-गम निर्माण में किस पादप का लेटेक्स प्रयुक्त होता हैं-
(अ) मेनिकारा बाइडेन्टाटा (ब) एकरस जेपोटा
(स) डायस कोस्ट्रूलाटा (द) फाइक्स इलास्टिका

14. निम्न में से पेट्रो-क्रोप हैं-
(अ) केलोट्रोपिस (ब) यूफार्बिया
(स) पेडिलेन्धस (द) उपरोक्त सभी ।

17.5 इथनोबोटनी: सामान्य विवरण:- (Ethanobotany: General Description)

आदिमानव सभ्यता और वानस्पतिक संरक्षण एक दूसरे के पूरक रहे है । आदिवासी मनुष्य प्रारम्भ से ही वनस्पतियों और जन्तुओं को संरक्षण प्रदान करते रहे हैं जिनके साथ उनके भावनात्मक तथा सहजीवी सम्बन्ध रहे है।

इथनोबॉटनी वनस्पति विज्ञान की वह शाखा हैं जो आदिवासीयों के पादपों से सम्बन्धित ज्ञान का अभिलेखन तथा संरक्षण करती हैं ।

विश्व में लगभग हर बीसवां व्यक्ति आदिवासी जीवन जीता हैं । सम्पूर्ण पृथ्वी पर लगभग 70 देशों में आदिवासी सभ्यता में लोग आज भी निवास करते हैं ।

भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 550 आदिवासी समुदाय निवास करते हैं जिनकी जनसंख्या, भारतीय जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत हैं । यहाँ तक 'कि कुछ जनजातियाँ तो विलुप्ति के कगार पर भी हैं । इन जनजातियों के पारम्परिक वानस्पतिक ज्ञान का अभिलेखन तथा संरक्षण महत्वपूर्ण हैं । यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करे तो निम्न क्षेत्रों में इन जनजातियों ने अपना योगदान दिया हैं ।

1. महत्वपूर्ण फसली पादपों की वन्य प्रजातियों का संरक्षण
2. लाभदायक वन्य पादपों का शस्यकरण
3. वन्य पादपों के खाद्य तथा औषधीय उपयोगों का ज्ञान
4. आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पादपों की वन्य प्रजातियाँ का ज्ञान तथा संरक्षण

17.6 सारांश (Summary):-

चाय तथा कॉफी आधुनिक जीवन शैली के महत्वपूर्ण पेय हैं, जो पादप उत्पाद हैं । चाय तथा कॉफी की खेती ने इसे महत्वपूर्ण आर्थिक फसल बना दिया हैं, जो भारतवर्ष की निर्यात की जाने वाली महत्वपूर्ण फसल है । दैनिक जीवन के अनेकों महत्वपूर्ण उत्पाद जैसे दस्ताने, गास्केट, पाइप इरेजर आदि रबर से बने उत्पाद हैं । रबर यूफॉर्विएसी कुल के पादपों से सामान्यत: प्राप्त होता हैं ।

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर: 1 (अ), 2. (द), 3. (स), 4. (स), 5. (ब), 6. (ब), 7. (स), 8. (स), 9. (स), 10. (स), 11 (अ), 12. (सं), 13. (ब), 14. (द)

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. चाय की उत्पति, वानस्पतिक गुण, कृषि तथा संसाधन (processing) का वर्णन कीजिए ।
2. कॉफी की उत्पत्ति तथा वितरण, वानस्पतिक लक्षण, संसाधन विधि तथा उपयोग बताइए ।
3. टिप्पणी लिखिए-

(a) हरी चाय

(b) ऊलोंग चाय

(c) कॉफी का संसाधन ।

4. निम्न में विभेद कीजिए:

(a) हरी चाय व काली चाय

(b) ऐल्कोहॉलिक पेय व अऐल्कोहॉलिक पेय

(c) उलोंग चाय व ब्रिक चाय

(d) कागों कॉफी व लिबेरियन कॉफी ।

5. रबर के इतिहास, वनस्पति, लेटेक्स संग्रहण तथा संसाधन पर लेख लिखिए ।
6. रबर के इतिहास, संसाधन तथा महत्व पर लेख लिखिए ।
7. निम्न पर टिप्पणी लिखिए

(अ) केलोट्रोपिस के लेटेक्स का रासायनिक संगठन तथा उपयोग लिखिए ।

(ब) यूफोर्बिया-हाइड्रोकार्बन उत्पादक पादप ।

(स) रबर के विभिन्न उपयोग बताइए ।

(द) रबर के संसाधन पर टिप्पणी लिखिए

17.9 पारिभाषिक शब्दावली-

चाय	–	Tea
किस्में	–	Varieties
कटाई छँटाई	–	Pruning& Tipping
पारा रबर	–	para Rubber
संसाधन	–	Processing

17.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. पांडे बी.पी. इकोनोमिक बाटनी, ए. चाँद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली ।
2. कोचर, इकोनोमिक बोटनी इन द ट्रॉपिक्स मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली ।

ISBN - 13/978-81-8496-130-0